MAED-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार

Psychological Bases of Education

MAED-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार

Psychological Bases of Education

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. दामीना चौधरी
सहआचार्य, शिक्षा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सदस्य

1. **प्रो. सोहन वीर सिंह चौधरी**
   इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली
2. **डॉ. अनिल शुक्ला**
   लखनऊ विश्वविद्यालय,
   लखनऊ (उ.प्र.)
3. **प्रो. मंजूलिका श्रीवास्तव**
   दूरस्थ शिक्षा परिषद
   इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली
4. **प्रो. डी.आर. गोयल**
   एम.एस. विश्वविद्यालय
   बड़ौदा, गुजरात
5. **प्रो. एस.पी. मल्होत्रा**
   कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

संपादन तथा पाठ लेखन

संपादक

अनिल शुक्ला
सह आचार्य, शिक्षा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

लेखक

1. **डा. ए.एन. मिश्र**
   शिक्षा विभाग
   कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
2. **डा. बी.एस. रायजदा**
   शिक्षा विभाग, (सेवानिवृत्त)
   क्षेत्रीय महाविद्यालय, अजमेर
3. **डा. शांतिदास**
   एन.सी.ई.ई.आर.टी. नई दिल्ली
4. **डा. बी.एस. सागर**
   (सेवानिवृत्त), शिक्षा विभाग
   एम.डी. विश्वविद्यालय, रोहतक
5. **डा. जी.एन.पी. श्रीवास्तव**
   शिक्षा विभाग
   क्षेत्रीय महाविद्यालय, अजमेर
6. **प्रो. एस.पी. सूरी**
   शिक्षा विभाग
   जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
7. **डा. जनक पंत**
   शिक्षा विभाग
   लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
8. **प्रोफेसर के.एस. मिश्र**
   शिक्षा विभाग
   बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी
9. **डा. पी.एन. माहेश्वरी**
   आदर्श विद्या मंदिर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जयपुर
10. **डा. अनिल शुक्ला**
    शिक्षा विभाग
    लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
11. **प्रोफेसर आर.एस. शुक्ल**
    प्राचार्य (सेवानिवृत्त)
    विद्या भवन शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर
12. **डा. सरोज आनन्द**
    शिक्षा विभाग
    लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. अनाम जैतली**	**प्रो. पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAED-02

शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

अनुक्रमणिका

इकाई		पृष्ठ संख्या
1.	शिक्षा मनोविज्ञान की संकल्पना : मनोविज्ञान कला है या विज्ञान	6
2.	मनोविज्ञान का क्षेत्र और महत्व	19
3.	मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियाँ : (निरीक्षण, परीक्षण, व्यक्ति वृत्त अध्ययन, साक्षात्कार, सेल्फ रिपोर्टिंग)	29
4.	मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय	42
5.	विकास का अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रभावित करने वाले तत्व (आनुवांशिक, जैविक, सामाजिक)	56
6.	बालक का शारीरिक एवं गामक विकास	69
7.	बालक का ज्ञानात्मक विकास	86
8.	सामाजिक विकास : अर्थ, प्रक्रिया, परिवर्तन और प्रतिमान	103
9.	संवेगात्मक विकास	116
10.	नैतिक विकास : पियाजे तथा कॉलबर्ग के विशेष संदर्भ मे	133
11.	अधिगम का प्रत्यय, स्वरूप और प्रकार	139
12.	अधिगम के सिद्धान्त	153
13.	अधिगम के सूचना प्रसाधन सिद्धान्त	169
14.	अधिगम का स्थानान्तरण	196
15.	गेने द्वारा प्रतिपादित अधिगम-अनुक्रम	207
16.	स्मरण व विस्मरण : प्रभावित करने वाले कारक	218
17.	व्यक्तित्व के लक्षण एवं प्रभावक तत्व	230
18.	व्यक्तित्व मूल्यांकन प्रक्षेपी व अप्रक्षेपी विधियाँ	246
19.	व्यक्तित्व विभिन्नताएँ : संकल्पना, स्वभाव तथा मापन की विधियाँ	263
20.	बुद्धि अवधारणा तथा सिद्धान्त	278
21.	सृजनात्मकता	290
22.	अभिरुचि : अवधारणा तथा मापन	306
23.	अभिप्रेरणा संकल्पना तथा अधिगम पर प्रभाव	316
24.	समायोजन	329
25.	समाजमिती	345

इकाई-1

शिक्षा मनोविज्ञान की संकल्पना : मनोविज्ञान कला है या विज्ञान (CONCEPT OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY: IS PSYCHOLOGY ART OR SCIENCE)

इकाई की संरचना

1.1.0 उद्देश्य तचा लक्ष्य

1.2.0 प्रस्तावना

1.3.0 शिक्षा मनोविज्ञान की संकल्पना

- 1.3.1 शिक्षा क्या है?
- 1.3.2 मनोविज्ञान का अर्थ
- 1.3.3 शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सम्बन्ध
- 1.3.4 शिक्षा मनोविज्ञान क्या है?

1.4.0 मनोविज्ञान कला है या विज्ञान

- 1.4.1 क्या मनोविज्ञान विज्ञान है?
- 1.4.2 क्या मनोविज्ञान कला है?

1.5.0 सारांश

1.6.0 संदर्भ

1.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

मानव शिशु अपार संभावनाओं से परिपूर्ण होता है । इन संभावनाओं को वास्तविकता में बदलने हेतु एक ऐसे शिक्षण अधिगम तंत्र की आवश्यकता होती है, जो बालक एवं उसके व्यवहार को विश्वसनीय एवं वैध तरीके से समझाकर उसे अपेक्षित दिशा निर्देश दे सकें ताकि बालक के सर्वागीण विकास के साथ साथ समाज का भी अनवरत गति से विकास हो सकें । ऐसे शिक्षण अधिगम तंत्र की कल्पना शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान के बिना अधूरी ही होगी । इस इकाई की संरचना इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर की गई है ताकि शिक्षार्थी "शिक्षा मनोविज्ञान" को समझकर इसका व्यवहारिक जीवन में लाभ उठा सकें ।

इस पाठ की सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य होने चाहिए कि

- शिक्षा तथा मनोविज्ञान का अर्थ समझ सकें ।
- मनोविज्ञान के बदलते स्वरूप से परिचित हो सकें ।
- शिक्षा मनोविज्ञान की सम्प्रत्यय को स्पष्ट कर सकें ।
- यह सामान्यीकरण कर सकें कि शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का व्यवहारिक रूप है ।
- "मनोविज्ञान कला है या विज्ञान" इसका समीक्षात्मक मूल्यांकन कर सकें ।
- शिक्षा मनोविज्ञान की महत्ता से परिचित हो सकें ।

1.2.0 प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । एक सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे स्वयं को तथा समाज को उन्नत बनाने के लिए अपने समाज की संस्कृति, सभ्यता तथा प्रगति की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। वास्तव में मनुष्य तथा उसके समाज के तीव्र विकास में प्रभावी शिक्षण तथा उद्देश्यपूर्ण अधिगम (Desirable learning) का अति महत्वपूर्ण स्थान है । मनुष्य ने अपने तथा अन्य जीवों के बीच में यह अंतर देखा कि अन्य जीवों में समायोजन स्वत: होता है जबकि मानव को अपने विकसित समाज के साथ समायोजन करने के लिए शिक्षण की अन्य जीवों की तुलना में अधिक आवश्यकता होती है । मनुष्य के मन में यह जिज्ञासा उठना स्वाभाविक था कि ऐसी क्या बात है कि मनुष्य जो प्रागैतिहासिक काल से अन्य जीवों से श्रेष्ठ है -जैसे दूसरे जीवों की तुलना में अधिक सहारे, निर्देशन तथा शिक्षण की आवश्यकता होती है । शायद इसका मुख्य कारण यह रहा हो कि जो निम्न स्तर के जीव हैं, उनका सीखने का दायरा सीमित होता है तथा जन्म के साथ ही अथवा जन्म के कुछ ही दिन बाद वह पूर्ण परिपक्व हो जाते हैं - जबकि मानव शिशु में सीखने की अपार क्षमतायें होती हैं । वह असंख्य सम्भावनाओं से परिपूर्ण होता है - परंतु प्रारंभ में मानव शिशु असहाय होता है तथा शैशवावस्था में वह कुम्भकार की उस कच्ची मिट्टी की तरह होता है, जिसे कुम्भकार जो रूप देता वह उसी में ढल जाता है । अत: यदि. किसी समाज को अनवरत रूप से उन्नति के पथ पर अग्रसर होना है - तो उसे एक ऐसे शिक्षण अधिगम प्रबंध (Teaching learning system) की आवश्यकता होगी जो मानव में निहित अपार सम्भावनाओं तथा शक्तियों के विश्वास में सहायक हो तथा मानव एवं मानव व्यवहार को विश्वसनीय एवं वैध तरीकों से समझ सकें । मानव को इन समस्याओं से निपटने के लिए अपेक्षित दिशा निर्देश देने में मनोविज्ञान की अपनी अहं भूमिका है।

संक्षेप में मनुष्य के जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ पर मनोविज्ञान उसे किसी न किसी रूप में प्रभावित न करता हो। प्रभावी शिक्षा तथा मानव के सर्वागीण विकास की तो मनोविज्ञान के बिना कल्पना ही अधूरी सी होगी। अत: आओ देखें, मनोविज्ञान है क्या इसकी संकल्पना क्या है तथा प्राचीन समय से आज तक उसने अपनी विकास यात्रा में क्या-क्या उतार चढ़ाव देखे हैं ?

1.3.0 शिक्षा मनोविज्ञान की संकल्पना (Concept of Educational Psychology)

यदि व्युत्पत्ति के आधार पर शिक्षा मनोविज्ञान पर विचार किया जाए तो इसकी उत्पत्ति दो शब्दो से शिक्षा + मनोविज्ञान मिलाकर हुई है । अत: शिक्षा मनोविज्ञान का सही अर्थ समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि पहले शिक्षा तथा मनोविज्ञान का अलग-अलग अर्थ समझ लिया जाए ।

1.3.1 शिक्षा क्या हे?

प्रारम्भिक अवस्था में शिशु का शरीर कुछ कोष्ठों (Cells) का केवल योग होता है तथा जन्म के समय जो उसने जैवकीय वंश परम्परा से तत्व प्राप्त होते हैं वह अकेले शिशु को इस योग्य नहीं बना पाते कि वह अपने सामाजिक परिवेश के साथ सफलतापूर्वक समायोजन कर सकें

। वास्तव में शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास होता है तथा वह अपने समाज के साथ अच्छा नागरिक बनकर समायोजन करने में सफल होता है ।

प्राचीन काल से लेकर आज तक विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा को अलग अलग ढंग से परिभाषित किया शिक्षा के समग्र अर्थ को समझने के लिए शिक्षा के इन विभिन्न रूपों को समझना समाचीन होगा:

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ: शिक्षा शब्द अंग्रेजी भाषा के "एजूकेशन" (Education) का हिन्दी रूपांतर है । इसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के "एडूकेटम" (Educatum) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है शिक्षित करना अथवा शिक्षण कला। इसमें "ई" (E) का अर्थ है अंदर से तथा ड्यूको (DUCO)का अर्थ है 'प्रशस्त करना या आगे बढाना' । इस प्रकार एजूकेशन का शाब्दिक अर्थ है कि ' 'बालक के अंदर छिपी शक्तियों का बाहर की तरफ संपूर्ण विकास करना ।

भारतीय ग्रंथों के अनुसार शिक्षा का अर्थ : शिक्षा की उत्पत्ति संस्कृत के शिक्ष धातु से हुई है जिसका अर्थ है ज्ञानार्जन करना। उपनिषद् में शिक्षा को आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की प्रतिक्रिया कहा गया है । एक अन्य भारतीय ग्रंथ में "सा विद्या या विमुक्तये" कहकर मुक्ति को बिग का लक्ष्य निर्धारित किया गया ।

शिक्षा का संकुचित अर्थ: प्राचीन काल में शिक्षा शब्द का प्रयोग अधिकांशत: सकुचित अर्थ में किया जाता था, क्योंकि तब शिक्षा का अर्थ बालक के मस्तिष्क को ज्ञान से भरना था 1 उस समय शिक्षा बालकेंद्रित न होकर ज्ञान केंद्रित थी तथा शिक्षा का उद्देश्य कुछ तथ्यों और सिद्धांतों को कण्ठस्थ करने तक सीमित था । संक्षेप में जब बालक की आयु रूचि, रूझान, योग्यता आदि को ध्यान में न रखकर कुछ सीमित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक सुनिश्चित योजना के द्वारा एक निश्चित स्थान पर प्रौढ़ वर्ग द्वारा निश्चित समय तथा निश्चित ढंग से शिक्षा दी जाती है तो वह संकुचित शिक्षा कहलाती है ।

शिक्षा का व्यापक अर्थ : आज शिक्षा का अर्थ केवल उपदेश देना या कुछ तथ्यों को कण्ठस्थ करना नहीं है अपितु बालक के जीवन की प्रत्येक अवस्था में उसके अभिवर्द्धन तथा विकास में सहायता करना है । अपने व्यापक अर्थो में शिक्षा वह प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती है, जिससे व्यक्ति अपनी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करता है, जीवन के समक्ष आने वाली समस्याओं का समाधान करता है तथा अपने कर्तव्यों को पूर्ण करता है । शिक्षा के व्यापक अर्थ को स्पष्ट करते हुए डम्विल ने लिखा है कि " शिक्षा के व्यापक अर्थ के अंदर संपूर्ण प्रभाव आ जाते हैं जो मनुष्य को उसके उत्पन्न होने से लेकर मृत्यु तक की यात्रा के मध्य प्रभावित करते हैं " । इन्हीं संदर्भ पर विचार करते हुए शिक्षा को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने चिंतन के अनुसार परिभाषित किया है । इनमें से कुछ प्रसिद्ध परिभाषायें निम्न हैं :

- **टी. पी. नन के अनुसार:** "शिक्षा व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है जिससे वह मानव जीवन में अपनी सर्वोत्तम क्षमता के अनुसार मौलिक योगदान दे सकें ।"

"Educational is complete development of individuality, so that he can make an original contribution to human life according to his best capacity." -

T.P.Nunn

कोलसनिक: " शिक्षा मानव की शक्तियों तथा उसमें निहित योग्यताओं का विकास है ।"

"Education is the development of human Power or Potentialities."-

Kolesnik

- **महात्मा गाँधी :** " शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा के सर्वोत्तम अंश की अभिव्यक्ति है ।"

"By education, I mean an all round drawing of the best in the child and man body, mind and spirit."

-**Mahatma Gandhi**

" **टेगोर, रवीन्द्र नाथ :** "उच्चतम शिक्षा वहीं है जो हमें केवल सूचना ही नहीं देती बल्कि वह हमारे जीवन के संपूर्ण पक्षों में समन्वय उपस्थित करती है ।"

"The higest education is that which does not merely give us information but makes our life in harmony with all existence".- **-Tagore R.N.**

ड्यूवी : " शिक्षा व्यक्ति की उन सभी योग्यताओं का विकास है जिनके द्वारा वह अपने वातावरण पर नियंत्रण करने की क्षमता प्राप्त करता है तथा अपनी सम्भावनाओ को पूर्ण करता है ।" "Educational is the development of all those capacities in the individual which will enable him to control his environment and fulfil his possibilities." -**Dewy**

वास्तव में शिक्षा में चार तत्व होते हैं - शिक्षा, विद्यार्थी, शिक्षण, विधि और पाठ्यक्रम । इन चारों तत्त्वों में समन्वय कर शिक्षक अपने पूर्व अनुभवों के द्वारा शिक्षार्थी को नवीन अनुभव प्रदान करता है तथा उसके भावी जीवन का निर्माण उसी आधार पर होता है । संक्षेप में शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपने व्यवहार में परिमार्जन करके समाज के साथ समायोजन करने में सफलता प्राप्त करता है तथा अपने व्यक्तित्व का संतुलित विकास करता है ।

शिक्षा तथा मनोविज्ञान का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, अत: इस शिक्षा के साथ मनोविज्ञान शब्द का भी अर्थ देखें तथा उसे समझें ।

1.3.2 मनोविज्ञान का अर्थ.

मनोविज्ञान (Psychology) शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के Psyche+Logos शब्द से हुई । यूनान की पारंपरिक गाथाओं में "Psyche" का वर्णन एक ऐसी सुंदर कुंवारी कन्या के रूप में किया गया है - जिसके तितली के समान सुंदर पंख थे। इन गाथाओं में " Psyche" (सुंदर कन्या) को आत्मा का प्रतीक माना गया है तथा तितली को मानव की नश्वरता (Mortality) का द्योतक माना गया। लेटिन भाषा में ' Psyche ' का अर्थ आत्मा से तथा 'logos' का अर्थ विज्ञान से है। अत: प्रारम्भिक अवस्था में मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना जाता था तथा इसका अस्तित्व एक दर्शनशास्त्र की शाखा के रूप में था। मनोविज्ञान कतिपय वर्षो में ही एक स्वतंत्र विषय के रूप में हमारे सामने आया तथा कई धारणाओं के पश्चात् मनोविज्ञान का आधुनिक अर्थ निश्चित हुआ है - अत: इसके इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालना अनुचित न होगा ।

मनोविज्ञान आत्मा का विज्ञान है : ईसा की सोलहवीं शताब्दी तक मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना जाता रहा । प्रथमत: ग्रीक देश में यह विचार फैला कि विभिन्न इंद्रियां अपने से संबंधित विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उसे आत्मा को सौंप देती हैं । इस विचार धारा के प्रमुख समर्थक मानते थे कि आत्मा वह तीन प्रमुख कार्य करती है, जिस पर मानव जाति का अस्तित्व टिका है - यह कार्य हैं (1) भरण-पोषण का कार्य, (2) अनुभूति का कार्य तथा (3) बौद्धिक कार्य । पर आत्मा का कोई निश्चित स्वरूप न् होने के कारण मनोविज्ञान की इस परिभाषा पर विद्वानों में मतैक्य न हो सका क्योंकि बिना निश्चित स्वरूप, आकार और रंग के आत्मा का दार्शनिक

अध्ययन भले सम्भव हो पर, वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव न था । रॉस महोदय ने आत्मा के स्वरूप पर संदेह करते हुए लिखा है कि " मनोविज्ञान का साहित्यिक अर्थ तो आत्मा का विज्ञान है, परंतु यह परिभाषा स्पष्ट नहीं है - क्योंकि आत्मा क्या है - इसका हम संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकते ।'

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है : मनोविज्ञान की उपर्युक्त परिभाषा जब अकाट्य प्रमाणों के कारण अमान्य होने लगी तो कुछ विचारकों ने मनोविज्ञान को मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया । परंतु इस परिभाषा की व्याख्या करने पर भी अनेक अनुत्तरित प्रश्न सामने आए, क्योंकि मनोवैज्ञानिक मानसिक शक्तियों तथा मस्तिष्क के स्वरूप तथा उसकी प्रकृति को सही-सही ढंग से निर्धारित नहीं कर पाए । मस्तिष्क का संबंध व्यक्तित्व, विवेक और विचार शक्ति है । वास्तव में मस्तिष्क में एक प्रकार की एक रूपता तथा अटूट शक्ति रहती है - जो साधारण व्यक्ति में तो मिलती है - लेकिन मानसिक रूप से विक्षिप्त, स्वप्नावस्था तथा पशुओं में प्राय: इसका अभाव रहता है । परंतु मनोविज्ञान सामान्य व्यक्तियों के साथ इन सबका अध्ययन करता है - अत: मनोविज्ञान की यह परिभाषा भी बहुत दिनों तक मान्य न रह सकी ।

मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान है. शोधों के द्वारा जब विद्वानों को यह मालूम हुआ कि मानसिक शक्तियाँ अलग-अलग कार्य नहीं करती है वरन् पूरा मस्तिष्क एक साथ कार्य करता है तथा मनुष्य चेतना के कारण अपने वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया करता है तो बुण्ट, जैम्स, एंजिल्स आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को ' 'चेतना का विज्ञान' ' के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया । परंतु मनोविश्लेषण वादियों ने यह सिद्ध करके कि ' 'चेतना का व्यवहार पर प्रभाव ही नहीं पड़ता है इस परिभाषा का खंडन किया । इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिकों ने चेतना के तीन प्रकार बताए (1) चेतन (2) अर्द्धचेतन (3) अचेतन, तथा स्पष्ट किया कि मनोविज्ञान में केवल चेतना के एक अंश का अध्ययन न कर अर्द्धचेतन तथा अचेतन का भी अध्ययन किया जाता है । इसके अलावा कुछ मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि मनोविज्ञान में चेतना को तीनों अवस्थाओं के अलावा शारीरिक कार्यो वाले दृश्यों तथा उत्तेजकों का भी अध्ययन किया जाता है । अत: मनोविज्ञान की यह परिभाषा भी अमान्य रही । मैक्डूगल ने तो चेतना शब्द की आलोचना करते हुए यहाँ तक लिखा कि "चेतना एक अत्यधिक बुरा शब्द है और मनोविज्ञान के लिए यह दुर्भाग्य का विषय है कि यह शब्द साधारण प्रयोग में आ गया" ।

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है :

आधुनिक समय में मनोविज्ञान को "व्यवहार का विज्ञान" के रूप में परिभाषित किया गया । इस परिभाषा पर अधिकांश मनोवैज्ञानिक कुछ कमो बेश सुधार के साथ राजी हैं । बुडवर्थ ने इसे "वातावरण के संबंध में व्यक्ति के व्यापारों (क्रियाओं, व्यवहारों) का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना है । "जबकि वाटसन के अनुसार" मनोविज्ञान व्यवहार का शुद्ध विज्ञान है । " अब प्रश्न यह उठता है कि "व्यवहार क्या है विज्ञान क्या है?" ड्रेवर ने व्यवहार को परिभाषित करते हुए लिखा कि - " जीवन की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के प्रति मानव तथा पशु की संपूर्ण प्रक्रिया ही व्यवहार है । " एक जीवधारी के कार्यो को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है (1) प्राण रक्षा संबंधी - (vital) (2) समस्योजन संबंधी - (Adaptive) जैसे ही हम कोई उद्दीपक प्राप्त करते हैं उसके प्रति हमारी प्रतिक्रिया होती है - उदाहरण के लिए यदि कांटा हमारे पैर में चुभता है तो इसकी सूचना संवेदना, जो जोड़ने वाले अवयव , द्वारा तुरंत नाड़ी केंद्र तक पहुंचाई जाती है - और हम प्रतिक्रिया का अनुभव करते हैं । यद्यपि हमारे व्यवहार का संबंध मुख्यत: समायोजन

संबंधी कार्यो से है । फिर भी प्राणरक्षा संबंधी कार्यो की उपेक्षा नहीं की जा ' सकती । सामान्यत: हमारे व्यवहार दो प्रकार के होते हैं.

i. **प्रतिपक्षी व्यवहार (Respondent Behaviour):** यह व्यवहार बाह्य उत्तेजक के कारण होता है, जैसे आँख का तेजी से रोशनी के कारण झपकना ।

ii. कार्यवाहक व्यवहार (Operant Behaviour)

यह व्यवहार प्राणी के अंदर की दशाओं के कारण होता है । इस प्रकार का व्यवहार होता है उत्पन्न नहीं किया जाता है । जैसे कोई कुत्ता सड़क पर दौड़ रहा है तो हो सकता है कि अपने कुछ आंतरिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वह ऐसा कर रहा हो ।

व्यवहार के बाद प्रश्न उठता है कि विज्ञान क्या है? विज्ञान के संबंध में विस्तृत रूप से इसी अध्याय के आगे के पृष्ठों में बात की गई है । पर संक्षेप में विज्ञान से हमारा तात्पर्य है कि उस विषय का क्रमबद्ध एवं निष्पक्ष अध्ययन किया जा सकें, उसकी अध्ययन विधियाँ वैज्ञानिक हों तथा उसके परिणामों को समय-समय पर किन्हीं भी व्यक्तियों द्वारा दी गई परिस्थितियों में जाँचा जा सकें । चूँकि मनोविज्ञान के अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करती है और हम उसे व्यवहार का विज्ञान कह सकते हैं । मनोविज्ञान की आत्मा से लेकर व्यवहार तक की इस यात्रा को वुडवर्थ ने बड़े सुंदर शब्दों में इस प्रकार बाँधा है - "सर्वप्रथम मनोविज्ञान अपनी आत्मा को खोया, तत्पश्चात अपने मस्तिष्क को त्यागा, फिर उसने अपनी चेतना को खोया और अब यह व्यवहार के स्वरूप को अपनाता है ' ।

मनोविज्ञान की कुछ परिभाषाएँ :

कॉलसनिक - " मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है । "
("Psychology is the science of human behaviour.")

मैक्डूगल - ' 'मनोविज्ञान आचरण अथवा व्यवहार का स्वीकारात्मक विज्ञान है । "
("Psychology is the positive science of conduct or behaviour.'')

वारेन - "मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो प्राणी तथा वातावरण के पारस्परिक संबंधों से संबंधित है ।"

स्किनर - "मनोविज्ञान जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है । प्रतिक्रिया या व्यवहार से तात्पर्य व्यक्ति की सभी तरह की प्रतिक्रियाओं, समायोजन, कार्यो तथा अनुभवों से है" ।

("Psychology deals with responses to any and every kind of situation- that life presents. By response or behaviour is meant all form of processes, adjustments, activities and expression of organism.'')

मनोविज्ञान की उपर्युक्त परिभाषाओं से निम्न मुख्य तथ्य उभरते हैं

(क) मनोविज्ञान स्वीकारात्मक (Positive) विज्ञान है । इसमें क्रिया, प्रतिक्रिया, कार्य कारण तथा परिणाम का प्रभाव पड़ता है।

(ख) मनोविज्ञान मनुष्य की संपूर्ण संवेगात्मक क्रियाओं (जैसे डरना, हँसना, रोना) ज्ञानात्मक क्रियाओं (जैसे स्मृति, कल्पना, संवेदना आदि) तथा उसकी गत्यात्मक क्रियाओं (Motor activities) जैसे चलना, बोलना आदि का अध्ययन करता है ।

(ग) मनोविज्ञान मनुष्य का अध्ययन एक मनोदैहिक प्राणी (Psycho-Physical animal) के रूप में करता है ।

(घ) यह व्यक्ति के साथ-साथ पशुओं के भी व्यवहार का अध्ययन करता है ।

(ड) मनोविज्ञान व्यक्ति की वातावरण के प्रति की गई अनुक्रियाओं का भी अध्ययन करता है ।

(च) मनोविज्ञान व्यक्ति के भौतिक, सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरण का अध्ययन करता है ।

1.3.3 शिक्षा तथा मनोविज्ञान का संबंध.

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है जिससे वह मानव जीवन में अपनी सर्वोत्तम क्षमता के अनुसार मौलिक योगदान दे सकें तथा मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव के व्यवहारों का अध्ययन करना तथा उसमें परिमार्जन करना है । अत: शिक्षा तथा मनोविज्ञान एक दूसरे के पूरक से लगते है क्योंकि व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा उसकी समस्त योग्यताओं का विकास व्यक्ति के व्यवहार के पूर्व ज्ञान के बिना नहीं हो सकता है । शिक्षा तथा मनोविज्ञान दोनों ही व्यक्ति को मनुष्य बनाना चाहते हैं क्योंकि शिक्षा का कार्य है -"मनुष्य के व्यवहार में संशोधन" और मनोविज्ञान का कार्य है - "मानव व्यवहार का अध्ययन" । इतना बिल्कुल निश्चित है कि अध्ययन के अभाव में संशोधन नहीं हो सकता । अत: यदि हमें मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है तथा शिक्षा को अपने उद्देश्यों को सफलतापूर्वक पाना है तो शिक्षा के साथ हमें मनोविज्ञान को जोड़ना ही होगा । डेविस महोदय के कथन से यह बात और स्पष्ट हो जाती है । उनके अनुसार "मनोविज्ञान ने छात्रों की क्षमताओं और भिन्नताओं का विश्लेषण करके शिक्षा के विकास में योगदान दिया है ।

1.3.4 शिक्षा मनोविज्ञान क्या है? :

यदि थोड़े शब्दों में शिक्षा मनोविज्ञान को परिभाषित किया जाए तो "शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का व्यवहारिक रूप है" । कॉलसनिक ने कहा है कि "शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के सिद्धांतों और अनुसंधान का शिक्षा में प्रयोग है" । वास्तव में शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक परिस्थितियों (Educational Setting) में व्यक्ति के विकास का क्रमबद्ध अध्ययन है । इस शैक्षिक परिस्थितियों का निर्माण मनुष्य करता है जिससे अध्यापक को अपने विद्यार्थी को एक जिम्मेदार नागरिक, एक संवेदनशील मानव तथा एक सृजनशील प्राणी के रूप में विकसित करने में सहायता मिलती है । दूसरे शब्दों में शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा प्राप्त करने एवं प्रदान करने की क्रिया को अधिकतम सफलता प्रदान करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों तथा नियमों का प्रयोग करता है । सच तो यह है कि "शिक्षा मनोविज्ञान मानव व्यवहार का ज्ञान है जिसमें वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वातावरण को प्रभावशाली ढंग से नियंत्रित किया जाता है । यदि शिक्षा मनोविज्ञान की विभिन्न विचारकों द्वारा दी गई परिभाषाओं पर विचार किया जाए - तो निम्न तथ्य उभरते हैं:

(क) शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक तथा शिक्षार्थी की शैक्षणिक समस्याओं के प्रति सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करता है ।

(ख) शिक्षा मनोविज्ञान एक व्यवहारिक विज्ञान है जिसकी सार्थकता अध्ययन के पश्चात् व्यवहार के संशोधन में आकी जाती है ।

(ग) शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षार्थी (Learnor) अधिगम प्रक्रिया (Learning Process) तथा अधिगम संस्थितियों (Learning Situations) में अपेक्षित परिमार्जन कर जीवन के वास्तविक आदर्श की प्राप्ति में सहायक होता है ।

(ध) शिक्षा मनोविज्ञान, विद्यार्थियों, अध्यापक एवं अभिभावकों के लिए आवश्यक रूप से ज्ञेय है । उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार का विज्ञान है, व्यवहार किस प्रकार का करना चाहिए, शिक्षा इसका विज्ञान है और शिक्षा मनोविज्ञान इसका विज्ञान है कि व्यवहार करना किस प्रकार सिखाया जाए?

स्व मूल्यांकन

1. मनोविज्ञान के बदलते स्वरुप से क्या तात्पर्य है ?
2. व्यवहार को परिभाषित कीजिए।
3. मनोविज्ञान को स्वीकारात्मक विज्ञान (positive Science) क्यो कहा जाता है?
4. शिक्षा मनोविज्ञान से आप क्या समझते है तथा शिक्षा और मनोविज्ञान आपस में किस प्रकार संबंधित है ?

अभी तक आपने देखा कि शिक्षा मनोविज्ञान है क्या? मनोवैज्ञानिकों में इसे परिभाषित करते समय इस बात पर भी मतभेद है कि शिक्षा मनोविज्ञान कला है या विज्ञान । अग्रिम पृष्ठों पर इसी संशय को निवारण करने का प्रयास किया गया है ।

1.4.0 मनोविज्ञान कला है या विज्ञान (Psychology Art or Science)

मनोविज्ञान कला है या विज्ञान इस प्रश्न पर काफी समय से विवाद चला आ रहा है । इस विवाद का सबसे अच्छा हल यह होगा कि पहले हम लोग मिलकर विचार करें कि मनोविज्ञान को विज्ञान क्यों कहते हैं ' फिर देखें कि मनोविज्ञान की क्या विशेषताएँ हैं - जिसके कारण कुछ विद्वान इसे कला के वर्ग में रखना चाहते हैं और अंत में तय करें कि मनोविज्ञान कला है या विज्ञान ।

1.4.1 क्या मनोविज्ञान विज्ञान है? :

इस प्रकार का उत्तर खोजने से पहले देखना होगा कि विज्ञान क्या है ' विज्ञान में जो शाब्दिक अर्थ निहित है वह है वि + ज्ञान = विशेष ज्ञान । किसी विषय को विज्ञान की संज्ञा देने से हमारा तात्पर्य यह है कि “उस विषय के अध्ययन की विधियाँ वैज्ञानिक हो, इन वैज्ञानिक विधियों द्वारा निष्पक्ष रूप से विषय तथा इसे क्रमबद्ध रूप से नियोजित किया जाए तथा इस क्रमबद्ध नियोजन के आधार पर सामान्य नियमों को प्रतिपादित किया जाए एवं इन सामान्य नियमों के द्वारा अपने आलोच्य विषय की समस्याओं का स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से किया जाए ।

"जिस विषय के अध्ययन में उपर्युक्त बातों को ध्यान रखा जाता है, उसे ही वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है ।

प्रो. एस. एन. ढोडियाल तथा प्रो. फाटक ने अपनी पुस्तक 'शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र में विज्ञान को कई कोणों से परिभाषित किया है । उन्होंने लिखा, कि पुराने समय से चले आ रहे अर्थ के अनुसार " विज्ञान ज्ञान का एक व्यवस्थित संस्थान है ।" आधुनिक विद्वानों ने इसे विज्ञान की निष्क्रिय परिभाषा बताया है तथा कहा कि यह परिभाषा विज्ञान को जीवन विहीन बना देती है तथा उसे विषय सामग्री तक ही सीमित कर देती है । परंतु यदि देखा जाए तो विज्ञान, ज्ञान का संग्रह नहीं है - वरन् पूछताछ (Inquiry) है तथा क्रियाशीलता इसका प्रमुख रूप है । विज्ञान की पूछताछ एक विशिष्ट प्रकार की है । परिणाम तक पहुंचने में कोई भूल न हो और परिणाम एक तथ्य हो, इसके लिए वैज्ञानिक प्रयत्न और उपाय करता है - वह अपनी खोज कोनियत्रित करता है अर्थात विज्ञान एक नियंत्रित पूछताछ है" । प्रो. ढोडियल ने विज्ञान के चार लक्ष्य बताए हैं (1) अवबोध (2) व्याख्या (3) नियंत्रण और (4) प्रागुक्ति (Prediction) उनके अनुसार विज्ञान का परम लक्ष्य है "अवबोध'। शेष अन्य तीन लक्ष्य तो अवबोध की प्राप्ति में सहायक है ।

प्रो. माथुर के अनुसार किसी भी वैज्ञानिक विषय में जो अन्य विशेषताएँ होती है वह है कि " (1) उस विषय के ज्ञान की प्रगति होती रहे - Progress liveness in knowlwdge (2) जो ज्ञान अर्जित किया गया हो उसकी पुनरावृत्ति एवं जाँच सम्भव हो - Revision and Verification (3) उसमें अर्जित ज्ञान प्रयुक्त किया जा सकता हो - Applicability तथा (4) विषय की सत्यता की अनंत खोज होती रहती हो - Endless search for the truth regarding the subject matter.". अब प्रश्न उठता है कि क्या मनोविज्ञान में वे सब विशेषताएँ पाई जाती हैं जो कि किसी विषय को विज्ञान कहने के लिए ऊपर बताई गई हैं । जैसे - उस विषय की प्रगति होती रहे :

अगर हम ध्यान से देखें तो मनोविज्ञान में अनवरत नए अन्वेषण हो रहे हैं । उदाहरण के लिए पहले बुद्धि को सीमित शक्ति के सिद्धांत तथा अद्वैत सिद्धांत (Monarchic Theory) के आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया है । परंतु धीमे-धीमें दो खंड सिद्धांत, बहु शक्ति सिद्धांत, क्रमिक महत्व का सिद्धांत (Hierarchical theory) आदि प्रकाश में आए ।

- **जो ज्ञान अर्जित किया गया है उसकी पुनरावृत्ति एवं जाँच सम्भव हो:**

मनोविज्ञान में जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसकी विभिन्न परिस्थितियों में उपयोग तथा जाँच सम्भव है । जैसे बुद्धि, व्यक्तित्व, रूचि, सृजनात्मकता आदि को मापने के लिए उन्हीं मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का बार-बार प्रयोग किया जा सकता है तथा यदि इन परीक्षणों में कोई कमियाँ पाई जाती है - तो उन्हें पता लगाकर दूर कर लिया जाता है ।

- **अर्जित ज्ञान का प्रयोग :**

आज मनोविज्ञान को प्राप्त ज्ञान का प्रयोग केवल मनोविज्ञान विषय में ही नहीं होता है - अपितु शिक्षा, सेना, उद्योग तथा विभिन्न व्यवसायों में बड़ी सफलतापूर्वक हो रहा है ।

- **विषय की सत्यता की अनंत खोज** :

मनोविज्ञान एक निष्क्रिय विज्ञान नहीं है । अपितु अनेकों शोधकर्त्ता मनोविज्ञान के लिए नई खोजों तथा पुराने निष्कर्षो की सत्यता की खोज में लगे हुए हैं - और उनकी खोजों का कोई

अंत नहीं है । उपर्युक्त कुछ उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान विज्ञान के वर्ग में आता है । जेम्स ड्रेवर ने लिखा है कि "मनोविज्ञान वह शुद्ध विज्ञान है जो मानव तथा पशु के उस व्यवहार का अध्ययन करता है जो व्यवहार उसके अंतर्गत के मनोभावों और विचारों की अभिव्यक्ति करता है जिसे हम मानसिक जगत कहते हैं ।" ड्रेवर के अनुसार मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव तथा पशु के व्यवहार के कारणों की खोज करना तथा मानव स्वभाव का भली भांति अध्ययन करना है । मनोविज्ञान की यह सभी उपलब्धियाँ शुद्ध विज्ञान की ही देन हैं । मार्गन महोदय ने कहा है कि "मनोविज्ञान एक विज्ञान है ।क्योंकि यह अनुभव सिद्ध (Empirical) है । "मनोविज्ञान को अनुभव सिद्ध इसलिए कहा जाता है इसके निष्कर्ष, सर्वेक्षण, परीक्षण, प्रमाणित सत्य पर आधारित होते हैं न कि दलील, आधार रहित तर्क व मत पर । मनोविज्ञान अनुभव सिद्ध विज्ञान होने के साथ-साथ क्रमबद्ध (Systematic) विज्ञान भी हैं । क्योंकि इसमें हम एक क्रमबद्ध ढंग से सत्यों-तथ्यों की खोज करते है तथा इसके पुराने सिद्धांतों एवं नियमों की सत्यता की समय-समय पर शोधों द्वारा जाँच होती रहती है ।

किसी भी वैज्ञानिक विषय की जो अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएँ है उनमें ' 'मापन तथा वर्गीकरण ' का महत्वपूर्ण स्थान है जैसे भौतिक शास्त्र को एक यथार्थ विज्ञान माना जाता है - क्योंकि इसमें ' 'मापन' ' की सबसे अधिक सम्भावना है तथा जीव विज्ञान को विज्ञान इसलिए माना जाता है क्योंकि इसमें वैज्ञानिक वर्गीकरण की प्रचुर सम्भावना है । पर मनोविज्ञान तो मापन (सांख्यिकीय मापन तथा परीक्षण) व वर्गीकरण दोनों का प्रयोग अपनी सामग्री करने में करता है - अतएव यह एक विज्ञान ही है । इस संबंध में लेविस का निम्न कथन काफी महत्वपूर्ण है -

"मनोवैज्ञानिक अपनी पाठ्य सामग्री का अध्ययन उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार कि दूसरे वैज्ञानिक अपनी पाठ्य सामग्री का । वह सही निरीक्षण और प्रयोग करते हैं । यह तथ्य की बहुधा इसकी विषय सामग्री मानव होती है - कोई अंतर नहीं पैदा करती क्योंकि वैज्ञानिकता के नियम, वस्तुनिष्ठता तथा सही मापन इसके साथ भी लगते हैं ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान एक विज्ञान है पर अब प्रश्न यह उठता है कि मनोविज्ञान जैविकीय विज्ञान (Biological Science) है या व्यवहारिक विज्ञान (Behavioural Science) है ।

मनोविज्ञान का जैविकीय विज्ञान के रूप में अध्ययन 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में शुरू हुआ था । आज भी मनोवैज्ञानिक, अभिप्रेरणा स्मृति, अधिगम तथा मानसिक स्वास्थ्य आदि के जैविकीय कारण खोजने में लगे है अत: इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि मनोविज्ञान जैविकीय विज्ञान भी है । परंतु अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को व्यवहार के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया है क्योंकि मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यक्तिगत व्यवहार के साथ-साथ समाज तथा व्यक्ति के व्यवहार से बची अंतःक्रिया का विशिष्ट अध्ययन करता है । आज मनोविज्ञान बड़ी सफलतापूर्वक व्यक्ति तथा समाज के व्यवहार का अध्ययन कर बहुत सी सामाजिक समस्याओं के हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है - अत: मनोविज्ञान व्यावहारिक विज्ञान (Behaviour Science) है इसमें कोई संदेह नहीं । निष्कर्ष स्वरूप संक्षेप में का जा सकता है कि मनोविज्ञान जैविकीय (Biological) तथा व्यवहारिक दोनों प्रकार का विज्ञान है ।

1.4.2 क्या मनोविज्ञान कला है.

अभी पिछले पृष्ठों में आपने देखा कि मनोविज्ञान को विज्ञान क्यों माना जाता है इस पक्ष में कुछ तर्क दिए गए । परंतु मनोविज्ञान में कुछ ऐसी विशेषताएँ पाई जाती है जिसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान कला है। वास्तव में कोई भी विषय कला वर्ग के अंतर्गत तब आता है जब उसमें कला की निम्न मुख्य विशेषताएँ होती है

– **कला में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अभिव्यक्ति होती है :**

कला में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अभिव्यक्ति होती है और यह विवाद चलता है कि "कला" कला के लिए है अथवा समाज के लिए है । मनोविज्ञान की दुनिया सत्य है - वह सदा "क्या सत्य है" इसकी खोज में लगा रहता है, जैसे यदि राम को गुस्सा आता है तो क्यों? मनोविज्ञान के उद्देश्य शिव (कल्याणकारी) है, जैसे बच्चे की अंतर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास कैसे किया जाए जिससे वह स्वयं तथा समाज के लिए अधिक योगदान कर सकें । सौंदर्य व कलात्मकता मनोविज्ञान की तकनीकों को बढ़ावा देता है जैसे अध्यापक प्रभावी शिक्षण के लिए किस प्रकार सुंदर विधियों का प्रयोग करें ताकि शिक्षार्थी अधिक से अधिक सीख सकें ।

- **प्रत्येक कला में एक सर्जनात्मक अभिव्यक्ति होती है :**

कला निर्माण है, सृजन है । वास्तव में मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य एक से नए समाज की रचना करना है - जिसमें सभी व्यक्ति अपनी क्षमताओं का भरपूर उपयोग कर सकें । एक मनोवैज्ञानिक का सुख एक कलाकार का सुख है - और उसे अपने कार्य से वैसा ही संतोष प्राप्त होता है जैसा एक कलाकार को अपनी कला को देखकर मिलता है - शायद इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर छोटे विद्यार्थियों की तुलना फूलों से, विद्यालय की बगीचों से तथा शिक्षक की माली से की जाती है । - कला सिद्धांत और व्यवहार के अंतर्सम्बन्ध का बोध है :

शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत विभिन्न सिद्धांतों को वास्तविक परिस्थितियों में व्यवहार में लाया जाता है तथा विभिन्न व्यवहारों के आधार पर नए सिद्धांत बनाए जाते हैं । जैसे स्किनर सक्रिय अनुबंध (Operant conditioning) के सिद्धांत पर अधिगम को प्रभावी बनाने के लिए कई विधियों का श्री गणेश किया गया

- **प्रत्येक कला का अपना एक माध्यम होता है :**

प्रत्येक कला का अपना एक माध्यम होता है, साधन होता है । जैसे चित्रकला का साधन रंग, संगीत का स्वर, साहित्य का तथा भाव आदि । उसी प्रकार मनोविज्ञान का माध्यम है व्यवहार । वह बच्चे में सुधार के लिए बच्चे (शिक्षार्थी) के व्यवहार का अध्ययन करता है, शिक्षक तथा शिक्षण में सुधार के लिए व्यवहार का सहारा लेता है तथा पाठ्यक्रम को भी प्रचलित व्यवहार (शिक्षक, शिक्षार्थी तथा समाज के) आधार पर तौलता है ।

इसके अलावा मनोविज्ञान को अन्य निम्न कारणों से बहुत से विद्वान कला वर्ग में रखते हैं जैसे

- **मतैक्य का अभाव :**

मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों तथा संकल्पनाओं पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है, जैसे बुद्धि के सिद्धांत या व्यक्तित्व पर वातावरण का अधिक अभाव पड़ता है या वंशानुक्रम का । यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक इसकी परिभाषा तथा शब्दावली पर भी एक मत नहीं है - अत: यह विषय कला वर्ग में आता है, विज्ञान वर्ग में नहीं ।

- **अध्ययन सामग्री की परिवर्तनशीलता और अनिश्चितता**

मनोविज्ञान का अध्ययन विषय, शिक्षक, शिक्षार्थी तथा समाज (पाठ्यक्रम) है - जिसका व्यवहार न केवल परिवर्तनशील है अपितु अनिश्चित है । मानव व्यवहार क्षण-क्षण में बदलता है । उदाहरण के लिए - यदि हम सोचें कि हमें गुस्सा क्यों आता है ? जब हमें गुस्सा आता है तो हम सोच नहीं पाते कि हमें गुस्सा क्यों आता है ? और जब हम इस पर सोचते हैं - तो हमें गुस्सा नहीं आता है ।

- **वैज्ञानिक पद्धति का अभाव :**

मनोविज्ञान में पूर्णत: वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कठिन होता है, क्योंकि मनुष्य के व्यवहार को तोला मापा नहीं जा सकता है तथा मूल्य निरपेक्षता, परिस्थितियों पर पूर्णत: नियंत्रण तथा कार्य कारण करना कठिन होता है ।

- **निश्चित भविष्यवाणी करना कठिन :** मनोविज्ञान में अध्ययन के आधार पर भविष्यवाणी तो की जा सकती है पर निश्चित भविष्यवाणी करना कठिन कार्य है - जैसे एक छात्र की अलग-अलग परीक्षणों में बुद्धि मापें तो उसकी बुद्धिलब्धि (I.Q.) अलग-अलग आने की सम्भावना रहती है तथा यह भी आवश्यक नहीं है कि जिस बच्चे कि बुद्धिलब्धि बचपन में अधिक है वह युवावस्था में जाकर सफल ही हो ।

- **निरंतरता तथा क्रमबद्धता का अभाव :**

मनोविज्ञान के अध्ययन में निरंतरता तथा क्रमबद्धता की भी कमी पाई जाती है । उदाहरण के लिए - यदि आप एक दो वर्ष के बच्चे के शैशवावस्था की विशेषताओं का अध्ययन कर रहे हैं । अभी आप अपना अध्ययन पूरा भी नहीं कर पाए कि उस बच्चे में बाल्यावस्था के लक्षण आ गए - अत: निरंतरता टूटती है ।

इस तरह मनोविज्ञान को कला कहना न असंगति होगी और न ही अतिशयोक्ति । जब तक शिक्षा मनोविज्ञान मानव जीवन का एक क्षेत्र है तथा मानव व्यवहार सें संबंधित है - तब तक उसमें कलात्मकता किसी न किसी रूप में विद्यमान ही रहेगी

1.5.0 सारांश (Summary)

वास्तव में कोई ऐसा विषय नहीं है जिसमें यह विवाद न्यूनाधिक रूप से विद्यमान न हो कि उसे कला माना जाए या विज्ञान । ऐसी कोई कला नहीं है, जिसका कोई वैज्ञानिक नियम न हो तथा ऐसा को वैज्ञानिक नहीं है जिसमें कलाकार का गुण न हो । उदाहरण के लिए यदि ताजमहल स्थापत्य कला का श्रेष्ठतम प्रदर्शन है तो यह कहना भी उतना ही सही है कि ताजमहल अभियांत्रिकी विज्ञान का चमत्कार है । इसी प्रकार मनोविज्ञान में भी कला तथा विज्ञान दोनों के लक्षण पाए जाते हैं मनोविज्ञान न प्राकृतिक विज्ञानों की तरह एक पूर्ण रूपेण यथार्थ विज्ञान है और न साहित्य की तरह की कला । यह पूर्णरूपेण यथार्थ विज्ञान इसलिए नहीं है क्योंकि मनोविज्ञान की पाठ्य सामग्री निर्जीव पदार्थ या ऐसी जीवित पदार्थ नहीं है - जिनमें मस्तिष्क का विकास नहीं होता है या बहुत कम होता है तथा मनुष्य के संबंध में कुछ-नहीं कहा जा सकता कि प्रयोग करने से पूर्व उस पर पूर्ण नियंत्रण रखा जा सकता है । सिल्वर मैने (1966) ने इसी कला अथवा विज्ञान के विवाद पर प्रकाश डालते हुए कहा कि प्रभावशाली शिक्षण अधिगम (शिक्षा मनोविज्ञान) में कला तथा विज्ञान की प्रकृतियों से संबधित दोनों के तत्व विद्यमान है ।

"शिक्षा मैडिसिन प्रोफेशन की तरह एक कला है जिसमें कौशल तथा सृजनात्मकता के सिद्धांत निहित हैं- लेकिन मैडिसिन की तरह यह विज्ञान भी है और होना चाहिए भी क्योंकि इसमें तकनीकी, तरीकों व कौशलों का व्योरेवार अध्ययन होने के बाद संचरण एवं सुधार होता है । महान शिक्षक एक अच्छे डॉक्टर की तरह प्रोफेशन में सृजनात्मकता और प्रेरणा के तत्व समाहित करता है । "

अंत में, हम कह सकते हैं कि यद्यपि मनोविज्ञान में कला एवं विज्ञान दोनों के लक्षण पाए जाते हैं, परंतु यह विज्ञान की ओर कला की अपेक्षा ज्यादा उन्मुख है । किंतु यह प्राकृतिक विज्ञानों की तरह पूर्णतया यथार्थ विज्ञान नहीं है, अपितु यह व्यावहारिक (Behavioural) तथा जैविकीय (Biological) विज्ञानों के अधिक निकट है ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. किसी भी विषय को वैज्ञानिक विषय कहने के लिए उनमें किन विशेषताओं का होना अनिवार्य है ?
2. मनोविज्ञान को अनुभव सिद्ध विज्ञान क्यों कहा जाता है ?
3. सिद्ध करो कि मनोविज्ञान एक जैविकीय विज्ञान (Biological science) भी है ।
4. क्या मनोविज्ञान एक यथार्थ विज्ञान है ? इस कथन की आलोचना कीजिए ।
5. मनोविज्ञान कला भी है और विज्ञान भी" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
6. "मनोविज्ञान के प्रयोग ने शिक्षा में क्रांति ला दी है" इस कथन से आप कहां तक सहमत हैं।
7. अपने शब्दों से शिक्षा मनोविज्ञान को परिभाषित कीजिये तथा इस विषय की उपयोगिता बताइए।

1.6.0 संदर्भ पुस्तकें (Reference)

1. भटनागर, एस (1989) - **शिक्षा मनोविज्ञान** - इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
2. ग्रिफिस (1950) - **इनट्रोडक्शन दू एजूकेशनल साइक्लॉजी** - दि रोनाल्ड प्रेस - न्यूयार्क
3. क्रो एण्ड क्रो - **एजूकेशनल साइक्लॉजी** - अमेरिकन बुक कं., न्यूयार्क
4. लंलाक, एस. आर. - **एजूकेशनल साइक्लॉजी** - सर इ साड़ पिटमैन लिमिटेड, टोरन्टो, (कनाडा)
5. स्किनर, सी.ई.(1970)- **एसेन्भियलस आफ एजूकेशनल साइक्लॉजी** - इन्टरनेशनल टेक्स बुक कं. एकशनटेन

इकाई-2

मनोविज्ञान का क्षेत्र और महत्व (SCOPE AND IMPORTANCE OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY)

इकाई की संरचना

2.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

2.2.0 शिक्षा मनोविज्ञान का व्यवहारिक अर्थ

2.3.0 शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र

2.4.0 शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व

2.5.0 सारांश

2.6.0 संदर्भ

2.1.0 उद्देश्य तथा' लक्ष्य (Aims and objectives)

शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा से संबंधित संपूर्ण व्यवहार और व्यक्तित्व को अपने आप में समेटे हुए है, अत: इस विषय का क्षेत्र बहुत व्यापक है । इस इकाई का गठन इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया है ताकि छात्र समझ सकें कि शिक्षा मनोविज्ञान कितना व्यापक है तथा सीखने और सिखाने की प्रक्रिया को सरल व प्रभावी बनाने के लिए बालक तथा शिक्षक को किस प्रकार सहायता पहुँचाता है । आशा है कि इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य होंगे कि

- शिक्षा मनोविज्ञान का व्यवहारिक अर्थ जान सकेंगे ।
- शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र से परिचत हो सकेंगे ।
- शिक्षा मनोविज्ञान के महत्व से परिचित हो सकेंगे ।

2.2.0 शिक्षा मनोविज्ञान का व्यवहारिक अर्थ (Applied meaning of Educational Psychology)

मनोविज्ञान के वे सिद्धांत और तकनीकी जो बालकों को शिक्षा देने में सहायक सिद्ध होते हैं " शिक्षा मनोविज्ञान" कहलाते हैं । शिक्षा का असली उद्देश्य होता है बच्चों का सर्वांगीण विकास करना । मनोविज्ञान इस सर्वांगीण विकास के लिए अपने सिद्धांतों को प्रदान कर बच्चों का व्यक्तित्व निखारता है । शिक्षा मनोविज्ञान यह बतलाता है कि शिक्षक के लिए सिर्फ विषय-वस्तु की जानकारी ही काफी नहीं है बल्कि उससे भी महत्वपूर्ण कार्य है बच्चों का जाना । "The teacher taught john Latin" एक प्रसिद्ध कहावत है जिसके अनुसार शिक्षक को लैटिन तथा जॉन दोनों की जानकारी अत्यावश्यक है । शिक्षा मनोविज्ञान को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि यह विषय मुख्यत: शिक्षा प्राप्त करने तथा शिक्षा देने से संबंधित है । इस विषय के द्वारा शिक्षार्थी के शिक्षा प्राप्त करने की क्रिया और शिक्षक द्वारा शिक्षा प्रदान करने की प्रक्रिया तथा शैक्षिक पर्यावरण को मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है ।

2.3.0 शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र (Scope of Educational Psychology)

शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र आजकल अत्यंत व्यापक और विस्तृत है । यह वह विज्ञान है जो छात्रों के व्यवहार एवं उनके शैक्षिक परिवेश (Educational Setting) का अध्ययन करता है अर्थात छात्रों के व्यवहार व क्रिया-कलाप तथा शिक्षा दो ऐसी स्तम्भ है जो इस विज्ञान की विषय-वस्तु एवं अध्यापक विधियों का निर्धारण करते हैं । मनोविज्ञान की विषय-वस्तु के अन्दर सीखने की प्रकृति, छात्र-सन्निहित क्षमताओं का विकास, छात्रों द्वारा अर्जित सीखने के विभिन्न प्रतिफल, छात्रों के अंदर व्याप्त व्यक्तिगत-विभिन्नताएँ, घर पर या छात्रावास में विद्यालय में सीखने की परिस्थितियाँ या वातावरण और अंत में सीखने का प्रतिफल आदि बातें आती हैं । जहाँ तक शिक्षा मनोविज्ञान का एक प्रणाली विज्ञान के रूप में दायित्व है वहाँ हम पाते हैं कि अनेक तरह के शोध या तो प्रयोगशालाओं में या सीधे विद्यालयों में किए जाते हैं । इन शोध कार्यो का एक ही उद्देश्य होता है - बच्चे को उसके सीखने की क्षमताओं की सीमा के अंदर किस तरह विभिन्न प्रणालियों का उपयोग कर अधिक से अधिक विकसित कर राष्ट्र का एक अच्छे से अच्छा नागरिक बनाया जाए । अच्छा होगा, हम इस पर संक्षिप्त में प्रकाश डालें । हर माता-पिता की इच्छा होती है कि उसका बच्चा सबसे अच्छा बच्चा हो, वह अपनी कक्षा में प्रथम तो आए ही, साथ ही हर विषय में भी सबसे अच्छा हो । क्या यह सम्भव है? इसका उत्तर हमें शिक्षा मनोविज्ञान से मिलता है ।

शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है । यदि हम ध्यान से विचार करें तो पाते हैं कि इसके अंतर्गत निम्न पक्षों पर सामान्यत: अध्ययन किया जाता है.

- वंशानुक्रम तथा वातावरण का अध्ययन
- बालक की शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन
- बालक के विकास के विभिन्न (सामाजिक, संवेगात्मक, मानसिक, नैतिक आदि) पहलुओं का अध्ययन
- बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन
- व्यक्तिगत भिन्नता का अध्ययन
- अपराधी बालकों का अध्ययन
- थकान, रूचि, अरूचि का अध्ययन
- मानसिक रूप से कमजोर बालकों का अध्ययन
- अपराधी बालकों का अध्ययन
- मनोवैज्ञानिक प्रयोग संबंधी अध्ययन
- मनोवैज्ञानिक माप संबंधी अध्ययन
- पाठ्यक्रम की समस्याओं का अध्ययन
- अध्यापन विधियों का अध्ययन
- अनुशासन की समस्याओं का अध्ययन
- व्यवहार की क्रियाओं का अध्ययन
- प्रेरणाओं तथा मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन

- निर्देशन एवं परामर्श की समरूपताओ का अध्ययन
- अचेतन मन तथा उसकी क्रियाओं का अध्ययन

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को कुछ बिंदुओं में समेटना सम्भव नहीं है ओर न इनकी बिंदुवार व्याख्या करना ही उचित हैं नीचे के परिच्छेदों में मिश्रित रूप से उन क्षेत्रों को छूने का प्रयास किया गया है, जिनका, शिक्षा मनोविज्ञान से अधिक घनिष्ठ संबंध है:

सबसे पहले बच्चों का शारीरिक विकास आवश्यक है । इसके लिए तो माता-पिता ही उत्तरदायी हैं । निःसंदेह माता-पिता की आर्थिक स्थिति तथा बच्चों के प्रति जागरूकता दो ऐसे तथ्य हैं जो शारीरिक विकास के लिए जिम्मेदार हैं । तत्पश्चात् बच्चों की कई परिसीमाये हैं जिनके साथ बच्चा पैदा होता है । जैसे बच्चों के सहज जन्म-जात गुण, बुद्धि-परीक्षणता तथा रूचि आदि जो अधिगम के स्तम्भ माने जाते हैं । शिक्षा के द्वारा बच्चों के अधिगम की क्रियाओं में परिष्करण (Modification) सम्भव है । यह परिष्करण बच्चे को ऊँचाई तक पहुँचा सकता है । अब प्रश्न है कि यह परिष्कार कैसे किया जा सकता है, परिष्कार कौन करेगा, किस उद्देश्य के लिए किया जाएगा, किन वस्तुओं के द्वारा होगा तथा कब और कही होगा ? ये सभी प्रश्न बच्चे की प्रकृति से ही केवल संबंधित नहीं है वरन् शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रम, स्थान या स्कूल या वह स्थान जहाँ बच्चा शिक्षा ग्रहण करता है तथा अंत में शिक्षक से भी संबंधित है । शिक्षक के साथ निश्चित रूप से उनकी अपनी विद्वत्ता, उनकी अपनी पढ़ने की रूचि, उनका चरित्र तथा उनके पढ़ाने की विधियाँ सन्निहित हैं ।

शिक्षा मनोविज्ञान अमुक वातावरण के प्रभाव में बच्चों की शारीरिक वृद्धि एवं परिपक्वता का अध्ययन कराता है । बच्चों के विभिन्न तरह के विकास का क्षेत्र भी इसी विज्ञान के अंतर्गत आता है । कक्षा में एक ही शिक्षक पढ़ाते हैं परंतु कोई बच्चा वर्ग में प्रथम स्थान प्राप्त करता है, कोई द्वितीय तथा कई बच्चे फेल भी होते हैं । यह व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण ही होता है जिसका अध्ययन मनोविज्ञान का क्षेत्र है । अधिगम के विभिन्न नियम, विधियों, सीमायें, अधिगम के लिए बच्चे की चाह, अधिगम के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सीखने में सरलता, भूले अधिगम को याद करने के तरीके, अधिगम को अधिक देर तक स्मृति पटल में रखने के तरीके, विषय वस्तु पर ध्यानाकर्षित करने की विधियाँ आदि बातें भी शिक्षा मनोविज्ञान के दायरे में ही हैं । अधिगम में अभिप्रेरणा तथा सीखने की चाह का बड़ा ही महत्व है । बच्चों में सीखने की चाह कैसे पैदा की जाए, उसे किसी अधिगम के लिए किस तरह अभिप्रेरित किया जाए, यह भी शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत ही आता है ।

बच्चे विभिन्न घरों, संस्कृतियों, आर्थिक परिस्थितियों, बुद्धियों तथा विभिन्न समाजों एवं विभिन्न तरह के माता-पिता की विभिन्न शैक्षिक योग्याताओ के संपर्क से स्कूल में आते हैं । जब तक शिक्षक इन सभी का सम्यक् रूप से अध्ययन कर नहीं लेते, तब तक वह बच्चे को उनकी क्षमता के अनुकूल शिक्षा नहीं दे सकते । इन सभी चीजों का अध्ययन कराना शिक्षा मनोविज्ञान का ही काम होता है ।

शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों के क्रमिक विकास या हास का गहन रूप से अध्ययन करना बताता है । ऊपर हमने देखा कि बच्चे किस तरह विभिन्न वातावरण से स्कूल में आते हैं । निश्चित रूप से बच्चों के ऊपर घर, परिवार, पड़ोस, साथी तथा समाज का बहुत प्रभाव पड़ता है । बच्चों की आदतें, तौर-तरीके, खाने की आदतें, धार्मिक प्रवृत्तियां, अंधविश्वास या खुलापन, सहयोग की भावनायें आदि का निर्माण घर से ही प्रारम्भ होता है । कई घरों में बड़ा ही सौहार्दपूर्ण

वातावरण होता है जहां प्रेम के अंकुर हमेशा अंकुरित व प्रस्फुटित होते रहते हैं लेकिन कई ऐसे टूटे हुए घर होते हैं जहां हमेशा लड़ाई-झगड़ा तथा कलह ही होते रहते हैं । इन सभी का बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है । बच्चे का क्रोधी, शर्मीला, लड़ाकू या नटखट होना बहुत कुछ घर के वातावरण पर निर्भर करता है । बच्चों का खुशमिजाज होना, पढ़ाई में अच्छा करना, विषम परिस्थितियों में भी सामंजस्य स्थापित करना आदि सद्गुण भी घर से ही सीखे जाते हैं ।

स्कूल में कई बार बच्चे अपने साथियों की तुलना में पीछे रह जाते हैं । कई बार तो अच्छे छात्रों के साथ भी यह घटित हो जाता है । शिक्षक तथा अभिभावक चिंतित हो जाते हैं । आखिर इस पिछड़ेपन के क्या कारण हैं? उसका उत्तर हमें शिक्षा मनोविज्ञान सरलता से दे पाता है ।

सीखना और सिखाना दोनो ही मुश्किल काम हैं । रास्ते में नाना प्रकार की विध्न-बाधायें आती हैं जिन्हें छात्र तथा शिक्षक दोनों ही मिलकर दूर करना होता है । शिक्षा मनोविज्ञान एक व्यावहारिक मनोविज्ञान है जिसका असली उद्देश्य मनोविज्ञान के सिद्धांतों को बच्चों की शिक्षा देने में अमल करना होता है । शिक्षा से संबंधित सभी समस्याओं का निराकरण यह व्यावहारिक मनोविज्ञान ही करता है । अमेरिकन शिक्षा मनोवैज्ञानिक संघ ने इस मत का समर्थन किया है कि शिक्षा मनोवैज्ञानिक बच्चों की स्कूल में प्रगति की जाँच करते हैं, बच्चों की व्यवहार संबंधी समस्याओं का पता करते हैं तथा किस तरह का अधिगम दिया जाए, दिए जा रहे अधिगम की सफलता कहां तक हो पायी है आदि बातों की भी खोज करना इनका ही काम है । ये मनोवैज्ञानिक ही छात्र तथा अभिभावकों को शैक्षिक, व्यावसायिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत मार्ग निर्देशन भी देते! हैं । शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश करने वालों के लिए अथवा कार्यरत शिक्षकों के लिए ट्रेनिंग देना भी इन्हीं शिक्षा मनोवैज्ञानिकों पर निर्भर करता है ।

शिक्षा-मनोविज्ञान न केवल शिक्षकों को ट्रेनिंग देता है वरन् उनके मानसिक स्वास्थ्य का भी अध्ययन करता है तथा शिक्षकों को व्यावसायिक रूप में प्रगति करने को भी "अच्छे शिक्षकों के गुण" बताकर प्रेरित करता है । सिलेबस बनाने से लेकर छात्रों की जाँच तथा उनके भी मानसिक स्वास्थ्य को हष्ट-पुष्ट बनाने की विधियाँ बताकर शिक्षा मनोविज्ञान स्कूल और समाज में सोहार्दपूर्ण वातावरण बनाना सिखाता है । इस तरह यह विज्ञान बच्चे के संपूर्ण जीवन की जिम्मेदारी लेता है - उन्हें पढ़ाना, पढ़ाई के उद्देश्यों को निर्धारित करना, उनके लिए सिलेबस बनाना, उनकी मानसिकता के अनुकूल किताबों की रचना करने के सिद्धांत प्रदान करना, पढ़ाने के विभिन्न विधियों को सफल अधिगम के लिए तैयार करना, प्रश्न-पत्र का निर्माण कर छात्रों की जाँच करना आदि सभी बातें शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र हैं । बालकों के वैयक्तिक भेद तथा उनकी योग्यता को ज्ञात करने के लिए बुद्धि परिक्षायें अभिवृत्ति रूचि, योग्यतालब्धि परीक्षायें आदि ली जाती हैं । इन परीक्षाओं को किस प्रकार प्रशासित व फलांकित किया जाए - यह भी शिक्षा मनोविज्ञान से संबंधित है ।

शिक्षा मनोविज्ञान में बालक के व्यवहार को समझाने के लिए चेतन तथा अचेतन मन का भी अध्ययन किया जाता है । प्रेरणायें तथा मूल प्रवृत्तियाँ भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसका अध्ययन इस विषय में किया जाता है । मूल प्रवृत्तियाँ भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसका अध्ययन इस विषय में किया जाता है । मूल प्रवृत्तियाँ बालक में जन्मजात होती हैं, जिनसे प्रेरित

होकर बालक अपने दैनिक कार्य करता है, परंतु समय के साथ इन्हें शोधित करने की आवश्यकता होती है ।

बालक का व्यक्तित्व और उसका समायोजन भी शिक्षा मनोविज्ञान का एक प्रिय क्षेत्र है । इसके अंतर्गत छात्रों तथा अध्यापकों के व्यक्तित्व और इनसे संबंधित समस्याओं का अध्ययन, व्यक्तित्व का परीक्षण तथा समस्याओं का निदान कैसे किया जाए आदि विषय आते हैं ।

स्वमूल्यांकन

1. शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षको के लिए क्यो अवशयक है ?
2. शिक्षा मनोविज्ञान बालकों की किन-किन पझों का मुख्यतः अधययन करता है ।
3. शारीरिक विकास अधिगम को किसी प्रकार प्रभावित करता है ।
4. शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षको के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन क्यों करता है?
5. शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को एक सीमा के अंदर सीमित करना असंभव प्रतीत होता है कैसे ?

2.4.0 शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व (Importance of Educational Psychology)

आप ने अभी देखा कि शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र कितना व्यापक है, इसी से ही इस विषय की महत्ता का पता चलता है । यहां हम शिक्षा मनोविज्ञान के महत्व की चर्चा संक्षेप में करेंगे । जैसा कि हम जानते हैं कि शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा संबंधी व्यक्ति, वस्तु अथवा क्रिया-कलापों से मतलब रखता है । अस्तु छात्र, उद्देश्य शिक्षक सिलेबस, पाठन विधियाँ आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन्हें शिक्षा मनोविज्ञान अपने सिद्धांतों द्वारा सही मार्ग निर्देशन कर अपनी महत्ता को दर्शाता है । आइए, इन्हीं बिन्दुओं के संदर्भ में हम भी इन्हें देखने का प्रयास करें ।

24.1 छात्र

शिक्षा-जगत् का सबसे महत्वपूर्ण अंग छात्र है । "छात्र को जानना" शिक्षक का सबसे पहला कर्तव्य होता है । छात्र को “जानने" से क्या तात्पर्य है? " उसका नाम, उसके पिता का नाम व गाँव पता-ठिकान” - क्या ये ही उसके बारे में जानकारी है नहीं, इसके अतिरिक्त बच्चे के बारे में बहुत कुछ जानना होता है । बच्चे का सहज जन्मजात गुण, उसकी बुद्धि, मानसिक तथा वास्तविक आयु उसके परिवार में शिक्षा तथा वातावरण, बच्चे की मनोवृत्तियाँ तथा अभिरूचियाँ, उसका मानसिक स्वास्थ्य उसके संगी-साथी, उसके घर की आर्थिक स्थिति, उसके धर्म तथा विश्वास, उसकी व्यक्तिगत विभिन्नता, उसकी मातृभाषा..... आदि । बच्चे के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए बच्चे के बारे में यह सारी जानकारियाँ अत्यावश्यक हैं । इन्हीं जानकारियों के आधार पर बच्चे को उसकी क्षमता तथा मानसिकता के अनुसार शिक्षा दी जा सकती है तथा बच्चा अपने जीवन में सफल हो सकता है । हम हर बच्चे से यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वह हर विषय में उच्चतम अंक प्राप्त करे । आखिर उसकी भी अपनी सीमायें हैं । अत: अभिभावकों को अपने बच्चों से सब कुछ अपेक्षा नहीं करनी चाहिए । बच्चा अपनी बुद्धिमत्ता तथा सहज स्वाभाविक जन्मजात गुण तथा कई अन्य तथ्यों की सीमाओं में सीमित होता है ।

24.2 उद्देश्य

शिक्षा किस लिए ? निश्चित रूप से शिक्षा बिना स्पष्ट और निश्चित उद्देश्यों की नहीं दी जा सकती और अगर दी गई तो यह मात्र समय, शक्ति और धन का बेकार करना ही होगा । अत: किसी भी तरह की शिक्षा देने से पहले हमें निम्न तथ्यों की ओर ध्यान देना होगा तथा पूछना होगा कि क्या शिक्षा

(i) हमारी संस्कृति को समृद्ध करने में समर्थ है ?

(ii) छात्रों में मौलिकता उत्पन्न करने के लायक है ?

(iii) चरित्र का निर्माण करती है ?

(iv) सामाजिकता के गुण भरती है ?

(v) व्यावसायिक ट्रेनिंग देती है ?

(vi) दिमाग को अनुशासित करती है ?

(vii) छात्रों तथा शोधकर्ताओं को योग्य, समर्थ और स्वावलंबी बनाती है ?

(viii) बौद्धिक उत्सुकताओ को संतुष्ट करती है ?

(ix) एक सुयोग्य नागरिक बनाती है ?

शिक्षा मनोविज्ञान उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए छात्र की आयु, झुकाव, प्रवृत्ति, अभिरूचि, बुद्धितीक्ष्णता आदि के अनुसार शिक्षक तथा अन्य शिक्षा अधिकारियों को पाठ्यक्रम बनाने में सहायक सिद्ध होता है । इस प्रकार निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है ।

2.4.3 शिक्षक.

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षक एक अहं भूमिका निभाता है । शिक्षक बनना हर आदमी के वश की बात नहीं है । शिक्षक के गुणों में उनका चरित्र सबसे महत्वपूर्ण माना गया है । पुराने जमाने में, जैसा कि ए० एस0 अल्टेकर ने लिखा है, शिक्षक के चरित्र को सर्वोपरि माना जाता था । शिक्षक को अपने विषय का मास्टर या मालिक होना चाहिए । उसका पढ़ाने में झुकाव हो, वह बच्चों के प्रति सहानुभूति रखने वाला हों तथा बच्चों को माता-पिता की तरह प्यार करने वाला हो । सही शिक्षक तो वह है जिनके मस्तिष्क में हमेशा छात्रों की ही तस्वीरें उभरती रहती हैं - उठते, सोते, जागते, चलते, खाते समय । हर शिक्षक त्याग की प्रतिपूर्ति है । शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को कर्तव्यों का एहसाह दिलाता है । उन्हें वेतन मिले या न मिले, उन्हें पढ़ाना चाहिए, ऐसा अंकुश भी शिक्षा मनोविज्ञान ही देता है । यह विज्ञान शिक्षक को सबसे बड़ा अस्त्र देता है, विधियों का । किस पाठ को किस विधि से पढ़ाया जाए ताकि छात्र अधिक-से-अधिक लाभान्वित हो सकें । छात्रों के मूड को पहचानना, कक्षा में अनुशासन पैदा करना तथा सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार करना आदि बातें शिक्षा मनोविज्ञान ही बताकर शिक्षक को पढ़ाने के काबिल बनाता है । " टीचर टौट जौन लैटिन' ' वाक्य हमें बताता है कि शिक्षा को जीन (छात्र) तथा लैटिन (विषय-वस्तु) दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है । वर्तमान शिक्षा पद्धति में सजा देने का कोई प्रावधान नहीं है । यह मनोविज्ञान के सिद्धांत के अनुकूल है । अच्छा वातावरण तैयार कर बच्चों को प्यार से पढ़ाना भी शिक्षा मनोविज्ञान ही शिक्षक को बतलाता है । छात्रों की कमजोरियों का किस तरह परख कर उन्हें दूर की जाए, छात्रों का मूल्यांकन किस तरह किया जाए, शिक्षण अनुभव से अपने आप को किस तरह एक सफल शिक्षक बनाया जाए, सब कुछ शिक्षा मनोविज्ञान ही बताता है । शिक्षक के

मानसिक स्वास्थ्य को किस तरह स्वस्थ रखा जाए, शिक्षक की नियुक्ति किस तरह हो, उन्हें प्रशिक्षण कब, कैसे और क्यों दिया जाए आदि बातें निर्धारित करना भी शिक्षा मनोविज्ञान के ही अधीन है । हेनरी पीत्र स्मिथ ने एक शिक्षक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान निम्न कारणों से आवश्यक बताया है

- इससे बालकों की प्रकृति, स्वभाव तथा आवश्यकता की जानकारी होती है ।
- इससे बालकों के विकास की प्रक्रिया के मध्य उत्पन्न अनेक समस्याओं के निदान के अवसर मिलते हैं ।
- इससे बदलते परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के उद्देश्यों को समझने में सहायता मिलती है ।
- इससे बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने में सहायता मिलती है ।
- इससे अध्यापक को अपनी व्यावसायिक कुशलता को बढ़ाने में सहायता मिलती है ।

2.4.4 पाठ्यक्रम :

शिक्षक और छात्र के समक्ष संपूर्ण विश्व ज्ञान के रूप में विद्यमान है । इनमें से कितना ज्ञान दिया जाए और कितना छोड़ दिया जाए ? कितना अच्छा हो यदि संपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो सकें ' किंतु क्या यह सम्भव नहीं है, तो चयन करने के क्या सिद्धांत होंगे ? इनमें से कितना ज्ञान देना अत्यावश्यक है ' निश्चित रूप से हमें उन ज्ञानों को ही लेना होगा जो हमारे निर्धारित उद्देश्यों के लिए पर्याप्त हैं । इनका निर्णय करने के बाद पाठ्यक्रम को बच्चों को पढ़ाना ही शिक्षक का कर्तव्य होता है । पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय कुछ सिद्धांतों व तथ्यों को ध्यान में रखना अत्यावश्यक होता है जो हमें शिक्षा मनोविज्ञान ही बताता है । कोई भी विषय पढाने से पहले उस विषय में बच्चे का पूर्व अनुभव, उसकी आयु रूचि, अर्जित तथा जन्मजात गुण आदि अनेक तथ्यों को सामने रखकर पाठ्यक्रम बनाना चाहिए ।

2.4.5 पाठन विधियाँ :

किसी विषय वस्तु को किसी कक्षा में पढ़ाते समय किस प्रणाली या विधि का प्रयोग किया जाए ताकि छात्र सर्वाधिक लाभप्रद हो सकें, यह ज्ञान तो शिक्षा मनोविज्ञान ही शिक्षकों को देता है ।

यदि किसी पाठ को पढ़ाने में एक विधि सफल नहीं हुई तो तुरंत किसी दूसरी विधि का अनुसरण करना चाहिए । शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को पढ़ाने के हर कदम का उचित रूप से ट्रेनिंग देता है । विवेचन पद्धति, लेक्चर पद्धति तथा प्रदर्शन पद्धति आदि विधियाँ शिक्षा मनोविज्ञान के प्रयोग के ही परिणाम हैं । पढाने के जितने कौशल हैं जैसे व्याख्या करने के कौशल, श्यामपट्ट पर लिखने के कौशल, पाठ-प्रस्तावना के कौशल, प्रश्न पूछने के कौशल, छात्रों में रूचि पैदा करने के कौशल, आदि सभी शिक्षा मनोविज्ञान की ही देन हैं ।

सीखने के नियम, सीखने की विधियाँ, पढ़ाई-लिखाई करने के ढंग आदि तथ्यों को सिखाकर शिक्षा मनोविज्ञान छात्रों का भी भला करता है ।

2.4.6 समय सारिणी :

विद्यालय की समय सारिणी तैयार करने में शिक्षा मनोविज्ञान काफी तार्किक सहायता पहुंचाता है । समय सारिणी में कौन सा विषय पहले रखा जाए, कौन सा बाद में, कब बालकों को विश्राम दिया जाए आदि बातों का ज्ञान शिक्षक को इस विषय से आसानी से प्राप्त हो जाता है ।

2.4.7 छात्रों को अधिगम के लिए तैयार करना :

शिक्षक कितना भी योग्य हों, पढने की कला में निपुण हों परंतु यदि छात्र पढ़ने के लिए तैयार नहीं हैं तो कुछ भी सम्भव नहीं है । अत: छात्रों के बीच पहले इस तरह का वातावरण तैयार किया जाता है कि छात्र अधिगम के लिए स्वत: तैयार हो जाये । ऐसा वातावरण तैयार करने के लिए शिक्षक को कई तरह के आयामों का सहारा लेना पड़ता है, जैसे कक्षा में कहानी कहकर, कोई प्रयोग दिखाकर, कोई नाटक या नाटकीय ढंग प्रस्तुत कर, मजाक कर, कुछ दिखाकर..... आदि ।

2.4.8 अनुशासन स्थापित करना :

शिक्षा मनोविज्ञान छात्रों के बीच अनुशासन पैदा करता है । ' 'छात्रों को जानना' ' शिक्षक के लिए सबसे पहला सिद्धांत है । छात्रों को जान लेने के बाद शिक्षक तथा छात्रों के बीच स्वत: सान्निध्य हो जाता है और दोनों के बीच मधुर संबंध कायम हो जाते हैं तथा छात्र दिल से शिक्षक की इज्जत करने लग जाते हैं । ऐसी परिस्थिति में अनुशासनहीनता पैदा होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

2.4.9 वातावरण

शिक्षा के क्षेत्र में अन्य बातों के साथ अब यह भी आवश्यक हो गया है कि विद्यालय के वातावरण को अधिक से अधिक सुंदर रखा जाए - क्योंकि स्वस्थ शिक्षा के लिए स्वस्थ वातावरण एक आवश्यक शर्त है । विद्यालय का वातावरण बालकों के अनुरूप अधिक से अधिक कैसे बनाया जाए - इसकी जानकारी शिक्षा मनोविज्ञान से बड़ी सरलता से मिल जाती है । वातावरण का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है । संवेगात्मक वातावरण । इसके अन्तर्गत छात्र शिक्षक संबंध, शिक्षक-शिक्षक और शिक्षक प्रधानाचार्य संबंध आते है । संवेगात्मक रूप से स्थिर और परिपक्व छात्र और सफल और उत्तरदायी नागरिक बन सकते हैं।

2.4.10 मूल्यांकन में सहायता पहुंचाना :

छात्र ने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है उसमें वह कहाँ तक सक्षम हो पाया है, इसका मूल्यांकन करना आवश्यक होता है । मूल्यांकन करने का सही तरीका क्या है यह हमें शिक्षा मनोविज्ञान ही बताता है । मूल्यांकन के परिणाम के आधार पर शिक्षक अपने पढ़ाने की विधियाँ आदि में परिवर्तन कर सकते हैं, पाठ्यक्रम में सुधार किया जा सकता है तथा छात्र भी अपने अधिगम के तौर-तरीके में परिवर्तन कर सकते है ।

2.4.11 समस्यात्मक बालकों की पहचान तथा निदान करना :

कोई भी बालक जब एक समस्यात्मक बालक बनता है तो इसके पीछे कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होते हैं । शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक, माता-पिता तथा अन्य समाज-सुधारकों को उन कारणों को पता लगाने में सहायता पहुंचाता है तथा उनके निदान का भी उपाय बताता है । यह विज्ञान हमें बताता है कि पाप से घृणा करो पापी से नहीं । प्रकृति से अथवा जन्म से कोई भी व्यक्ति बुरा नहीं होता । उसके बुरा होने का कोई-न-कोई कारण होता है । कारण को पकड़ उसे दूर करने की आवश्यकता होती है । इन्हीं कारणों को कई विधियाँ अपनाकर ढूंढने का काम शिक्षा मनोविज्ञान करता है ।

2.4.12 मार्ग निर्देशन

शिक्षा मनोविज्ञान माता-पिता, छात्र, शिक्षक तथा समाज के अन्य बुद्धिजीवी वर्ग को मार्ग-निर्देशन प्रदान करता है । बच्चों के प्रति माता-पिता के क्या दायित्व हैं, बच्चों की क्या आवश्यकतायें हैं, बच्चों के प्रति उन्हें किस तरह सहज तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए, सब कुछ शिक्षा मनोविज्ञान ही बताता है । छात्रों का अधिगम क्या है, इसे प्राप्त करने की कौन-कौनसी प्रभावी विधियाँ हैं, किस विषय का प्रकृति तथा अर्जित एवं जन्मजात गुणों के अनुसार अध्ययन किया जाए, यह ज्ञान छात्रों को शिक्षा मनोविज्ञान से ही प्राप्त होता है । शिक्षा के प्रति, बालकों के प्रति, अपने पढाये जाने वाले विषयों के प्रति, पढ़ाई में अपनायी गयी विधियों के प्रति तथा एक सफल शिक्षक बनने के सिद्धांतों के प्रति शिक्षक के क्या दायित्व हैं, यह शिक्षा मनोविज्ञान ही शिक्षक को बताता है । शिक्षण-विधियों में आए नए शोध-कार्यो को बताकर शिक्षक को नयी चेतना देता है । कक्षा के बाहर वह किस तरह छात्र अभिभावकों तथा अन्य अधिकारियों से संबंध स्थापित करें, यह जानकारी भी शिक्षा मनोविज्ञान ही देता है ।

2.5.0 सारांश (Summary)

निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि शिक्षा मनोविज्ञान एक ऐसा स्वीकारात्मक विज्ञान है जो शिक्षण एवं अधिगम की क्रिया को सफल बनाने के लिए शिक्षक, शिक्षार्थी पाठ्यक्रम व शैक्षणिक पर्यावरण का अध्ययन करता है । शिक्षा मनोविज्ञान का मूल उद्देश्य यह रहता है कि किस प्रकार बालक प्रभावी ढंग से शिक्षा ग्रहण करे ताकि वह स्वयं का तथा समाज का दोनों का हित करने योग्य हो जाए । शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षार्थी के साथ साथ शिक्षक के लिए भी अति महत्वपूर्ण है, शायद इसी लिए स्किनर ने लिखा है कि शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों की तैयारी में नींव के पत्थर के समान है ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. शिक्षा मनोविज्ञान के विषय मे क्या संकल्पना है ?
2. मापन और मूल्यांकन शिक्षा मनोविज्ञान से किस प्रकार संबंधित है, स्पष्ट करें ।
3. शिक्षा मनोविज्ञान न केवल हर शिक्षक को जानना चाहिए वरन् हर माता - पिता तथा
4. समाज के अच्छे नागरिक को भी । क्यों ?
5. शिक्षा मनोविज्ञान के बिना एक शिक्षक के लिए विषय-वस्तु का ज्ञान अधूरा है, कैसे

2.6.0 संदर्भ (References)

(1) अल्टेकर, ए.एस. (1995): एजूकेशन इन ऐन्सियन्ट इंडिया, नन्दकिशोर, वाराणसी

(2) भटनागर, सुरेश (1989). शिक्षा मनोविज्ञान - इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ

(3) होलिंगवर्थ एच.एल. एजूकेशनल सायकलाजी एप्लीटन सेन्चुरी कंपनी, नयी दिल्ली

(4) जायसवाल, सीताराम (1962) शिक्षा मनोविज्ञान दीपिका, सर्वोदय साहित्य प्रकाशन, वाराणसी

(5) उदय शंकर (1984) एडवान्स्ड एजूकेशन सायक्लॉजी औक्सोनियन प्रेस, नई दिल्ली

इकाई-3

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियाँ : (निरीक्षण, परीक्षण, व्यक्ति वृत्त अध्ययन, साक्षात्कार, सेल्फ रिपोर्टिंग) (Methods of Psychology: Observation Experimentation, Case Study, Survey Interview,Self Reporting)

इकाई की रूपरेखा

3.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

3.2.0 प्रस्तावना

3.3.0 विधि से तात्पर्य

3.4.0 मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों के प्रकार

3.5.0 निरीक्षण विधि

3.5.1 अन्तर्दर्शन पद्धति

3.5.2 बहिदर्शन पद्धति

3.6.0 प्रायोगिक विधि

3.7.0 विवरण विधि

3.7.1 व्यक्ति अध्ययन

3.7.2 साक्षात्कार

3.7.3 सेल्फ रिपोर्टिंग

3.8.0 सारांश

3.9.0 संदर्भ

3.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता है । मानव, पशु आदि के व्यवहार क्रिया, प्रतिक्रिया का अध्ययन करने के लिए एक मनोवैज्ञानिक विभिन्न विधियों का प्रयोग करता है ताकि वह एक निश्चित योजनाओं का अनुसरण कर सत्य का अन्वेषण कर सकें । इस इकाई में मनोवैज्ञानिक अध्ययनों मे प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों का वर्णन किया जा रहा है, ताकि शिक्षार्थी इन्हें समझकर भविष्य में उपयुक्त स्थानों पर इनका प्रयोग कर सकें । इस पाठ की सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य होने चाहिये कि

- मनोवैज्ञानिक विधियों का अर्थ समझ सकें ।
- मनोवैज्ञानिक विधियों के प्रमुख प्रकार जान सकें ।
- प्रमुख मनोवैज्ञानिक विधियों की विशेषताओं से परिचित हो सकें ।
- प्रमुख मनोवैज्ञानिक विधियों के गुण-दोषो को समझ सकें ।

- यथास्थान मनोवैज्ञानिक अध्ययन में इन विधियों का प्रयोग कर सकें ।

3.2.0 प्रस्तावना (Introduction)

कभी-कभी व्यक्ति स्वयं विश्लेषण करता है कि मुझे खुशी क्यों होती है? मैं क्यों सोचता हूँ? मुझे डर क्यों लगता है? मुझे गुस्सा क्यों आता है? यह विश्लेषण करने के बाद व्यक्ति स्वयं तय करता है कि मैं तो बेकार में अंधेरे से डर गया था वहाँ पर मेरा गुस्सा होना जायज नहीं था, आदि कहने का अर्थ यह है कि व्यक्ति ने यह जो अपना विश्लेषण किया, वह उसकों कुछ नवीन विचार देता है जिसके आधार पर वह अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है । इसी प्रकार व्यक्ति दूसरे के व्यवहार का अध्ययन कर उसकी मन: स्थिति को भी जानने का प्रयास करता है । आपने बहुधा छात्रों को कहते हुए सुना होगा कि अध्यापक जी से यह प्रश्न कल पूछ लेगें, आज तो उनका मूड ठीक नहीं है या कक्षाध्यापक महोदय जब प्रसन्न होगे तब उनसे भ्रमण या पिकनिक की बात करेंगे । अत: अधिकतर आपका व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि आपके व्यवहार के प्रति दूसरे के मन मे कैसी प्रतिक्रिया होगी । जिस प्रकार से आप अपने व्यवहार का विश्लेषण करने या दूसरे की व्यवहार को जानने के लिए विभिन्न विधियों (निरीक्षण, विवेचन आदि) का सहारा लेते हैं-ठीक उसी प्रकार मनोविज्ञान भी मनुष्य तथा जीवों के व्यवहार उनकी क्रिया, प्रतिक्रिया समझने के लिए विभिन्न विधियों का सहारा लेता है- अंतर बस इतना होता है कि सामान्य व्यक्ति द्वारा अनजाने में विभिन्न विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं तथा वे अपरिष्कृत होती है जबकि मनोविज्ञान मे इन विधियों का प्रयोग सोच- समझ कर किया जाता है तथा वे परिष्कृत होती हैं । मनोविज्ञान में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों को जानने के पूर्व- इस बात पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा कि विधियों से हमारा क्या तात्पर्य है- विशेषकर मनोवैज्ञानिक विधियों को ऐसे परिभाषित किया जाए तथा उनकी विशेषताएं क्या हैं ?

3.3.0 विधि से तात्पर्य (Meaning of Method)

सामान्य शब्दों में किसी विषय को पूर्व निश्चित योजना के अनुसार अध्ययन करना ही विधि है और सरल शब्दों में विधि को निश्चित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कार्य करने का तरीका कहा जा सकता है । क्योंकि मनोविज्ञान को अधिकांश मनोवैज्ञानिक विज्ञान मानते हैं अत: यह आवश्यक है कि मनोविज्ञान की विधियाँ व प्रविधियाँ, निष्पक्ष वस्तुनिष्ठ, सत्य तथा विश्वसनीय हो । चार्ल्स जीड ने इसी बात को बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है

" वैज्ञानिक भाषा मे अध्ययन / विधि का प्रयोग उस पथ को सूचित करने में होता है- जिसके अनुसरण से सत्य का अन्वेषण होता है ।" (In the Scientific language, the term methord is used to designate the road that must be followed to lead to the discovery of truth) मनोविज्ञान का विकास विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में हुआ है । विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वानों ने मानव व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रिया को समझने के लिए अलग-अलग विधियों का प्रयोग किया है। अत: यह निश्चित रूप से तय कर पाना बड़ा कठिन कार्य है कि मनोविज्ञान का अध्ययन करने के लिए कितनी विधियों का प्रयोग किया गया है, फिर भी यहाँ पर सुविधा के लिए विधियो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

3.4.0 मनोविज्ञान की अध्ययन विधियो के प्रकार (Type of Methods of Psychology)

मनोविज्ञान की अध्ययन विधियां (प्रणालियां):-

निरीक्षण प्रणाली	परीक्षण प्रणाली	विवरण प्रणाली
(Obeservation)	(Experimental)	(Exposition)
अन्र्तदर्शन	बर्हिदर्शन	व्यक्ति इतिहास
(Introspection)	(Extropection)	– सर्वेक्षण
		– साक्षात्कार
		– विकासात्मक
		– तुलनात्मक
		– निदानात्मक
		– मनोविश्लेषण
		– सांख्यिकी
		– सेल्फ रिपोटिंग
		– इंट्रोडमान
		– मनोभौतिकी

कुछ सीमाओं के कारण यहां पर सभी विधियों का वर्णन किया जाना सम्भव नहीं है । अत: कुछ महत्वपूर्ण विधियों जैसे निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण, साक्षात्कार: सेल्फ रिपोर्टिंग, व्यक्ति अध्ययन आदि का यहां पर विवेचन किया जा रहा है ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. निम्न प्रश्नो का संक्षिप्त उतर दे: -
2. सामान्य व्यक्ति द्वारा स्वयं के व्यवहार का विश्लेषण करने वाली विधियों तथा
3. मनोवैज्ञानिक अध्ययन विधियों मे क्या अंतर होता है?
4. मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए ।

3.5.0 निरीक्षण विधि

निरीक्षण का अर्थ है- 'देखना', 'अवलोकन करना' या 'निरीक्षण करना' । पारस्परिक सम्बन्ध को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का अवलोकन ही निरीक्षण कहलाता है । ऑक्सफोर्ड शब्द कोष के अनुसार, ' 'घटनाएँ कार्य कारण अथवा पारस्परिक सम्बन्धी के संबंध, जिस रूप में वे उपस्थित होते हैं, का यथार्थ अवलोकन एवं वर्णन ही निरीक्षण कहलाता है । "

निरीक्षण प्रविधि की विशेषताएँ -

निरीक्षण प्रविधि की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है-

1. **मानवीय इन्द्रियों का पूर्ण उपयोग**- निरीक्षण विधि में मानवीय ज्ञानेन्द्रियों विशेषकर नेत्रों का अत्यधिक उपयोग होता है ।
2. **उद्देश्यपूर्ण एवं सूक्ष्म अध्ययन**- मनोविज्ञान मे प्रयुक्त निरीक्षण प्रविधि सामान्य निरीक्षण से भिन्न होती है । इसमें निरीक्षण सदैव ही सूक्ष्म एवं उद्देश्यपूर्ण होता है
3. **प्रत्यक्ष अध्ययन**- निरीक्षण प्रविधि में प्रत्यक्ष अध्ययन किया जाता है । मनोवैज्ञानिक स्वयं ही निरीक्षण करके आकड़ों का संकलन करता है ।
4. **सामूहिक व्यवहार का अध्ययन**- यह प्रविधि सामूहिक व्यवहार के अध्ययन के लिए उचित है । जिस प्रकार वैयक्तिक अध्ययन द्वारा वैयक्तिक व्यवहार का भली प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है, उसी प्रकार निरीक्षण प्रविधि से सामूहिक व्यवहार का अध्ययन भली-भाँति किया जा सकता है ।

निरीक्षण विधि निम्न प्रकार से की जा सकती है-

3.5.1 अन्तर्दर्शन पद्धति :- ऐतिहासिक रूप से यह पद्धति मनोविज्ञान की प्राचीनतम पद्धति है- जिसका प्रयोग पहले दर्शनशास्त्र में होता था । मनोविज्ञान में इसका प्रयोग पहले विधि संरचनावादी मनोवैज्ञानिको ने किया था । टिचनर को इस विधि का जनक माना जाता है ।

संरचनावादियों के अनुसार मनुष्य की चेतना विभिन्न मानसिक क्षमताओ एवं क्रियाओं का योग है तथा इस चेतना की व्याख्या करने के लिए संरचनावादी विभिन्न मानसिक क्रियाओं के स्वविश्लेषण पर बल देते है । अन्तर्दर्शन का अर्थ है' ' स्वयं में देखना' ' । टिचनर ने कहा है कि " अपने अन्दर देखना ही अन्तर्दर्शन है' ' जबकि ऐन्जिल के अनुसार " अन्तप्रेक्षण ही अन्तर्दर्शन है' ' । स्टन्ट ने इसे और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अपने मन के कार्यो का क्रमानुसार विश्लेषण करना ही अन्तर्दर्शन है- जबकि बुडवर्थ ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है कि " अन्तर्दर्शन आत्म निरीक्षण है' ' । यदि इसे अपने शब्दों में कहा जाए तो इस प्रणाली में व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओं प्रतिक्रियाओ का अध्ययन स्वयं ही करता है । उदाहरण के लिए- यदि कोई व्यक्ति डरा हुआ है तो वह अपने डरे होने का भाव प्रकट करता है तथा बाद में सोचता है कि वह क्यों डरा उसका डरना वास्तविक था या काल्पनिक आदि । व्यक्ति अन्तर्दर्शन करते समय अपना ध्यान बाह्य तत्वों से खींचकर मानसिक प्रक्रियाओ की और लगाता है तथा उनका विश्लेषण कर ज्ञान प्राप्त करता है ।

अन्तर्दर्शन पद्धति के गुण:

यद्यपि यह पद्धति मनोवैज्ञानिक विधियों में काफी पुरानी हो चुकी है तथा कम वैज्ञानिक है- फिर भी इस पद्धति की निम्न प्रमुख विशेषताएं- इसका महत्व आज भी बनाए हुए है-

(अ) अपने आप निरीक्षण करना - विलियम जेम्स ने लिखा है कि अन्तर्दर्शन पद्धति की जो सबसे बडी विशेषता है वह है कि इसमें जो तथ्य व्यक्ति को प्राप्त होते है वह वास्तविक होते हैं, व्यक्ति सूचनाए स्वयं प्राप्त करता है स्वयं से अत: उनकी सत्यता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगा सकता है ।

(ब) निरीक्षण के लिए समय व स्थान निश्चित करना आवश्यक नहीं - क्योंकि इसमें व्यक्ति स्वयं अपना निरीक्षण तथा विश्लेषण करता है- अत: न किसी प्रयोगशाला की आवश्यकता है न किसी निश्चित समय की तथा न धन की । इसमे व्यक्ति जो निरीक्षण करना चाहता है वह हमेशा उसके पास रहती है ।

(स) दूसरे की मानसिक क्रियाओं की अनुभूति - सामान्यत: व्यक्ति अन्र्तदर्शन में अपने मन का विश्लेषण करता है पर अपने मन (व्यवहार) का विश्लेषण करता है- जैसे हमें अमुक व्यक्ति पर गुस्सा क्यों आया? वह सोचता है कि सामने वाले ने ऐसा क्या किया जिससे उसे गुस्सा आया ।

(द) किसी समस्या के तुलनात्मक अध्ययन में विशेष सहायक - किसी समस्या को दो प्रणालियों के अध्ययन द्वारा प्राप्त परिणामों की तुलना में किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है । इन प्रणालियों में अन्र्तदर्शन का विशेष महत्व है । मनोवैज्ञानिक, प्रयोग के समय अपने प्रयोज्य से अन्र्तदर्शन का विवरण तुलना करने के लिए ही लेता है ।

अन्र्तदर्शन पद्धति के दोष :

इस पद्धति में " विषय तथा विषयी ' दोनो एक ही व्यक्ति होता है- अत: अध्ययन में काफी कठिनाइयां आती हैं । संक्षेप में इस पद्धति के मुख्य दोष निम्न है:-

अ) मन द्वारा मन का निरीक्षण असम्भव है:- एक सामान्य व्यक्ति के लिए यह बड़ा कठिन कार्य है कि वह अपने ही मन द्वारा अपने ही मन का निरीक्षण करे ।

(ब) गत्यात्मक व्यवहार का निरीक्षण कठिन है:- मनुष्य का व्यवहार प्रतिपल बदलता रहता है उदाहरण के लिए मनुष्य सगीत का आन्नद ले रहा है- यदि वह यह विचार करने लगे कि उसे आनन्द क्यों हो रहा है- तो उसका आनन्द ही समाप्त हो जाएगा ।

(स) परिणाम वैयक्तिक तथा आत्मनिष्ठ होते हैं - यह आवश्यक नहीं कि इस विधि से प्राप्त अनुभूतियों का वर्णन सही ढंग से ही करें क्योंकि इसमे एक ही व्यक्ति विषय तथा विषयी दोनों होता है अत: उसकी अनुभूतियों का वैज्ञानिक विवेचन बहुत कठिन है)

(द) मानसिक क्रियाओं का अस्पष्ट होना - अनेक मानसिक क्रियाएं अस्पष्ट होती है आपसे में मिली होती है तथा व्यक्त नहीं होती है, अत: उनका सुव्यवस्थित रूप से अन्र्तदर्शन करने में कठिनाई होती है । जबकि भौतिक पदार्थो का अध्ययन सरल होता है क्योंकि उनका स्वरूप, रंग, रूप, आकार आदि निश्चित होते हैं ।

(य) मस्तिष्क का विभाजन - इस पद्धति मे एक ही व्यक्ति ज्ञाता या दृष्टा तथा ज्ञेय अथवा दृश्य दोनों का कार्य करता है अत: उसके मस्तिष्क को मस्तिष्क का ही निरीक्षण करना पड़ता है जो कि व्यवहारिक रूप से असम्भव है । शायद इसीलिए कास्टे ने लिखा है कि " अन्र्तदर्शन असम्भव है ।

(र) बालको, मानसिक रोगियों तथा पशुओं पर अनुपयोगी - यह प्रविधि इन लोगो के लिए उपयोगी नहीं है क्योंकि वह अपनी मानसिक क्रियाओ का विश्लेषण नहीं कर सकते हैं । बालको में चंचलता इतनी अधिक होती है कि वे अपने मन की बात की वास्तविक व्याख्या नहीं कर सकते हैं तथा पशुओं का मानसिक स्तर इतना ऊँचा नहीं होता कि वे स्वयं अपना आत्मदर्शन कर सकें ।

3.5.2 बहिर्दर्शन पद्धति - समय के साथ-साथ मनोविज्ञान का स्वरूप बदलता रहा है । जब तक मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान रहा, तब तक अन्र्तदर्शन पद्धति काफी उपयुक्त मानी जाती रही- परन्तु आज मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान माना जाता है तथा उसमें चेतन, अचेतन, अर्द्धचेतन मस्तिष्क के अलावा मानसिक रोगियों तथा पशुओं का भी अध्ययन होने लगा तो वह विधि अनुपयुक्त लगने लगी क्योंकि ये लोग अपने मस्तिष्क तथा मानसिक क्रियाओ का

विश्लेषण नहीं कर सकते थे- अत: मनोवैज्ञानिकों ने एक नई पद्धति बर्हिदर्शन को प्रयोग में लाना शुरू किया । इस प्रविधि में हम अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण कर उसकी मानसिक दशा का ज्ञान प्राप्त करते हैं । संक्षेप मे बर्हिदर्शन में तीन क्रियाएं होती है ।

- दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण ।
- दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का अनुभव ।
- अपने पूर्व के अनुभवों के आधार पर व्यवहार की व्याख्या ।

उदाहरण के लिए यदि हमें किसी व्यक्ति के क्रोध जनित व्यवहार का अध्ययन करना है तो पहले हम उसके व्यवहार का निरीक्षण करते हैं- उसके शारीरिक परिवर्तन देखते हैं- क्या आँख लाल है? चेहरा तमतमाया है । फिर हम देखते हैं कि वह किस प्रकार का व्यवहार कर रहा है- जैसे बोलने में नियंत्रण रख पा रहा है या नहीं, जबान लड़खड़ाती तो नहीं है । फिर हम अपने पूर्व के क्रोधित व्यक्ति के अनुभव के आधार पर व्याख्या तथा निष्कर्ष निकालते हैं कि अमुक व्यक्ति क्रोधित है । विशेष बात यह है कि बर्हिदर्शन में मानसिक प्रक्रिया के साथ-साथ उसकी शारीरिक प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जाता है ।

3.5.2.1 बर्हिदर्शन प्रणाली के प्रकार - बर्हिदर्शन के कई प्रकार हो सकते है जैसे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष, स्वाभाविक / कृत्रिम, पहले से निश्चित / अनिश्चित, पार्टीसिपेट / नॉन पार्टीसिपेट, औपचारिक / अनौपचारिक आदि । इसमें से हर पद्धति के यदि अपने कुछ विशिष्ट लाभ है तो दोष भी है ।

3.5.2.2 बर्हिदर्शन पद्धति के दोष - इस पद्धति के प्रमुख दोष निम्न हैं:-

- इस पद्धति से केवल बाहय व्यवहार का ही संतोषजनक ढंग से अध्ययन किया जा सकता है जो कि बहुत विश्वसनीय सूचनाएं नहीं देता है- इससे आंतरिक मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करना कठिन कार्य है ।
- इस पद्धति मे एक व्यक्ति दूसरे को अपने समान समझने लगता है तथा बर्हिदर्शक अपने भावों, विचारों और चिंतन की अनुभूतियों को दूसरों के मस्तिष्क पर थोपना चाहता है- किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जैसा बर्हिदर्शक सोचता है वैसा ही प्रयोज्य भी सोचें ।
- इस पद्धति में व्यक्ति प्राय: अपने किसी स्वजन का बर्हिदर्शन करते समय उसकी बुराइयों को भूल जाते है कि ऐसा व्यवहार क्यों हुआ ?
- कभी कभी विषयी ढोंग पूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन करता है जिससे परिणाम गलत निकलते हैं ।
- व्यक्ति का एक ही प्रकार का व्यवहार कभी-कभी अनेक स्थितियों का द्योतक होता है जैसे आँख से आसू दुःखी होने पर तो आते ही है कभी कभी खुशी होने पर भी आसू आते हैं ।

3.5.2.3 दोष निवारण के उपाय:-

- बर्हिदर्शन में आधुनिक यंत्रों जैसे टेप, वीडियों, कैमरा, प्रोजैक्टर आदि का प्रयोग चाहिए ।
- निरीक्षणकर्त्ता काफी अनुभवी होने चाहिए । उनकी कल्पना शक्ति काफी विकसित होनी चाहिए तथा उन्हें पूर्वाग्रहों एवं पूर्व धारणाओं से मुक्त होना चाहिए ।

- निरीक्षणकर्त्ता के निरीक्षण करते समय कुछ निश्चित उद्देश्य होने चाहिए । एक ही समय सभी गुणों का अध्ययन नहीं करना चाहिए ।
- बर्हिदर्षक के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए अन्यथा कम कुशल व्यक्ति गलत निष्कर्ष निकाल सकते हैं ।

3.5.2.4 बर्हिदर्शन के लाभ:-

- परिणामों में वैयक्तिता तथा आत्मनिष्टता की सम्भावना कम होती है ।
- व्यक्ति के व्यवहार का उसी समय निरीक्षण किया जा सकता है- जब वह वैसा व्यवहार कर रहा
- कृत्रिम परीस्थितियों में भी निरीक्षण के लिए वैसा व्यवहार उत्पन्न करवाया जा सकता है।
- मानसिक रूप से कम विकसित व्यक्तियों तथा जीवों पर भी इस पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है ।
- एक ही व्यवहार का कई मनोवैज्ञानिक एक साथ मिलकर या विभिन्न परिस्थितियों में अध्ययन कर सकते हैं ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. अन्तर्दर्शन पद्धति से आप क्या समझते हैं'
2. बर्हिदर्शन पद्धति के गुण तथा दोषों का संक्षेप में लिखिए ?

3.6.0 प्रायोगिक विधि (Experimental Method)

प्रायोगिक प्रविधि व्यवस्थित तथा नियंत्रित दशाओं में किसी व्यक्ति की अनुभूति एवं व्यवहार का विश्लेषण करने की सबसे विश्वसनीय विधि है । इस अविधि में किसी भी ज्ञेय के घटक (ओकुरेन्स) को प्रभावित करने वाले कारको की खोज की जाती है ताकि इसको (घटक को) नियंत्रित किया जा सकें और उसकी (घटक की) प्रगुक्ति की जा सकें । उदाहरण के लिए जैसे एक वैज्ञानिक यह प्रयोग करता है कि हाइड्रोजन तथा आक्सीजन का 2: 1 का अनुपात पानी बनाता है और विभिन्न परिस्थितियों में वह अपने प्रयोग करके इसी बात को प्रमाणित करता है इसी तरह के प्रयोग यदि मनोविज्ञान मे करके मनोवैज्ञानिक निश्चित प्रागुक्ति कर सकें तो हम कह सकते है कि यहाँ का परीक्षण प्रविधि का प्रयोग सफलता पूर्वक किया गया है ।

प्रविधि के अन्तर्गत परीक्षण के लिए कोई समस्या ली जाती है तथा वे तथ्य जो प्रयोग मे बाधा डालते हैं उन्हें बाहर रोक दिया जाता है । इस प्रकार एक कृत्रिम मनोवैज्ञानिक वातावरण नियंत्रित परिस्थितियों में तैयार किया जाता है । समस्या का समाधान खोजने के लिए प्रयोगकर्त्ता उस समस्या के उत्तर को एक परिकल्पना के रूप में प्रस्तुत करता है । फिर वह निर्मित परिकल्पना का प्रयोग के द्वारा सिद्ध कर असिद्ध करता है । प्रयोगकर्त्ता यह खोज करता है कि किस कारक की उपस्थिति में कोई ज्ञेय प्रकट होगा तथा किस कारक की उपस्थिति में नहीं प्रकट होगा । संक्षेप मे प्रयोगकर्त्ता कार्य कारण सम्बन्ध जानने के लिए अपेक्षित अनुसंधान करता है तथा विभिन्न कारको के बीच अभिन्न सम्बन्धों का पता लगाता है । किसी भी समस्या के जो विभिन्न कारक होते है, उन्हें निम्न वर्गो में (चरों के रूप में) रखा जाता है ।

3.6.1 प्रयोग में परिवर्तियाँ -स्वतंत्र परिवर्ती वह तत्व है जिसका मूल्यांकन प्रयोग द्वारा किया जाता है उदाहरण के लिए यदि देखा जाये कि "प्रशंसा का अधिगम पर क्या प्रभाव पड़ता है तो इसमें प्रशंसा स्वतंत्र परिवर्ती हुई ।

निर्भर परिवर्ती - निर्भर परिवर्ती या चर वह कसौटी है जिसके आधार पर स्वतंत्र परिवर्ती के व्यवहार का मूल्यांकन किया जाता है । उदाहरण के लिए प्रशंसा से छात्र का अधिगम कम होता है तो यह कम या अधिक अधिगम ही निर्भर परिवर्ती है।

मध्यवर्ती परिवर्ती - किसी भी प्रयोग मे यदि केवल स्वतंत्र तथा निर्भर परिवर्तियां ही हो तो प्रयोग बड़े सरल हो जाएं । परन्तु प्रयोग में इन स्वतंत्र तथा निर्भर परिवर्तियों के बीच बहुत से अन्य परिवर्तिया आ जाती है जिससे अन्य दोनों के बीच पड़ने वाले प्रभाव को मापना मुश्किल हो जाता है । इन्हीं परिवर्तियों को मध्यवर्ती परिवर्ती कहते है- जैसे आप प्रशंसा का अधिगम पर प्रभाव का परीक्षण कर रहे हैं तो इसमें प्रशंसा तो स्वतंत्र परिवर्ती हुई, अधिगम कम या ज्यादा हुआ यह निर्भर परिवर्ती हुई पर प्रयोग में न्यादर्श के लिए जो आपने छात्र के लिए है उनकी रूचि, बुद्धि आदि में अन्तर हो सकता है तथा यह चीजें प्रयोग को भी प्रभावित करेंगी । इस प्रयोग में यह रूचि, बुद्धि का अन्तर आदि मध्यवर्ती परिवर्तिया हुई ।

एक अच्छे प्रयोग में स्वतंत्र और निर्भर परिवर्तियो की सूची बनाने के पश्चात् प्रयोगकर्त्ता के लिए यह निर्णय करना आवश्यक हो जाता है कि प्रयोग का आकल्प कौन सा होगा । मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में मुख्यत: आकल्पों के निम्न चार वर्ग बनाए जा सकते है:-

- एक मेव समूह आकल्प
- अनेक समूह आकल्प:
- सह यमज नियंत्रण आकल्प:
- सांख्यकीय आकल्प अथा कारक विश्लेषणात्मक आकल्प:

एक मेव समूह आकल्प:- यह सबसे सरल आकल्प होता है तथा इसमें एक ही ग्रुप होता है । इस आकल्प के दो रूप सामान्यत: प्रयोग में लाये जाते हैं । (अ) पोस्ट डिजाइन टेस्ट (ब) प्रीपोस्ट डिजाइन टेस्ट । पोस्ट डिजाइन टेस्ट में प्रयोगकर्ता एक ही ग्रुप बनाता है तथा उस पर एक ही बार परीक्षण करता है । जैसे यदि कोई अध्यापक कक्षा 8 में गणित किसी नवीन विधि से पढ़ाना चाहता है तो नवीन विधि से गणित पढ़ाकर कक्षा आठ के छात्रों के रिजल्ट की तुलना उनके पुराने रिजल्ट (कक्षा-7) से करकर विधि की उपयोगिता अनुपयोगिता समझ लेगा जबकि प्रीपोस्ट डिजाईन टेस्ट में न्यादर्श का परीक्षण से पूर्व एक पूर्व परीक्षा ली जाती है तथा नयी विधि से गणित पढ़ा कर पोस्ट टेस्ट लिया जाता है फिर इन प्रीटेरट तथा पोस्टटेस्ट की तुलना कर परीक्षण की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता जानी जाती है ।

अनेक समूह आकल्प - इस प्रकार की डिजाइन में दो या दो से अधिक प्रयोग समूहो का चयन किया जाता पर कोई क्रिया नही की जाती है जैसे प्रशंसा का अधिगम पर प्रभाव देखने के लिए पहले धुप के छात्रों की यथा समय प्रशंसा की गई जबकि दूसरे ग्रुप में नहीं । फिर प्रयोगों की समाप्ति पर इन दोनों समूहों की तुलना कर परिणाम ज्ञात कर लेते हैं । इस प्रयोग में प्रथम समूह को प्रयोगिक समूह तथा दूसरे ग्रुपको नियंत्रण समूह कहते हैं । मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में अनेक समूह विधान के चार प्रमुख ग्रुपमिलते हैं ।

(अ) एक नियंत्रण समूह सहित उत्तर मापन आकल्प

(ब) एक नियंत्रण समूह सहित पूर्व और उत्तर मापन आकल्प

(स) बहु नियंत्रण समूह आकल्प

सह यमज नियंत्रण आकल्प - इस विधि का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1929 में परिपक्वीकरण और सीखने के परीक्षण के लिए किया गया । सह यमज वह जुडवां भाई होते है जिनकी उपस्थिति एक ही युग्मनज (जाइगोह) से हुई है । अत: इनका वंशानुक्रम बिल्कुल समान होता है तथा उनमें एक जैसे गुण पाये जाते है । दो विभिन्न समूहों में एक रूपता हो इसलिए इस आकल्प का प्रयोग किया जाता है । इसमे दो जुडवां भाइयों में से एक भाई का समूह प्रायोगिक ग्रुप तथा दूसरा नियंत्रण समूह बनाता है ।

सांख्यकीय या कारक विश्लेष्णात्मक आकल्प - इस आकल्प का प्रयोग वहां पर विशेष रूप से किया जाता है जहाँ प्रयोग में एक से अधिक स्वतंत्र परिवर्तिया होती है । उदाहरण के लिए मानव व्यवहार को अनेक परिवर्तियों(चर) प्रभावित करते हैं । इन चरों का पृथक-पृथक प्रभाव नही पड़ता है । अत: इसका अध्ययन कारक विश्लेषण द्वारा किया जा सकता है । कारक विश्लेषण का एक काल्पनिक उदाहरण वहां दिया जा रहा है ।

3.6.2 प्रायोगिक प्रविधि के चरण

- मनोवैज्ञानिको के अनुसार एक प्रायोगिक प्रवधि के सफल प्रयोग के लिए एक शोधकर्त्ता को निम्न चरणों से गुजरना होगा ।
- समस्या चुनाव ।
- परिकल्पना का चुनाव ।
- समस्या का अवलोकन तथा उसकी सीमाएं निर्धारित करना ।
- उस विधि का चुनाव जिससे समस्या का हल हो सकें ।
- चरों को पहचानना ।
- उचित आकल्प का चुनाव ।
- प्रयोगात्मक समूह का परीक्षण व प्रयोग ।
- आकड़ों का संकलन ।
- दत्त विश्लेषण तथा देखना कि परिकल्पना स्वीकृत हुई या अस्वीकृत ।
- प्रयोग को शैक्षणिक प्रयोग पर विचार करना ।

3.6.3 प्रयोग प्रविधि के गुण:-

- यह विधि वैज्ञानिक है ।
- इस विधि में परीक्षणों को दोहराया जा सकता है अत: निष्कर्षो का पुन: जांच सम्भव है।
- इस प्रविधि में हम विभिन्न दशाओं पर नियत्रण रख सकते है, तथा केवल उस दशा का उन दशाओं पर प्रभाव देखते हैं- जिनके सम्बन्ध में फल प्राप्त करते है ।
- इस प्रणाली में कम्प्यूटर के द्वारा दत्त विश्लेषण की शुरूआत होने से इसकी उपयोगिता और बढ गई है ।
- इस प्रविधि द्वारा प्राप्त निष्कर्षो में नवीन परीक्षण करने की सम्भावनाएं छिपी रहती है।

3.6.4 प्रयोग प्रविधि के दोष:-

- प्रयोग में वातावरण में कृत्रिमता रहती है ।
- प्रयोज्य के व्यवहार में कृत्रिमता आ जाना ।
- व्यक्ति की सम्पूर्ण मानसिक क्रियाओ का अध्ययन असम्भव ।
- प्रयोग के समय परीक्षण की परिस्थितियों तथा वातावरण पर नियंत्रण रखना कठिन हो जाता है ।
- प्रयोग के द्वारा विषयी के केवल बाह्य व्यवहार पर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रयोज्य की आन्तरिक स्थिति पर नियंत्रण नहीं हो पाता है)
- अधिकांश प्रयोग पशुओं पर किए जाते है- अत: इनके परिणामों के आधार पर मानव व्यवहार की व्याख्या करना अधिक उचित नहीं है
- गेस्टाल्ट वर्ग के मनोवैज्ञानिक प्रायोगिक विधि की आलोचना इसके संगणन पक्ष के कारण करते है।
- शैक्षिक मनोविज्ञान की सभी समस्याओं का अध्ययन प्रायोगिक प्रविधि द्वारा नहीं किया जा सकता है ।

3.7.0 विवरण प्रणाली (Descriptive Methods)

3.7.1 व्यक्ति अध्ययन प्रविधि:- इस प्रविधि में व्यक्ति के इतिहास का संकलन करके उसके व्यक्तित्व पर अच्छा व बुरा प्रभाव डालने वाले तत्वों का विशेष अध्ययन किया जाता है । दूसरे शब्दों मे केस अध्ययन- केस से सम्बन्धित सब जानकारियों का सर्वेक्षण है । अन्तर इतना है कि सर्वेक्षण केवल वर्तमान दशा का होता है- जबकि व्यक्ति अध्ययन में व्यक्ति की वर्तमान अवस्था का अध्ययन उसके बीते हुए इतिहास की सहायता से होता है । व्यक्ति अध्ययन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कोई अध्ययन तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक हम उसके विभिन्न पहलुओं को उसमें होने वाली अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन न करें । वास्तव में व्यक्ति अध्ययन के केवल अध्ययन ही नहीं आता है वरन उसमें समस्या का निदान और उपचार अवश्य होना चाहिए । क्रो एवं क्रो ने लिखा है कि " व्यक्ति अध्ययन विधि का मुख्य उद्देश्य किसी कारण का निदान करना है । " शिक्षा मनोविज्ञान में इस. प्रविधि की मंद बुद्धि, प्रतिभाशाली एवं समस्यात्मक बालकों का अध्ययन करने में काफी उपयोगिता है ।

हर व्यक्ति की केस स्टडी अद्वितीय होती है- अत: कोई एक निश्चित रूपरेखा इसके अध्ययन के लिए नहीं बनाई जा सकती है । फिर भी सामान्यत: एक केस स्टडी में निम्न सोपान होते हैं :-

- व्यक्ति के सभी पहलुओं तथा उसके पर्यावरण के प्रमुख तत्वों की सूची तैयार करना ।
- आकड़ों के संकलन हेतु उपयुक्त पद्धतियों और उपकरणों का चुनाव ।
- आकड़ों का विश्लेषण ।
- व्यक्ति के सम्बन्ध में प्राप्त विभिन्न सामग्री को ध्यान में रखकर उनकी व्याख्या करना तथा विभिन्न श्रोतों से प्राप्त आकड़ों में संगति देखना ।
- समस्या का निदान करना ।
- उपचार के लिए कार्यक्रम का प्रस्ताव रखना ।
- सफलता के मूल्यांकन के लिए फालोअप स्टडी करना ।

3.7.1.1 व्यक्ति अध्ययन के लाभ:-

- वह व्यक्ति का सम्पूर्ण अध्ययन होता है ।
- यह प्रविधि किसी समस्या के कारणों पर विभिन्न कोणों से प्रकाश डालती है तथा उसके सम्बन्ध मे भविष्यवाणी करती है।
- इस प्रविधि से अन्य मनोवैज्ञानिक प्रविधियों व उपकरणों का सफलता पूर्वक प्रयोग होता है)
- मंद बुद्धि, मनोविज्ञान, प्रतिभाशाली समस्यात्मक बालकों, के अध्ययन तथा क्लीनिकल मनोविज्ञान में इस विधि का विशेष उपयोग है ।

3.7.1.2 व्यक्ति अध्ययन के दोष

- इस पद्धति में प्रयोग की गई कुछ उपकरणों की प्रशुद्धता तथा वैधता पर संदेह रहता है जैसे- साक्षात्कार तथा अभिलेखों के अध्ययन में विषयनिष्ठता की संभावना रहती है ।
- व्यक्ति अध्ययन में सभी तथ्य साधरणतया कृत्रिम रूप में एकत्रित नहीं हो पाते हैं ।
- निरीक्षित व्यक्ति का अध्ययन करने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है ।
- निरीक्षित व्यक्तिं का विश्वास प्राप्त करना काफी कठिन होता है ।

3.7.2 साक्षात्कार प्रविधि

साक्षात्कार शब्द अंग्रेजी ने इन्टरव्यू शब्द का हिन्दी रूपान्तर है । यह इन्टरव्यू शब्द फ्रेंच भाषा के एंटर इवाई शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है - एक झलक प्राप्त करना अथवा दूसरे के आंतरिक विचारों को जानना । साक्षात्कार मे हम पारस्परिक मानसिक सर्वेक्षण अथवा पारस्परिक दृष्टि निरीक्षण द्वारा दूसरे व्यक्ति विषयों में सूचनाएं या जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते है । वैसे शाब्दिक रूप से साक्षात्कार शब्द अग्रेंजी के इन्टरव्यू शब्द का पूर्णतया: अर्थ रूपांतर नहीं है क्योंकि (साक्षत + अकार) में केवल आकार की उपस्थिति शब्द ' 'इन्टरव्यू ' के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होने लगा है जबकि इसमें दूसरे की उपस्थिति के साथ साथ उसके विचारों को जानना भी आवश्यक होता है । यद्यपि सूचनाएं प्राप्त करने की नई प्रविधियां हैं, किन्तु साक्षात्कार में हम व्यक्ति से प्रत्यक्ष सम्पर्क कर उससे जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते है । साक्षत्कार की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इस प्रविधि द्वार प्राप्त जानकारी अधिक विश्वसनीय होती है तथा कभी-कभी इस प्रविधि द्वारा ऐसी जानकारियां अचानक ही प्राप्त हो जाती है जिन्हें अन्य प्रविधियों द्वारा निकलवाना मुश्किल होता है । इसीलिए विधम था मूर महोदय ' साक्षात्कार को उद्देश्य आधारित वार्तालाप मानते है' ' । सामान्यत: एक साक्षात्कार के प्रमुख लक्षण निम्न होते है:-

- साक्षात्कार में एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक होता है।
- साक्षात्कार में वार्तालाप सोद्देश्य होता है ।
- साक्षात्कार में सामने वाले व्यक्ति को विश्वास में लेना अतिआवश्यक होता है ।
- साक्षात्कार में न केवल व्यक्ति की राय बल्कि राय बनने के कारणों का भी पता लगाया जा सकता है ।

3.7.2.1 यद्यपि विद्वानों ने औपचारिक, अनौपचारिक, लिखित 7 अलिखित, एवं साक्षात्कार के कई अन्य प्रकार बताए है-पर साक्षात्कार प्रमुखत: दो प्रकार के होते है:-

(1) संरचित साक्षात्कार- इसमें साक्षात्कारकर्ता के पास साक्षात्कार के मूल उद्देश्य के साथ-साथ पूछे जाने वाले प्रश्नों की सूची होती है ।

(2) असंरचित साक्षात्कार- इसमें साक्षात्कारकर्ता के पास मूल उद्देश्य अवश्य होता है- पर प्रश्नों की सूची नहीं होती है । इसमें नम्यता की सम्भावना अधिक रहती है ।

3.7.2.2 साक्षात्कार कैसे ले ?

- साक्षात्कार विषयी से सर्वप्रथम साक्षात्कार की तिथि एवं समय निश्चित करें ।
- विषयी को विश्वास में लें तथा उसे सूचनाओं की गोपनीयता का आश्वासन दें ।
- - साक्षात्कार लेने का स्थान उपयुक्त होना चाहिए । वहां पर शांति एवं एकांत होना चाहिए ।
- साक्षात्कारकर्ता से प्रारम्भिक वार्तालाप अनौपचारिक होनी चाहिए तदोपरांत उसमें अपने साक्षात्कार लेने के उद्देश्य को स्पष्ट करना चाहिए ।
- मूल साक्षात्कार के समय प्रश्न स्पष्ट होने चाहिए । उत्तरों में स्पष्टता के लिए पूरक प्रश्नों का यथास्थान प्रयोग होना चाहिए ।
- साक्षात्कार का समापन अपने मूल उद्देश्य की प्राप्ति के पश्चात कुछ देर अनौपचारिक वार्ता के बाद करना चाहिए ।

3.7.2.3. साक्षात्कार से लाभ:-

- इस प्रविधि द्वारा प्राप्त सूचनाएं अधिक वैध होती हैं ।
- इससे व्यक्ति के आंतरिक विचारों की झलक प्राप्त की जा सकती है ।
- इसमें पूरक प्रश्नों द्वारा साक्षात्कारकर्ता से स्पष्टीकरण भी लिया जा सकता है ।
- अन्य माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं वैधता के लिए भी इस प्रविधि का पूरक प्रविधि के रूप में प्रयोग हो सकता है ।
- इस प्रविधि का प्रयोग अनपढ़ व्यक्तियों पर भी सफलता पूर्वक प्रयोग हो सकता है ।

3.7.2.4 साक्षात्कार प्रविधि की सीमाएं:-

- साक्षात्कारकर्ता के पूर्वाग्रहों का प्रभाव साक्षात्कार लेने में पड़ सकता है ।
- साक्षात्कार का प्रभावी अभिलेखन कैसे किया जाए? इस पर विद्वानों में मतभेद हैं।
- बड़े न्यादर्श का साक्षात्कार सम्भव नहीं है ।
- साक्षात्कार एक खर्चीली प्रविधि है- इसमें अधिक धन एवं समय की आवश्यकता होती है।

3.7.3 सेल्फ रिपोर्टिंग:

सेल्फ रिपोर्टिंग प्रविधि मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों में व्यक्ति परक पद्धति है इस पद्धति में व्यक्ति पहले अपने पूर्व अनुभवों का पुन: स्मरण करता है फिर वह स्वयं इन अनुभवों को लिखता है या उनका रिकार्ड रखता है फिर उसके सम्पूर्ण अनुभवों की गणना, तुलना विवेचना कर उसके विषय में निष्कर्ष निकाला जाता है । इस प्रविधि की उपयोगिता तब बहुत ज्यादा है

जब जीवन के पूर्व अनुभवों को स्मरण रखने की शक्ति व्यक्ति में तेज हो तथा ईमानदारी से अनुभवों को सही-सही लिखने की उसमें क्षमता हो । उदाहरण के लिए गांधी जी ने अपने जीवन की सच्चाइयों का बड़ा सत्य वर्णन अपनी आटो बायोग्राफी में किया जहां उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने चोरी की, सिगरेट पी, तथा मांस खाया आदि । पिछले दशक में छपी श्रीमति कमला दास की किताब में कमला दास ने भी अपने जीवन के खट्टे मीठे अनुभवों को बड़े साहस तथा सत्यता के साथ स्वीकार किया ।

वस्तुतः सामान्य व्यक्तियों के लिए यह विधि बहुत विश्वसनीय नहीं है क्योंकि न तो उनकी स्मरण शक्ति इतनी तेज होती है- और न कोई सभी पूर्व अनुभवों का पूर्णतया स्मरण ही कर सकता है । एक प्रसिद्ध विद्वान ने लिखा है:

3.8 सारांश (Summary)

जिस प्रकार एक मनुष्य अपने तथा दूसरे के व्यवहार का समय - समय पर अध्ययन, विश्लेषण तथा व्याख्या करता है उसकी प्रकार मनोविज्ञान भी व्यक्ति के व्यवहार तथा उनकी मानसिक क्रियाओं का अध्ययन तथा विश्लेषण करता है । वह इस अध्ययन तथा विश्लेषण में जिन तकनीको का सहारा लेता है वही मनोविज्ञान की विधियां या प्रविधियां है । मोटे रूप में मनोविज्ञान की तीन प्रमुख विधिया है (1) निरीक्षण (2) परीक्षण (3) विवरण । निरीक्षण विधियां दो प्रकार की होती है अर्न्तदर्शन तथा बर्हिदर्शन । जबकि विवरण विधियों में व्यक्ति इतिहास सर्वेक्षण, साक्षात्कार, विकासात्मक, तुलनात्मक निदानात्मक, सांख्यिकी, मनोविश्लेषण, सेल्फ रिपोर्टिग तथा मनोभौतिक आदि विधियां आती है । मनोवैज्ञानिकों को अध्ययन में इन विधियों का प्रयोग बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से करना चाहिए ताकि इनसे निकले हुए निष्कर्षो में किसी की इनकी सत्यता, विश्वसनीयता तथा कुशलता में संदेह न हो ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. साझात्कार के मुख्यत कितने प्रकार होते हैं? प्रत्येक के गुण तथा दोष लिखिए।
2. सेल्फ रिपोर्टिग प्रविधि से आप क्या समझते है ।
3. मनोविज्ञान में प्रयुक्त की जाने वाली प्रमुख विवरण पद्धतियों को संक्षेप में लिखिए।
4. निरीक्षण पद्धति से आप क्या समझते है? वर्तमान समय में इस विधि की मनोवैज्ञानिक उपादेयता का महत्व बताइये ।

3.9 संदर्भ (References)

1. एंडसर्न, जी। लेस्टर : (1965) शिक्षा का स्वरूप तथा प्रणालियां शिक्षा मनोविज्ञान स. चार्ल्स स्किनर
2. भटनागर, सुरेश (1989) शिक्षा मनोविज्ञान- इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
3. क्रो एण्ड क्रो एजुएकशनल साइक्लॉजी- अमेरिकलन बुक कं0 'न्यूयार्क'
4. मानरो, मार्गेट : (1969) दी साइक्लॉजी आफ एजूकेशन हीनमेन लंदन
5. स्किनर, सी.ई (1960) एसेन्शियलस ऑफ एजूकेशनल साइक्लॉजी, एशिया पब्लिशिंग हाऊस बम्बई
6. टाउड, जेम्स.बी. साइक्लॉजी इन एजूकेशन, लांगमैन ग्रीन्स एण्ड कम्पनी

इकाई-4

मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय (School of Psychology)

इकाई की संरचना

4.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

4.2.0 विभिन्न सम्प्रदायोंदूका जन्म

4.3.0 कुछ प्रमुख सम्प्रदाय

4.3.1 व्यवहारवाद

4.3.2 प्रयोजनवाद

4.3.3 मनोविश्लेषणवाद

4.3.4 गेस्टाल्टवाद

4.4.0 सारांश

4.5.0 संदर्भ ग्रंथ

4.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objective)

मनोविज्ञान का विकास कोई एक दिन में नहीं हुआ। मनोविज्ञान का जो आज स्वरूप है वह विभिन्न विचारकों के सैकड़ों वर्षो के चिंतन का परिणाम है । इन विभिन्न विचारकों में यदि कुछ मुद्दों पर आपस में सहमति रही, तो विभिन्न मुद्दों पर असहमति । विद्वानों की इसी सहमति-असहमति से मनोविज्ञान में अनेक सम्प्रदायों का जन्म हुआ । इस इकाई का गठन शिक्षार्थियों को मनोविज्ञान के मुख्य सम्प्रदायों के विषय में जानकारी देने के लिए निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया ।

- छात्र 'मनोविज्ञान के सम्प्रदायों' का अर्थ जान सकेंगे ।
- छात्र समझ सकेंगे कि मनोविज्ञान को अपनी अद्यतन स्थिति में पहुंचने में किन-किन अवस्थाओं से गुजरना पड़ा है ।
- छात्र मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदायों की मुख्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छात्र यह भी समझ सकेंगे कि मनोविज्ञान के मुख्य सम्प्रदायों का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा है ।

4.2.0 विभिन्न सम्प्रदायों का जन्म (Origin of Different School)

मनोविज्ञान को शुरू में मन के अध्ययन का विज्ञान माना गया था । कुछ लोग इसके पक्ष में थे, कुछ विपक्ष में । फलस्वरूप अध्ययन का क्षेत्र बदलता गया । थोड़े दिनों के बाद इसे चेतना का विज्ञान कहा गया लेकिन इस पर भी सहमति प्रकट की गयी और जब लोगों ने इसे व्यवहार का विज्ञान माना । इस तरह मनोविज्ञान जो पहले दर्शन शास्त्र का एक अंग माना जाता है, स्वतंत्र रूप से अपना अस्तित्व कायम कर लिया । दिन रात लोगों ने मनोविज्ञान के लिए काम करना शुरू कर दिया । बीसवीं सदी में इस विज्ञान में बहुत सारे काम हुए। कई स्थापित सिद्धान्तों के खण्डन हुए । तर्क संगत बहस और सिद्धान्तों के अतिरिक्त कई मनोवैज्ञानिकों ने

अपने राग अलग अलापना उचित समझा । उनका कहना था कि उनके जो प्रस्तुत सिद्धांत या विचार हैं वही सही है । उनके ये ही सिद्धांत विभिन्न मत या सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित हुए । इन सम्प्रदायों का शिक्षा- जगत में काफी योगदान है । अत: ये सम्प्रदाय शिक्षा मनोविज्ञान से गहरे रूप से जुड़े हुए है ।

4.3.0 प्रमुख सम्प्रदाय (Main School)

प्रमुख सम्प्रदाय यों तो मनोविज्ञान के बहुत सारे संप्रदाय है जैसे प्रकार्यवाद संरचनावाद साहचर्यवाद, व्यवहारवाद, मनोविश्लेषणवाद, विश्लेषणात्मक वाद, वैयक्तिवाद समाज शास्त्रीय सम्प्रदाय तथा प्रेरकीय सम्प्रदाय आदि । पर यहां हम कुछ गिने चुने महत्वपूर्ण सम्प्रदायों की ही चर्चा करेंगें । ये मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय हैं:-

- व्यवहारवाद (Behaviourism)
- प्रयोजनवाद (Pragmatism)
- मनोविश्लेषणवाद
- गेस्टाल्टवाद (Gestalde)

4.3.1 व्यवहारवाद:-

व्यवहारवाद का जन्म बहुत बाद में हुआ । दलअसल उन्नीसवीं शताब्दी तक मनोविज्ञान में चेतना का बड़ा महत्व रहा । चेतना तथा चेतना के अवयवों का अध्ययन ही मनोविज्ञान का अध्ययन माना जाता रहा । चेतना की रचना का अध्ययन करने वाला सम्प्रदाय चेतना-रचनावादी कहलाता था । इस सम्प्रदाय के लोग चिंतन की प्रक्रिया में विचारों के मेल-जोल का अत्यधिक महत्व देते थे । इनका कहना था कि हम जब कभी किसी घटना पर विचार करते हैं या जब कभी कोई विचार हमारे मन में आता है तो हमारे दिमाग में प्रतिमा बनती है । जैसे-जैसे हम चिन्तन करते हैं, वैसे-वैसे अनेक प्रतिमाएं बनती जाती हैं । किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसका खण्डन किया । उनका कहना था कि कई विचार ऐसे भी हमारे मन में आते हैं जिनमें कोई प्रतिमा नहीं बनती । ऐसा कहने वालों में से प्रधान मनोवैज्ञानिक बिने तथा कुल्पे आदि थे । किन्तु टिचनर का कहना था कि हमारे मन में जैसे-जैसे विचार पैदा होते हैं या यों कहें कि हम जैसे-जैसे चिन्तन करते है वैसे-वैसे उन चिन्तनों के अनुसार हमारे मानस-पटल पर चित्र अंकित होते जाते है ।इस तरह टिचनर ने चेतना या चेतन या चेतनता की रचना के अध्ययन पर बल दिया तथा इसके अध्ययन के लिए अंत: निरीक्षण विधि को चुना । परन्तु समय ने पलटा खाया । बीसवीं शताब्दी आयी । इस सदी में लोगों ने फिर इसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया । उनका कहना था कि चेतना के तत्त्वों के अध्ययन के स्थान पर चेतना के कार्यो का अध्ययन करना ज्यादा श्रेयस्कर समझा । इस तरह हम देखते हैं कि चेतना रचनावाद की जगह चेतना कार्यवाद का जन्म हुआ । किन्तु लोगों को चेन फिर भी न मिला । चेतन रचनावाद तथा चेतना कार्यवाद में फिर विवाद शुरू हो गया । कुछ लोग इसके समर्थक थे तो कुछ उसके । ऐसे समय में ही अमेरिका के मनोवैज्ञानिक वॉट्सन ने व्यवहारवाद की आवाज बुलन्द की । उन्होंने न केवल चेतनावाद तथा रचनावाद का विरोध किया वरन् ' 'चेतना' ' का भी जोरदार खण्डन किया । वॉट्सन का मत था कि मनुष्य का व्यवहार ही उसके व्यक्तित्व का परिचायक है । फिर व्यवहार का दूसरों द्वारा बर्हिनिरीक्षण संभव है जो मनुष्य के व्यक्तित्व का ज्यादा सही मूल्यांकन कर सकता है । कई बार

हम कुछ ऐसा भी कार्य करते हैं जो हम चाहते हैं कि दूसरा कोई न जाने, अत: अन्तर्निरीक्षण से व्यक्ति का सही मूल्यांकन संभव नहीं । वॉट्सन का यह कथन बहुतों द्वारा स्वीकार किया जाने लगा । इस तरह उसके व्यवहारवादी सम्प्रदाय की स्थापना व 1912-14 में अमेरिका में हुई ।

4.3.1.1 वॉट्सन का उत्तेजना- अनुक्रिया सिद्धान्त-

वॉट्सन के इस सिद्धान्त के अनुसार वातावरण में जब किसी तरह की उत्तेजना पैदा होती है तो मनुष्य उसकी अनुक्रिया करता है । या यों कहें कि उसमें हठात् अनुक्रिया हो जाती है । आँखों पर अकस्मात् अधिक प्रकाश पड़ने से आखें बन्द हो जाती है । भूखा होने पर खाना देखते ही जीभ से लार टपकने लगता है । इसी तरह आकस्मिक आवाज होने पर हमारे कान खडे हो जाते हैं । यहां पर अधिक प्रकाश का पड़ना, भूखा होना तथा आवाज का होना उत्तेजना तथा आखे बन्द हो जाना, जीभ में लार टपकना, कान के खड़े हो जाना आदि अनुक्रिया है । चूँकि व्यवहारवाद में उत्तेजना तथा अनुक्रिया दोनों में गहरा सम्बन्ध है, इसलिए कई लोग व्यवहारवाद को उत्तेजना-अनुक्रिया सिद्धान्त भी कहते है । वॉट्सन के अनुसार उत्तेजना पैदा की जा सकती है अर्थात् वातावरण तैयार किया जा सकता है । तभी वॉट्सन कहा करते थे कि मुझे कोई भी बेवकूफ बच्चा दे दो और मुझे बता दो कि उसे क्या बनाना है- इंजीनियर या डाक्टर या न्यायाधीश या कुछ कुछ भी जो तुम चाहो? । उनका कहना था कि बच्चा जन्म से कुछ भी लेकर नहीं आता, उसे आनुवांशिकता से कोई तात्पर्य नहीं है । केवल वातावरण ही जीवन में बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है ।

4.3.1.2 थार्नडाइक का पशुमनोविज्ञान: वॉट्सन के व्यवहारवाद की बुनियाद

थार्नडाइक के प्रति वॉट्सन के दिल में बडी इज्जत थी । सही माने में थार्नडाइक के पशुमनोविज्ञान ने वॉट्सन को बहुत कुछ दिया । जरा इसकी भी चर्चा करें । थार्नडाइक ने पशुओं पर बहुत्सारे प्रयोग किये । उन प्रयोगों के आधार पर उन्होंने कई नियम- सिद्धान्त भी बनाये जिसमें सीखने के प्रयत्न तथा भूल विधि, सीखने की पुनरावृत्ति आदि है । एक बार थार्नडाइक ने एक चूहे को किसी पिंजरे में बंद कर दिया । चूहे को बाहर निकलने के लिये पिंजरे से एक रास्ता था किन्तु वह सीधा न होकर थोड़ा सा टेढ़ा था । चूहा निकलने का प्रयास करने लगा । हर बार प्रयास करता पर निकल नहीं पाता । बहुत प्रयास करने के बाद चूहा पिंजरे से निकलने में सफल हो गया । चूहे को पकड़कर फिर पिंजरे में डाल दिया गया । इस बार चूहे ने पहले से कम समय लिया । इस तरह उसे बार-बार पिंजरे में रखा गया । हर बार चूहा पहले की अपेक्षा कम समय लेता । एक समय ऐसा भी आया जब चूहा पिंजरे में रखते ही बिना कोई प्रयास किये ही पिंजरे से बाहर निकल आया । इसके बाद फिर उसे बन्द कर दिया गया, तुरन्त वह बाहर आ गया । इस तरह अब जब भी उसे पिंजरे में रखा गया तो वह बिना प्रयास किये ही पिंजरे के बाहर आ गया । चूहे के इस प्रयोग से थार्नडाइक ने प्रयोग तथा भूल विधि का अनुसंधान किया जो आज भी शिक्षा-जगत में काफी प्रसिद्ध है । थार्नडाइक के इस प्रयोग से वॉट्सन को अपने व्यवहारवाद को स्पष्ट करने में काफी बल मिला । वॉट्सन ने कहा कि हमें असफल अनुक्रियाओं को त्यागकर तथा सफल अनुक्रियाओं को संग्रहकर सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाना चाहिए ।

4.3.1.3 थार्नडाइक के साथ वॉट्सन की असहमति

थार्नडाइक ने अपने प्रयोग के आधार पर जो प्रयास तथा भूल विधि की खोज की उसकी पुष्टि के लिए उन्होंने तीन नियम बनायें- (1) अभ्यास का नियम तथा (2) परिणाम या फल का नियम । अभ्यास के नियम में उन्होंने बताया कि किसी काम को बार-बार करने में वह काम जल्दी सीखा जा सकता है । और उसे नहीं करने से अर्थात् अभ्यास बन्द कर देने वह काम सीखा नहीं जा सकता । उसी प्रकार सीखने में परिणाम का नियम यह बताता है कि जिस काम को करने में हमें खुशी और संतोष की अनुभूति होती है वह काम हम जल्द सीख जाते हैं तथा जिस काम को करने में हमें कष्ट महसूस होता है उसे हम जल्द नहीं सीख पाते । वॉट्सन थार्नडाइक के इस मत से सहमत नहीं थे क्योंकि उनका कहना था कि परिणाम के नियम में फिर चेतना की बात आ जाती है । किन्तु वॉट्सन अपनी असहमति के कारणों की सम्यक् व्याख्या नहीं दे सकें । उसी समय रूप के पैवलव का एक प्रयोग प्रकाश में आया जिससे वॉट्सन को अपने व्यवहारवाद को ठोस रूप देने में काफी सहायता मिली ।

4.3.1.4 पैवलव (1849- व 1936) का सिद्धान्त और व्यवहारवाद-

पैवलब एक रूसी डाक्टर था । उसने एक कुत्ते को पकड़कर उसके गले का सर्जरी आपरेशन कर उसमें कांच की एक नली लगा दी ताकि उसके मुंह में यदि लार आये तो आसानी से देखा जा सके । कुत्ते को भूखा रखा गया । कुत्ते को भोजन देने से पहले घंटी बजायी जाती । कई दिनों के बाद पाया गया कि घंटी बजाते ही कुत्ते के कान खड़े हो जाते तथा भोजन को देखते ही उसके मुंह में लार टपकती जिसे काँच की नली से देखा जा सकता था । बहुत दिनों के बाद पैवलव ने घंटी बजाने के साथ ही भोजन भी देना प्रारंभ कर दिया । बहुत दिनों तक - ऐसा करने के बाद पैवलव ने देखा कि मात्र घंटी बजाने से ही कुत्ते के मुंह में पानी आ जाता, भोजन नहीं भी दिया जाता तो भी । पहले तो भोजन देखकर लार टपकता था जो स्वाभाविक था । यह क्रिया सहज-क्रिया कहलाती है परन्तु बाद में मात्र घंटी को बजाने से लार टपकता था अर्थात घंटी का बजना एक शर्त है जिसे पैवलव साहब से अनुकूलित अनुक्रिया या कन्डिशनिंग कहा ।

पैवलव की यह अनुकूलित अनुक्रिया, शिक्षा के क्षेत्र में जहां बच्चे हमेशा सीखने का प्रयास करते हैं, बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई । एक व्यावहारिक उदाहरण ले लें । एक नवजात शिशु जब धीरे-धीरे बढ़ने लगता है तो वह धीरे-धीरे बोलना भी सीखता है । वह, कुछ समय के बाद, दीदी, भैया, मामा, पापा, चाचा आदि सारे शब्द बोलना सीख जाता है । पर कैसे बच्चे की माँ बच्चे को किसी व्यक्ति को दिखाकर बार-बार ' 'पापा' ' कहने को कहती है । माँ हर रोज यह अभ्यास कराती है । धीरे-धीरे बहुत दिनों के बाद बच्चा उस व्यक्ति को ' 'पापा' ' कहना शुरू कर देता है परन्तु तब जब उसकी माँ उसे कहने को कहती है । यह सहज -क्रिया है । (उस व्यक्ति को देखकर तथा माँ के कहने पर ' 'पापा' ' कहना) । उसके बाद एक समय ऐसा भी आता है जब बिना माँ के कहे तथा बिना माँ की उपस्थिति के उस व्यक्ति के सामने आते ही बच्चा "पापा" कहना प्रारंभ कर देता है । यह अनुकूलित अनुक्रिया है । वॉट्सन ने पैवलव के इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था क्योंकि इसमें कहीं भी चेतना नाम की चर्चा नहीं होती है ।

4.3.5 व्यवहारवाद तथा शिक्षा

वाट्सन ने अपने सिद्धान्तों के आधार पर यह जोर दिया कि मनुष्य के जीवन में आनुवांशिकता नाम की कोई चीज कोई भूमिका नहीं निभाती है । उत्तेजना का वातावरण ही सब कुछ है । अच्छा वातावरण में कोई भी बच्चा अच्छा सीख सकता है, अच्छा बन सकता है ।

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न प्रयोग कर हमें बहुत कुछ दिया है । थार्नडाइक के अभ्यास का नियम तथा पैवलव की अनुकूलित- अनुक्रिया ने शिक्षा- जगत में तहलका मचा दिया जिसके लिये हम सभी उनके ऋणी है ।

4.3.2.0. प्रयोजनवाद

प्रयोजनवाद के अधिष्ठाता विलियम मैकडुगल (1871 - 1938)) माने जाते है । सही मायने में देखा जाये तो यह प्रयोजनवाद व्यवहारवाद का ही विस्तार है या व्यवहारवाद से ही निकला हुआ है । जहां पर वाटसन ने अपने व्यवहारवाद में यह कहा कि उत्तेजना की उपस्थिति में ही अनुक्रिया की संभावना है वहीं पर कैकडुगल ने यह बताया कि प्रेरक कारक या अभिप्रेरक के बिना अनुक्रिया संभव नहीं है । उन्होंने अनुक्रिया अथवा उत्तेजना के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया परन्तु इस बात पर जोर दिया कि अभिप्रेरक के बिना इनका कोई महत्व नहीं । दैनिक जीवन से उन्होंने इसके अनेक उदाहरण पेश किये जैसे ज्यादातर विद्यार्थी परीक्षा के समय ही क्यों पढ़ते हैं? चिड़िया घोंसला क्यों बनाती है? पेट भरे रहने पर कुत्ता रोटी पर क्यों नहीं टूटता? आदि । विद्यार्थी के सामने एक प्रयोजन होता है- परीक्षा पास करना या परीक्षा में अच्छे अंक लाना और इसी उद्देश्य को लेकर वह परीक्षा के दिनों में अधिक परिश्रम करता है । जो भी पढ़ता है, उसे शीघ्र याद भी हो जाता है । चिड़िया अंडा देने वाली होती है उस समय खासकर घोंसला बनाना चाहती है जब कुत्ते को भूख ही नहीं है (अभिप्रेरक का अभाव) तो वह रोटी पर क्यों झपटे?

यही कारण था कि पैवलव अपना प्रयोग भुखे कुत्तों पर करता था । जब कभी किसी प्रेरक-कारक अथवा अभिप्रेरक द्वारा किसी कार्य को करने की अनुक्रिया की संभावना प्रतीत होती है तो ऐसा कहा जाता है कि उस क्रिया को करने का प्रयोजन या लक्ष्य अनिवार्य हो गया है । प्रयोजन या लक्ष्य की तीव्रता जितनी अधिक होगी, अनुक्रिया की प्रक्रिया में भी उतनी ही तीव्रता होगी । बहुत भूख लगी हो तो बड़ी तेजी से भोजन की खोज होंगी तथा भोजन प्राप्त होते ही बड़ी तेजी से भोजन करने की क्रिया सम्पन्न होगी । परीक्षा के दिनों में अधिक पढ़ना, जो भी पढ़ा जाये उसे शीघ्र याद हो जाना आदि प्रयोजन पर ही आधारित हैं । इस तरह के अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

प्रेरकवाद या प्रयोजनवाद का जन्मदाता मैकडूगल ने इस सम्प्रदाय की स्थापना सन् 1908 में की थी । उनका कहना था कि हर मनुष्य में कुछ प्रवृत्तियां होती है । इन प्रवृत्तियों को उन्होंने मूल- प्रवृत्तियां तथा सामान्य प्रवृत्तियां दो प्रकार में विभाजित किया । भूख का लगना, भोजन करना, बेचैन हो जाना (भोजन, हवा, पानी, संपत्ति आदि के अभाव में), भय का उत्पन्न होना, भागना, प्यार होना (सिर्फ किसी लड़की या लड़का या लड़का या स्त्री या पुरूष से ही नहीं वरन् किसी वस्तु से भी), काम-वासना, सन्तानोत्पत्ति, क्रोध, लोभ, मदमोह लड़ना, संयम करना आदि मूल प्रवृत्तियां हैं तथा खेलना, नकल या अनुकरण करना बहुत बातों में अनुकरण करते हैं,

दूसरो के दुःख से दुःखी होना तथा सुख से सुखी होना, सहानुभूति, बदले की भावना आदि सामान्य प्रवृत्तियां है । शिक्षक तथा छात्र दोनों के लिए ये प्रवृत्तियां बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे सीखने तथा सिखाने में काफी सहायता मिलती है । इनका रोक-थाम करने से बच्चा स्नायुरोग का शिकार हो सकता है । अत: इनके सहज बहाव को रोकना उचित नहीं ।

4.3.2 शिक्षा तथा प्रयोजनवाद

कोई भी बच्चा पढ़ना नहीं चाहता परन्तु सीखने की प्रवृत्ति हर बच्चे में होती है । आवश्यकता इस बात की है कि किस तरह एक सुदृढ़ लक्ष्य का निर्माण कर सही वातावरण में बच्चों की प्रवृत्तियों को उभार उन्हें शिक्षा दी जाये । यह निश्चित रूप से शिक्षक की परिपक्वता, शिक्षण- व्यवसाय के प्रति उनकी निष्ठा आदि पर निर्भर करता है । शिक्षक उचित वातावरण पैदा कर गणित, विज्ञान, भाषा आदि का ज्ञान बच्चों को दे सकते हैं । किसी फैक्टरी में ले जाकर विभिन्न यंत्रों का ज्ञान देना, रेलवे स्टेशन पर ट्रेन के इंजन को दिखाकर इंजन के कार्य करने की पद्धति को समझाना, पास के जंगल में ले जाकर पेड-पोधों का ज्ञान देना, बरसात के दिनों में मेढकों का ज्ञान देना, बच्चों को बिजली की घंटी की संरचना एवं कार्य करने की पद्धति बताकर उनसे बिजली की घंटी बनवाना, बच्चों को भ्रमण पर ले जाकर अपने अनुभवों को लिपिबद्ध करने को कहना, बच्चों को कोई प्रोजेक्ट देकर उसका हिसाब रखने को कहना, बच्चों द्वारा कॉओपरेटिव स्टोर चलवाना आदि कुछ व्यावसायिक काम हैं जिन्हें प्रयोजन के अनुसार छात्रों से करवाकर सीखने (अधिगम) के उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

स्व मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. चेतन रचनवाद तथा चेतना कार्यवाद में अंतर कीजिए ।
2. वाटसन के उत्तेजना - अनुक्रिया सिद्धांत को समझाइए ।
3. थार्नडाइक के अब्यास के नियम को समझाइए ।
4. पेवलेव के प्रयोग से शिक्षा जगत को क्या लाभ हुआ ?
5. परयोजनवाद को समझाइए तथा शिक्षा में इस वाद के योगदान को बताइए ?

संज्ञानात्मक सम्प्रदाय-

यह मानसिक कृत्य पर बल देता है । इसके मुख्य प्रवर्तक में जीन पियाजे आते हैं ।

ज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक चिन्तन, स्मृति, भाषा, विकास, प्रत्यक्षीकरण तथा अन्य मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं ताकि मानव द्वारा समस्या हल करने की प्रक्रिया तथा उनकी सूझ सम्बन्धी योग्यताओं को समझ लिया जाये । इसका केन्द्र बिन्दु सम्पूर्ण मानसिक कृत्य पर ही होता है ।

पियाजे के अनुसार बालक का संज्ञानात्मक विकास बालक के वातावरण के साथ सक्रिय प्रक्रिया एवं प्रहस्तन पर निर्भर रहता है । उनके अनुसार कार्य करने से प्राप्त होता है । पियाजे के अनुसार बालकों में संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएं होती हैं- संवेदी पेशीय अवस्था, प्राक संक्रियात्मक अवस्था, ठोस संक्रिया की अवस्था तथा औपचारिक सक्रिय की अवस्था ।

पियाजे के सिद्धान्त के सम्प्रत्ययों में अनुकूलन, साम्यधारण, संरक्षण, संज्ञानात्मक संरचना, मानसिक संक्रिया, स्कीम्स स्कीमा तथा विकेन्द्रण प्रमुख है । पियाजे के अनुसार बालकों में वातावरण के साथ समंजन की जन्मजात प्रवृत्ति होती है जिसे अनुकूलन कहते है । उन्होंने

अनुकूलन की दो प्रमुख प्रक्रियाएँ है- आत्म सात्करण एवं समायोजन । साम्यधारण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसात्करण तथा समायोजन की प्रक्रियाओं के बीच एक संतुलन कायम करता है । इस प्रकार यह एक आत्म नियंत्रक प्रक्रिया है । संरक्षण से तात्पर्य वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता दोनों को पहचानने एवं समझने की क्षमता तथा किसी वस्तु के रूप -रंग में परिवर्तन को उस वस्तु के तत्व में परिवर्तन से अलग करने की क्षमता से होता है ।

किसी बालक का मानसिक संगठन या मानसिक क्षमताओं के सेट को संज्ञानात्मक संरचना कहा जाता है । बालक जब किसी समस्या के समाधान पर चिन्तन करता है, वह मानसिक संक्रिया कहलाता है । व्यवहारों के संगठित पैटर्न को जिसे आसानी से दोहराया जा सकता है, स्कीमा कहा जाता है । पियाजे का स्कीमा से तात्पर्य एक ऐसी मानसिक संरचना से होता है जिसका सामान्यीकरण किया जा सकें । पियाजे के अनुसार विकेद्रण से तात्पर्य किसी वस्तु या चीज के बारे में वस्तुनिष्ठ या वास्तविक ढ़ग से सोचने की क्षमता से होता है ।

4.3.3 मनोविश्लेषणवाद

मनोविज्ञान का एक सम्प्रदाय मनोविश्लेषणवाद है जिसके अधिष्ठाता विश्वविख्यात फ्रायड साहब हैं । सिगमंड फ्रायड स्नायुरोग में एक चिकित्सक थे । सम्मोहन विधि द्वारा वह रोगी को अचेतनावस्था में लाकर रोगी से सारी पिछली बातों की जानकारी कर उसकी चिकित्सा किया करते थे । जिन रोगियों पर सम्मोहन अथवा मोह-निद्रा का प्रभाव नहीं पड़ता, उन पर वह साहचर्य विधि का प्रयोग करते थे । साहचर्य विधि में रोगी को अपना खास दोस्त बना लिया जाता है अथवा यों कहें कि उसे अपने करीब ले आया जाता है (दोस्त की तरह) ताकि रोगी बेहिचक अथा बिना लज्जा, भय या शंका से सब कुछ बता सके जबकि सम्मोहन विधि में रोगी को अचेतन अवस्था में करके प्रश्न पूछे जाते हैं । जो बात रोगी चेतनावस्था में कहते हुए शर्माता है वही वह अचेतनावस्था में आसानी से कह सकता है । जरा इसे समझने की कोशिश करें । फ्रायड के कथनानुसार हमारे मन के दो भाग होते हैं- अचेतनावस्था तथा चेतनावस्था । अचेतनावस्था पूरे मन का 7/8 भाग होता है तथा चेतनावस्था 1/8 भाग अर्थात् हमारे मन का ज्यादा हिस्सा तो अचेतनावस्था में होता है तथा कम हिस्सा चेतनावस्था में।

4.3.3.1 भावना ग्रंथियों का निर्माण:-

हमारे मन में कई बार कई चीजों को प्राप्त करने की इच्छा होती है किन्तु कई कारणवश उसकी पूर्ति नहीं हो पाती । फलस्वरूप हम उसे भुलाने की कोशिश करते हैं तथा भूल भी जाते हैं परन्तु वह इच्छा हमारे मन की अचेतनावस्था में चली जाती है । इच्छा की पूर्ति नहीं होने से हमारे मन में क्षोभ पैदा होता है । इस अतृप्त इच्छा तथा क्षोभ का संवेग से गहरा सम्बन्ध होता है । इस तरह की कई और इच्छाए हो सकती है । ये इच्छा एवं अचेतनावस्था में जाकर निक्रिय नहीं होती बल्कि सक्रिय होती हैं परन्तु इनकी पूर्ति नहीं होने के कारण भावनाओं की गांठ बन जाती है । जिसे हम भावना ग्रंथि कहते हैं । स्पष्ट है कि इच्छाओं के दमन करने से खासकर तब जब उनकी पूर्ति असंभव होती है, भावना- ग्रंथियों का निर्माण होता है ।

फ्रायड का कहना था कि यों तो कई तरह की इच्छाओं का दमन होता है परन्तु इनमें काम या वासना संबंधी अधिक होती है । तभी फ्रायड ने लिबिडो पर जोर दिया । उन्होंने प्रत्येक क्रिया को लिबिडो से संबंधित बताया । लिबिडा काम-प्रवृत्ति है । बच्चे के द्वारा मां के स्तन को

दबाकर या चूसकर दूध पीते समय मां के दूसरे स्तर को पकड़कर रखना, जवान लड़कियों द्वारा मचलकर या धरती को दबाते हुए चलना, ओठो को दबाना (खासकर विरोधी लिंग को देखने पर) बेटी का बाप से अधिक प्यार तथा बेटे का मां से, छोटे बच्चे के भी लिंग में तनाव पैदा होना, आदि क्रियाएँ लिबिडो के कारण ही होती है । ऐसा फ्रायड का मानना था ।

4.3.3.2 अवरोधक की परिपक्वता:-

अवरोधक का साधारण अर्थ है- रोकने वाला । हमारे मन में जो अतृप्त इच्छाएं होती हैं वे इच्छाएं अचेतनावस्था में चली जाती हैं । वे चेतनावस्था में आना चाहती है परन्तु उन्हें अवरोधक रोक देते हैं । ये अवरोधक क्या हैं? इसे समझने की कोशिश करें । हम किसी समाज में रहते हैं जिसकी अपनी संस्कृति होती है, खान-पान आदतें तथा अपने सामाजिक नियम, बन्धन आदि होते हैं जिन्हें हम सदा पालन करते रहते हैं । जिसके साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिये, शिष्टाचार क्या है, आदि सब कुछ हमें समाज ही सिखाता है । बहुत सारे काम चाहते हुए भी हम सामाजिक मान्यताओं को ध्यान में रखकर नहीं कर पाते हैं । हमारा अपना ज्ञान होता है- हम खुद सोच लेते हैं कि यह काम बुरा है, इसे हैं नहीं करना चाहिये। यहाँ पर हम अपने अन्तःकरण द्वारा मार्ग निर्देशित होते हैं । यह अन्तःकरण भी दो प्रकार का है- एक साधारण अन्तःकरण तथा दूसरा उच्च अन्तःकरण । साधारण अन्तःकरण वाला मनुष्य आदर्शो का पालन करता है परन्तु नजर बचाकर अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति करने की कोशिश करता है । उच्च अन्तःकरण वाला, व्यक्ति उच्च आदर्शो का पालन करता है, कोई देखे या न देखे, वह वही करेगा जिसे वह उचित समझेगा । यही साधारण तथा उच्च अन्तःकरण अवरोधक का काम करते हैं । फ्रायड ने इन्हें ही अवरोधक कहा है ।

4.3.3. दमित इच्छाओं तथा अवरोधक का प्रभाव:-

'हमारे मन के अन्दर किसी चीज को पानी की इच्छा होती है । कई बार किसी चीज को पाने की प्रबल इच्छा होती है परन्तु जब हम उसे नहीं पाते हैं जब उस इच्छा को हम अचेतन मन में ले जाकर दबा देते हैं । अवरोधक उसे चेतन मन में आने से रोकता है । कई बार हम किसी चीज को पानी की प्रबल कोशिश करते हैं किन्तु वह चीज हमारे सामर्थ्य या हमारी पहुंच से बाहर की होती है । फिर भी उसे पाने की इच्छा ऐसी हो जाये कि दिन-रात उसी अप्राप्य वस्तु के बारे में सोचते रहें तो ऐसी स्थिति में हम स्नायु रोग के शिकार हो सकते है । एक सच्ची घटना है । किंचित कारणवश नाम तथा स्थान का परिचय यहां देना उचित नहीं है । एक लड़का था जिसे एक लड़की से प्यार हो गया । दोनो शादी करना चाहते थे, परन्तु सामाजिक कथन के कारण दोनों ऐसा कर नहीं पाये । लड़की की शादी कहीं और कर दी गयी । लड़का इस सदमें को बर्दाश्त नहीं कर पाया । वह पागल हो गया । बार-बार उस लड़की का नाम लेकर आवाज देता- " चलो चलते हैं- बगीचे में । " वे दोनों प्राय: शाम को आम के बगीचे में मिला करते है । आज भी वह जीवित हैं- बूढ़ा होकर- परन्तु आवाज अब भी लगाता है- " चलो चलते हैं- बगीचे में । " हाय, मानव-हृदय कितना कोमल होता है । इसीलिये प्राय: यह कहते सुने जाते है कि भाई मन में कोई बात मत रखो, कह डालो ।

4.3.3.4 फ्रायड और स्वप्न:-

विभिन्न आयु के लोग विभिन्न तरह के स्वप्न देखा करते है । आखिर क्यों? वे भी दमित इच्छाओं की अभिव्यक्त के लिए ऐसा करते हैं । बालक या स्कूल छात्र अपनी पढ़ाई सम्बन्धी अथवा नौकरी सम्बन्धी स्वप्न देखते हैं, नवयुवक प्राय: विवाह या प्यार संबंधी तथा बुर्जुर्ग देवता संबंधी या कोई धार्मिक स्वप्न का आनन्द लेते हैं । ऐसा क्यों होता है? हमारी दबी हुई इच्छाएं अचेतन मन में जाकर बैठ जाती हैं परन्तु चेतन मन में आने की उनकी इच्छा होती रहती है लेकिन आएं तो कैसे आए? बीच में अवरोधक जो है । अत: वे मौके की तलाश में रहती हैं । मनुष्य जब सो जाता है तो सुप्तावस्था में उसके अंग शिथिल पड़ जाते हैं- यहां तक कि अवरोधक तथा अन्तःकरण भी । उस समय दबी हुई इच्छाएं अचेतन स्तर से चेतन स्तर पर आने की कोशिश करती हैं तथा मनुष्य स्वप्न देखता है । एक सच्ची घटना लें । मैंने बीएससी. में प्रैक्टिकल की परीक्षा दी थी । सन् 1966-67 की घटना है । रसायन शास्त्र की शिक्षक जो विभागाध्यक्ष भी थे, मुझे बहुत प्यार करते थे- शायद मैं अच्छे छात्रों में से रहा था । परीक्षा के बाद मैंने जानना चाहा कि प्रैक्टिकल में मेरे कितने अंक आए किन्तु उनसे पूछने की मेरी हिम्मत न हुई । उस समय की नैतिकता भी कुछ अलग थी । न मैंने पूछा और न उन्होंने बताया । मगर मेरे दिमाग में यह बात हमेशा रहती । एक रात स्वप्न में मैं उनसे पूछ बैठा- " सर! मेरे कितने अंक हैं । " उन्होंने कहा कि देखो मैं बता तो नहीं सकता क्योंकि ऐसा करना अनैतिक काम है, मैं लिख देता हूँ । उन्होंने पेन्सिल रो 63 लिखकर उसे गोला से घेर दिया । जब दो माह के बाद मेरा रिजल्ट निकला तो देखा कि उसमें मेरे 61 अंक थे । ये घटना तो मेरे जीवन की है ।

एक घटना और लें । रसायनशास्त्र पढ़ने वालों ने केकुले रसायन का नाम सुना होगा । उन्होंने बेन्जीन के स्ट्रक्चरल फार्मूला की खोज स्वप्न में की थी । उन्होंने स्वप्न में देखा कि छ: सांप एक दूसरे के मुह में एक दूसरे की पूंछ को पकड़े हुए थे । इसी स्वप्न को आधार मानकर केकुले ने बेनजीन का स्ट्रक्चर फार्मूला खोजा । इस तरह कई समस्याओं का समाधान स्वप्नों में होता देखा गया है । किसी समस्या को लेकर हम दिन-रात काम करते हैं कई बार उसका समाधान नहीं हो पाता और हम निराश होकर किसी और काम में लग जाते हैं किन्तु हमारा वह चिंतन (सोचना) मन के अचेतन हिरसे में जाकर घर बना लेता है तथा वहां काम करता रहता है । जैसे ही उसका समाधान होता प्रतीत होता है वह मन के चेतन भाग पर आकर उसे स्वप्न में प्रकट करने की कोशिश करता है ।

एक बार महर्षि दयानन्द के गुरू स्वामी विरजानन्द जी ने उनके छात्र जीवन के उन्हें कोई पाठ पढ़ाया तथा याद करके लाने को कहा । दयानन्द जी पाठ को ठीक से सुन नहीं सकें थे । अत: गुरूजी से दुबारा पढ़ाने का निवेदन किया । गुरू हठी थे । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया - " मैं दुबारा नहीं पढ़ाता तुझे कल पाठ सुनाना होगा, यदि नहीं सुनाओगे तो गंगा में डूब मरना, मेरे पास मत आना । " दयानन्द जी गंगा के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गये तथा बड़े ध्यान से पाठ के बारे में सोच-सोचकर याद करने लगे । उनकी आखे लग गयीं । उसी समय एक स्वप्न देखा । एक सुन्दर नारी ने उन्हें वही पाठ पढ़ाया । दयानन्द जी की नींद खुल गयी । उसी समय दौड़ते हुए अपने गुरू के पास जाकर पाठ सुना दिया तथा सारी घटना कह सुनायी ।

4.3.3.5 फ्रायड और एडलर-

मनोविश्लेषणवाद सम्प्रदाय के एक और समर्थक एडलर थे । एल्फ्रेड एडलर (1870-1837) सही मायने में फ्रायड के शिष्य थे । कुछ दिनों तक दोनों के मत मिलते रहे परन्तु बाद में एडलर का फ्रायड के साथ मतभेद हो गया । फलस्वरूप एडलर ने मनोविश्लेषणवाद में ही एक अलग से सम्प्रदाय बनाया तथा अपने सिद्धांतो का प्रचार एवं फ्रायड के सिद्धांतो का खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया ।

फ्रायड अपने सिद्धांतो में यहां लिबिडों को सर्वाधिक महत्व देते थे वहीं एडलर शक्ति प्राप्त करने की तमन्ना या लालसा को सर्वोपरि मानते थे । बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें जीवन में सरलता से शक्ति प्राप्त हो जाती है जैसे उन्हें सरल रूप से धन, विद्या, बुद्धि, शारीरिक सुन्दरता व ताकत आदि प्राप्त हो जाते हैं जिनका समाज में काफी महत्व है अर्थात मनुष्य को इससे शक्ति प्राप्त होती है । उन्हें समाज में रहने का मजा आता है और उन्हें सभी उसकी शक्ति के चलते इज्जत देते हैं । ऐसे व्यक्तियों के अन्दर उच्चता की भावना ग्रंथि बन जाती है । कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो गरीब हैं या बदसूरत हैं या जो अपंग है । उनके अन्दर हमेशा ही भावनाएं भरी होती है । अस्तु, उनके अन्दर हीनता की भावना ग्रंथि बन जाती हैं । इस तरह मनुष्य उच्च श्रेणी स्तर और निम्न श्रेणी स्तर का जीवन जीने लगता है । जीवन जीने की दोनों शैलियां गलत हैं तथा सामाजिक जीवन जीने में बाधाएं खडी करती हैं । उच्चशैली स्तर जीवन जीने वाला व्यक्ति साधारण मनुष्यों के साथ मिलना-जुलना पसन्द नहीं करता जबकि निम्न शैली स्तर जीवन जीने वाला व्यक्ति अधिक दिखावा कर दिखावे की दुनिया में झूठी जिन्दगी जीता है ।

कई बार हीन भावना वाला व्यक्ति अपने आप में शक्ति प्राप्त कर सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करना चाहता है तथा ऐसे वे व्यक्ति जिनकी प्रबल इच्छा भी हीन भावना के साथ मिल जाये तो वे निश्चित रूप से जीवन में सफल होते हैं । अपंग व्यक्ति प्राय: पढ़ने में अच्छे होते हैं । नेपोलियन, कालीदास लालबहादुर शास्त्री आदि ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने हैं । ऐसे व्यक्ति जिनमें हीन भावना के साथ आगे बढने की प्रबल इच्छा भी होती है वे तो बच जाते हैं क्योंकि उन्हें सफलता मिल जाती है और जो सफल नहीं होते उनमें से अधिकांश को स्नायुरोग होने की संभावना रहती है ।

फ्रायड के स्वप्न सिद्धांत से भी एडलर असन्तुष्ट थे । फ्रायड जहां यह कहते थे कि हमारी बढ़ी हुई इच्छाए ही उभर कर स्वप्न में आती है जिससे अतीत का बोध होता है वहीं एडलर का कहना था कि इन स्वप्नों से भविष्य का बोध होता है न कि भूत का । उन्होंने मन अचेतन और चेतन भागों में भी कोई अन्तर नहीं समझा । एडलर का कहना था कि अचेतन तथा चेतन मन की दोनों अवस्थाओं के उद्देश्य एक ही होते हैं ।

4.3.3.6 फ्रायडएडलर तथा युंग-

फ्रायड तथा एडलर की तरह युंग भी मनोविश्लेषणवाद के एक् स्तम्भ माने जाते हैं । उनका सिद्धांत समन्वयवादी का सिद्धांत था । यहां वह फ्रायड से थोड़ा अलग अपना सिद्धांत रखते थे वहीं वह एडलर के विचारों से भी शतप्रतिशत सहमत नहीं थे । फ्रायड ने अज्ञात तथा ज्ञात चेतनाओं का जहां अलग-अलग अस्तित्व माना और एडलर से उन दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं माना, वहीं युंग ने अज्ञात चेतना को ज्ञात चेतना का क्षतिपूरक कहा । फ्रायड के स्वप्न में

यहां भूत या अतीत का सम्बन्ध जाहिर होता है और एडलर का भविष्य से वहीं युंग ने स्वप्न को भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों से सम्बद्ध माना है । युंग ने मनुष्य के व्यक्तित्व को दो हिस्सों में बाँटा- अर्न्तमुखी तथा बर्हिमुखी । एडलर ने ' 'शक्तिप्राप्त करने की प्रबल इच्छा' वाले सिद्धांत को अर्थात वे व्यक्ति जो अपने जीवन में शक्ति प्राप्त कर समाज में अपना स्थान बनाना चाहते हैं, युंग ने अर्न्तमुखी व्यक्ति कहा । इस तरह के व्यक्ति हमेशा अपने बारे में सोचकर अपने आपको शक्तिमान या सामर्थ्यवान सिद्ध करना चाहते हैं । फ्रायड के काम-वासना वाले सिद्धांत को लेकर युंग ने कहा कि जिन व्यक्तियों में काम-वासना की प्रबल इच्छा होती है वह बाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित कर प्रेम की भावना तथा भ्रातत्व की भावना को प्रसारित करते हैं । ऐसे व्यक्तियों का ज्यादा समय दूसरे के कामों में लगता है वह घर से प्राय: बाहर होते हैं । इस तरह के व्यक्ति को बर्हिमुखी व्यक्ति कहते हैं ।

4.3.3.7 शिक्षा और मनोविश्लेषणवाद-

नवीन शिक्षा पद्धति में मनोविश्लेषणवाद का महत्वपूर्ण स्थान बल्कि यों कहा जाये कि सर्वोपरि स्थान है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । प्राचीन शिक्षा पद्धति में जहाँ मात्र पढाई पर जोर दिया जाता था वहां आज के बदलते परिप्रेक्ष्य में बच्चा सर्वोपरि माना जाता है तथा उसके सम्पूर्ण विकास अर्थात् सर्वागीण विकास का ध्यान दिया जाता है । प्राचीन काल में बात-बात पर बच्चों को सजा दी जाती थी आज बच्चो को प्यार से पढ़ाया जाता है । शिक्षक का पहला कर्त्तव्य होता है- बच्चों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर तदानुकूल प्यार से पढ़ाना । यह निश्चित रूप से मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव है । फ्रायड ने अपने रोगियों के साथ बातें करते-करते निष्कर्ष निकाला था कि उनके ज्यादातर रोगी ऐसे थे जिन्हें बचपन में प्यार नहीं मिला जिसके चलते उनमें भावना ग्रंथियों का निर्माण हुआ तथा वे स्नायु रोग का शिकार हो गये । अतएव आज की शिक्षा- पद्धति में इस पर ध्यान दिया जाता है कि बच्चों में किसी तरह भावना ग्रंथियों का निर्माण न होने पाए । बच्चों की हर आवश्यकताओं की पूर्ति हो, उन्हें आवश्यक प्यार मिले, भोजन, कपड़े मिले, खेलने का सम्यक् अवसर मिले तथा अनावश्यक डाँट-डपट न किया जाये यह विश्लेषणवाद का संदेश है । अगर बच्चों की इच्छाओं की पूर्ति नहीं की गयी तो ये अतृप्त इच्छाएं मन के अचेतन भाग में जमा होकर अवांछित भावना ग्रंथियों का निर्माण करेंगी जिससे बच्चों के व्यवहार में कठोर परिवर्तन होगा । अगर उनकी भावनाएं ज्यादा अकुण्ठित होती रहें तो वे स्नायुरोग से पीड़ित हो सकते हैं । मनोविश्लेषणवाद ने हमें यह भी सिखाया कि बच्चे यदि अवांछित व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं तो उन्हें सजा न देकर उनके ऐसा व्यवहार करने के कारणों का पता लगाया जाये तथा उन्हें दूर करने की कोशिश की जाये । पढ़ने-पढ़ाने का काम तभी सफल हो सकता है जब शिक्षक तथा छात्र दोनों का मानसिक स्वास्थ्य ठीक हो । दोनों के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखने की आवश्यकता तथा विधि हमें मनोविश्लेषणवाद से मिलती है । अगर मानसिक स्वास्थ्य में किसी प्रकार की कमी नजर आती प्रतीत हुई तो उसका उपचार भी मनोविश्लेषणवाद ही सिखाता है ।

फ्रायड ने मनुष्य के जीवन में काम- भावना की प्रधानता बतायी । किशोरावस्था में यह भावना और भी प्रबल होती है, इसे झुठलाया नहीं जा सकता । आवश्यकता इस बात की होती है कि छात्रों की काम-भावनाओं को सम्यक् शिक्षा दी जाये अन्यथा उनकी जीवन चौपट होने की संभावना होगी । अत: बच्चों के लिए उचित खेल-कूद, कलासाहित्य संगीत, ललित कला, नाटक

सामूहिक गान तथा पिकनिक एवं भ्रमण आदि का प्रबध करना आवश्यक है ताकि उभय लिंग के छात्र इकट्ठा रह कर काम-भावनाओं की अप्रत्यक्ष तुष्टि कर सकें ।

4.3.4 गेस्टाल्टवाद

शिक्षा मनोविज्ञान के मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों में एक महत्वपूर्ण स्थान गेस्टाल्टवाद का भी है । गेस्टाल्टवादियों ने अपनी विचारधारा से बच्चों की शिक्षा में एक क्रांति पैदा की है ।

गेस्टाल्ट जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ "सम्पूर्ण" माना जाता है । "पद्धति" या ' 'आकृति' ' के अर्थ में भी गेस्टाल्ट शब्द को प्रयोग में लाया जाता है ।

यहाँ व्यवहारवाद मनुष्य के व्यवहार का तथा मनोविश्लेषणवाद अचेतन मन का अध्ययन करने की कोशिश करता है वहीं गेस्टाल्टवाद सम्पूर्णता की ओर खींचकर मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने का सफल प्रयास करता है । गेस्टाल्टवादियो का कहना है कि हम किसी वस्तु को सम्पूर्ण रूप से देखते हैं या देखने की कोशिश करते हैं । उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए इस सम्प्रदाय के प्रवक्ताओं का कहना है कि जब हम कभी किसी वृक्ष को देखते हैं तो सम्पूर्ण वृक्ष पर हमारी दृष्टि पड़ती है न कि उसकी किसी डाली या किसी भाग पर । उसी तरह हम किसी मनुष्य के सामने जाते है तो उस मनुष्य की सम्पूर्ण आकृति हमारे सामने होती है न किसी मात्र उसकी आखे या कान या शरीर या भुजा आदि । इनका कथन है कि पहले हमें किसी वस्तु के सम्पूर्ण के बारे में ज्ञान होना चाहिये फिर बाद में उस वस्तु के विभिन्न अवयवों का । हम सम्पूर्ण हाथी को पहले देखते हैं, फिर धीरे-धीरे उसके विभिन्न अंगों का ज्ञान हमें प्राप्त होता है । सम्पूर्ण पेड को देखने के बाद उसकी शाखाएं, फूल, फल, जड़ आदि का ज्ञान प्राप्त करना आसान होता है ।

इस सम्प्रदाय के प्रमुख मनोवैज्ञानिक बर्दीमर, कॉफ्का तथा कोहलर माने जाते हैं । कई बार हम किसी समस्या में जब घिरे होते हैं तो उसका समाधान नहीं हो पाता । हम निराश होकर बैठ जाते हैं । इसके बाद हठात् उस समस्या का समाधान हो जाता है । कोहलर ने इस आकस्मिक ज्ञान को जिससे समस्या का समाधान हो जाता है, "सूझ" कहा । जरूरत इस बात की है कि समस्या पर एकाग्रचित होकर विचार किया जाये तथा बालक के सामने या किसी के सामने सम्पूर्ण समस्या हो । सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रस्तुतीकरण पर ही समस्या का समाधान संभव हो सकता है । कोहलर ने इस पर एक प्रयोग किया । उन्होंने एक भूखे वनमानुष को एक पिंजरें में बन्द कर दिया । पिंजरे में उन्होंने कुछ छडिया रख दी थी जो एक-दूसरे में फिट हो सकती थीं । पिंजरे में ही किन्तु पिंजरें की छत से उन्होंने कुछ केले टांग दिये थे । पिंजरे के दरवाजे को बन्द कर देने पर वनमानुष ने केले को प्राप्त करने के लिए उछल-कूद मचाना शुरू कर दिया । थक कर नीचे बैठ गया । थोड़ी देर में वह खड़ा होकर एक छड़ी को दूसरी छड़ी में फिट कर दिया तथा केले को गिरा कर खाने लगा । हम देखते हैं कि कुछ चिन्तन के बाद वनमानुष को समस्या के समाधान की हठात् सूझ हो गयी ।

गेस्टाल्टवादियों ने एक प्रयोग पद्धति या पैटर्न पर किया । एक ही पैटर्न या तरीके की समस्या होने पर उसका समाधान करना आसान होता है । एक ही रंग की दो बाल्टियां ली गयी । एक बाल्टी हल्के नीले रंग की तथा दूसरी कुछ गाढ़े नीले रंग की । गाढ़े नीले रंग वाली बाल्टी में भोजन रखा जाता था तथा हल्के नीले रंग वाली बाल्टी खाली होती थी । दोनों बाल्टियों को एक ही पंक्ति में रखकर एक घोड़े को खाने के लिए लाया जाता था । कुछ दिनों के बाद पाया गया

कि घोड़ा दोनों बाल्टियों में मुंह न लगाकर गहरे नीले रंग वाली बाल्टी में आते ही मुंह डालने लग गया । थोड़े दिनों के बाद हल्के रंगवाली बाल्टी हटा दी गयी तथा गहरे नीले रंग की बाल्टी अधिक गहरे नीले रंग की बाल्टी रखी गयी । पाया गया कि घोड़ा आते ही अब इस नयी बाल्टी में मुंह डालने लगा हालांकि भोजन पूर्ववत् उसी बाल्टी में था । घोड़े ने अब नयी बाल्टी में क्यों मुंह डाला? घोड़े का एक तरीका या पद्धति या पैटर्न पर काम करने की आदत-सी पड़ गयी थी । इसीलिये उसने सबसे अधिक गहरे नीले रंग वाली नयी बाल्टी में मुंह डालने लगा था । इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि प्राणी प्रतिक्रिया सम्पूर्ण परिस्थिति की ओर होती है न कि किसी खण्ड या हिस्से की ओर ।

4.3.4. शिक्षा और गेस्टाल्टवाद:-

गेस्टाल्टवादियों ने शिक्षा जगत में एक क्रांतिकारी नारा बुलन्द किया । बच्चे को अवसर पहले अक्षर, फिर छोटी-छोटी मात्राओं तथा बाद में वाक्य सिखाये जाते हैं । गेस्टाल्टवादियो ने इसका उल्टा करने पर जोर दिया । उसने मतानुसार पहले वाक्य, फिर मात्राएं तथा अन्त में अक्षर का ज्ञान कराना चाहिये । कुछ तो यह भी मानते हैं कि बच्चों को अक्षर का ज्ञान स्वत: ही हो जाता है । यह निश्चित रूप से एक स्वस्थ और क्रांतिकारी नारा है तथा प्राचीन पद्धति द्वारा पहले अक्षर सिखाने की विधि से हटकर है ।

बच्चे सम्पूर्ण परिस्थिति को ज्यादा अच्छी तरह ग्रहण करते हैं । अत: कोई भी समस्या सम्पूर्ण रूप से बच्चों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए । गेस्टाल्टवादियो ने यह भी सुझाया कि किसी समस्या के समाधान के लिए यदि किसी तरीका, पद्धति या पैटर्न को अपनाया जाये तो बच्चा समस्या का समाधान शीघ्र कर सकता है तथा अधिक समस्याओं को कम समय में हलकर सकता है । प्रोफेसर ज्यूविन ने व्यवहारवादियों के उत्तेजना-अनुक्रिया सिद्धांत से एक अति ही उपयोगी निष्कर्ष निकाला । उन्होने बताया कि छात्रों के दिमाग में कोई समस्या प्रस्तुत कर तनाव पैदा किया जाना चाहिये । छात्र जब तक तनाव की स्थिति में होंगे जब तक उस समस्या का हल नहीं निकल जाता । अत: उन्होंने उत्तेजना पैदा कर अनुक्रिया करने पर जोर दिया । एक उदाहरण लें । आप नित्य-प्रति रात को दस बजे सोकर सुबह पांच बजे उठते हैं । एक दिन किसी जरूरी काम से आपको बाहर जाना पड़ा और वह भी रात के दो बजे की ट्रेन से । नित्य-प्रति को भांति आप दस बजे रात को सोने जाते हैं । आपकी नींद हठात् ग्यारस साढ़े ग्यारस बजे खुल जाती है, फिर बारह बजे, फिर एक बजे..... । ऐसा क्यों होता है? क्योंकि आपका जाना आवश्यक है तथा आप तनाव की स्थिति में हैं । यह तनाव तभी खत्म होता है जब आप ट्रेन पकड़ लेते हैं । प्रोजेक्ट प्रणाली, हूकूरइस्टिक प्रणाली आदि में इसी तरह बच्चों के सामने समस्या प्रस्तुत कर हल ढूँढने को कहा जाता है ।

4.4.0 सारांश (Summary)

मनोविज्ञान की विचारधाराओं में अनेक मतभेद है । इन्हें मतभेदों से विभिन्न सम्प्रदायों का विकास हुआ । जैसे व्यवहारवाद का जन्म 'चेतना संरचनावाद' तथा चेतन प्रकार्यवाद के बीच होने वाले द्वन्द के परिणाम स्वरूप हुआ, जबकि प्रयोजनवाद व्यवहार का ही विस्तार है । इन दोनों में मुख्य अंतर यह है कि व्यवहार के प्रवर्तक वाटसन ने कहा कि 'उत्तेजना की उपस्थिति में ही अनुक्रिया की सम्भावना है- जबकि प्रयोजनवाद के अधिष्ठाता मैक्डूगल ने कहा कि

अभिप्रेरक के बिना अनुक्रिया संभव नहीं है । सिंगण्ड फ्रायड ने इन दोनों विचारधाराओं से अलग मानव व्यवहार का विश्लेषण करने के लिए सम्मोहन व साहचर्य विधि का प्रयोग कर मनोविश्लेषणवाद सम्प्रदाय को जन्म दिया । यहाँ मनोविश्लेषणवाद मनुष्य के अचेतन मन का अध्ययन करने पर जोर देता है वही गेस्टाल्टवाद सम्पूर्णता की और खींचकर मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने का सफल प्रयास करता है । मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों में चाहे जितना भी मतभेद हो परन्तु इन र२भी की एक विशेषता यह है कि यह सभी मानव व्यवहार का अध्ययन करते हैं ।

स्व मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. लिबीड़ों से आप क्या समझते है ?
2. फ्रियड के अनुसार भावना ग्रथियों का निर्माण कैसे होता है?
3. मनोविश्लेषांवादियों के अनुसार हम स्वप्न कैसे देखते हैं ?
4. फ्रायड, एल्डर तथा युग के सैद्धान्तिक मतभेद को स्पष्ट करें ।
5. आजकल गेस्टाल्ट के सिद्धांतो पर छोटे बच्चो को शिक्षा देने की प्रथा सी चल पड़ी है । यहाँ कहाँ तक सही और कहा तक गलत है ? इसकी समीझा करें ।

4.5.0 संदर्भ ग्रंथ (References)

1. Bhatnagar S.(1989) : Educational Psychology International Pub. House Meerut
2. Cratz D. (1950): Gestalt psychology - It nature and signifance N.Y. Ronald Press
3. Gates A.I (1955): Enducational Psychology - Themcmillan
4. Kingsle, H.L. (1946): The nature and condititional of learning - Practic Hall N.Y.
5. Laylock, S.R.: Educational Psychology - Sir Issac Pitman Ltd. Toronto Canada
6. Wood worth (1970): Contemporary Schools of Psychology London

इकाई-5

विकास का अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रभावित करने वाले तत्व (अनुवांशिक, जैविक, सामाजिक) (CONCEPT, CHARACTERISTIC AND INFLUENCING FACTORS OF DEVELOPMENT GENETIC, BIOLOGICAL, AND SOCIAL.)

इकाई की रूपरेखा

5.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

5.1.0 विकास अर्थ

5.1.0 विकास में परिवर्तनों के प्रकार

5.1.0 विकास की कुछ विशेषताएँ

5.5.0 विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

5.5.1 विकास को प्रभावित करने वाले पित्रैकीय तत्व

5.5.2 विकास को प्रभावित करने वाले जैवकीय तत्व

5.5.3 विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक तत्व

5.6.0 सारांश

5.7.0 संदर्भ ग्रन्थ

5.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

विकास का ज्ञान हमें यह जानने में सहायता करता है कि हम किस आयु के बालक से कब और क्या अपेक्षा करें? यदि हम बालक से उसकी आयु से अधिक या कम अपेक्षा करते हैं तो बालक में अपूर्णता की भावना का विकास होता है । इस इकाई के निम्न बिन्दुओं का ज्ञान भावी शिक्षकों को अपने छात्रों को समझने में काफी सहायक होगा

अत: आशा है कि इसके अध्ययन के पश्चात आप -

- विकास का अर्थ व परिभाषा के बारे में जान सकेंगे ।
- विकास में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का वर्णन कर सकेंगे ।
- विकास की विभिन्न विशेषताओं को वर्णित कर सकेंगे ।
- विकास के विभिन्न प्रकारों जैसे- शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा चारित्रिक विकास की सामान्य विशेषताओं के बारे में बता सकेंगे ।
- विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्त्वों (पित्रैक, जैवकीय, सामाजिक) को वर्णित कर सकेंगे ।

5.2.0 विकास का अर्थ (Meaning of Development)

विकास जन्म से मृत्यु तक निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है । जीवन के प्रत्येक क्षण में मनुष्य निरन्तर परिवर्तित होता रहता है । बालक के विकास की प्रक्रिया उसी समय आरम्भ हो जाती है जब कि वह माता के गर्भ में आता है । बचपन और किशोरावस्था में यह परिवर्तन बहुत तेजी से होते हैं ।

वह माता के गर्भ में आता है । बचपन और किशोरावस्था में यह परिवर्तन बहुत तेजी से होते हैं । प्रौढ़ावस्था आने पर भी यह शारीरिक और मानसिक परिवर्तन रूक नहीं जाते पर इनकी गति धीमी हो जाती है । इस प्रकार यह प्रक्रिया जन्म के बाद विकास की विभिन्न अवस्थाओं से होती हुई जीवन के अन्त तक चलती है । हरलॉक के शब्दों में :

'विकास अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है, इसमें परिपक्वता के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील और स्पष्ट क्रम निहित रहता है । विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ और योग्यताएँ प्रकट होती है ।

"Development is not limited to growing larger, it consists of a progressive series of changes of an orderly and choherent type towards the goal of maturity.Development results in new characteristics and abilities on the individual."

-Hurlock

हरलॉक की उपर्युक्त परिभाषा से तीन बातें स्पष्ट होती है.

- विकास परिवर्तनों की ओर संकेत करता है ।
- विकास में एक निश्चित क्रम होता है ।
- विकास में एक निश्चित दिशा और लक्ष्य होता है ।

अरनोल्ड गैसेल के अनुसार :

'विकास केवल एक प्रत्यय ही नहीं है, इसे देखा, जाँचा तथा किसी सीमा तक तीन विभिन्न दशाओं- शरीर अंग विश्लेषण, शरीर ज्ञान तथा व्यवहारात्मक में मापा जा सकता है । इन सब में व्यवहार, सबसे अधिक विकासात्मक स्तर तथा विकासात्मक शक्तियों को व्यक्त करने का माध्यम है ।

"Development is more then a concept. It can be observed appraisal and to some extent even 'measured' in three major manifestation: (a) anatomic (b) physiology (c) behavioural.....

Behaviour sign, however, constitute a most comprehensive index of development potentials."

-Gassell

5.3.0 विकास में परिवर्तन के प्रकार (Type of changes in Development)

विकास में परिवर्तन कई तरह के होते हैं । इसका सम्बन्ध शरीर और मन दोनों से है । विकास में होने वाले परिवर्तनों को हरलॉक ने चार भागों में विभईजेत किया है ।

5.3.1 आकार में परिवर्तन (Change in Size) -

यह परिवर्तन विशेष रूप से शारीरिक वृद्धि में दिखाई देता है इसके साथ-साथ इसे मानसिक विकास में भी देखा जा सकता है । जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है उसमें भार, ऊँचाई और मोटाई में अन्तर आता है । उसके आन्तरिक अवयवों जैसे- दिल, फेफड़ों, आँते, पेट आदि का भी विकास होता है, यह अंग उसके बढ़ते शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं ।

यह वृद्धि शैशवावस्था में अत्यन्त तीव्रता से होती है मध्य बाल्यावस्था में थोडी धीमी पड़ जाती है और किशोरावस्था में बच्चे फिर तीव्रता से बढ़ते हैं । इस विकास को भोजन, खेल, व्यायाम, निद्रा और दूसरे तत्व प्रभावित करते हैं । लड़कियों का विकास लड़को से जल्दी आरम्भ हो जाता है, लड़के बाद में देर तक विकसित होते रहते हैं जैसे लड़कियाँ अपनी ऊँचाई को अक्सर 16 वर्ष तक प्राप्त कर लेती है, लड़के ऊँचाई में 19 वर्ष तक बढ़ते रहते हैं ।

बच्चों में इन शारीरिक आकार के परिवर्तनों का बहुत अधिक महत्व है । बाल्यावस्था व किशोरावस्था दोनों में ही बच्चे की स्थिति उसके समूह में क्या होगी यह बहुत कुछ उसके शारीरिक आकार और शक्ति पर निर्भर करता है । जो बच्चा शारीरिक आकार में ठीक से विकसित होता है और दूसरों का सामना कर सकता है उसकी बाल्यावस्था उतने ही सुख से बीतती है । यदि किसी बालक का विकास दूसरे सामान्य बच्चों से भिन्न होता है तो वह दुःखी व असंतुष्ट रहता है ।

5.3.2 अनुपात में परिवर्तन (Changes in proportion) -

बालक का शारीरिक विकास केवल उसके आकार तक ही सीमित नहीं होता बल्कि उसके शरीर के विभिन्न अंग अनुपात में भी बढ़ते हैं ।

बच्चे को पहले प्रौढ व्यक्ति का ही छोटा रूप समझा जाता था लेकिन बाद में देखा गया कि उसका पूरा शरीर-अनुपात प्रौढ़ व्यक्ति के शरीर-अनुपात से अलग होता है । बच्चा जब किशोरावस्था के प्रारम्भ में पहुंचता है तब उसमें शारीरिक परिवर्तन आकस्मिक रूप से और दुत गति से होते हैं । इस अवस्था में ही उसका शरीर अनुपात में प्रौढ़ व्यक्ति के निकट पहुंचता है।

बच्चों के. सभी अंग एक साथ समान रूप से नहीं बढते । नवजात शिशु का सिर अन्य अंगों के अनुपात में काफी बढ़ा होता है जैसे-जैसे शिशु बढ़ता है उसका सिर सारे शरीर के अनुपात में अपेक्षाकृत कम बढ़ता है ।

मानसिक विकास मे भी अनुपात में अन्तर दिखाई देता है । प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों की कल्पना में यथार्थता का अंश बहुत कम होता है, कल्पना शक्ति बहुत तीव्र होती है जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है उसकी कल्पना शक्ति में यथार्थता का समावेश होता है जो कि योजनाओं को बनाने में और रचनात्मक कार्यों में सहायक होता है ।

बच्चे की रूचि के अनुपात में भी क्रमश: परिवर्तन आता है । प्रारम्भ में बालक की रूचि अपनी और होती है आयु बढने के साथ-साथ रूचि का क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है । किशोरावस्था में यह रूचि विपरीत लिंग की ओर मुड़ जाती है जैसे किशोर-किशोरियों के प्रति और किशोरियां किशोरों के प्रति रूचि रखने लगते हैं ।

5.3.3 पुरानी आकृतियों का लोप (Disappearence of old features)

विकास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आता है कि इसमें पुराने गुणों का लोप हो जाता है । शारीरिक विकास के अन्तर्गत बच्चा जैसे-जैसे विकसित होता है उसके सीने में स्थित थाइमस ग्रन्थि (Thymous Gland) तथा मस्तिष्क के पास स्थित पीनियल ग्रन्थि (Pineal gland) धीरे-धीरे गायब हो जाते हैं । बचपन के बालों और दाँतों का लोप भी धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । मानसिक गुणों में भी कुछ विशेषतायें अपनी उपयोगिता दिखा कर लुप्त हो जाती है । जैसे भाषा विकास में रोना, चिल्लाना, बड़बड़ाना (Babbling) धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है । बच्चे का बिना सोचे समझे कार्य करना भी समाप्त हो जाता है । जैसे-जैसे वह विकसित होता है सोच समझ कर कार्य करने लगता है । बचपन का रेंगना तथा घिसटना लुपा हो जाता है अब बच्चा ठीक से चलने-फिरने व दौड़ने लगता है । इस प्रकार पुरानी विशेषतायें, अपनी उपयोगिता दिखाकर लुप्त हो जाती है और नयी विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती है ।

5.3.4 नये गुणों का विकास (Acquisition of new feature)

पुराने गुणों की समाप्ति के साथ-साथ शारीरिक व मानसिक क्षेत्र में नये गुणों का भी विकास होता है । वह परिपक्वता (Maturation) तथा सीखने की प्रक्रिया (Learning Process) के परिणामस्वरूप होता है । शारीरिक परिवर्तनों के अन्तर्गत प्रारम्भिक तथा स्थायी दाँतों का निकलना और किशोरावस्था में होने वाले यौन परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं ।

मानसिक विकास के अन्तर्गत जिज्ञासा, विशेष रूप से यौन सम्बन्धी ज्ञान, नैतिकता धार्मिक विश्वास, विभिन्न प्रकार की भाषाओं आदि का ज्ञान आता है ।

विकास से इस प्रकार अत्यन्त महत्वपूर्ण नये गुणों की प्राप्ति होती है ।

5.4.0 बालक के विकस की विशेषताएँ (Characteristic of Development of child)

5.4.1 बालक का विकास मुख्य रूप से परिपक्वता और सीखने के कारण होता है ।

(क) परिपक्वता : इसका अर्थ है-व्यक्ति के बाहय व आन्तरिक अंगों की वृद्धि होना तथा उन गुणों का विकसित होना जो उसे वंश परम्परा में प्राप्त होते है । परिपक्वता आन्तरिक विकास की प्रक्रिया है इसी के कारण बालक विकास की कुछ अवस्थाओं में उन कार्यों को करने के योग्य बन जाते हैं जिन्हें वह पहले नहीं कर सकते ।

(ख) सीखना : वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते समय व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में जो परिवर्तन होता है उसे सीखना कहते हैं ।

विकास इन दोनों के कारण होता है । परिपक्वता का सम्बन्ध वंशानुक्रम से तथा सीखने का सम्बन्ध वातावरण से होता है ।

5.4.2 विकास एक निश्चित और पूर्वानुमानित प्रतिमान (Predictable pattern) का अनुगमन करता है :- प्रत्येक बालक के विकास की दर भिन्न-भिन्न होती है परन्तु सभी बालकों का शारीरिक, गमक व मानसिक विकास निश्चित क्रम से ही होता है ।

5.4.3 विकास, व्यक्तिगत विकास की प्रक्रिया है- प्रत्येक व्यक्ति का विकास एक विशेष रूप में ही होता है । प्रत्येक बालक में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकास की दर भिन्न-भिन्न होती है ।

5.4.4 विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है- यह बच्चे के गर्भ में आने के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है और जन्म लेने के बाद मृत्यु तक चलती रहती है ।

5.4.5 विकास की विभिन्न अवस्थाओं में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है- शैशवावस्था व बाल्यावस्था में बाल्यावस्था व किशोरावस्था में एक निश्चित सम्बन्ध होता है । हर आने वाली अवस्था पहले वाली अवस्था पर निर्भर होती है जैसे बाल्यावस्था, शैशवावस्था पर निर्भर होती है और किशोरावस्था बाल्यावस्था पर ।

5.4.6 विकास के विभिन्न पक्ष आपस में सम्बन्धित होते हैं- बच्चे का प्रारम्भिक सामाजिक विकास उसके शारीरिक विकास पर निर्भर करता है । यदि बच्चा शारीरिक रूप से अविकसित होगा तो उसका सामाजिक विकास भी अच्छा नहीं होगा ।

इसी तरह यदि व सामाजिक रूप से अविकसित है तो उसका संवेगात्मक विकास ठीक नहीं होगा । इस प्रकार विकास के विभिन्न पक्ष आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. विकास की परिभाषा बताते हुये उसके अर्थ को स्पष्ट कीजिये ।
2. विकास के परिवर्तन के प्रकार बताइये ।
3. विकास की विभिन्न अवस्थाओं में क्या सम्बंध है ?
4. विकास को व्यक्तिगत विकास की प्रक्रिया क्यों कहते हैं ?
5. विकास का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसमें होने वाले विभिन्न होने वाले परिवर्तनों का वर्णन कीजिये ।
6. विकास केआई यूसीएचआईटी परिभाषा देते हुये उसकी विभिन्न प्रमुख विशेषताओं के बारे में बताइये

5.5.0 विकास को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors effecting Development)

बालक के विकास को मुख्य रूप से तीन तत्व प्रभावित करते हैं :

1. पित्रैकीय तत्व (Genetic)
2. जैवकीय तत्व (Biological)
3. सामाजिक तत्व (Social)

बालक क्या करता है, जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार दिखाता है । यह पूर्ण व्यवहार इन्हीं तीन तत्त्वों से प्रभावित होता है । 'फ्रेंक बीच' के अनुसार- 'मानव जीवधारियों का व्यवहार बहुत कुछ उनके जैविकीय अनुवांशिकता पर आधारित होता है ।

"The Behaviour of human being is obviously, to a larg extent, dependent upon his biological inheritance."

(Frank A.Beach,)

साथ ही यह भी सत्य है कि कोई भी विकास बिना वातावरण के पूर्ण नहीं हो सकता हैं । कोई जीव शून्य (Vaccum) में विकसित नहीं होता । इस प्रकार विकास पर पित्रैकीय जैवकीय व सामाजिक सभी तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है।

5.5.1 विकास को प्रभावित करने वाले पित्रैकीय (Genetic) तत्व - अनुवांशिकता की प्रक्रिया (The mechanism of heredity) - एक नये जीवन का प्रारम्भ तभी होता है जब माता पिता के शुक्राणु (Sperm) माता के डिम्ब (Ovum) को निषिक्त (Ovum) कर देते हैं । इस प्रकार एक नये जीवन के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है । यह निषिक्त बीजकोष युक्त अंड (Fertilize) कहलाता है । प्रथम चौबीस घंटों में यह चार कोषों में बंट जाता है । यह वृद्धि व विभाजन नौ दिन तक चलता रहता है । नौ दिन के उपरान्त यह कोष संयुक्त एवं खोखले गेंद का रूप ले लेते हैं । इस अवस्था के उपरान्त आगे भी यह कोष लगभग 13 दिन तक विभाजित होते रहते हैं । इन विभाजित कोषों में तीन स्तर बन जाते हैं -

- बर्हिस्तर (Ectoderm)
- मध्यस्तर(Mesoderm)
- अन्त: स्तर (Endoderm)

इनमें भी कोष के विभाजन के विभाजन की प्रक्रिया चलती रहती है । इसी विभाजन के फलस्वरूप त्वचा, मांसपेशियां, पाचन तंत्र तथा शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है ।

5.5.2. वंशसूत्र (Chromosomes) - पिता के प्रत्येक परिपक्व शुक्राणु (Mature sperm) तथा माता के परिपक्व डिम्ब में 23 जोड़े या 46 वशसूत्र पाये जाते हैं । ये धागे के आकार वाले सूत्र प्रत्येक बीजकोष के केन्द्र में पाये जाते हैं । जब शुक्राणु डिम्ब में प्रवेश करता है तब एक नये निषिक्त कोष (Zycote) का निर्माण होता है । इसमें पूरे के पूरे 46 वंश सूत्र उपस्थित होते हैं । आनुवांशिकता की सम्भावनायें सामान्य रूप में इन्हीं वशसूत्रों पर निर्भर होती है । इन्हीं वशसूत्रो पर लिंगभेद भी निर्भर करता है ।

5.5.3 लिंग का निर्धारण (Determination of sex) - परिपक्व डिम्ब में 23 जोड़े वंशसूत्र के होते हैं और हर एक वंशसूत्र में "x" वंशसूत्र होता है । इसी प्रकार परिपक्व शुक्राणु में 23 जोड़े वंशसूत्र में x तथा y दोनों वशसूत्र होते हैं । जिस समय zygote का निर्माण होता है उस समय यह डिम्ब और शुक्राणु के “x” वशसूत्र का जोड़ा बनता है तो बालिका का जन्म होता है । यदि x एवं y वंशसूत्र का जोड़ा बनता है तो बालक का जन्म होता है । अतएव लिंग निर्धारण में केवल पुरूष के ही वशसूत्र महत्वपूर्ण होते हैं ।

बच्चे की आँखों का रंग, शरीर का रंग, व बनावट, चेहरे की बनावट, लिंग निर्धारण आदि अनुवांशिकता पर निर्भर करता है । प्रत्येक वंशसूत्र पर छोटी-छोटी रचनाएँ स्थित होती है । जिनमें विशेष प्रकार के रसायनिक तत्व उपस्थित होते हैं इन्हें ही पित्रैक (उद्दप्र०)कहा जाता है । बच्चे में विकसित होने वाली (विशेषताएँ इन पित्रैकों के विकास पर निर्भर करती है । स्वाभाविक है कि बच्चे मे माता तथा पिता दोनों के गुणों वाले पित्रैक होते हैं अत: उसमें दोनों के गुणों के विकास की सम्भावना उपस्थित रहती है किन्तु किन पित्रैकों का विकास होगा यह निर्धारित करना कठिन है यद्यपि वैज्ञानिक इस समस्या का हल खोजने में लगे हैं । वास्तव में पिता तथा माता द्वारा प्रदत्त पित्रैकों में उनके अपने माता पिता तथा अन्य पूर्वजों द्वारा दिये गये गुण भी उपस्थित

रहते हैं । इस प्रकार बच्चे को अपने पूर्वजों के जो गुण माता तथा पिता द्वारा प्राप्त होते हैं उन्हें ही आनुवंशिकता कहते हैं । इस प्रकार अनुवाशिकता उन सम्भावनाओं का निर्धारण करती है, जो सन्तानों को जन्मजात रूप में प्राप्त होती है ।

5.5.2 विकास को प्रभावित करने वाले जैवकीय (Biological) तत्व - विकास पर ग्रन्थियों (Glands) का प्रभाव भी बहुत अधिक पड़ता है ।

व्यक्ति के शरीर में मुख्यत: दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती है :-

(i) बर्हिस्त्रावी (Duet glad)

(ii) अन्त: स्त्रावी (Ductless glad)

मुख्य अंत: स्त्रावी ग्रन्थियाँ है -

- गल ग्रन्थियाँ (Thyroid glands)
- परावटु ग्रंथियां (Para thyroid glands) या उगल ग्रन्थि
- शीर्ष ग्रन्थि (Pineal gland)
- पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pitutory glands)
- थाइमस ग्रन्थि (Thymus glands)
- अधिवृक्क ग्रन्थ (Super adrenal glands)
- अग्नाशय ग्रन्थि (Pancreas glands)
- जनन ग्रन्थि (Reproductive gland)

5.5.2.1 गल ग्रंथियां - ये ग्रन्थियाँ गले में श्वास नली के किनारे स्थित होती हैं । इस ग्रन्थि से निकलने वाले होरमोन का प्रभाव पूरे शरीर पर पड़ता है । इससे शरीर के हृष्टपुष्ट होने में सहायता मिलती है । इस ग्रन्थि का बुद्धि के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है । यदि जन्म से ही यह ग्रन्थि ठीक से कामु नही करती तो बच्चे की लम्बाई कम हो जाती है । बच्चा कम बुद्धि वाला यहाँ तक की मूर्ख या जड़ बुद्धि (imbecile or idiot levels) भी हो सकता है ।

5.5.2.2 परावदु उपगल ग्रन्थि (Para thyroid gland) - यह छोटी ग्रन्थियाँ गल ग्रन्थियों के ऊपर स्थित होती है । इसका मुख्य कार्य शरीर में मुख्यत: रक्त में चूने की मात्रा को सुनिश्चित करना है । इसमें से निकलने वाले रस की कमी होने पर माँसपेशियों में तनाव, दर्द, घबराहट, उलझन इत्यादि विकार पैदा हो जाते हैं । बालों का झड़ना, कमजोर नाखून व दाँतों की खराबी इसी कारण होती है । ग्रन्थि के अत्यधिक क्रियाशील होने पर माँसपेशियों की कमजोरी, थकावट, हड्डी गलना और अन्तत: गुर्दे में पथरी पड़ जाती है ।

5.5.2.3 शीर्ष ग्रन्थि (Pinancal gland) - यह ग्रन्थि मस्तिष्क में होती है मानव में इसका कोई भी कार्य ज्ञात नहीं है ।

5.5.2.4 पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pitutory gland) - यह मस्तिष्क में स्थित होती है । इसे प्रधान ग्रन्थि भी कहते हैं । इसका शरीर की अन्य सभी अतस्त्रावी ग्रन्थियों पर नियन्त्रण होता है बनावट के आधार पर इसके दो भाग हैं - अगला एवं पिछला ।

इसके पिछले - भाग से निकलने वाले रस, जन्म के समय माँ के गर्भाशय का नियन्त्रण रखते हैं । इसकी कमी होने पर अत्यधिक मात्रा में मूत्र बनता है ।

इसके अगले भाग - से निकलने वाला रस, शरीर की वृद्धि थाइराइड, अधिवृक्क अंडाशय इत्यादि पर नियंत्रण रखते हैं । इसकी अधिकता होने पर अत्यधिक लम्बाई, त्वचा का सख्त एवं

मोटा होना, दिमागी कमजोरी, उच्च रक्तचाप, रक्त में शक्कर की अत्यधिक मात्रा होना आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

इस ग्रन्थि से निकलने वाले रस की कमी होने पर शरीर और विभिन्न अंगों की बाढ़ रूक जाती है । भूख समाप्त हो जाती है, रंग सफेद हो जाता है । निम्न रक्तचाप, बालों का झड़ना, जनन अंगों का अविकसित रहना इत्यादि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती है ।

5.5.2.5 थाइमस ग्रन्थि (thymus gland) - यह ग्रन्थि शरीर में रोगों से लड़ने की शक्ति पैदा करती है ।

5.5.2.6 अधिवृक्क ग्रन्थियाँ (Super-adrenal) - यह ग्रन्थि दोनों गुर्दों के ऊपर होती है । इससे जीवन रक्षक द्रव्य एड्रीनेलिन निकलता है । शरीर में इस रस की कमी होने से कमजोरी, थकावट, त्वचा में काले रंग की चित्ती पड़ ना, उदर विकार इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं । इसकी अत्यधिक कमी होने से मुत्यु तक हो सकती है । इस रस की अधिकता होने पर उच्च रक्त दबाव, चेहरे और पेट पर अधिक चर्बी का जमाव, हड्डियों का गलना, हाथ पैर सुत्र पड़ना इत्यादि लक्षण होते हैं । भोजन पाचन और शरीर में पानी की मात्रा का निर्धारण भी इसका कार्य है ।

5.5.2.7 अग्नाश्य ग्रन्थि (Pancreas glands) - इससे इन्सुलिन नामक रस निकलता है यह रक्त में शक्कर की मात्रा का निर्धारण करता है । इसकी कमी होने पर रक्त में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है।

5.5.2.8 जनन ग्रन्थि (Reproductive glands) - पुरूषों में अंडकोष नामक दो ग्रन्थि होती है । इनसे टेस्टोस्टरोन नामक रस निकलता है । यह वीर्य की मात्रा, शुक्राणुओं की संख्या इत्यादि का नियन्त्रण करता है । इसकी कमी होने पर पुराण बच्चा पैदा करने में अक्षम हो जाते हैं ।

महिलाओं में अंडाशय (Ovary) - नामक ग्रन्थि से इस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्ट्रोन नामक रस निकलते हैं । इनकी कमी होने पर मुख्य जननांगों के एवं बाध्य लक्षणों (Secondary sex-character) के विकास पर प्रतिकूल असर होता है । अत्यधिक कमी पर स्त्री बांझ भी हो सकती है ।

5.5.2.9 शारीरिक व इन्द्रिय दोषों का प्रभाव - ग्रन्थियों के प्रभाव के साथ-साथ बच्चे के शारीरिक दोष जैसे - नजर का कमजोर होना, कम सुनाई देना, टॉन्सिलन (tonsils) रोग ग्रस्त दाँत, शारीरिक अंगों का विकृत होना, दोषपूर्ण ढंग से बोलना यह सब तत्व बालक के विकास को प्रभावित करते हैं । जैसे यदि बच्चा तुतलाकर या हकला कर बोलता है तो संगी साथी उसे अस्वीकार करते हैं जिससे वह दूसरे बच्चों के साथ नहीं रह पाता तथा उन सामाजिक कुशलताओं को सीखने से भी वंचित रह जाते हैं जो उसके समायोजन के लिये आवश्यक है ।

जिन बालकों को कम सुनाई पड़ता है उन्हें सीखने में कठिनाई हो सकती है । जिन्हें कम सुनाई पड़ता है, वह दूसरों से बात करने में व मिलने में कतराते हैं । ऐसे बालक को प्रभावशाली भाषा सीखने में कठिनाई हो सकती है ।

शारीरिक असंगति व दोष भी बालक के विकास को बहुत प्रभावित करते है । बालक अपनी शारीरिक असंगति के प्रति काफी सचेत होता है इस वजह से उसके सामाजिक व मानसिक विकास में अवरोध उत्पन्न हो जाता है ।

5.5.3.0 बालक के विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक तत्व - बालक का विकास अनुवांशिक तथा जैवकीय तत्त्वों से प्रभावित होता है । परन्तु कोई भी जीव समस्त जन्मजात शक्तियों व गुणों के होते हुए भी बिना उपयुक्त वातावरण के शून्य में विकसित नहीं हो सकता है । दो एक समान संरचनात्मक योग्यताओं व गुणों को रखने वाले बच्चों का विकास भी पूर्णत: भिन्न-भिन्न रूपों में हो सकता है । यह विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उनको किस प्रकार का वातावरण विकास के लिये मिल रहा है । वातावरण से तात्पर्य उन उद्दीपनों के सम्मिलित प्रभाव के रूप में लिया जाता है जो बच्चे को प्रभावित करते हैं । यह प्रभाव जन्म के पूर्व से ही पड़ने लगते हैं इसीलिये वातावरण को दो भागों - जन्म के पूर्व तथा जन्म के बाद में बाँटा जाता है । जन्म के पश्चात् वातावरण में परिवार का विशेष महत्व है क्योंकि परिवार वह प्राथमिक वातावरण है जो बालक के विकास को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करता है । बच्चे के गर्भ में आने के साथ ही उस पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ने लगता है । परिवार के बाद विद्यालय वह द्वितीय संस्था है जो बच्चे के विकास को प्रभावित करती है ।

5.5.3.1 व परिवार का प्रभाव - जन्म के साथ बालक का सबसे पहला सम्पर्क परिवार से होता है । बच्चा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में परिवार के मूल्यों, अभिवृत्तियों, सामाजिक नियमों, व्यवहार व भाषा आदि को सीखने लगता है । माता पिता व परिवार के सदस्य बच्चे के व्यवहार को अपने सामाजिक समूह के अनुरूप बनाने के लिये भिन्न-भिन्न रूपों में कुछ न कुछ सिखाते रहते हैं । इसके साथ ही बच्चा स्वयं भी अनुकरण करके सीखता है । इस तरह बच्चे का प्रारम्भिक जीवन पूर्णतया परिवार से प्रभावित रहता है।

अ. पारिवारिक सम्बन्धों का प्रभाव - बहुत से अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि पारिवारिक सम्बन्ध बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं जो बच्चे शांत और अन्तर्मुखी होते हैं वह परिवार से प्रभावित होते हैं। जो बच्चे बर्हिमुखी व अधिक सामाजिक होते हैं तुलनात्मक रूप में वह परिवार से कम प्रभावित होते हैं ।

लड़कियाँ लड़कों की तुलना में परिवार से जुड़ी हुई होती हैं क्योंकि लड़कियों का लड़कों की तुलना में परिवार में अधिक समय व्यतीत होता है ।

परिवार के विभिन्न सदस्यों का बच्चे के विकास पर कितना प्रभाव पड़ रहा है यह इस बात पर निर्भर करता है कि बच्चे का जन्मक्रम क्या है, विभिन्न सदस्यों का उस पर कितना नियन्त्रण है, सदस्यों के साथ वह कितना समय व्यतीत करता है तथा परिवार के साथ किस प्रकार के संवेगात्मक सम्बन्ध हैं ।

ब. जन्मक्रम का प्रभाव - फ्रायड के अनुसार - बच्चे का अपने भाई-बहनों में जन्मक्रम उसके बाद के जीवन के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है ।

("The peson's position in the sequence of brothers and is of very great significance for the course of his later life")

बच्चे के जन्मक्रम का उसके विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है । उदाहरण के लिये - सबसे बड़ा बच्चा माता - पिता पर अधिक निर्भर होता है । बच्चे का लगाव भी अपने माता - पिता के साथ अधिक होता है । घर के सबसे बड़े बच्चे जो सफलता प्राप्त करते हैं अपने भाई-बहनों पर खूब रोब जमाते हैं, उनमें उच्चता (superiority) की भावना अधिक. होती है।

- सबसे छोटा बच्चा बहुधा बर्हिमुखी, आशावादी, सामाजिक और खुशमिजाज प्रकृति का होता है ।
- बीच वाले बच्चे (middle children) सामान्यत: अपने संगी-साथियों से अधिक प्रभावित होते हैं ।
- दूसरा बच्चा (second born) यदि लड़की है तो खेल में अधिक रूचि रखती है और पहला बच्चा (first born) यदि लड़की है तो वह अपने भाई बहनों पर अधिक रोब रखती है ।
- अकेला बच्चा अक्सर असामाजिक, एकाजपसन्द, अत्यधिक सवेदनशील तथा अतिपोषित होते है । वे अत्यधिक आज्ञाकारी होते हैं और अपने उत्तरदायित्वों को सम्भाल नहीं पाते हैं ।

स. पालन-पोषण विधियाँ तथा अनुशासन - परिवार में प्रजातांत्रिक अनुशासन होना चाहिये । वहुत कठोर अनुशासन हौने पर बच्चों के विकास पर बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है । जहाँ घर का वातावरण हर समय सलाहपूर्ण व बच्चों को छोटी-छोटी बातों में डाँट - फटकार पड़ती रहती है, ऐसे परिवारों में बच्चों का विकास कुंठित हो जाता है । उसमें आत्महीनता की भावना पैदा हो जाती है ।

बच्चो पर बिल्कुल नियन्त्रण न होना भी गलत है । ऐसे परिवारों के बच्चे स्वेच्छाचारी व अपराधी प्रकृति के हो जाते हैं । सामान्यत: परिवार में माता ही सबसे अधिक बच्चों के साथ समय व्यतीत करती है । वच्चो पर भी अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक नियन्त्रण रखती है । इस कारण माता का प्रभाव बालक के विकास पर बहुत अधिक पड़ता है ।

द. परिवार का संवेगात्मक वातावरण - परिवार के सदस्यों के मध्य यदि संवेगात्मक सम्बन्ध मृदु होते हैं तब बालक विभिन्न समरचाओं की सत्यता को समझते हुये उसके प्रति भ्रान्तिपूर्ण ढंग से प्रतिक्रिया करता है । इसके विपरीत यदि घर का वातावरण कलहपूर्ण है, माता पिता के बीच हर समय लडाई-झगडा होता रहता है, उनकी आपस में नहीं पटती, ऐसी परिस्थितियों में बच्चा विभिन्न समस्याओं के प्रति विद्रोही प्रतिक्रिया करता है ।

माता-पिता द्वारा अपेक्षा, अनुचित पक्षपात, अत्यधिक सुरक्षा बालकों के विकास पर बुरा प्रभाव डालती है । ऐसे बच्चे झगड़ालू प्रवृति के विद्रोही, झूठ बोलने वाले व जीवन की कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होते हैं ।

य. परिवार का आकार - परिवार का आकार व परिवार में रहने वाले कौन-कौन सदस्य हैं यह भी बालक के विकास को प्रभावित करता है । बड़ा होने पर काम का भार अधिक हो जाता है । माता-पिता प्रत्येक बच्चे पर ध्यान नहीं दे पाते हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं । लेकिन बड़ा परिवार होते हुये भी परिवार के सदस्यों के आपसी सम्बन्ध किरन प्रकार के हैं, यह बालक के विकास को प्रभावित करता है । यदि माता- पिता अपने बच्चों से सन्तुष्ट हैं, अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं व उनका वहन अच्छी तरह से करते हैं जब बालक का विकास भी स्वस्थपूर्ण ढंग से होगा । परिवार का छोटा आकार होने पर भी यदि माता-पिता के आपसी सम्बन्ध मधुर नहीं हैं, वातावरण स्वेच्छाचारी हैं, बच्चे को बहुत अधिक सुरक्षा (over protective) प्राप्त होती है तब ऐसे बच्चे आत्म-निर्भर नहीं बन सकते, जीवन की कठिनाइयों का सामना नहीं कर सकते और उनका पूर्ण विकास नहीं होता है ।

परिवार में यदि माता-पिता के अतिरिक्त दादा-दादी भी हैं तो उसका भी व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव होता है । बहुधा बच्चे दादा-दादी से अधिक जुड़े होते है ।

इस प्रकार परिवार बच्चे के विकास को बहुत अधिक प्रभावित करता है ।

5.5.3.2 विद्यालय का प्रभाव - 3 - 4 साल की आयु में बालक विद्यालय में आता है । उसके विकास पर विद्यालय के वातावरण का, संगी-साथियों, व शिक्षक की अभिवृत्ति का भी प्रभाव पड़ता है । बच्चे को यदि विद्यालय में अनुकूल वातावरण मिलता है तब उसकी विद्यालय व शिक्षा के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति होती है । शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होती है तथा सामाजिक समायोजन में भी वह कुशलता प्राप्त करता है । विद्यालय का वातावरण, अनुशासन, शिक्षकों की अभिवृत्ति व व्यक्तित्व बालक के विकास को प्रभावित करता है ।

अ. विद्यालय का वातावरण- यदि विद्यालय में बालक को सकारात्मक अनुभव होते हैं तो बच्चा अपनी योग्यतानुसार कार्य करने में सफल होता है । विद्यालय में आनन्द का अनुभव करता है । शिक्षकों व कक्षा साथियों के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे होते हैं ।

विद्यालय का भावात्मक वातावरण बालक को अपनी योग्यतानुसार कार्य करने के लिये प्रेरित करता है । उसकी कक्षा में व्यवहार कैसा होगा, विभिन्न परिस्थितियों में संवेगात्मक अभिव्यक्ति कैसी होगी इस बात पर भी भावात्मक वातावरण का प्रभाव पड़ता है । इन सब बातों का बालक के स्वमूल्यांकन व दूसरों के द्वारा उसके मूल्यांकन पर प्रभाव पड़ता है ।

बालक की प्रारम्भिक शिक्षा के दिनों में विद्यालय के वातावरण (school climate) का प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है क्योंकि इस समय बालक का आत्म प्रत्यय (self concept) विकसित होता है । यदि स्कूल का वातावरण खराब होगा तो बच्चे का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा उसमें परिस्थितियों से लड़ने की नैतिक भावना कम होगी । काम करने की इच्छा कम होती है और बालक स्कूल की क्रियाओं में भाग लेना पसन्द नहीं करता है । जिन बच्चों की नैतिक शक्ति () कम होती है वह नियमों का उल्लंघन करते हैं ।

ब. छात्र शिक्षकों के सम्बन्ध - शिक्षक का बालक के साथ किरन प्रकार व्यवहार है? शिक्षक कक्षा में अनुशासन किस प्रकार बनाये रखता है? शिक्षण विधि किस प्रकार की है यह सभी दशायें बालक की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है जोकि बालक के स्वमूल्यांकन व सामाजिक मूल्यांकन का प्रमुख आधार है ।

यदि शिक्षक व छात्र का सम्बन्ध अच्छा है तो बालक कार्य करने के लिये उत्साहित होगा । ऐसे बच्चे कक्षा में नेता होते हैं। इसके विपरीत यदि शिक्षक बच्चे को निम्न स्तर का समझता है जब बच्चे कक्षा में रूचि न रखने वाले, आक्रामक, कम मिलनसार, कमजोर अपनी शक्तियों को शैतानियों में लगाने वाले होते हैं ।

स. विद्यालय के अनुशासन का प्रभाव - यदि विद्यालय में कड़ा अनुशासन और भय का वातावरण है तो बालक के विकास पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । विद्यालय का वातावरण यदि प्रजातांत्रिक भावना को प्रोत्साहन देने वाला है तब छात्र और शिक्षक के सम्बन्ध मधुर बनते हैं और एक दूसरे के लिये आदर की भावना उत्पन्न होती है ।

द. शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव - यदि शिक्षक में संवेगात्मक अस्थिरता है तो वह बालक से उचित व्यवहार नहीं कर पाता तथा उसका व्यवहार कठोर व पक्षपातपूर्ण होता है । वह बालकों को छोटी-छोटी बातों पर दण्ड देता या डाँटता है इससे बालक उग्र आक्रामक व उदण्ड बन जाते हैं या सदा भयभीत रहते हैं । इसके विपरीत यदि सुसमायोजित व्यक्तित्व वाला शिक्षक है

तो वह बच्चों की समस्याओं को समझने का प्रयास करेगा, प्रत्येक कार्य को सुचारू रूप से करने में विश्वास रखता है । ऐसा शिक्षक बच्चों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रखता है ।

ऐसे शिक्षक की कक्षा के बच्चे सुचारू रूप से काम करने वाले, नियमों का पालना करने वाले व बड़ों का आदर करने वाले होते हैं । इस प्रकार शिक्षक अपने व्यक्तित्व से बच्चों को प्रभावित करता है ।

य. सहपाठियों व संगी साथियों का प्रभाव (Peer group) - साथियों द्वारा स्वीकृत होना भी एक महत्वपूर्ण कारण है जो बालक के विकास को प्रभावित करता है ।

प्रत्येक बाल - समूह के कुछ बच्चे साथियों द्वारा स्वीकृत किये जाते हैं, और कुछ से उपेक्षा मिलती है । सामान्यत: जो बच्चे बहुसंख्यक धार्मिक समूह से सम्बन्धित होते हैं और जिनका सामाजिक व आर्थिक स्तर अच्छा होता है उनको समूह के साथी स्वीकारते हैं । संगी-साथियों द्वारा स्वीकृत होना या अस्वीकृत होना दोनों ही बालक के विकास को प्रभावित करते हैं । यदि बच्चा समूह द्वारा स्वीकारा जाता है तो वह अपने को सकारात्मक रूप में मूल्यांकित करता है । वह अपने को समूह का महत्वपूर्ण अंग समझता है । यदि शिक्षक व छात्रों द्वारा निरंतर स्वीकृति मिलती रहती है तब बच्चें का आत्म प्रत्यय (self-concept) बढ़ता है ।

यदि शिक्षक व संगी साथियों से बालक को स्वीकृति नहीं मिलती तब बच्चा अपने को सकारात्मक रूप से मूल्यांकित नहीं कर पाता । शिक्षक तथा सहपाठी दोनों की स्वीकृति न मिलने पर बच्चे में हीन भावना विकसित हो जाती है । उसमें विद्रोह की भावना भी अपनी पराकाष्ठा पर होती है । ऐसे बालक स्कूल में भागने लगते हैं और शिक्षा प्राप्त करना बीच में ही छोड़ देते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक वातावरण बालक के विकास को पूर्ण रूप से प्रभावित करता है ।

र. धार्मिक. नैतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण - धार्मिक संस्थाएँ तथा उनके साथ बच्चे का सम्बन्ध उसके विकास को प्रभावित करते हैं । धर्म के साथ ही नैतिकता जुड़ी रहती है जो सम्मिलित रूप से नैतिक विकास पर प्रभाव डालते हैं ।

प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है । बच्चा इस संस्कृति से प्रभावित होता है । परम्परात्मक अथवा प्रगतिशील संस्कृति के प्रभाव भी बच्चे के दृष्टिकोण को परम्परागत अथवा प्रगतिशील बना देते है ।

5.6.0 सारांश (Summary)

समग्र पाठ के अध्ययन के पश्चात् यह विदित होता है कि विकास केवल अभिवृद्धि तक

ही सीमित नहों है, अपितु इसमें परिपक्वता का निश्चित लक्ष्य छिपा होता है । जिसका उद्देश्य बालक का सर्वागीण विकास करना होता है । बालक का विकास मुख्यत: शारीरिक, गतिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक व चारित्रिक रूप से उसे परिपक्वता प्रदान करने के लिये समयानुरूप होना चाहिए । बालक के विकास को यद्यपि बहुत से तत्व प्रभावित करते हैं परन्तु पित्रैकीय जैवकीय तथा सामाजिक तत्वों का उसके विकास पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है । अध्यापकों तथा अभिभावकों का यह दायित्व है कि वह विकास के विभिन्न प्रकारों व दिशाओं को ध्यान में रखते हुए बच्चे के व्यक्तित्व के बहुआयामी विकास के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करें ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. एक बालक के जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ कौन-कौन सी आती हैं?
2. डिम्बावस्था में गर्भस्थ शिशु में क्या परिवर्तन आते हैं'?
3. भ्रूणीय अवस्था में डिम्ब कितनी पर्तों में बँटता है?

5.7.0 संदर्भ (Summary)

1. Blairs, GM JOhes Rs (1967) : educational Psychology the Musicals Co. Nesw York Simpson RA.
2. Hurlock, E.B. (1978): Child Development-Megraw Hill Co. New York.
3. Report of Symposium ofChild Development NCERT 1964,
4. Thompson G.G (1965): Child Psycholocy-Times of Indian Press Bombay.

इकाई-8

बालक का शारीरिक एवं गामक विकास (Physical and Moter Development of the Child)

इकाई की रूपरेखा

6.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

6.2.0 प्रस्तावना

6.3.0 बालक के विकास की अवस्थाएँ

6.4.0 बालक का विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास

गर्भाधान काल में शारीरिक विकास

शैशवाकाल में शारीरिक विकास

बाल्याकाल में शारीरिक विकास

किशोराकाल में शारीरिक विकास

6.5.0 शारीरिक विकास की विशेषताएँ

6.6.0 शारीरिक विकास के विशिष्ट पक्षों में परिवर्तन

6.7.0 बालक का विभिन्न अवस्थाओं में गामक विकास

गर्भाधान में गामक विकास

शैशवाकाल में गामक विकास

बाल्याकाल में गामक विकास

किशोराकाल में गामक विकास

6.8.0 गामक क्रियाओं में लैंगिक भिन्नता

6.9.0 कुछ विशिष्ट गामक क्रियाओं का विकास

6.10.0 सारांश

6.11.0 संदर्भ ग्रन्थ

6.2.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

जन्म के समय बालक एक अबोध शिशु होता है जो पूर्णतया: दूसरों पर निर्भर रहता है । समय के साथ यही बालक अवस्थाओं की विभिन्न सोपानों को चढ़ता हुआ पूर्णता को प्राप्त होता है । एक अबोध शिशु जीवन के इस रंगमंच पर शारीरिक व मानसिक रूप से पूर्णत: कैसे प्राप्त होती है, शिक्षार्थियों को इसका अधिगम करवाना ही इस इकाई का लक्ष्य है ।

इस इकाई की समाप्ति पर आप इस योग्य होने चाहिये कि:

- बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को जान सकें ।
- बालक के विभिन्न अवस्थाओं में हो रहे शारीरिक विकास से परिचित हो सकें ।
- गामक विकास का अर्थ समझ सकें ।
- गामक विकास की प्रक्रिया से परिचित हो सकें ।

6.2.0 प्रस्तावना (Intoduction)

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य एक मन: शारीरिक प्राणी है । परन्तु मनुष्य अपनी शैशवावस्था में पूर्णत दूसरों पर निर्भर रहता है- इस अवस्था में समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए न उनका अपेक्षित शारीरिक विकास होता है और न मानसिक । मनुष्य जो बाद में पूरे विश्व को रास्ता दिखाता है- उसमें शैशवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में माँ की ऊँगली पकड़कर चलने की भी क्षमता नहीं होती है । संक्षेप में जब शिशु इस संसार में अवतीर्ण होता है तो वह शारीरिक, गतिक एवं मानसिक रूप से अविकसित होता है तथा धीरे-धीरे उम्र के साथ-साथ उसमें शारीरिक-मानसिक व गतिक परिपक्वता आती है । बालक जो प्रारम्भ में अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो पाता है वही युवा होने पर पहाड़ों को भी अपने पैरों से लाँघने की क्षमता रखता है । अत: इस अध्याय में यह अध्ययन करने का प्रयास किया गया है कि एक बालक में यह परिवर्तन किस प्रकार होते हैं तथा उसका शारीरिक एवं गतिक विकास उसके जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार होता है ।

6.3.0 बालक के विकास की अवस्थाएँ (Different Stageset Child Development)

एक बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं- इन विभिन्न अवस्थाओं के सोपानों को चढ़ता हुआ ही बालक पूर्णता को प्राप्त होता है । इसके वर्गीकरण में यद्यपि मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है- पर सुविधा के आधार पर हम यहाँ कुछ मनोवैज्ञानिकों का वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

रॉस के अनुसार एक बालक के जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ निम्न होती हैं

(अ) शैशवावस्था 1 से 3 वर्ष

(ब) आरम्भिक बाल्यावस्था 3 से 6 वर्ष

(स) किशोरावस्था 12 से 18 वर्ष

कॉलसनिक के अनुसार एक बालक की विकास प्रक्रिया के निम्न चरण होते हैं-

(अ) गर्भाधान से जन्म तक (पूर्व जन्मकाल)

(ब) शैशव (जन्म से 21 या 28 दिनों तक)

(स) आरम्भिक शैशव (1 महीने से 15 महीनों तक)

(द) उत्तर शैशव (15 महीनों से 30महीनों तक)

(य) पूर्व बाल्यावस्था (2) वर्ष से 5 वर्ष तक)

(र) मध्य बाल्यकाल (5 वर्ष से 9 वर्ष तक)

(ल) उत्तर बाल्यकाल (9 वर्ष से 12 वर्ष तक)

(व) किशोरावस्था (12 वर्ष से 21 वर्ष)

अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने निम्न वर्गीकरण के आधार पर अपना अध्ययन किया है

(अ) गर्भाधान काल - भ्रूणिक - 0 से 14 दिनों तक

- भ्रूण - 15 दिनों से 70 दिनों तक

- भ्रू - 70 दिनों से जन्म तक

(ब) बाल्यकाल - शैशवावस्था - जन्म से 3 वर्ष तक

– पूर्ण बाल्यावस्था - 3 से 6 वर्ष तक

– उत्तर बाल्यावस्था - 6 से 12 वर्ष तक

(स) किशोरावस्था - 12 से 18 वर्ष तक

(द) परिपक्वावस्था - 18 वर्ष से ऊपर

प्रस्तुत अध्ययन में बालक के शारीरिक तथा गतिक विकास का अध्ययन करने के लिए बालक के विकास के निम्न सोपानों को आधार बनाया गया हैं ।

(अ) गर्भाधान काल

(ब) शैशवाकाल

(स) बाल्यकाल

(द) किशोरावस्था

6.4.0 बालक का विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास (Physical Development of Child in different stages)

सामान्यत: संसार में बालक का अस्तित्व उसके जन्म के पश्चात् माना जाता है परन्तु वास्तव में जीवन का आरम्भ जन्म से नहीं अपितु स्त्री के अण्ड में पुरूष के शुक्र संयोग से आरम्भ होता है । आइए सर्वप्रथम हम विचार करें कि पूर्व जन्मकाल अथवा भ्रूणावस्था में बच्चे का शारीरिक विकास किस प्रकार होता है ।

6.4.1 गर्भाधान काल या पूर्वजन्मकाल (Pre-natural period) -

मानव भ्रूण को पूर्ण होने में लगभग 9 माह 10 दिन का समय लगता है । यद्यपि शिशु का जन्म एक सम्पूर्ण एवं सतत् प्रक्रिया का परिणाम है, फिर भी अध्ययन तथा विशिष्टता की दृष्टि से इस काल को तीन भागों में बांटा जा सकता है-

(अ) भ्रूणिक या डिम्बावस्था -

जीवन का आरम्भ एक निशिक्त अण्ड (Fertilized ovum) से प्रारम्भ होता है । यह प्रोटोरक्तान्त का सूक्ष्म धबा होता है जिसकी लम्बाई 1 इंच का 2000 वीं भाग होती है । सामान्यत: **डिम्बावस्था** की अवधि 0 से 14 दिनों तक मानी जाती है- इस अवस्था में कोशों का विभाजन होता रहता है तथा जाइगोट (Zygoote) में परिवर्तन होने लगते हैं । इस अवस्था में जाइगोट डिम्बवाहिनी नालिका द्वारा गर्भाशय में आकर उसकी दीवार से चिपक जाता है । चिपकने के पश्चात् वह माँ के गर्भ से खुराक लेना भी प्रारम्भ कर देता है । इसके पश्चात् शिशु की अगली अवस्था प्रारम्भ होती है ।

(ब) भ्रूणीय अवस्था

यह अवस्था गर्भाधान की दूसरी अवस्था है जिसका समय 15 दिनों से 70 दिनों तक माना गया है, तथा इन्हीं दिनों में डिम्ब शिशु का रूप लेने लगता है तब यह (डिम्ब) तीन परतों में बँटता है ।

डिम्ब की परतें

Ectoderm	Mesoderm	Endoderm
से	से	से
निर्माण होता है	निर्माण होता है	निर्माण होता है

खाल आदि	बात	दांत	नाखून आदि	मांसपेशियाँ त्वचा के आंतरिक भाग तथा कुछ भीतरी अंग	स्त्राव संस्थान	ग्रंथियां थाइमस ग्रंथियां।	फेफड़े	लीवर	पाचन	थाइराइड

भ्रूणीय अवस्था में ही माँ के गर्भ में एक पानी की थैली बनती है जो भ्रू के लिए रक्षा कवच का काम करती है । इसी काल में माता के खून में आक्सीजन, पानी, भोजन, आदि प्राप्त करने हेतु डिम्ब रज्जु(placenta) का भी विकास होता है । इस अवस्था के अंत में भ्रूण की लम्बाई (इंच से 2 इंच तक तथा भार 2 ग्राम हो जाता है तथा मुख के सभी अंग प्रकट होने लगते हैं- जबकि शरीर के अन्य अंगों का विकास कम होता है । संक्षेप में दूसरे माह में यह गर्भस्थ शिशु का रूप धारण कर लेता है ।

(स) भ्रूणावस्था - यह गर्भाधान काल की अंतिम अवस्था है । 80 दिनों के गर्भ की लम्बाई करीब 3 इंच तथा वजन = औंस होता है - जबकि 240-245 दिनों में इसकी लम्बाई 16 से 18 इंच एवं भार 4 से 5 पौण्ड होता है तथा जन्म के समय उसकी लम्बाई लगभग 20 इंच तथा वजन सात से साढ़े सात पौण्ड के बीच होता है ।

चार-पाँच महीने का भ्रूण साँस लेने के योग्य हो जाता है- तथा माता उसकी गतिशीलता का अनुभव करने लगती है । छठे-सातवें महीने में भ्रूण दूध चूसने, मुट्ठी बंद करने, चीखने, सांस लेने आदि की सहज क्रियाओं के लिये तैयार हो जाता हैं इरा अवस्था में संवेदनशीलता, श्रावण, पीड़ा, स्वाद, गंध, दृष्टि तथा संतुलन बनाए रखने वाली मांसपेशियों का निर्माण होता है तथा एक समग्र शिशु लगभग 280 दिनों की गर्भावस्था के पश्चात् इस अनोखे संसार में जन्म लेता है ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. एक बालक के जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ कौन-कौन सी आती हैं?
2. डिम्बावस्था में गर्भस्थ शिशु में क्या परिवर्तन आते हैं'?
3. भ्रूणीय अवस्था में डिम्ब कितनी पर्तों में बँटता है?

6.4.2 शैशवाकाल में शारीरिक विकास

जन्म के समय बालक का विकास जटिल हो चुका होता है तथा वह अनेक उत्तेजकों के प्रति प्रतिक्रिया करने के लिए इतना विकसित नहीं होता है कि वह अपनी सभी शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी कर सकें । यद्यपि इस अवस्था में शारीरिक विकास काफी तेजी से होता है- जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है-

शैशवाकाल में विभिन्न अवस्थाओं (तालिका।)
में बालक की लम्बाई

उम्र	लम्बाई
जन्म के समय	19-20 इंच
चार मास	23-24 इंच

आठ मास	26-28 इंच
एक वर्ष	29-30 इंच
दो वर्ष	31 -33 इंच
पाँच वर्ष	38-40 इंच

इसके उपरांत लम्बाई की गति काफी धीमी हो जाती है । लम्बाई की तरह भार वृद्धि भी जीवन के आरम्भ काल में सर्वाधिक होती है । जन्म के समय शिशु का भार अधिकतर2500 से 3000 ग्राम के आस-पास होता है । जन्म के बाद भार हल्का सा (6 से 8 औंस) कम हो जाता है पर एक महीने में ही वह इसकी क्षतिपूर्ति कर लेता है । चार महीने में उसका भार जन्म का लगभग दुगना या लगभग 14 पौंड तथा एक वर्ष में लगभग तिगुना अर्थात् 2। पौंड के आस-पास हो जाता है । शैशवाकाल के दूसरे तथा तीसरे वर्षों में 1 $\frac{3}{8}$से 2¼ किग्रा. प्रतिवर्ष तक की वृद्धि होती है । इसके उपरांत भारवृद्धि की गति काफी धीमी होती है । संक्षेप में भार वृद्धि का वक्र लम्बाई वृद्धि के वक्र से काफी मिलता-जुलता है ।

जब बालक इस धरा पर अवतीर्ण होता है तब उसकी हड्डियाँ काफी कोमल व लचीली होती हैं तथा इनकी संख्या एक सामान्य बालक में 270 होती है । जन्म के लगभग 185-190 दिनों के बाद बालक के दूध के दांत निकलने लगते हैं । शैशवाकाल में मस्तिष्क, भुजाओं, टाँगों का विकास पहले वर्ष की तुलना में दुगना होता है । जन्म के समय शिशु के मस्तिष्क का भार लगभग 350 ग्राम होता है- वहीं दूसरे वर्ष बढ़कर 650-725 ग्राम तक हो जाता है । थोड़े शब्दों में इस अवस्था में शिशु का चहुँमुखी विकास बड़ी तीव्र गति से होता है तथा इस गति से विकास जीवन की दूसरी अवस्थाओं में नहीं होता है।

6.4.3 बाल्यकाल में शारीरिक विकास

बाल्यकाल में बालक का शारीरिक विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है और 5 से 8 वर्ष के बीच बालक की लम्बाई लगभग 2 से 3 इंच के बीच बढ़ती है । जबकि 11-12 वर्ष की अवस्था में लम्बाई में पहले की अपेक्षा अधिक तीव्रगति से वृद्धि होती है । इस अवस्था में शारीरिक विकास में लिंग का काफी प्रभाव रहता है तथा 10 से 14 वर्ष की अवस्था में लड़कियों का विकास लड़कों की अपेक्षा तीव्र गति से होता है । इस सम्बन्ध में केलीफोर्निया के विद्यालयों के छात्रों पर एक अध्ययन किया गया जो बाल्यावस्था के विभिन्न आयु स्तरों पर लम्बाई और भार (लिंग भेद सहित) में आए परिवर्तनों पर प्रकाश डालती है ।

तालिका-2

बाल्याकाल में विभिन्न अवस्थाओं में लैंगिक आधार पर शारीरिक विकास

आयु (वर्षा में)	लम्बाई (इंचों में)		भार (पौंड में)	
	बालक	बालिकाएँ	बालक	बालिकाएँ
5	39-47	39-47	34-53	33-53
6	39-50	39-50	34-63	33-63
7	41-53	41-53	37-73	36-73
8	42-55	41-55	39-78	36-81

9	44-58	45-57	42-91	43-89
10	47-60	46-60	48-101	45-104
11	48-63	48-62	50-117	49-120
12	50-65	50-65	55-128	56-137

Source- Krogman, W.H.: A handbook of the measurement and interpretation of height and weight in the growing child, monographs of the socity for research in development 48:41, Table XII

उम्र के बढ़ने के साथ-साथ सबसे महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन मस्तिष्क, और सम्पूर्ण नाड़ी मण्डल की परिपक्वता तथा मांसपेशियों पर नियंत्रण है । 8 वर्ष की आयु में मांसपेशियों का भार शरीर का 27% हो जाता है जबकि वजन की दृष्टि से मस्तिष्क, बाल्यावस्था में पूर्णता प्राप्त कर लेता है तथा 10 वर्ष की अवस्था में मस्तिष्क का वजन सारे शरीर के वजन का लगभग 178 हो जाता है । पूर्व बाल्यावस्था में टाँगें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं तथा शरीर की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ उनका 3. 8 का अनुपात रहता है । इस अवस्था में शारीरिक शिक्षा अत्यधिक उपयोगी है तथा इस काल में बालकों के भोजन, पोषण, खेल और व्यायाम पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

6.4.4 किशोराकाल में बालक का शारीरिक विकास.

स्टेनले हॉल ने किशोरावस्था को तनाव, तूफान, संघर्ष की अवस्था कहा है । व्यक्तित्व के विकास की यह सबसे जटिल अवस्था है तथा इस काल में शारीरिक रूप से बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं । वास्तव में किशोरावस्था शब्द का उद्भव लैटिन भाषा के एडोलेसेन्स (Adelescence) शब्द से हुआ है । जिसका वास्तविक अर्थ है- परिपक्वता का आना या प्रजनन क्षमता का विकसित होना । सही मायने में किशोरावस्था का सबसे प्रमुख लक्षण प्रजनन क्षमता विकसित होना ही है ।

किशोरावस्था स्वास्थ्य का सबसे अनुकूलतम काल है- इस काल में मृत्यु दर न्यूनतम होती है । इस अवस्था में होने वाले परिवर्तन पीयूष तथा जनन ग्रन्थियों के कारण होते हैं तथा बालिकाओं में यौवनारम्भकाल बालकों की अपेक्षा पहले आता है और कम समय में पूर्ण हो जाता है । इस समय में होने वाले परिवर्तनों को सामान्यत: दो भागों में बाँटा जा सकता है । (1) आन्तरिक (2) बाहय । आतरिक परिवर्तनों के रूप में शरीर के अंदर परिवर्तन होते हैं जैसे प्रजनन क्षमता का विकास तथा बाहय परिवर्तनों के रूप में शरीर के बाहय भाग में परिवर्तन होते हैं जैसे मूँछे आना, कंधे चौड़े होना आदि । इस काल में सामान्यत: निम्न शारीरिक परिवर्तन दिखाई देते हैं:

- प्रजनन क्षमता का विकास
- लैंगिक दृष्टि से परिपक्व होने पर बालिकाएँ बालकों की अपेक्षा अपने वयस्क आकार के काफी समीप होती है ।
- शारीरिक परिपक्वता की ओर बढ़ने पर लड़कों का शरीर आयताकृतिक (Mesomorphic) होता जाता है जबकि लड़कियों का गोलाकृति (Emdomorphic)
- इस अवस्था के मध्य काल के बाद लड़के लड़कियों से अधिक लम्बे तथा भारी होते हैं तथा इनके चेहरों में काफी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है ।

– आवाज बदल जाती है । लड़कों की आवाज भारी तथा लड़कियों की सुरीली हो जाती है ।
– चेहरे तथा शरीर के विभिन्न स्थानों पर बाल उगने शुरू हो जाते हैं तथा बालिकाओं के नितम्बों तथा स्तनों का विकास होता है ।

संक्षेप में इस अवस्था में बालक शारीरिक दृष्टि से लगभग पूर्ण हो जाता है । शारीरिक शिक्षा के अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों के शारीरिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए उचित शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था करें ताकि लड़के-लड़कियाँ दोनों भावी जीवन में अधिक सफल हो सकें।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. शैशवाकाल में शारीरिक विकास तेजी से होता है ? इसकी पुष्टि में उदाहरण दें ।
2. किशोरावस्था को तनाव, तूफान, एवं संघर्ष की अवस्था क्यों कहा जाता' है ?
3. किशोरावस्था में बालकों में मुख्य रूप से क्या शारीरिक परिवर्तन होते हैं ?
4. सिद्ध करो कि बाल्यावस्था में शैशवावस्था से शरीर का विकास धीमे होता है ।

अभी आपने विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर हो रहे शारीरिक परिवर्तनों का अध्ययन किया । आइए अब हम विशिष्ट अध्ययन हेतु शारीरिक विकास के कुछ विशिष्ट पक्षों तथा विशेषताओं पर विचार करें ।

6.5.0 शारीरिक विकास की विशेषताएँ (Characteristics of Physical Development)

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शारीरिक विकास की कुछ विशिष्टताएँ हैं । संक्षेप में इन विशेषताओं के निम्न मुख्य बिन्दु हो सकते हैं -

(अ) सामान्यत: शारीरिक विकास प्रत्येक अवस्था में एक समान गति से नहीं होता है ।

(ब) शारीरिक विकास शिरोपुच्छीय (Cephalocandal) तथा समीपों दूरस्थ (Proximodistal) होता

(स) बालक तथा बालिकाओं के शारीरिक विकास में भिन्नता होती है ।

(द) विभिन्न शारीरिक गुण एक-दूसरे के प्रतिलोमी होने की अपेक्षा सम्बन्धित अधिक होते हैं ।

(य) शारीरिक विकास में व्यक्तिगत भिन्नताएँ भी पाई जाती हैं ।

6.6.0 शारीरिक विकास के विशिष्ट पक्षों में परिवर्तन

इसके अन्तर्गत हम लोग शारीरिक लम्बाई, भार, शरीर के विभिन्न अंगों का अनुपात, हड्डियों, मांसपेशियों तथा वसा में वृद्धि आदि के सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से अध्ययन करेंगे तथा शारीरिक विकास के इन विशिष्ट पक्षों को आधार मान कर के अपने विचारों को स्पष्ट करेंगे ।

(अ) लम्बाई वृद्धि : तालिका दो में बाल्यावस्था में हो रही लम्बाई में वृद्धि को लिंगानुसार तुलनात्मक रूप से दिखाया गया है । बालक की लम्बाई शैशवावस्था में बड़ी तेजी से बढ़ती है । (देखें तालिका एक) परन्तु पांच वर्षों के बाद यह धीमी पड़ जाती है तथा किशोरावस्था के पहले चरण में लम्बाई में थोड़े समय में फिर तेजी से वृद्धि होती है । सामान्यत: 11 से 13 वर्ष के

मध्य में लड़कियों की औसत लम्बाई लड़कों से अधिक पाई जाती है परन्तु 13-14 वर्ष बाद लड़के अधिक लम्बे हो जाते हैं (जैसा कि निम्न ग्राफ से स्पष्ट है) ।

स्त्रोत : शारीरिक क्रिया तथा आतरिक संरचना का विकास द्वारा दवे एवं रायजादा पेज 91 तथा तालिका 2 के आधार पर (विभिन्न वर्षों में लिंगानुसार ऊंचाई में अंतर का ग्राफ)

विभिन्न बालकों में लम्बाई में विभिन्नता का कारण वंशक्रम, भौतिक पर्यावरण जातीय प्रभाव, सामाजिक, आर्थिक कारक, बीमारियाँ आदि होते हैं । एक प्रौढ व्यक्ति की लम्बाई के सम्बन्ध में अनुमान लगाने के लिए विद्वानों ने विभिन्न विधियाँ सुझाई है । यद्यपि इनमें कोई विधि पूर्णत: सही नहीं है फिर भी मुख्य विधियों का संक्षेप में यहाँ वर्णन किया जा रहा है ।

(अ) हाथ तथा कलाइयों की हड्डियों के आधार पर - हाथ तथा कलाइयों की हड्डियों के एक्सरे चित्र द्वारा कंकाल आयु तथा उसकी ऊंचाई को अब काफी शुद्धता के साथ अनुमानित किया जाने लगा है ।

(ब) परिपक्वता की गति के आधार पर - जो बच्चे बालपन में ज्यादा परिपक्व होते हैं वह अपने बालपन की लम्बाई के अनुपात से थोड़ा कम विकसित होते हैं । जो बच्चे थोड़ी देर से परिपक्व होते हैं वे बालपन की लम्बाई की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं ।

(स) माता-पिता की ऊंचाई के आधार पर. बालक अपने आधे से अधिक गुणों को अपने माता-पिता से प्राप्त करता है । सोरेन्सन ने इसी आधार पर बालक की प्रौढ़ अवस्था की लम्बाई का अनुमान लगाने का प्रयास किया है तथा निम्न सूत्र दिए ।

सूत्र एक: बालक की अनुमानित वयस्क ऊंचाई

$$\frac{\text{पिता की ऊंचाई} + \text{माँ की ऊंचाई का } 11}{2}$$

उदाहरण : मान लीजिए कि पति-पत्नी की लम्बाई क्रमश: 68 तथा 62 इंच है तो बालक की वयस्क ऊंचाई होगी ।

$$\frac{68 + 62 \quad 110}{\frac{100}{2}} = 68.1$$

सूत्र दो – -बालिका की अनुमानित वयस्क ऊंचाई

$$\frac{\text{माँ की ऊंचाई} + \text{पिता की ऊंचाई का } 92}{2}$$

उदाहरण :

पति का लम्बाई = 68 इंच

पत्नी की लम्बाई = 62 इंच

इनकी बालिका की वयस्क लम्बाई = ?

लम्बाई =

$$\frac{62 + 58 \quad 92}{\frac{100}{2}} = 62.28$$

(ब) भार वृद्धि : सामान्यत: लम्बाई तथा भार वृद्धि में समानुपाती सम्बन्ध है अर्थात् यदि लम्बाई में तेजी से वृद्धि हो रही हो तो भार मे भी तेजी से वृद्धि होनी चाहिए । परन्तु जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक लम्बाई केवल 3 गुना बढ़ती है जबकि भार लगभग 20 गुना बढ़ता हैं लिंग भेद का भी भार वृद्धि पर प्रभाव रहता है । सामान्यत: 12 वर्ष तक लड़के लड़कियों से वजन में भारी रहते हैं पर 12 वर्ष से 15 वर्ष के बीच में लड़कियों का वजन लड़कों से ज्यादा हो जाता है । जबकि प्रौढ़ावस्था में युवक-युवतियों से लगभग 11 किग्रा. भारी होते हैं । भार वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों में शारीरिक गठन, अस्थि तथा पेशीय ऊतकों में वृद्धि मनोदैहिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों का काफी प्रभाव रहता है । साम्यरूप व्यक्ति की लम्बाकार व्यक्ति की अपेक्षा अधिक भारी रहने की सम्भावना रहती है । प्रौढ़ व्यक्ति के वजन का एक मुख्य कारण अस्थि तथा पेशियों ऊतकों में वृद्धि है । शैशवावस्था में यद्यपि अधिक भारवृद्धि वसा ऊतकों (Fat tissues) के कारण होती है क्योंकि इस समय बच्चे के पीने के दूध में वसा की मात्रा काफी पाई जाती है- परन्तु शैशवावस्था के पश्चात् सम्पूर्ण भार में वसा ऊतकों का केवल 2। से 29% योगदान रहता है जबकि 10 से 12 वर्ष की अवस्था में सम्पूर्ण भार में पेशियों का प्रतिशत 25 तथा प्रौढ़ावस्था में पेशियों का भार सम्पूर्ण भार का 45: होता है ।

(स) शरीर के कुछ अंगों का शरीर के साथ अनुपात.

(I) सिरानुपात : सिर का पूरे शरीर की लम्बाई के साथ जन्म के समय प्रतिशत लगभग 22 होता है जबकि प्रौढ़ अवस्था में सिर से शरीर की लम्बाई लगभग 8 गुना अधिक होती है । गर्भ में शिशु के सिर का विकास अन्य अंगों की तुलना में अधिक होता है । 4,10 तथा 15 वर्ष की आयु में सिर क्रमश: अपने सम्पूर्ण विकसित भार का 75%,85% तथा 95% भार प्राप्त कर लेता है । सिर का पृष्ठीय क्षेत्रफल भी आयु के साथ शारीरिक अनुपात में घटता बढ़ता रहा है । जन्म के समय पृष्ठीय क्षेत्रफल पूरे शरीर का 21%,5 वर्ष पर 139' 12 वर्ष पर 10% तथा 18 वर्ष पर केवल 80%रह जाता है।

(II) धड़ानुपात. जन्म के समय शिशु का सिर अन्य अंगों की तुलना में काफी बड़ा होता है: अत: उसका शारीरिक संतुलन नहीं बन पाता है इस संतुलन को बनाने के लिए जन्म के बाद धड़ का विकास काफी तेजी से होता है तथा प्रौढ़ व्यक्ति में धड की लम्बाई सम्पूर्ण शरीर की लम्बाई का होती है । जन्म के समय शिशु की गर्दन काफी छोटी होती है । परन्तु 5 वर्ष की अवस्था में आते-आते उसकी गर्दन संतोष जनक रूप से लम्बी होने तथा कंधे चोडे होने से उसे शरीर संतुलन में काफी सहायता मिलती है । जीवन के आरम्भिक काल में लम्बाई की अपेक्षा धड़ के अनुप्रस्थ व्यास तथा परिधि में अधिक वृद्धि होती है । धड़ के विकसित होने के साथ-साथ छाती, गुर्दे तथा कूल्हे की हड्डियों का भी विकास होता है । जिन बालक-बालिकाओं में प्रजनन परिपक्वता काल बाद में आता है उनका धड़ अधिक सुडोल विकसित होता है ।

(III) भुजाएँ तथा टाँगे. नवजात के हाथ पैर ऊंगलियाँ काफी छोटी होती है । हाथ पैरों का विकास यौवनारम्भ के पास काफी तीव्रता के साथ होकर 14-15 वर्ष की अवधि में अपनी परिपक्वता को प्राप्त होता है । जन्म से दो वर्षों में हाथों में 60 से 75% तक वृद्धि होती है जबकि 8 वर्ष में बाहें जन्म से 2 गुना लम्बी हो जाती है । जन्म

से समय टाँगों का शरीर की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ 3/8 का अनुपात रहता है जो प्रौढ़ावस्था में 4/8 हो जाता है । टाँगों की लम्बाई किशोरावस्था में जन्म की चौगुनी तथा प्रौढ़ावस्था में पाँच गुनी हो जाती है । प्राय: सभी अवस्थाओं में बालक के पैर बालिकाओं के पैरों की अपेक्षा बड़े होते हैं तथा व्यक्ति की ऊँचाई तथा पैरों की लम्बाई में एक सकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है

(द) हड्डियों का विकास : जन्म के समय शिशु में लगभग 270 हड्डियाँ होती है पूर्णत: आने पर हड्डियों की संख्या 350 हो जाती है । तथा परिपक्वावस्था में कुछ हड्डियों का लोप हो जाता है और इनकी संरचना 206 रह जाती है । नवजात शिशु की हड्डियाँ स्पंजी होती है तथा गति करने वाली हड्डियों को सम्बन्धित करने वाली झिल्ली (Ligament) और जोड़ ठीक प्रकार से बंधे नहीं होते हैं । हड्डियों के कठोर होने की प्रक्रिया जन्म के बाद से शुरू होकर यौवनारम्भ काल तक चला करती है जिसमें कौल्शियम, खनिज लवण तथा फास्फोरस की प्रमुख भूमिका रहती है । शरीर के विभिन्न भागों में हड्डियों के बीच का अंतर कालांतराल (Fontunelles) लगभग 18 मास में भर जाता है परन्तु लम्बी हड्डियाँ किशोरावस्था में जाकर कठोर होना शुरू होती हैं । प्राय: यह पाया गया है कि बालिकाओं में हड्डियों का विकास बालकों से अधिक तीव्रगति से होता है ।

(य) माँसपेशियों तथा वसा में वृद्धि. बालक के भार में अधिक वृद्धि माँसपेशियों तथा वसा में वृद्धि होने के कारण होती है । बाल्यावस्था में माँसपेशियों में जल की मात्रा अधिक होती है । परन्तु उम्र के साथ- साथ धीरे-धीरे जल की मात्रा कम होने लगती है और ठोस तंतुओं का विकास होने लगता है । मांसपेशियों की वृद्धि जन्म से लेकर परिपक्वता काल तक लगभग 40 गुना होती है । जन्म के समय शरीर के भार का 24%,15 वर्ष में लगभग 33% तथा प्रौढावरथा के आरम्भिक काल में लगभग 45% मांसपेशियों का योगदान रहता है । जन्म के समय ' इन मांसपेशियों में पानी की मात्रा लगभग 72% तथा ठोस पदार्थ एवं प्रोटीन लगभग 25% होते हैं जबकि 21 - 22 वर्ष की अवस्था में पानी का अनुपात लगभग 66% तथा ठोस तत्वों की मात्रा लगभग 34% होती है । मांसपेशियां हमारे शरीर की हड्डियों तथा उनके विभिन्न अंगो को यथास्थान रहने में काफी सहायक होती है तथा इनके बिना हमारा चलना-फिरना, उठना-बैठना मुश्किल होगा । वसा में वृद्धि जन्म से 270 दिनों तक बहुत तेजी से होती है । इसके पश्चात् 13 से 15 वर्ष की अवस्था में इनमें एक बार पुन: स्फुरण होता है जो बाद में घटने लगता है जिसके कारण किशोरावस्था में शरीर दुबला व कोमल होता है ।

(र) नाड़ी संस्थान तथा मस्तिष्क का विकास : शैशवाकाल में नाड़ी संस्थान का विकास काफी तीव्र गति से होता है, परन्तु नाड़ी संस्थान का विकास गर्भावस्था में भी काफी होता है तथा नाड़ी कोशिकाओं की संख्या तथा आकार में वृद्धि होती है । लेकिन जन्म के पश्चात् विकास में कोशिकाओं की संख्या में कोई वृद्धि नहीं होती है बल्कि जन्म से प्राप्त अपरिपक्व कोशिकाएँ शनै: शनै: केवल परिपक्व होती है ।

मस्तिष्क का भी तीव्र विकास शैशवाकाल में होता है तथा 6 वर्ष की अवस्था तक मस्तिष्क का विकास हो जाता है । जन्म के समय मस्तिष्क का भार लगभग 350 ग्राम होता है और परिपक्व अवस्था में व्यक्ति के मस्तिष्क का भार 1260 से 1400 ग्राम के बीच होता है । शिशु के जन्म लेते समय मस्तिष्क का भार सम्पूर्ण शरीर के भार 1/8 होता है, फिर धीरे-धीरे वह अनुपात कम होता रहता है । तथा 10 वर्ष में यह अनुपात कम होकर 1/18,15 वर्ष में 1/30

तथा प्रौढ़ व्यक्ति में केवल 1/40 रह जाता है । प्रत्यक्ष रूप से 8 वर्ष की अवस्था तक मस्तिष्क का विकास पूर्ण हो जाता है । परन्तु उसका आंतरिक विकास अत्यंत मंद गति से चला करता है ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. शारीरिक विकास की कुछ प्रमुख विशेताओं को लिखिए ?
2. यदि किसी माँ की ऊंचाई 60 इंच तथा पिता की ऊंचाई 66 इंच है तो सेरेन्सन के सूत्र के अनुसार इन दोनों के वयस्क पुत्र की ऊंचाई क्या होगी?
3. बालक बालिकाओं में विभिन्न वर्षों में लिंगनुसार ऊंचाई में अंतर स्पष्ट कीजिये ।
4. बालक के सिर के विकास का वर्णन कीजिये ।
5. शारीरिक विकास में लम्बाई तथा भार में वृद्धि समानुपाती होती है? यदि आप इस कथन से सहमत हैं तो उदाहरण सहित उत्तर दें ।

6.7.0 बालक का गामक विकास (Motor Development to Child)

जब तक बालक का गामक विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता है तब तक वह सही मायने में स्वावलम्बी भी नहीं हो पाता है अगर यों कहा जाय कि बालक का गामक विकास उसके सर्वागीण विकास का आधार है तो कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी । क्रो एण्ड क्रो ने गामक विकास को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "नाड़ियों और मांसपेशियों की क्रियाओं के समीकरण द्वारा जो शारीरिक गतिविधियाँ सम्भव हो सकती हैं उन्हें गत्यात्मक क्रियाएँ कहते हैं । वास्तव में गामक विकास से तात्पर्य 'बालक की शक्ति गति और मांसपेशियों के विकास से तथा हाथ पैरों के उचित उपयोग की क्षमता आने से है । " बालक इन क्रियात्मक शक्तियों का विकास करके ही अपने को समाज के अनुरूप बनाना सीखता है ।

यहाँ पर हम पहले अध्ययन करेंगे कि बालक के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में गामक क्रियाओं का विकास कैसे होता है तथा फिर इस पक्ष पर भी विचार करने का प्रयास करेंगे कि जो प्रमुख गामक क्रियाएँ है उनका विकास किस प्रकार होता है ।

बालक की विभिन्न अवस्थाओं में गामक विकास:

6.7.1 गर्भाधान काल में गति (गामक) विकास : माता के गर्भ में ही शिशु का गामक विकास प्रारम्भ हो जाता है। गर्भधारण करने के लगभग 16 वें सप्ताह पश्चात् माता को अपने गर्भस्थ शिशु की गतिविधियों का आभास होने लगता है पर शिशु 9 वें सप्ताह में ही अपनी गर्दन, बाहें, तथा पैरों को इधर-उधर घुमाने लगता है । परन्तु गतिक विकास की दृष्टि से गर्भस्थ शिशु को 12 से 14 सप्ताह की अवस्था अधिक महत्वपूर्ण है । इस अवस्था में शिशु अपनी मुट्ठी खोल-बंद कर सकता है, भौहों में गतिशीलता आ जाती है तथा उसके धड, सिर, टाँगे, बाँहों में अधिक गतिशीलता आ जाती है । 16 से 18 सप्ताह के बीच उदरस्थ शिशु अपने होंठ हिलाने लगता है तथा आँखे भी खोलने व बंद करने लगता है तथा 24 सप्ताह पश्चात् गर्भस्थ शिशु में उन गतिक योग्यताओं का विकास हो जाता है जो जन्म के बाद भी बनी रहती है ।

6.7.2 शैशवाकाल में गति (गामक) विकास : शिशु में गामक योग्यता का विकास अचानक नहीं हो जाता हैं- अपितु यह विकास शनैः शनैः होकर पूर्णता को प्राप्त होता है । जन्म लेते समय शिशु का सिर अन्य अंगों की अपेक्षा भारी होता है वह इस योग्य भी नहीं होता है कि वह अपना सिर भी उठा सकें । गामक विकास की प्रक्रिया भी शिरोपुच्छ (Cephalcandal)

विकास क्रम के अनुसार होती है अर्थात् पहले शिशु अपने सिर को घुमाना सीखता है तत्पश्चात् सिर से नीचे की ओर के अन्य अंगों में गामक क्रियाओं का विकास होता है । लगभग 4-5 मास में शिशु अपना सिर उठाने योग्य हो जाता है- जबकि 7 मास की अवस्था में शिशु बैठने योग्य हो जाता है तथा 13- 14 की अवस्था में वह चलने लगता है । शैशवावस्था में बालक में गामक क्रियाओं का विकास किस प्रकार होता है इसे भार्ले एवं प्रमिला पाठक के अध्ययन के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है ।

गामक योग्यता का विकास

गामक योग्यताएँ

आयु		भार्ले के अनुसार	प्रमिला पाठक के अनुसार
(1)	प्रथम अवस्था एक मास	सर और सीने का विकास ठुड्डी ऊपर उठाना	सिर उठाना, खेल में हाथ पैर फेंकना तथा पार्श्व शरीर एवं सिर हिलाना
	दो मास	सीना ऊपर उठाना	अपने सिर को ऊपर उठाकर सीधा रखना
	तीन मास	पालने पर लेटे हुए ऊपर लटकते गेंद को लपकना	
(2)	द्वितीय अवस्था चार मास	धड़ का विकास	पीठ से बगल की तरफ करवट बदलना और पेट के बल लेटने पर हाथों की सहायता से शरीर को उठाने का प्रयत्न करना
	पांच मास	दी हुई वस्तु पकड़ना	सहारे से बैठना
	छः मास	बैठते समय हाथ बढ़ाकर लटकती हुई वस्तु को पकडना	करवट बदलना
	सात मास	बिना सहारे के बैठना	बैठने का प्रयत्न करना, हाथ के अंगूठे तथा ऊंगलियों को विरोधी दिशा में चलाने में थोड़ी सफलता
(3)	तीसरी अवस्था आठ मास	टाँगों तथा पैरों का विकास सहायता से खड़ा होना फर्नीचर पकड़कर खड़ा होने का प्रयास करना	अकेले बिना सहारे बैठना तथा सामने की वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश कर की वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश करना
	नो मास	फर्नीचर पकड़कर खड़ा होने का प्रयास करना	खड़े होने का प्रयत्न करना
	दस मास	रेंगना	पीठ से पेट की ओर लौटना
	ग्यारह मास	सहारा देने पर चलना	सहायता से खड़े होना
	पन्द्रह मास	अकेले बिना सहारे चलना	बिना सहारे खड़े होना, चलना
	बीस मास	-	पीछे की तरफ चलना
	पच्चीस मास	-	सीढ़ी पर चढ़ना उतरना

तीस मास - चलने वाले तख्ते पर खड़े होने की कोशिश करना

उपर्युक्त अध्ययनों से स्पष्ट है कि गामक विकास ऊपर से प्रारम्भ होकर नीचे के अंगों की ओर बढ़ता है जैसे पहले तीन महीनों में शिशु के सिर और मांसपेशियों में गामक क्रियाओं का अधिक विकास होता है दूसरे स्तर पर हाथों तथा, कमर पर नियंत्रण करना सीखता है जबकि आठवें महीनें में वह नीचे की ओर पाँव की मांसपेशियों पर नियंत्रण रखना सीखता है । अत: यह कहा जा सकता है कि शिशु के गामक विकास में शिरोपुच्छीय विकास देखने को मिलता है ।

6.7.3 बाल्याकाल में गामक विकास : जैसा कि पहले कहा गया है कि जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे-वैसे गामक क्रियाओ के प्रयोग में कुशलता बढती जाती है जैसे 3 वर्ष का बालक एक गोले की आकृति बनाने लगता है । वह वृत्तों की सहायता से मानवीय आकृति भी बनाने का प्रयास करता है- जबकि 5 वर्ष का बालक मानव की बाहय रूपरेखा वृत्तों के आधार पर न बनाकर इसके अंगों का वास्तविक प्रतिरूपण करने में समर्थ हो जाता है । 3 वर्ष की अवस्था के बाद बालक सीढ़ियों पर एक के बाद दूसरे पैर का प्रयोग करते हुये चढ़ने लगते हैं- जबकि 4)-5 वर्ष की अवस्था में वह एक के बाद दूसरे पैर का प्रयोग करते हुए सीढ़ियाँ उतरना शुरू कर देते हैं । 3 से 4 वर्ष की अवस्था के बालक उछलना शुरू कर देते हैं जबकि 4 से 5 वर्ष की अवस्था के बालक कूद-छलाँग (स्किपपिंग) लगाना शुरू कर देते हैं । बालक के संतुलन के विकास के सम्बन्ध में एक प्रयोग क्रान तथा प्रांकों ने किया । इन्होंने बाल्यावस्था के कुछ बालक-बालिकाओं को एक 12 फीट लम्बे लट्ठे पर चलाने का प्रयास किया । जो 2 फीट मोटा, 4 फीट चौड़ा तथा जमीन से दो इंच ऊपर रखा गया तथा लट्ठे में बीच में कुछ खाँचे थे । प्रत्येक बच्चे को लट्ठे के आर-पार जाने के लिए तीन अवसर दिये गये । बिना गिरे हुए लट्ठे को पार करने वाले बच्चे को एक अंक प्रदान किया गया । इस प्रकार प्रयोग में एक बच्चे का अधिकतम अंक 6 हो सकता था । किन्तु प्रयोग करने पर पाया गया कि 4 से 6 वर्ष के बालक एक बार भी बिना गिरे लट्ठे को पार नहीं कर सकें । सात वर्ष की बालिकाएँ 3 बार के प्रयास से केवल एक बार बिना गिरे लट्ठे को पार कर सकीं जबकि 11-12 वर्ष के बालक 3-4 बार तथा इसी अवस्था की बालिकाएँ 2-3 बार ही बिना गिरे इस लट्ठे को पार कर सकीं । इस प्रयोग के परिणाम निम्न तालिका में दिखाये गये हैं ।

क्रान तथा प्राको के संतुलन के प्रयोग के परिणाम

आयु	प्राप्तांक	
	बालक	बालिकाएँ
4-3 वर्ष	0.।	0.5
6-7 वर्ष	0.9	1.6
7-8 वर्ष	1.6	2.5
11-12 वर्ष	2.5	2.0
9-10 वर्ष	2.8	2.1
10-11 वर्ष	3.8	2.4
8-9 वर्ष	3.0	2.1

1 Cron, G.W. and pronok N.M.: Development of asence of balance in school children-Journal of Edu.Research 1957, 33-57

इस प्रकार से स्पष्ट है कि गामक विकास सामान्य से विशिष्ट की तरफ होता है और बालक जिन क्रियाओं को पहले सीख चुका हुआ होता है बाल्यावस्था में उनमें दक्षता प्राप्त करने का प्रयास करता है ।

6.7.4 किशोरावस्था में गामक विकास :अधिकांश गामक क्रियाओं का विकास बाल्यावस्था तक हो चुका होता है परन्तु इन गामक क्रियाओं में परिपक्वता किशोरावस्था में ही आती है । शिशु जो आरम्भिक दिनों में चलने में सक्षम नहीं होता है वह किशोराबरथा में फुटबाल को अपने पैरों के इशारों से नचाता है । तीन चार वर्ष का बालक जो आदमी के चेहरे का चित्र वृत्त के रूप में बनाता था- वह इस अवस्था में दक्ष चित्रकार के रूप में उभर कर आता है । इस अवस्था में बालकों में खेल-कूद में अत्यधिक रूचि होती है तथा उसकी गामक क्रियाओं में प्रौढ़ता आ जाती है ।

गामक विकास में परिपक्वता का तात्पर्य यह नहीं है कि बालक सभी प्रकार की गामक क्रियाओं के लिए दक्ष व निपुण हो गया है । हो सकता है कि किसी एक व्यक्ति में कोई एक गामक सामर्थ्य अधिक हो तथा दूसरी कम । उदाहरण के लिए कोई अच्छा चित्रकार हो गया कोई अच्छा दौड़ने वाला । संक्षेप में गामक विकास में भी व्यक्तिगत विभिन्नता होती है।

6.8.0 गामक क्रियाओं में लैंगिक विभिन्नता

गामक क्रियाओं में लैगिक विभिन्नता के अनुसार अंतर भी पाया जाता है । इस सम्बन्ध में जैन्क्रिंस ने एक अध्ययन किया तथा बताया कि 5 से 7 वर्ष की आयु के बालक दौड़ने, कूदने तथा गेंद फेंकने में इसी अवस्था की बालिकाओं से अच्छे थे जबकि फुदकने में इसी अवस्था में लड़कियाँ लड़की से अधिक निपुण थीं । जोकल और क्लूवर ने भी गामक क्रियाओं तथा शारीरिक योग्यता का अध्ययन किया, और बताया कि मध्य बाल्यावस्था के पश्चात् बालिकाओं में शारीरिक विकास तो होता है पर शारीरिक सामर्थ्य में बालकों की तुलना में कमी आती रहती हैं- उन्होंने अंत में यहाँ तक लिखा कि व 7 से 20 वर्ष की बालिकाओं की शारीरिक योग्यता 7-9 वर्ष की बालिकाओं के समकक्ष होती है । गामक क्रियाओं में इस लैंगिक भिन्नता तथा बालकों की उत्कृष्टता के प्रमुखतः दो कारण होते हैं। (1) जन्मजात कारण (2) सांस्कृतिक कारण। बालिकाओं में गामक शक्तियों के विकास का चरमबिड 14 वर्ष तक बालकों में 17 वर्ष की अवस्था में पाया जाता है। थोड़े शब्दों में यदि कहा जाये तो 6-7 वर्ष की आयु तक बालिकाओं के गामक विकास में लैंगिक भिन्नता बहुत महत्वपूर्ण नहीं होती है- इसके पश्चात् जिन गामक क्रियाओं में शक्ति की प्रधानता होती है- उनमें बालक-बालिकाओं की अपेक्षा अधिक प्रखर होते ।

6.9.0 कुछ विशिष्ट गामक क्रियाओं का विकास

गामक विकास के अन्तर्गत हाथों, पैरों, शरीर के अन्य भागों की मांसपेशियों की शक्ति, समन्वय गति तथा परिशुद्धता के विकास सम्मिलित होते हैं । आइए अब हम विचार करें कि किस प्रकार से प्रमुख गामक क्रियाओं जैसे खड़े होना, चलना, दौड़ना, चढ़ना, कूदना, उछलना. फेंकना आदि का विकास होता

चलने से सम्बंधित गामक क्रियाओं का विकास: जैसा कि पहले अध्ययन किया जा चुका है कि जब शिशु का जन्म होता है तो उसके सिर का भार अन्य अंगों की तुलना में अधिक होता है अत: वह अपने शरीर का सामंजस्य नहीं बिठा पाता है- परन्तु धीरे-धीरे जब उनकी अवस्था लगभग एक वर्ष के आस-पास होती है तो वह चलने का प्रयास करते हैं । जब छोटा बच्चा पहले-पहले चलने का प्रयास करता है तो वह दूसरा पैर तभी उठाता है- जब वह अपने पहले पैर को अच्छी तरह से जमा लेता है जबकि ढाई-तीन वर्ष का बालक अपना पहला पैरा पूरी तरह जमाने से पहले ही अपना दूसरा पैर उठा लेता है । इसके अलावा जब छोटा बच्चा चलता है तो उसका पूरा तलवा जमीन से छूता है क्योंकि उस समय तक उसके पैर का निचला हिररस (तलवा) लगभग सपाट होता है- जबकि 1-2 वर्ष की अवस्था में बच्चे के चलने पर उसका बीच का तलवा जमीन नहीं छूता है तथा केवल पिछला तलवा और पैर की ऊगलियाँ छूती है ।

परन्तु चलने की सामान्य प्रक्रिया में बीमारी, मोटापा, कुपोषण व ठंडी जमीन, निम्न मानसिक योग्यता आदि तत्व कुछ अवरोध उत्पन्न करते हैं।

चढ़ने के सम्बन्ध में गामक क्रियाओं का विकास: बच्चा खड़े होकर चलने से पहले ही सीढ़ियों पर चढने का प्रयास शुरू कर देता है । लेखक ने अपने एक मित्र के बच्चे 'कनु' को व 10 माह की अवस्था में जीने की दो सीढ़ियाँ चढ़ते देखा है जबकि अभी वह खड़े होने में असमर्थ था । सामान्यत: यह पाया जाता है कि छोटा बच्चा चढ़ने में पहले अपना बाँया पैर सीढ़ी पर रखता है उसके पश्चात दायाँ हाथ तथा दायाँ पैर लगभग एक साथ आगे बढ़ाता है । अगली सीढ़ी चढ़ने में इसी प्रकार वह बाएँ पैर तथा दाहिने हाथ का प्रयोग करता है । पर सही अर्थों में बालक में चढने की कुशलता का विकास 2.5 से 3.00 वर्ष की अवस्था में होता है । गटरिज ने अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चे को पहले चढ़ना सरल लगता है और उतरना कठिन, जबकि थोड़े दिनों बाद उतरना सरल हो जाता हैं । बच्चा लगभग 3 वर्ष की अवस्था में एक पैर के बाद दूसरे पैर का प्रयोग करते हुए सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने लगता है जबकि लगभग पांच वर्ष का बालक चढ़ने उतरने में लगभग प्रौढ़ों जैसा व्यवहार करने लगता है ।

उछलने-कूदने के सम्बन्ध में गामक क्रियाओं का विकास. सामान्यत: यह देखने में आता है कि बच्चे 2 से 3 वर्ष की अवस्था में कूदना शुरू कर देते हैं । गटरिज महोदय ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि लगभग 42% बच्चों में 3 वर्ष की अवस्था में कूदने की क्रिया का विकास हो जाता है । जबकि 4½वर्ष की अवस्था में लगभग 72% बच्चे कुशलतापूर्वक कूदने लगते हैं । 25 वर्ष के बालक लगभग 16 इंच की ऊंचाई से सफलतापूर्वक कूद लेते हैं- जबकि शहरी क्षेत्र के बालक 4 वर्ष की अवस्था में 36 इंच की ऊंचाई से रूचिपूर्वक कूदते देखे गये । पर उछलने कूदने में लैंगिक भिन्नता का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है तथा यह पाया गया कि 3 वर्ष के बालक बालिकाओं की अपेक्षा लम्बी छलांग लगाते हैं । जबकि ऊंची कूद /, रस्सी कूद लगाने की योग्यता का विकास अधिकांश बालकों में 4 वर्ष की अवस्था में होता है।

यद्यपि बच्चे 2½वर्ष की अवस्था में मेंढक की तरह से फुदकना शुरू कर देते हैं परन्तु कूद फलांग लगाने की योग्यता का विकास 4 वर्ष की अवस्था से पहले बहुत कम होता है जबकि एक पैर से उछलने की योग्यता बच्चे में लगभग 6 वर्ष की अवस्था में आती है ।

गेंद फेंकने की क्रिया का विकास. एक छोटे बच्चे को गुबारा तथा गेंद बहुत पसन्द होते हैं । एक छ: महीने के बच्चे को यदि गेंद पकड़ाई जाए तो वह उसे फेंकने का प्रयास करता है । ग्यारह माह का बच्चा एक निश्चित दिशा की ओर गेंद फेंक सकता हैं । परन्तु गेंद फेंकने की

कला का विकास 3 वर्ष की अवस्था में काफी तेजी से होता है तथा इस अवस्था तक गेंद फेंकने के समय बच्चा केवल अपने हाथ का प्रयोग करता है तथा उसका शरीर इस समय गेंद फेंकने में हिलता नहीं है जबकि 3 वर्ष की अवस्था के पश्चात जब बच्चा गेंद फेंकता है तो उसका शरीर कुछ आगे की ओर बढ़ जाता है । इस आयु में बालक दोनों हाथों से गेंद रोकने का प्रयास करता है । जबकि चार वर्ष का बालक गेंद को कैच करने लगता है परन्तु बादामी ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि चार वर्ष की अवस्था में बच्चे सीधी फेंकी गई गेंद को सफलतापूर्वक रोक लेते हैं जबकि सीने से ऊपर उछाल वाली गेंद कों रोकने में इस अवस्था के बालक अपेक्षाकृत कठिनाई महसूस करते हैं।

यद्यपि गामक क्रियाओं में बालकों की बहुत सारी क्रियाएँ आती हैं जिन सभी का वर्णन करना सम्भव नहीं है । किन्तु मुख्य गामक क्रियाओं का यहाँ वर्णन किया गया, उससे यह पता चलता है कि इन क्रियाओं में परिपक्वता धीमे-धीमे आती है । बच्चों को प्रारम्भ में इन क्रियाओं को करने में काफी शक्ति खर्च करनी पड़ती है । परन्तु धीमे-धीमे इन क्रियाओं में प्रौढ़ता आ जाती है तथा हम बिना किसी प्रयास के इन क्रियाओं का कुशलतापूर्वक प्रयोग करने में प्रवीण हो जाते हैं ।

6.10.0 सारांश (Summary)

समग्र पाठ के आधायन के पश्चात यह देखने मे आता है की यदि एक बालक के शारीरिक विकास के पक्ष को देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि बालक की लम्बाई तथा भार वृद्धि में समानुपाती सम्बन्ध होता है । लेकिन एक व्यक्ति का भार जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक लगभग 20 गुना बढ़ता है जबकि लम्बाई में केवल 3 गुना वृद्धि होती है ।

बालक का गामक व शारीरिक विकास शिरोपुच्छीय सिद्धांत के अनुसार होता है । यद्यपि बालक की गामक क्रियाओं में पररिपक्वता आयु के अनुसार धीरे-धीरे आती है-परन्तु एक बालक के सामान्य गामक विकास के लिए इसका शारीरिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक होता है ।

स्वमूल्याकन (Self Evaluation)

1. गामक विकास से आप क्या समझते हैं?
2. गर्भाधान काल में एक शिशु की विभिन्न क्रियाओं के विकास का वर्णन करें ।
3. क्या गामक क्रियाओं के विकास में लैंगिक भिन्नता का प्रभाव पड़ता है? यदि ही तो ० देकर समझाएँ ।
4. शैशवावस्था के प्रथम वर्ष में एक शिशु की गामक क्रियाओं में क्या परिवर्तन आते हैं, कीजिए ।
5. सिद्ध कीजिये कि गामक विकास शिरोपुच्छ होता है ।

6.11.0 संदर्भ (Refference)

1. दबे पी.एन. रायजादा बी., (1983) : 'बाल मनोविज्ञान', प्रकाशक राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर ।
2. भटनागर सुरेश, (1989): 'शिक्षा मनोविज्ञान', लायल बुक डिपो, मेरठ ।

3. चौहान एस.एस., (1989): 'एडवांसड एजूकेशनल साइक्लॉजी विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली ।

इकाई-7

बालक का ज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development)

इकाई की संरचना

7.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

7.2 ज्ञानात्मक विकास का अर्थ

7.3 जीनपियाजे का ज्ञानात्मक विकास तथा सिद्धान्त

7.4 पियाजे के अनुसार बुद्धि का विकास

7.5 ज्ञानात्मक समायोजन

7.6 मानसिक संरचनाएं

7.7 ज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएं

7.7.1 संवेदनात्मक गामक काल

7.7.2 पूर्व सम्प्रयात्मक चिन्तकाल (वाक्य रचना सम्बन्धी विकास)

7.7.3 मूर्तसक्रियाकाल (मानसिक संक्रियाओं का काल)

7.7.4 अमूर्त चिन्तनकाल

7.8 ज्ञानात्मक क्रियाएं

7.9 लूनर के अनुसार झानात्मक विकास

7.10 ज्ञानात्मक विकास एवं शिक्षा

7.11 सारांश

7.12 संदर्भ ग्रंथ

7.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objective)

ज्ञानात्मक विकास एक सत्त प्रक्रिया है की विकास की सभी अवस्थाओं महे सत्त रूप से चला करता है । समाज के सम्पर्क से ही भाषा तथा सम्बोध विकसित होते हैं । जो बच्चे का ज्ञानात्मक विकास कर उसे सामाजिक बनाते हैं । बच्चे का ज्ञानात्मक विकास विभिन्न अवस्थाओं में कैसे होता है, इसी प्रश्न का उत्तर इस पाठ में पियाजे एवं बूनर को आधार मानकर खोजने का प्रयास किया गया है । इस इकाई की समाप्ति पर आशा है कि आप इस योग्य होंगे कि:-

- ज्ञानात्मक विकास का अर्थ समझ सकें ।
- पियाजे द्वारा प्रतिपादित ज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझ सकें ।
- पियाजे की बुद्धि सम्बन्धी अवधारणा स्पष्ट कर सकें ।
- ज्ञानात्मक समायोजन की क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं को आत्मसात् कर सकें ।
- मानसिक संरचनाओं का अर्थ तथा निर्माण प्रक्रिया समझ सकें ।
- ज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं तथा उनकी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकें ।
- विभिन्न ज्ञानात्मक क्रियाओं को समझ सकें ।
- स्तर के ज्ञानात्मक विकास की रूपरेखा स्पष्ट कर सकें ।
- ज्ञानात्मक विकास के अनुसार शिक्षा का आयोजन कर सकें ।

7.2 ज्ञानात्मक विकास का अर्थ (Cognitive Development: Meaning)

ज्ञानात्मक क्षमता (Cognitive) का सम्बन्ध मानसिक क्रियाओं (Mental process) से है । जिन, मानसिक क्रियाओं के आधार पर हम विश्व को समझते हैं वे सभी ज्ञानात्मक क्षमता के अन्तर्गत आती' है जैसे प्रत्यक्षीकरण (Perception) अवधारणा का निर्माण (Concept Formation) अमूतकिंरण (Abstraction) समस्या समाधान (Problem solving) बुद्धि (Intelligence) एवं चिन्तन (thinking) आदि । मनोविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मनोवैज्ञानिक ज्ञानात्मक विकास, संवेग एवं व्यक्तित्व में अन्तर मानते थे । किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि इस प्रकार का अन्तर स्पष्ट करना बहुत कठिन है क्योंकि संवेग एवं व्यक्तित्व के अन्य लक्षणों का ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है । ज्ञानात्मक विकास पर पियाजे महोदय का कार्य अत्यधिक प्रसिद्ध है, अत: ज्ञानात्मक विकास को पियाजे को आधार मानकर समझना अधिक उचित होगा ।

7.3 जीन पियाजे का ज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त (Congnitive Development According to jean- Piaget)

आधुनिक युग में ज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में स्वीटजरलैण्ड के मनोवैज्ञानिक जीनपियाजै (Swiss, Psychologist, jean-Piaget) ने क्रान्ति पैदा कर दी । पियाजे के सिद्धान्त को "जैविक ज्ञानशास्त्र" (Genetic Epistemology) के रूप में समझने का प्रयत्न किया गया । जैविक विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप परिपक्वता के आधार पर किस प्रकार ज्ञान का प्रस्फुटन होता है इस पर इतना विस्तृत अध्ययन पियाजे के पहले किसी ने नहीं किया था। पियाजे ने निष्कर्ष निकाला कि छोटे बच्चे प्रौढ़ व्यक्तियों की भाँति विश्व का प्रत्यक्षीकरण एवं ज्ञान का संगठन नहीं करते। इस प्रकार पिथाजे का. मत प्रसिद्ध क्सिाशारत्री जॉनडीवी (John Dewery) के मत से मित्र है - जिसके अनुसार "सच्चा लघु ' व्यक्ति है, उसका मन लघु मन है तथा वह प्रौढ़ व्यक्ति के समान है ।" पियाजे ने अपने अध्ययन एवं शोध के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि-

- बच्चे प्रौढ की तुलना में मित्र प्रकार से तर्क करते हैं ।
- वे विश्व का अवलोकन मित्र प्रकार से करते हैं ।
- उनका जीवन दर्शन भिन्न होता हैं ।

अत: पियाजे ने बच्चों में ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता एवं प्रक्रिया (Cognitition) पर अपने शोध कार्य केन्द्रित किये । यहाँ ज्ञानात्मक प्रक्रिया (Cogniition) का अर्थ ज्ञान (Knowledge) नहीं है जैसा कि सामान्य अर्थों में समझा जाता है बल्कि इसका संबंध मानवबुद्धि से है जो ज्ञान को व्यवस्थित एवं संगठित (Organise) करती है तथा उसका उपयोग (Utilise) करती है।

7.4 पियाजे के अनुसार बुद्धि का विकास (Development of Intelligence according to Piaget)

पियाजे के अनुसार बुद्धि का विकास, वंशानुक्रम, वातावरण एवं परिपक्वता (Heredity,Enviorment and Naturation) के बीच अन्तक्रिया (Interaction) होने से होता है । व्यक्ति सतत्, वातावरण के साथ सामंज्य (Adaption) स्थापित करने का प्रयत्न करता है । यहाँ वातारण के अन्तर्गत व्यक्ति के चारों ओर के भौतिक, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार का वातावरण आता है जो व्यक्ति के साथ क्रिया प्रतिक्रिया करता है, तथा उसके साथ सामंजस्य स्थापित करता है । इस सामंजस्य को स्थापित करने की प्रक्रिया (Adaption) के फलस्वरूप उसमें ज्ञानात्मक विकास होता है । सामंजस्य स्थापित करने का उद्देश्य व्यक्ति को साम्यावस्था (State of equilibrium) में लाना है । दूसरे शब्दों में व्यक्ति एवं वातावरण के बीच साम्य या समता (Balance) लाना है जिसे पियाजे ने साम्यीकरण प्रक्रिया (Equilibration process) कहा है ।

इस प्रकार पियाजे के अनुसार बुद्धि सामंजस्य स्थापन व्यवहार (Adaptive process) है तथा वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिये विचार एवं व्यवहार में संगठन एवं पुर्नसंगठन है । यह प्रक्रिया नवजात शिशु के स्वत: प्रेरित क्रियाओं (Reflex action) से प्रारम्भ होकर किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के औपचारिक एंव तार्किक चिन्तन (Formal and logical reasoning) तक अनेक अवस्थाओं से गुजरती है । एक अवस्था से दूसरी अवस्था में इसका हस्तरण (Transition) बच्चे के सतत् सर्जनात्मक क्रियाओं तथा उसके वातावरण के साथ होने वाली प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप होता है । प्रत्येक अवस्था में बच्चें का विश्व के प्रति ज्ञान एवं समझ विकसित होता जाता है । इस ज्ञान एवं समझ को पियाजे ने "स्ट्रक्चर' (Mental structure) तथा "आर्गेनाइजेशन" (Organisation of structure) शब्दों से सम्बोधित किया है । सूचनाओं, तथ्यों एवं ज्ञान का पुर्नगठन (Organisation) तथा नई क्षमताओं का विकास बच्चे को अधिक जटिल बौद्धिक व्यवहार, चिन्तन एवं तर्क के योग्य बनाता है । नवजात शिशु की स्वत: प्रेरित क्रियाएं (Reflexes) परिवर्तित एवं संशोधित होकर अन्तरीकरण (Intermalisation) एवं समन्वय (Co-ordination) की प्रक्रिया के आधार पर प्रौढ़ बुद्धि के तार्किक - चिंतन का रूप धारण करती है । इस प्रकार बच्चा धीरे-धीरे अधिक उत्तेजको के प्रति अनुक्रिया करता हैं एवं समस्या समाधान में अधिक जटिल विधियों का प्रयोग करने लगता हैं । "क्योंकि जीवन अधिक से अधिक जटिल क्रियाओं का सतत् प्रयत्न है एवं वातावरण के साथ विकासशील सामंजस्य स्थापन है ।" ("Life is a continuous creation of increasingly complex forms and the progressive adaption of these forms with the environment")

7.5 ज्ञानात्मक समायोजन (Cognitive adaptation)

बुद्धि का विकास दो पूरक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होता है जिसे पियाजे ने "एसीमिलेशन" (Assimilation) एवं "एकोमोडेशन" (Accomodation) की प्रक्रिया कहा है । वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया (Adaptation) एवं एसीमिलेशन (आत्मसात करने की प्रक्रिया) एवं एकोमोडेशन (समव्यवस्थापन) के फलस्वरूप होता है । "एसीमिलेशन" के अन्तर्गत व्यक्ति वातावरण से प्राप्त उत्तेजकों, अनुभवों एवं विचारों को अपने पूर्व अनुभव एवं ज्ञान के

आधार पर अर्थ लगाता है, नई परिस्थितियों को अपने अनुरूप बनाकर समझने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार नये ज्ञान एवं अनुभव को पूर्वज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर उसका आत्मसात् करता है पुराने ज्ञान भण्डार में उसे समाहित करता है । एकोमोडेशन के अन्तर्गत नई परिस्थितियों, अनुभवों ज्ञान एवं वातावरण के अनुसार अपने पुराने ज्ञान, अनुभव एवं मानसिक संरचनाओं में परिवर्तन करता है जिससे नई मानसिक संरचनाएं (Structure) पूर्व स्थित संरचनाओं में ठीक से व्यवस्थित हो जाएं, अर्थात संरचनाओं का संगठन (Organisation) व्यवस्थित हो जाये ।

सामान्यतया पियाजे के ज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के तीन पहलू हैं-

(i) संरचनाओं का स्वरूप (Cognitive structure)

(ii) मानसिक विकास की अवस्थाएं (Stages of cognitive development)

(iii) ज्ञानात्मक क्रियाएं (Cognitive functions)

7.6 मानसिक संरचनाएं (Cognitive Structure)

मानसिक संरचनाएं (Structure) बुद्धि की संगठनातमक गुण है। व्यवहार का संगठनातमक स्वरूप जिसका आभास व्यवहारों के आधार पर होता है उन्हें मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक संरचना (Motral of psychological structures) कहा गया है । प्राणी बाह्य जगत का ज्ञान इन्हीं मानसिक संरचनाओं के द्वारा प्राप्त करता है।

मानसिक संरचनाओं का विकास पियाजे के सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु हैं । नवजात शिशु में प्रारम्भ में यह संरचनाएं नहीं होती हैं । इसमें कुछ सामान्य कार्य करने की प्रवृति एवं स्वत: क्रियाएं (Reflexces) होती है । वह इन्हीं क्रियाओं का विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करता है जो धीरे-धीरे परिवर्तित होकर मानसिक संरचनाओं का रूप लेती है । शिशु अवस्था की इन संरचनाओं को पियाजे ने "स्कीम" या सेसरीमोटर स्कीम" (Sensory motor scheme) कहा है । जो आगे चल कर विकसित होकर "ऑपरेशनल स्कीम" (Operational scheme) का रूप ले लेती है ।

स्कीम, स्कीमा, स्कीमेटा (Scheme,Schema,Schemata)

शिशु अवस्था की सेंसरोमोटर स्कीम के अन्तर्गत चूसने, देखने, सुनने, पकड़ने आदि की क्रियाएं आती है । अर्थात् इन क्रियाओं के फलस्वरूप मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर बनी संरचनाएं, स्कीम कहलाती हैं । आगे चल कर बालक को विकसित अवस्था में समस्या समाधान, परिवर्तीकरण (Transformation) तथ्य समावेशीकरण (Fact system) अवधारणा के प्रारूप (Sets of concepts) आदि मानसिक संरचनाओं को पियाजे ने स्कीमा (Schema) कहा है । अर्थात् पियाजे उच्च मानसिक क्रियाओं को इसके अन्तर्गत रखते हैं । आजकल कई अमेरिकी मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन एवं अन्य मानसिक क्रियाओं के लिये स्कीम्स (Schemes) या स्कीमास (Schemas) का भी प्रयोग किया है । पियाजे का मूल साहित्य फ्रांसीसी (French) भाषा से में है (पियाजे के अनुसार ये स्कीम्स कम्प्यूटर प्रोग्राम के रूटीन (Routine) जैसे हैं जो किसी "सेट" के "इनपुट" में काम करते हैं ।

स्कीमा एक अवधारणा, या वर्ग (Category) के समान है जो मूल प्रवृत्ति तुल्य है तथा समान क्रियाओं के क्रम को स्पष्ट करते हैं ।

पियाजे के' अनुसार ज्ञानात्मक क्षमता, वाणी एवं व्यवहार की आधार२भूत इकाई स्कीमा है । सेंसरीमीटर स्कीमा (व्यवहारिक संरचनाएं) का सम्बन्ध व्यावहारिक ज्ञान, कौशल (जैसे चलना, पकड़ना, सुनना, देखना आदि) से है । कागनीटिवस्कीमा (Congnitive schema) अथवा ज्ञानात्मक संरचनाओं का सम्बन्ध अवधारणा, इमेज या प्रतिमा, चिन्तन, तथा तार्किक क्षमता से है । पलावेल ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है:- "A schema is a kind of concept, category, or underflying strategies which subsumes a whole collection of instinct but similar action sequenced. Schemas referred to classes of total acts, Act which are distinct from one another and yert share common feature."

-Flavell. 1963

स्व मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. मानसिक संरचनाओं से आप क्या समझते है?
2. 'स्कीम' तथा स्कीमा को अपने शब्दों मे समझाइए

1.7 ज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Cognitive Development)

पियाजे ने ज्ञानात्मक विकास को निम्नलिखित चार अवस्थाओं में विभाजित किया है । प्रारम्भ में उसने तीन ही अवस्थाएँ निश्चित की थी किन्तु आगे चल कर चार अवस्थाओं में ज्ञानात्मक विकास (Cognitive development) का विवरण किया है । यह वही चार अवस्थाएँ हैं जिस रूप में ' स्कीमा वातावरण के साथ बच्चों का सामंजस्य स्थापित करता है। अलग-अलग अवस्थाओं में बच्चे विभिन्न प्रकार से चिन्तन करते हैं । इन चार अवस्थाओं में बच्चे विभिन्न प्रकार से चिन्तन करते हैं । इन चार अवस्थाओं की उप अवस्थाएँ भी हैं । बच्चा इन्हीं अवस्थाओं से होकर अपना ज्ञानात्मक विकास करता है । इसमें उम्र का बंधन अधिक महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु अवस्थाओं का क्रम निम्नलिखित क्रम के अनुसार ही होता है । प्रत्येक अवस्था में नई संरचनाओं का निर्माण होता है जो पूर्वावस्था की संरचनाओं पर आधारित होती है ।

ज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएं निम्नलिखित हैं:-

1. सेन्सरी मोटर पीरियड (संवेदनात्मक गामक काल)
   (Sensory moter period) (0 से 2 वर्ष आयु तक)
2. प्री ऑपरेशनल पीरियड (पूर्व संप्रत्यात्मक चिन्तन)
   (Pre Operational period) (2 से 7 वर्ष आयु
   अ (प्रीकन्सेप्बुअल फेज) 2 से 4 वर्ष आयु तक
   ब इन्ट्यटिवफेज (अंतप्रज्ञ चिन्तनकाल)
   (Intuitive phase) 4 से 7 वर्ष आयु तक
3. कांक्रीट ऑपरेशनल पीरियड (मूर्त संक्रिया का काल)
   (Concept operational period) (7 से 11 वर्ष आयु तक)
4. फार्मल ऑपरेशनल पीरियड (ज्ञानात्मक चिन्तन काल)
   (Formal operational period) (11 से 15 वर्ष आयु तक)

7.7.1 संवेदनात्मक गामक-काल (Sensori motor period)

(0 से 2 वर्ष आयु)

यह प्रथम अवस्था अनेक विकासशील अर्न्तसमन्वयात्मक (inter co-realation) 'स्कीम" की विभिन्न अवस्थाओं से मिलकर बनी है । विकास की प्रथम अवस्था में स्वत: प्रेरित जन्मजात सामान्य क्रियाएं होती हैं । धीरे-धीरे बच्चा इन क्रियाओं पर नियन्त्रण करना सीख जाता है । ज्ञानात्मक विकास की इस प्रथम अवस्था में बच्चा प्राथमिक संरचनाओं (Scheme) को अलग-अलग निर्मित करता है या उसके मस्तिष्क में इन संरचनाओं (जैसे चूसना, देखना, पकड़ना आदि) का निर्माण अलग-अलग होता है । जैसे-जैसे उसके मस्तिष्क का विकास होता है धीरे-धीरे इन संरचनाओं में समन्वय (Inter coordination) स्थापित होता है । जैसे वह जिस वस्तु को देखता है उसे पकड़ने का प्रयत्न करता है । इस प्रकार प्राथमिक (Primary) तथा द्वितीय (Secondary) संरचनाओं (Scheme) का निर्माण होता है । 'साधन (Means) एवं साध्य (End) के बीच समन्वय (Co-ordination) ' अगली उपअवस्था "टर्सियरी" (Tertiary scheme stage) पर होता है जब बच्चा वस्तु के साथ अनेक प्रकार की क्रियायें करता है जैसे वस्तु को उठाना, दबाना, दांत से काटना आदि, तथा अनेक साध्य परिणामों पर पहुँचता है जैसे ठनठनाना तोड़ना, चीखना आदि।

विकास की **तृतीय** उप अवस्था में अन्तिम अर्न्तसमन्वय एवं ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में गुणात्मक विकास होता है जिसमें वह वस्तु की अनुपस्थिति में भी संरचनाओं को क्रियाशील करता है। अर्थात् धीरे-धीरे उसमें स्मृति (Memory) का विकास होने लगता है । इससे पूर्व की उप अवस्था में बच्चें में केवल पहचान की स्मृति (Recognition memory) होती है किन्तु अब वह क्रियाशील हो किसी संरचना का पुनर्जागरण (Retrive) कर सकता है। संवेदनात्मक गामक काल के पूर्ण होते-होते बच्चा संरचनाओं का आन्तरीकरण (Interroration) करने के योग्य हो जाता है।

- इस अवस्था की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:
- शरीर पर नियन्त्रण करने की क्षमता का विकास ।
- वस्तुओं के स्थायित्व की अवधारण (Concept of object permanence) का विकास (करीब 16 माह की आयु पर)।
- वस्तुओं की एक रसता का आभास (Object constancy) अर्थात् अलग-अलग रूप में दिखाई देते हुये भी अमुक वस्तु एक ही वस्तु है इसका आभास (16 माह से 24 माह की आयु पर)।
- व्यावहारिक ज्ञान (knowledge of practical nature) की उपस्थिति तथा प्रतीकात्मक ज्ञान की अनुपस्थिति।
- व्यावहारिक बुद्धि का विकास जिससे परिणाम की प्राप्ति हो।
- सभी क्रियाएँ बच्चे के शरीर में सम्बन्धित होती है।
- स्थान एवं आवश्यकताएं भी व्यक्तिनिष्ठ होती हैं अर्थात् बच्चा अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही काम करता है, जो वह सोचता, समझता है या चाहता है उसे ही वह सही मानता है । अपने से परे दूसरों के विचारों, आवश्यकताओं आदि को समझने की क्षमता उसमें नहीं होती है । इसे पियाजे ने इगोसेंट्रीइज (Egocentrism) कहा है। यह इस अवस्था की प्रमुख विशेषता है।

उप अवस्थाएं (Sub stages):

इस अवस्था को पियाजे ने निम्नलिखित छः उप अवस्थाओं में विभाजित किया है जिनकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

(I) प्रथम उप अवस्था (Stage I) (जन्म से व माह)

- जन्मजात स्व: प्रेरित क्रियाएं (Inherited reflexes)
- आत्मकेन्द्रीयता (Egocentrism)
- चूसने, देखने तथा पकड़ने (Sucking, seeing and grasping) की स्वत: प्रेरित समन्वय विहीन (Uncooridinated) क्रियायें ।
- बुद्धि की आदिम अवस्था । बुद्धि का विकास बच्चे तथा वातावरण के बीच होने वाले अर्न्तक्रिया पर निर्भर करता है ।

(II) द्वितीय उप अवस्था (Stage II)(1 से 4 माह)

- प्राथमिक वक्रित प्रतिक्रियाएं (Primary circular reactions) अर्थात अनुभव के आधार पर ऐसीमिलेशन एवं एकमोडेशन में परिवर्तन ।
- प्रथम अधिगमित व्यवस्थापन (First acquired reactions) ।
- कारण एवं उसके प्रभाव का आभास ।
- एसीमिलेशन एवं एकमोडेशन के आधार पर विकसित संरचनाएँ (Improved sehema)
- विभिन्न संरचनाओं में समन्वय एवं आत्मसात्तीकरण (Co-ordination and Assimilation)
- स्व एवं स्वतिरेक (Self and nonself) में विभेदीकरण जिसका कारण समव्यवस्थापन (Accommodation) की -प्रक्रिया है ।
- क्रियाओं की पुनरावृत्ति।
- प्रीहेन्सन (Prehension) अर्थात् वस्तुओं को पकड़ना एवं छोड़ना । '
- विभिन्न अनुक्रियाओं एवं वातावरण के साथ समन्वय जैसे सुनने एवं बोलने का प्रयत्न के बीच या ध्वनि एवं प्रकाश -के बीच समन्वय स्थापित करना ।
- आदिम अवस्था की अनुकरणात्मक प्रक्रियाएं ।
- नवीन व्यवस्थापन के फलस्वरूप खेल की प्रक्रिया ।
- आत्मकेन्द्रियता (Egocentrism) की ही स्थिति ।

(III) तृतीय उपअवस्था (Stage III) (4 माह से 8 माह)

- द्वितीय वक्रित प्रतिक्रियाएँ (Secondary circular reaction) रूचिकर दृश्य का अवलोकन ।
- स्वयं एवं बाह्य जगत् में अन्तर स्पष्ट करना ।
- क्रियाओं की पुनरावृत्ति में अधिकता । क्रियाओं में स्थायित्व ।
- वातावरण का आभास एवं प्रतीकात्मक क्रियाएं ।
- लक्षण निर्धारण का प्रारम्भ ।
- स्वयं की क्रियाओं के वातावरण पर प्रभाव में रूचि ।
- दृश्य संरचनाओं (Vesual Schema) एवं गामक संरचनाओं (Motor Schema) में समन्वय ।
- कुछ दूर स्थित वस्तुओं को भी पहचानना एवं उसके प्रति क्रियाएँ करना जिसे प्रतीकात्मक गति या क्रियायें (Symbolic Motion) कहा गया है ।

(IV) चतुर्थ उप अवस्था (stage IV) (8 से 12 माह)

- यह द्वितीय स्कीमेटा के समन्वय (Coordination of secondary Schemata) तथा उनका कई परिस्थितियों में प्रयोग की अवस्था है।
- इस अवस्था में बच्चा ऐसी जटिल क्रियाओं को कर सकता है जो उसके इरादे को प्रकट करती
- चिन्हो के माध्यम से वह पूर्व घटनाओं का आभास कर सकता है।
- नई वस्तुओं के प्रति प्रतिक्रिया करता है।
- यह जटिल दृश्य, गामक अथवा स्पर्शनीय स्कीमेटा में समन्वय स्थापित कर सकता है।
- वह अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त करने के रास्ते ढूँढ सकता है।
- वातावरण की वस्तुओं से वह अपने को स्वतन्त्र करने लगता है।
- वह संकेतों को समझने लगता है।
- वस्तुओं को समझने का प्रयत्न करता है।
- खोज विधि प्रयोग करने लगता है।
- खेल उसके मन बहलाव का प्रमुख साधन बन जाता है तथा छिपी वस्तुओं को खोजने का प्रयत्न करता है।
- यह उसकी स्मृति विकास को दर्शाता है।
- स्थान (Space) के प्रति जागरूकता पैदा हो जाती है।
- कार्य-कारण तथा समय वास्तविकता के रूप में उभरने लगते हैं।

(V) पंचम उपअवस्था (Stage V) (12 से 18 माह)

- यह तृतीय वक्रित प्रतिक्रियाओं (Tertiary circular reactions) की अवस्था है।
- यह प्रयोग करने के नये साधनों के खोज की अवस्था है।
- -अब एसीमिलेशन से उसका ध्यान एकमोडेशन की ओर हटता है।
- प्रत्येक पुनरावृत्ति के साथ-साथ वह व्यवहारों में परिवर्तन करने लगता है । यह वास्तविक संबंध एवं भूल संबंधी -क्रियाओं की प्रारम्भिक अवस्था है।
- इस अवस्था में कार्य कारण एवं वास्तविकता के समझने की क्षमता का विकास प्रारम्भ हो जाता है।

(VI) छठी उपअवस्था (stage VI) (18 माह से 24 माह)

- यह मानसिक सहयोग द्वारा नए साधनों के खोज की अवस्था Stage of invention of new means throught मेंटल्कोंबिनटीओन) है।
- वह लक्ष्य का प्रत्यक्षीकरण करके उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करने लगता है।
- वह प्रयत्न एवं भूल विधि द्वारा उचित क्रियायें करने लगता है।
- आन्तरिक (Covent) या मानसिक क्रियाओ द्वारा समस्याओं का समाधान ढँढूना प्रारम्भ कर देता
- भाषा विकास की प्रारम्भिक पहचान के रूप में मुँह को खोलने लगता है। यह उसका गामक या दृश्य प्रतीक है।
- बाह्य क्रियाओं या व्यवहारों के पूर्व संरचनाओं में संयोग प्रारम्भ हो जाता है।

- यह विकास के प्रतीकात्मक संकल्पना (Conceptual Symbolic) के संक्रमण काल की अवस्था दो वर्ष की अवस्था तक पहुँचते -पहुँचते बच्चे अनेक उपस्थित एवं स्मृतिजन्य वस्तुओं एवं अनुभवों का अनुकरण करने लगते हैं।
- बच्चे कल्पना-जन्य खेल भी खेलना प्रारम्भ कर देते हैं।
- पूर्व मानसिक समबद्धता के आधार पर दो वर्ष की समाप्ति होते-होते बच्चा वस्तुओं को ढँढुने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।
- इस प्रकार उसमें वस्तु स्थान की अवधारणा विकसित हो जाती है।
- कार्यकारण को समझने की क्षमता भी पर्याप्त परिपक्वता प्राप्त कर लेती है । वह कारण एवं परिणामों में संबंध -स्थापित करने लगता है।
- इस प्रकार संवेदनात्मक गामक काल की मुख्य विशेषता आत्मकेंद्रिता (Egocentrism) धीरे-धीरे अपने को वातावरण से अलग करने की क्षमता, प्रयोगात्मकता (Experimention) प्रयत्न एवं भूल तथा अंततः प्रारम्भिक संकल्पना है।

7.7.2 पूर्व-संप्रत्यात्मक चिंतन काल (Pre-Opertional Period)

(2 वर्ष से 7 वर्ष आयु तक वाक्य रचना संबंधी विकास)

यह भाषा कौशल विकास की प्रमुख अवस्था है, जिसमें संदर्भ शब्दों की समझ पैदा होने लगती है । अब बच्चा वस्तु तथा उसके संदर्भ को प्रकट करने वाले शब्दों में अंतर स्पष्ट करने लगता है । इसे स्पष्ट करने वाले चिन्ह एवं प्रतीक में अंतर स्पष्ट होने लगता है । प्रतीक मानसिक पुर्नप्रस्तुतीकरण के रूप में भी आ सकते हैं । विचार एवं कार्यों में गति आ जाती है । जिससे बच्चा अधिक से अधिक सूचनायें एकत्र करने लगता है । विचारों में धीरे-धीरे तार्किक गणितीय संप्रत्ययों (Logic mathematical) Operation) का विकास होने लगता है । क्रियाओं का मानसिक प्रस्तुतीकरण प्रारम्भ हो जाता है जिसे विचार (thought) कहा जाता है । यह अंतर्दृष्टि द्वारा सीखना या सूझ द्वारा सीखना (Insight learning) की आदिम अवस्था है जिसमें बच्चा किसी बाह्य व्यवहार (Overtaction) के बिना समस्याओं को मानसिक रूप से सुलझाने लगता है ।

इस अवस्था के कुछ मुख्य व्यवहार इस प्रकार है :

(1) आत्म केंद्रिता (Egocentrism)

(2) श्रृंखलाबद्ध केन्द्रविहीन चिंतन (Concatenative thinking)

(3) मानवीकरण (Anthro Pomorphism)

आत्मकेद्रीयता (Egocentrism) का आशय केवल स्व को केंद्र कर सारी क्रियायें करने से हैं । पूर्व संप्रत्यात्मक अवस्था में बच्चा अपने से हट कर दूसरों के दृष्टिकोण या विचार को नहीं समझ पाता है । वह स्वयं जिस प्रकार सोचता है या समझता है सोचता है कि दूसरे भी उसी प्रकार सोचते या समझते हैं उनके विचारों में लचीलापन न होकर एक जड़ता होती है ।

श्रृंखलाबद्ध केंद्रविहीन चिंतन (Concatentive thinking) का अर्थ विचारों का केंद्रविहीन या बिदुविहीन आना है । अर्थात बच्चों के मस्तिष्क में विचारों की श्रृंखलायें बिना किसी एक बिंदु या केन्द्र के बनती है । सभी विचार अव्यवस्थित से रहते हैं । इरा प्रकार यह विचारों में समन्वय

तथा क्रम स्थापित नहीं कर पाता । सभी विचार बिखरे हुए होते है । बच्चा सरल प्रतिभा तथा विचारों में कोई क्रम या एकीकरण नहीं कर पाता ।

मानवीकरण (Anthropomorphism) के अंतर्गत निर्जीव वस्तुओं को मनुष्य के रूप में सम्बोधित करने से या व्यवहार करने से है । पूर्व संप्रत्यात्मक बच्चा मनुष्य तथा वस्तुओं में अंतर स्पष्ट नहीं कर पाता । वह दोनों को मनुष्य जैसा संबोधित करता है । इसकी अन्य विशेषताएँ निम्न है

- धीरे-धीरे बच्चों में विकासात्मक एकीकरण तथा आतरिक समन्वय की क्षमता विकसित होने लगती है ।
- इस अवस्था में विपरीतीकरण (Reversibility) अर्थात विपरीत दिशा मे सोचने की क्षमता, व्यावहारिक बुद्धि जो वर्गीकरण की क्षमता तथा क्रम में रखने की क्षमता (Seriation) आधारित होती है का विकास हो जाता है ।
- डेपरर्ड इमीटेशन ,(Deterredimitation) जिसके अंतर्गत रिकमा प्रत्यक्ष वस्तुओं से दृटकर मानसिक संरचनाओं के रूप में क्रियाशील होते हैं, की क्षमता बच्चों में पाई जाने लगती है ।
- अनुकरणीय विधियों का आतरीकरण (Initaive Movements) होने लगता है । इन्हें पियाजे ने मानसिक प्रतिमा कहा है जिसके अंतर्गत क्रियाओं का मस्तिष्क पर एक चिन्ह सा बन जाता है जो प्रस्तुतीकरण के आतरिक प्रतीक है। यही प्रतीक सिम्बल भाषा विकास के प्रारम्भिक बिन्दु है यद्यपि यह प्रथम भाषा "अवधारणात्मक प्रस्तुतीकरण (Conceptul representation) का रूप नहीं ले पाती । बच्चों की प्रथम भाषा प्रतिमा रूप ही रह जाती है । सामान्य धारणा नहीं बन पाती । ये पूर्व संकल्पनाएं (pre Concept) वैयक्तिक एवं सामान्य अवधारणा या संकल्पना के बीच की स्थिति है ।
- इस अवस्था में बच्चों का तर्क ट्रांरउक्टिव (Tranductive) प्रकार का होता है अर्थात् वह विशिष्ट से विशिष्ट की ओर ही बढ़ पाता है ।
- डीसेष्ट्रेशन (Decentratration) प्रक्रिया का विकास भी इस अवस्था में होने लगता है । जिसके अन्तर्गत बच्चा किसी वस्तु के दो से अधिक लक्षणों को समझने लगता है । समाजीकरण (Socialisation) तथा भाषा विकास से इस प्रक्रिया में सहायता मिलती है । एक केन्द्र से हटकर अन्य दिशाओं तथा आयामों के प्रति भी वह सोच सकता है ।

पूर्व सम्प्रत्यात्मक चिंतन काल में बच्चे की भाषा का विकास बड़ी तेजी के साथ होता है । इस काल में बच्चे का शब्द भण्डार किस गति से बढ़ता है । इसका अध्ययन स्मिथ महोदय ने किया जिसके परिणाम निम्नवत हैं-

आयु	शब्द	आयु	शब्द
जन्म से 8 माह	शून्य	2 वर्ष	272
1० मास	1	4 वर्ष	1554
एक वर्ष	3	5 वर्ष	2562
एक वर्ष से 15 माह	19	6 वर्ष	2072
15 से 18 माह	22		

विद्वानों ने पूर्व सम्प्रत्यय (Pre Operational) काल को दो उपभागो में बांटा है :

(1) पूर्व संकल्पनात्मक काल (Pre Conceptual phase) (2 से 4 वर्ष)

(2) अंत: प्रज्ञ चिन्तन-काल (Thought) (4 से 7 वर्ष)

(I) पूर्व संकल्पनात्मक काल (Pre Conceptual phase) (2 से 4 वर्ष आयु तक)

दो वर्ष का बच्चा कार्य कारण, स्थान तथा वस्तुओं के आपसी सम्बन्ध को समझने लगता है । भाषा की दृष्टि से उसके विचार अभी अस्पष्ट होते हैं तथा वे छोटे-छोटे वाक्यों से शुरूआत कर पूरे वाक्य बोलने का प्रयास करता है । इस अवस्था में वह विचार तथा संकेत में स्पष्ट नहीं कर पाता । इस काल के अन्य विशिष्ट लक्षण है:

- अनुकरण (Imitation) तथा खेल के माध्यम से बच्चा अपने विचारों एवं भावों को प्रकट करता है । अभी उसकी भाषा पर उसे नियंत्रण नहीं होता ।
- बच्चे के व्यक्तिगत जगत एवं सामाजिक संगठनों में भिन्नता रहती है ।
- नयी चीजों को खोजने के प्रति वह उत्सुक रहता है ।
- ज्ञानात्मक अभिव्यक्ति तथा सामाजिकता के प्रति, भाषा विकास के प्रति बालक जागरूक होने लगता है ।
- सेन्सरी मोटर स्कीम (Sensori Motor Scheme) का आन्तरीकरण (Internalisation) करके वह कॉगनीटिव स्कीमा (Cognitive schema) या विचार में परिवर्तन करने लगता है ।
- स्मृति पर आधारित प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है जिससे उसकी प्रत्यक्ष वस्तुओं एवं स्थूल अनुभूतियों पर निर्भरता कम होने लगती है ।
- इस अवस्था की मुख्य विशेषताएँ अनुकरण (Imitation) खेल, पूर्व संकल्पना (Pre-concept) एवं भाषा विकास का प्रारम्भ है ।

(II) अन्त: प्रज्ञ चिन्तन काल (Intuitive Phase) (4 से 7 वर्ष आयु तक)

यह पूर्व संकल्पनात्मक चिन्तन एवं मूर्त संक्रिया के बीच की अवस्था है । अन्त: प्रज्ञ चिन्तन की भी दो उपअवस्थाएं हैं

अ साधारण प्रस्तुतीकरण (Simple intuition) या अर्न्तदृष्टि (4 वर्ष से 5 वर्ष)

ब. उच्चारित अन्तर्दृष्टि (Articulated intuition) (5 से 7 वर्ष तक)

इस अवस्था में बच्चे दो प्रकार की बोली या भाषा का प्रयोग करते हैं ।

(i) आत्मकेन्द्रित (Egocentric Speech) जिसे बच्चा अपने आप से बोलता है ।

(ii) सामाजिक भाषा (Socialized Speech) जिसे बच्चा दूसरों से बोलता है ।

- इस अवस्था में बच्चे सामूहिक मोनोलॉग (Collective monologues) प्रदर्शित करते हैं जिसमें भाषा का प्रयोग किये बिना ही वे एक दूसरे को प्रेरित करते हैं ।
- धीरे-धीरे अब उनमें उचित भाषा प्रयोग की क्षमता विकसित हो जाती है ।
- बाहय वातावरण से सामंजस्य एवं आन्तरिक संरचनाओं का आत्मसात संतुलित होने लगता है ।
- किसी वस्तु के दो विभिन्न गुण जैसे ऊँचाई तथा चौड़ाई अलग-अलग स्थितियाँ तथा अलग-अलग रूप में प्रभाव डालते हैं इस प्रकार की समझ पैदा होने लगती है ।

– अभी उसका चिन्तन अपूर्ण ही रहता है जिससे वह कार्य कारण तथा उचित-अनुचित का भेद ठीक से नहीं समझ पाता । यही कारण है कि बच्चे इस प्रकार के निर्णय में सूझ या अन्तर्दृष्टि का प्रयोग करते हैं किन्तु प्रौढ़ तर्क का सहारा लेते है ।

7.7.3 मूर्त संक्रिया (Stage of concepete operation) (7 से 11 वर्ष आयु तक)

इस अवस्था में मानसिक संक्रियायें प्रारम्भ हो जाती है ।

संक्रिया (Operation) का तात्पर्य मानसिक क्रियाओं से है जिनके आधार पर मानसिक संरचनाओं (Cognitive structures) में परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं पुनर्गठन होता है । इसके अन्तर्गत मस्तिष्क में मानसिक क्रियाओं एवं संरचनाओं में क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियायें होती है जिनके फलस्वरूप किसी संरचना के रूप का विरोधी रूप भी निर्मित होता है जैसे जोड़ने का विरोधी रूप घटाने से है, संलग्न करने की विरोधी संरचना अलग करने से होती है आदि । इस प्रकार प्रत्येक संक्रिया की तार्किक विरोधी संक्रिया का उदय होता है ।

इस प्रकार इस अवस्था में बालक बालिका में चिन्तन समस्या समाधान के कौशल का विकास होता है तथा किसी भी संरचना संक्रिया के विरोधी रूप भी बनते हैं । मानसिक रूप से वे संरचनाओं में संगठन एवं पुर्नसंगठन कर सकते हैं ।

इस अवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है -

– डीसेंट्रेशन (Decentration) अर्थात् बच्चा किसी वस्तु घटना या पदार्थ के विभिन्न अवयवों एवं आयामों को एक साथ समझ सकता है, उनके सम्बन्धों को समझ सकता है उनमें एकीकरण कर सकता है । अपनी व्यक्तिगत धारणाओं से ऊपर उठ कर वस्तुनिष्ठ दृष्टि से समझने का प्रयत्न करता है ।

– कन्जर्वेशन (Conservation). इस अवस्था की मुख्य विशेषता कन्तर्वेशन है अर्थात् बच्चे अब यह समझ सकते हैं कि किसी वस्तु या पदार्थ के बाश्य रूप रंग, आकार आदि में परिवर्तन होने पर भी उसकी मुख्य विशेषताओं में परिवर्तन नहीं होता है जैसे पानी, बर्फ या भाप के रूप में परिवर्तित हो जाने पर भी उसकी मुख्य विशेषताएँ नहीं बदलती तथा उसे पुन: पानी की अवस्था में लाया जा सकता है । गीली मिट्टी के गोले के आकार को बदलने पर भी मिट्टी की मात्रा में परिवर्तन नहीं होता । उसी प्रकार बराबर मात्रा में पानी अगर अलग-अलग लम्बे या चौडे बरतनों में डाला जाय तो पानी की मात्रा में अन्तर नही होता है । उसी को कन्जर्वेशन आफ क्वांटिटी (Conservation of Quantity) कहा गया है ।

इजी कन्जर्वेशन की क्षमता के आधार पर बच्चे वातावरण की घटनाओं एवं पदार्थों में नियमितता का आभास करते है, उनके सम्बन्धों को समझ सकते हैं । मध्य भिन्नता में भी आतरिक एकीकरण अभिन्नता का ज्ञान इसी के आधार पर होता है । कन्यर्वेशन के कारण तो बच्चे जगत में बाहय घटित परिवर्तनों में भी एक नियमितता एवं अभिन्नता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं तथा उन नियमों को समझ सकते हैं जिनके द्वारा घटनायें या पदार्थ नियमित एवं संचालित होते हैं ।

इसी के आधार पर बच्चा पदार्थ की अवस्था की अपेक्षा उसके रूपान्तरण (Transformation) को समझने का प्रयत्न करता है, कन्नर्वेशन की अवधारणा को समझता है तथा किसी घटना या पदार्थ के विभिन्न पक्षों एवं उनके सम्बन्धों को समझता है ।

संक्रिया (operation) एक प्रकार का आन्तरिक रूपान्तरण (Intervioriezed transformation) है, जिसे उल्टी अवस्था (Reverse Stage) में लाया जा सकता है।

इस मूर्त संक्रिया की अवस्था में बच्चे मूर्त जगत के पदार्थों का ही ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं । पदार्थों का वर्गीकरण कर सकते हैं, उनमें संबंध स्थापित कर सकते हैं । वस्तुओं को क्रमानुसार लगा सकते हैं, उनमें समरूपता तथा मानचित्र आदि को समझने की क्षमता विकसित हो जाती है । किन्तु अभी उनमें अमूर्तजगत अर्थात् विचारों एवं कल्पनाओं के आधार पर वस्तुओं एवं घटनाओं को समझने की क्षमता का विकास नहीं हो पाता ।

7.7.4 अमूर्त चिन्तनकाल (stage of formal operation) (11-15)

यह अवस्था मानसिक विकास की ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया (Vertical) की अवस्था है अर्थात् इस अवस्था में किशोरावस्था में समस्याओं के समाधान में ऊर्ध्वगामी दिशा में (उच्च मानसिक स्तर की और) मानसिक क्षमताएँ उत्पन्न होती है जबकि मूर्त संक्रिया की अवस्था (Concrete operation) में क्षैतिज दिशा में मानसिक क्षमताओं का विकास अधिक होता है । इस प्रकार स्थूल अनुभवों का उन्नयन होता है । इस अवस्था में किशोर सीधे प्रत्यक्षीकरण एवं कार्यों पर निर्भरता से अपने चिन्तन को मुक्त कर सकता है अर्थात् विचारों के माध्यम से ही स्थूल अनुभवों के अभाव में भी चिन्तन कर सकता है समस्याओं का मानसिक समाधान ढूँढ सकता है । वह वर्तमान एवं प्रत्यक्ष से हट कर भी अपने चिन्तन के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण कर सकता है । इस प्रकार से विचारों को ही चिन्तनशील विचार (Reflective thought) कहा गया है । वह परिकल्पनाएँ बना सकता है तथा उसकी सत्यता स्थापित कर सकता है । पियाजे के अनुसार अमूर्त चिन्तनकाल ज्ञानात्मक विकास की अन्तिम अवस्था है अर्थात् सभी प्रकार की मानसिक क्षमताओं का अधिकतम विकास इस अवस्था में हो जाता है इस अवस्था के उपरान्त उपलब्धि में तो विकास हो सकता है किन्तु ज्ञानात्मक क्षमताओं में इस अवस्था के बाद विकास नहीं होता । अमूर्त चिन्तनकाल उच्चतम विचारों की अवस्था है।

7.8 ज्ञानात्मक क्रियाएं (Congnitive functions)

पियाजे के ज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का आधार उनका व्यक्ति में स्वाभाविक क्रियाशीलता का विश्वास है । व्यक्ति स्वभावगत क्रियाशील है तथा ज्ञानेन्द्रिया वातावरण में स्वत: क्रिया-प्रतिक्रिया करती है । इसी क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण ज्ञानात्मक संरचनाओं का जन्म होता है । इन मानसिक क्रियाओं का रूप निम्नलिखित प्रकार से है ।

(i) एडेप्टेशन Adaption
- (एसीमिलेशन) (Assimilation)
- (एकोमोडेशन) (Accomodation)

(ii) ऑर्गनाईजेशन (Organisation)

चूंकि पियाजे के शब्दों का एक विशेष अर्थ है । अत: उन शब्दों को उसी रूप में हिन्दी में स्वीकार कर लेना उनके साथ न्याय होगा ।

पियाजे के अनुसार बुद्धि (Intelligence) के कुछ सामान्य कार्य (Invariant functions) या सामान्य लक्षण है । इन सामान्य कार्यों को "ऑर्गनाईजेशन" तथा 'एडेप्टेशन" द्वारा स्पष्ट किया गया है । सामंजस्य स्थापित करने वाले व्यवहारों को पियाजे ने बुद्धिमतापूर्ण व्यवहार कहा है ।

लोग अनुभवों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं । तदु परान्त वे उन अनुभवों को संगठित करते हैं । सामंजस्य (Adaptaion) बुद्धिमतापूर्ण व्यवहारों का बाहय या वातावरण से सम्बन्धित पक्ष हैं तथा संगठन (Organisation) उसका आन्तरिक मानसिक पक्ष है । यह दोनों क्रियाएं बुद्धिमतापूर्ण क्रियाओं के दो रूप हैं । एक बाहय वातावरण के प्रति है दूसरा आन्तरिक मानसिक संगठन की ओर है । संगठन (Organisation) के अन्तर्गत बुद्धि अन्य मानसिक क्रियाओं के साथ संगठित तथा समन्वित होती है । विकासशील सामंजस्य (Progressive adapation) के साथ-साथ संरचनाओं के संगठन के रूप में भी परिवर्तन आता है ।

एडप्टेशन (Adaptation)

जीवन के अनुभवों के संगठन के फलस्वरूप प्राणी में होने वाला परिवर्तन ही 'एडप्टेशन' है । पियाजे ने "एडप्टेशन" का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि यह वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति विरोधी शक्तियों में सन्तुलन स्थापित करता है । यह वातावरण से सतत् क्रिया प्रतिक्रिया है जिससे वह किसी सीमा तक उसकी भविष्यवाणी एवं नियन्त्रण करना सीख सकें । एडेप्टेशन के फलस्वरूप नये स्कीमा (Schaema) बनते हैं । एडडेशन में दो पूरक क्रियायें सीष्टालित है ।

(i) एसीमिलेशन (Assimilation)

(ii) एकोमेडेशन (Accomodation)

इन प्रक्रियाओं का वर्णन पहले किया जा चुका है ।

साम्यीकरण प्रक्रिया

मानसिक सरचनाओं में परिवर्तन क्यों होता है इसे 'एक्युलिबेशन प्रोसेस' रो स्पष्ट किया गया है । इसका अर्थ एसीमिलेशन एवं 'एकमोडेशन प्रक्रियाओं में सन्तुलन स्थापित करना है । व्यक्ति की ज्ञानात्मक संरचनाओं के अधिकतम विकास के लिये यह सन्तुलन आवश्यक है । एसीमिलेशन तथा एकेमोडेशन में सन्तुलन के फलस्वरूप मानसिक संरचनाओं में परिवर्तन होता है।

पियाजे का विचार है कि साम्यावस्था सभी जैविक एवं मानसिक जीवन का स्वाभाविक गुण है तथा उसी के फलस्वरूप संरचनाओं में परिवर्तन होता है । पियाजे ने बुद्धि को ऐसीमिलेशन तथा एकमोडेशन में सन्तुलन बताया है । ("Intelligence… an equilibration between assimilation and accommodation." Piaget,1963)

इसी प्रकार विकास को परिभाषित करते हुए पियाजे से स्पष्ट किया है कि विकास निम्न साम्यावस्था से उच्च साम्यावस्था का विकासशील सन्तुलन है । (Development is"a progressive equilibration form lesser to higher state of equlibilium." Piaget,1967.) इक्यूबेशन (साम्यावस्था या सन्तुलन की अवस्था) विकासशील परिवर्तन को दिग्दर्शित करता है । वह वंशानुगत, प्रौढ़ता, शारीरिक तथा सामाजिक प्रभावों का संश्लेषण है ।

7.9 ब्रूनर के अनुसार ज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development accourding to Burner)

जेरोम एस. ब्रूनर (Jerome S.Bruner) का नाम ज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम में प्रमुख है । आधुनिक ज्ञानात्मक मनोविज्ञान (Congnitive Psychology) में इनका विशेष योगदान है । पियाजे का प्रभाव स्तर पर स्पष्ट है । इनके सिद्धान्त को समाहार सिद्धान्त (Evective theroy) कहा जा सकता है जिसमें कई शास्त्रों का समन्वय पाया जाता है । लूनर ने विशेष रूप से अवधारणाओं के निर्माण एवं मानसिक प्रक्रियाओं पर शोध किया तथा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । ब्रूनर को क्रियावादी (Function- Alist) कहा जा सकता है । ब्रूनर के अनुसार ज्ञान प्राप्ति एक क्रियाशील प्रक्रिया है! इनके अनुसार व्यक्ति पूर्व मनोवैज्ञानिक अनुग्रतइयों एवं नये अनुभव के आधार पर ज्ञान का निर्धारण करता है । इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति में सक्रिय योगदान करता है । वह सूचनाओं का चयन, उसमें परिवर्तन तथा परिकल्पनाओं का निर्माण करता है ।

व्यक्ति का जैसे-जैसे ज्ञानात्मक विकास परिपक्व होता है वह प्रत्यक्ष उत्तेजको से अपने को स्वतन्त्र करता है । विकास के साथ-साथ संरचनाओं एवं अनुभवों का आन्तरीकरण (Internalization) होता है जिसके फलस्वरूप शब्दों एवं प्रतीकों को ग्रहण करने की क्षमता का विकास होता है।

बूनर के अनुसार ज्ञानात्मक विकास में तीन रूप तथा अवस्थाएं हैं ।

(1) सक्रिय (Enactive)

(2) प्रतिमा रूप (Iconic)

(3) प्रतीकात्मक (Symbolic)

ये तीनों रूप इसी क्रम में बच्चों में विकसित होते हैं तथा इनका एक-दूसरे रूप में परिवर्तन हो सकता है ।

1. सक्रिय रूप (Enactive Mode)

इसके अन्तर्गत गामक क्रियाओं के फलस्वरूप बच्चे बाहय जगत का ज्ञान प्राप्त करते हैं । वस्तुओं को उठाना, रखना, खेलना, तोड़ना आदि सभी प्रकार के क्रियात्मक अनुभवों के आधार पर बच्चे बाहय जगत के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं । फलस्वरूप उनकी मानसिक संरचनायें बनती हैं । जानने का तात्पर्य यहां करने से हैं । क्रियाओं को करके बच्चों को उनके बारे में जानकारी होती है । शिशु अवस्था में इसी के आधार पर ज्ञानात्मक होता है ।

2. प्रतिमारूप (Iconic mode)

इसके अन्तर्गत बच्चों के मस्तिष्क में चित्र एवं प्रतिमा बनती है । बाहय जगत का ज्ञान इसी प्रतिमा के रूप में होता है । कुछ रेखाचित्र, कुछ चित्र, कुछ मानचित्र आदि का क्रियात्मक ज्ञान बच्चों को होता है । जिसके आधार पर अवधारणाओं का निर्माण उनके मस्तिष्क में होता है । यह "आयकोनिक ज्ञान दृश्य अथवा अन्य ज्ञानेन्द्रियजन्य अनुभूतियों के आधार पर होता है अत: यह प्रत्यक्षीकरण (Perceptual) के सिद्धान्तों के आधार पर संगठित होता है । इरा प्रकार का सर्वाधिक ज्ञान 5 वर्ष से 7 वर्ष की आयु पर होता है जब बच्चा अधिकतर अपने ज्ञानेन्द्रिजन्य प्रतिमाओं पर निर्भर होता है।

3. प्रतीकात्मक रूप (Symbolic mode)

किशोरावस्था पर पहुँचतेपहुँचते भाषा का पर्याप्त विकास हो जाता है जो विचार का मुख्य माध्यम बन जाता है । अत: अब प्रतिमा रूप से प्रतीकात्मक रूप में हतान्तरण हो जाता है । बच्चे प्रतीक रूप से बाहय जगत का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, तथा अपने विचार प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त कर सकते है । उनके विचार अधिक जटिल अमूर्त तथा लचीले हो जाते हैं । वे प्रतीकों के माध्यम से तथा भाषा के सहारे चिन्तन करने लगते हैं । वसूल वस्तुओं के अभावों में भी परिकल्पनाओं का निर्माण कर सकते हैं तथा अवधारणाओं को आपस में मिला सकते हैं । इस प्रकार व्यक्ति का ज्ञानात्मक विकास क्रियात्मक अनुभवों तथा प्रतिमाजन्य ज्ञान तथा प्रतीकात्मक अनुभूतियों के आन्तरीकरण (International) के आधार पर होता है ।

7.10 ज्ञानात्मक विकास एवं शिक्षा (Cognitive Development and Education)

ज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त से स्पष्ट हो जाता है कि बच्चों में ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न होती है । शिक्षा का आयोजन बच्चों की आयु एवं ज्ञानात्मक क्षमता के अनुकूल होना चाहिये । बच्चों की भाषा तथा ज्ञान ग्रहण करने की विधि एवं क्षमता के अनुकूल ही छात्रों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए ।

7.11 सारांश (Summary)

ज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य है, ज्ञानात्मक शक्ति का आविर्भाव होना, पुष्ट होना तथा अपनी चरम सीमा पर पहुँचना । पियाजे ज्ञानात्मक विकास वंशानुक्रम वातावरण तथा परिपक्वता के बीच होने वाली अन्तक्रिया का परिणाम मानते हैं । जबकि स्तर ज्ञानात्मक विकास को एक क्रियाशील प्रक्रिया मानते हैं । इनके अनुसार बालक पूर्व अनुभूतियों एवं नये अनुभव के आधार पर ज्ञान का निर्धारण करता है । शैशवावस्था (संवेदनात्मक गामक काल) से किशोरावस्था (ज्ञानात्मक चिंतन काल) के बीच बालक का ज्ञानात्मक विकास कैसे होता है, वह किस तरह से बोलना शुरू करता है, शब्दों को जोड़ता है, वाक्यों की रचना, संरचना करता है तथा अर्थ समझता है उसकी सरल व्याख्या इस अध्याय में की गई है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. ब्रूनर तथा पियाजे के ज्ञानात्मक सिद्धान्त का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए ।
2. पूर्व संप्रत्यात्मक चिन्तन कल में भाषा विकास कैसे होता है ?
3. अमूर्त चिन्तन काल में ज्ञानात्मक विकास कैसे होता है ?
4. ब्रूनर के अनुसार ज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ कौन-कौन सी हैं ?
5. किशोरावस्था कि ज्ञानात्मक क्षमताओं को ध्यान में रखते हुये शिक्षण योजना कि मुख्य विशेषतायें क्या होनी चाहिए ?
6. बुद्धि के स्वरूप तथा ज्ञानात्मक विकास कि दृष्टि से अध्यापकों के उत्तरदायित्वों कि चर्चा कीजिए

7.12 संदर्भ (Reference)

1. Deity,J.(1956) ; The child and the curriculum;the school and socity.Chicago University of chikago press
2. Jennings, F.G (1967); Jean Piaget: Note on learning. Staturday Review
3. Srivastava, G.N.P (1988): Cognitive development theory. Recent approaches to personality study.Agra Psychological Research cell.Tiri Kothi,Agra
4. Srivastava, G.N.P (1987): Recent trends in Educational Psychology. Agra Psychol. Research Cell, Agra-4
5. Flavell, John.H. (1963): The Development psychology of jean pitaget; Van Nostrand Reinhold Comp.
6. Sigel, I.E. (1969): The piagetion system and the world of education. In D.Elkind and J.Flavell, editors, Studies in congnitive development.

इकाई-8

सामाजिक विकास : अर्थ. प्रक्रिया, परिवर्तन और प्रतिमान (Social Develoment : Meaning, Process, Change an Patterns)

इकाई की सरंचना

8.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

8.2 सामाजिक विकास का अर्थ

8.3 समाजीकरण की प्रक्रिया कैसे होती है?

8.4 सामाजिक विकास की कसौटियां

8.5 सामाजिक विकास के प्रतिमान

8.6 सामाजिक विकास की अवस्थाए और होने वाले परिवर्तन

8.6.1 शैशवावस्था में सामाजिक विकास

8.6.2 पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

8.6.3 उत्तर बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

8.6.4 वय: सन्धि अवस्था में सामाजिक विकास

8.6.5 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

8.7 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

8.8 सारांश

8.9 संदर्भ

8.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

अपने तथा अन्य मनुष्यों के साथ सम्पर्क स्थापना की बढ़ती हुई योग्यता का नाम है' सामाजिक विकास । यदि मनुष्य अपने आयु के अनुसार अन्य लोगों के साथ समाजोनुरूप क्रिया - अनुक्रिया न कर सकें तो उसे सामाजिक दृष्टि से अपरिपक्व समझा जाएगा । एक शिशु अबोध असामाजिक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में कैसे परिवर्तित होता है, इसी तथ्य को इस पाठ में समझाने का प्रयास किया गया है । आशा है कि इस इकाई की समाप्ति पर आप इस योग्य होगें ।

- सामाजिक विकास का अर्थ समझ सकें ।
- बालक के सामाजिक विकास को कसौटियों के आधार पर पहचान सकें ।
- सामाजिक विकास के प्रतिमानों के आधार पर विभिन्न आयु के बालकों के सामाजिक विकास का स्तर बता सकें।
- सामाजिक विकास की प्रक्रिया तथा आयु के अनुसार होने वाले परिवर्तनों की विवेचना कर सकें ।
- पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक व्यवहार के विभिन्न प्रकारों को समझ सकें ।

- उत्तर बाल्यावस्था में सामाजिक विकास को समझ सकें ।
- वय: सन्धि अवस्था में सामाजिक विकास के क्रम को समझ सकें ।
- किशोरावस्था में सामाजिक विकास की क्रिया को समझ सकें ।
- सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कर सकें ।

'अनु' एक चार वर्ष की बालिका है । वह एक नर्सरी स्कूल में पढ़ती है। वह सबसे पहले स्कूल पहुंचती है और कक्षा में सभी प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करती है । सभी प्रकार के खेलों में भाग लेती है, वह बहुत प्रसन्न रहती है । घर में भी वह अपना सब काम जैसे नहाना, कपड़े पहना आदि स्वयं करती है। वह छोटे-छोटे कामों मे अपनी माता का भी हाथ बँटाती है।

इसी कक्षा में एक और बालिका कमला है । वह बहुत सुस्त है । प्राय: स्कूल आने से मना करती है । उसके पिता उसे जबरन स्कूल छोड़ कर जाते हैं । स्कूल पहुंच कर वह काफी देर तक रोती रहती है । कक्षा में किसी खेल में या पढ़ाई में रूचि नहीं लेती । वह अपना काम स्वयं नहीं करती । उसकी माता उसे नहलाती है, और कपड़े पहनाती है । वह अधिकतर अपनी मां के साथ-साथ ही घूमती रहती है ।

इन दोनों बालिकाओं के उदाहरण से उनके प्रारम्भिक सामाजिक विकास तथा अभिवृतियों का पता चलता है । बालक के सामाजिक विकास पर उसके परिवार, समाज और साथ के अन्य बालको का प्रभाव पड़ता है । विभिन्न प्रकार की सामाजिक व्यवस्था के बालकों के सामाजिक विकास में भी भिन्नता रहती है । इस पाठ में हम शिशु के समाजीकरण की इसी प्रक्रिया के विषय में ज्ञान प्राप्त करेगें ।

8.2 सामाजिक विकास का अर्थ (Meaning of Social Development)

जन्म के समय शिशु न सामाजिक होता है न असामाजिक । वह समाज के प्रति उदासीन होता है । आयु बढने के साथ-साथ वह सामाजिक गुण सीखता है और समाज के अन्य सदस्यों के साथ उचित व्यवहार करना प्रारम्भ करता है । सामाजिक विकास की यह प्रक्रिया बहुत से चरणों में विभाजित होती है प्रारम्भ में सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है, फिर इस विकास में पठार आता है, फिर मन्द गति से विकास होता है । इसके पश्चात् सामाजिक विकास मे प्रतिगमन दिखाई देता है । अन्त में यह फिर मन्द गति से चलता है । विभिन्न चरणों में विकास की गति व्यक्ति को सामाजिक प्राणी कहलाने की अभिप्रेरणा पर निर्भर करती है।

शिशु विभिन्न वस्तुओं और प्राणियों को देखकर विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियाँ प्रस्तुत करता है शिशु को अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए भी अन्य लोगों की आवश्यकता होती है । अत: शिशु का प्रारम्भ से ही समाजीकरण होना आवश्यक है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों, ने सामाजिक विकास का अर्थ विभिन्न प्रकार से समझाया है।

चाइल्ड (1954) के अनुसार, " सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति में उसके समूह मानको के अनुसार वास्तविक व्यवहार का विकास होता है । "

हरलॉक (1978) के अनुसार " सामाजिक विकास का अर्थ उस योग्यता को अर्जित करना है, जिसके द्वारा सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार किया जा सकें । "

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है, सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह मानकों के अनुसार और सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार करना सीखता है ।

8.3 समाजीकरण की प्रक्रिया कैसे होती है (Process of Socialization)

समाजीकरण की प्रक्रिया में तीन प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं ।

(1) वह प्रक्रिया जिसके द्वारा बालक में समाज द्वारा मान्य व्यवहार का विकास होता है । प्रत्येक समूह के अवहार संबंधी कुछ मानक होते हैं । बच्चे यदि इन्हीं व्यवहार मानकों का अधिगम करते हैं, तो उनका व्यवहार समाज द्वारा मान्य होता है ।

(2) वह प्रक्रिया जिसके द्वारा बालक मान्य सामाजिक व्यवहार सीखता है । प्रत्येक समूह में विभिन्न आयु के लोगों जैसे. माता-पिता व बच्चो, अध्यापकों आदि के लिए कुछ निश्चित व्यवहार प्रतिमान तथा सामाजिक व्यवहार होते हैं । एक समाज के लोगों को इन्हीं निश्चित, व्यवहारों और प्रतिमानों को ' होता है, और इन्हीं के अनुसार व्यवहार करना होता है ।

(3) सामाजिक विकास में तीसरी प्रक्रिया है सामाजिक अभिवृत्तियों का विकास । सामाजिक कहलाने 'के लिए यह आवश्यक है कि बालक अन्य लोगों तथा उनकी सामाजिक क्रियाओं को पसन्द करें । ऐसा करने पर ही वह अपने समूह का सदस्य तथा सामाजिक प्राणी कहला सकता है।

सामाजिक व असामाजिक व्यक्ति की परिभाषा उपरोक्त तीन प्रक्रियाओं के आधार पर की जा सकती है । सामाजिक व्यक्ति वह हैं, जिसमें उपरोक्त तीनों ही प्रक्रियाएं सामान्य रूप से चली हों तथा असामाजिक व्यक्ति वह है, जो उपरोक्त तीनों ही प्रक्रियाओं में सफलता न प्राप्त कर सका हों । बहुत कम बच्चे और वयस्क इन तीनों प्रक्रियाओं में सफलता पाते हैं। अधिकतर लोग केवल सामाजिक प्रत्याशियों में अनुरूपता ही स्थापित करते रह जाते हैं । इस अनुरूपता को स्थापित कर लेने से उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है । इसके विपरीत यदि कोई बालक अपने परिवार और समूह के मानकों के अनुसार अनुरूपता स्थापित नहीं करता तो परिवार और समूह उसे स्वीकार नहीं करता । जिन परिवारों में सामाजिक प्रत्याशाओं में अनुरूपता को महत्व दिया जाता है, वहां बालक को भी यह अनुरूपता स्थापित करने में सरलता रहती है ।

समाजीकरण की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि-

- बालक को समाजीकरण के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त हो ।
- बालक को ऐसी भाषा व विषयों पर बोलने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हों जो समूह के अन्य
- सदस्यों को पसंद हों ।
- बालक में समाजीकरण की प्रक्रिया के लिए पर्याप्त अभिप्रेरणा हो तथा उन्हें समूह के अन्य सदस्यों के व्यवहार से संतुष्टि प्राप्त हो ।
- बालक को इस दिशा में पर्याप्त मार्गदर्शन प्राप्त हो ।

8.3.1 बालक के प्रारम्भिक सामाजिक अनुभवों का महत्व

'पार्थ' जब अपने रिश्ते के मामा से पहले बार मिला तो उसकी माता ने उसे उनके पाँव छूने के लिए कहा । रंजन ने जब अपनी छोटी बहन को मारा तो उसकी माता ने उसे बहुत डाँटा,

क्योंकि उसने गलत काम किया था । प्रथम उदाहरण में पार्थ को सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप कार्य की शिक्षा दी गयी तथा दूसरे उदाहरण में रंजन को समाज की प्रत्याशाओं के विपरीत कार्य करने से रोकने का प्रयास किया गया ।

बालक सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप कार्य करने का प्रयास करता है ।

सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप कार्य न करने पर वयस्कों के क्रोध का भागी बनना पड़ता है ।

बालक के इस प्रकार के प्रारम्भिक सामाजिक अनुभव इस बात का निर्धारण करते हैं कि वह किस प्रकार का सामाजिक प्राणी बनेगा । प्रारम्भिक सामाजिक अनुभवों में परिवार का वातावरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । इन अनुभवों में परिवार का आकार परिवार में बालक का स्थान, लालन पालन की विधि, माता-पिता की बालक से प्रत्याशायें तथा अन्य सदस्यों का बालक से व्यवहार बहुत महत्वपूर्ण हैं । परिवार में जब बालक के संबंध अच्छे होंगे तो वह घर से बाहर के लोगों से भी अच्छे स लंब स्थापित कर पाएगा ।

बालक के प्रारम्भिक अनुभवों पर उसके साथियों पड़ोसियों तथा अध्यापकों का भी प्रभाव पड़ता है । एक बालक सामाजिक कार्यक्रमों को कितना पसंद करेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि अन्य बालक उसको कितना स्वीकार करते हैं । बालक की जो सामाजिक अभिवृत्तियाँ निर्मित हो जाती है वह प्राय: स्थिर रहती है। उसके प्रारम्भिक सामाजिक अनुभव उसके व्यक्तित्व को भी प्रभावित करते हैं ।

जिस बालक के प्रारम्भिक सामाजिक अनुभव अच्छे रहे होते हैं, उस बालक में आत्म के प्रति धनात्मक अभिवृत्तियाँ निर्मित होती है । आक्रामकता, प्रभुत्व, स्वतंत्रता आश्रितता आदि गुणों की शुरूआत जीवन के प्रारम्भिक काल में ही हो जाती है । बालक के यह गुण यदि उसके सामाजिक समायोजन और विकास में सहायक होते हैं, तो वह उसके लिए अच्छे होते हैं, अन्यथा नहीं)

समाजीकरण प्रक्रिया में मनुष्य के लिए दूसरे मनुष्यों के साथ व्यवहार करना सीखना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । यह प्रक्रिया जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही आरम्भ हो जाती हैं ।

पियाजे के अनुसार प्रारम्भ में बालक की भाषा " आत्म केंद्रित" होती है । वह दूसरे व्यक्तियों से विचारों का आदान-प्रदान नहीं करता है । परन्तु धीरे-धीरे वह दूसरों से विचारों का आदान-प्रदान प्रारम्भ करता है, उनके विचारों को समझने लगता है और उनसे सामाजिक संबंध स्थापित करने के लिए अपनी भाषा में परिवर्तन करता है । इस प्रकार उसकी भाषा समाजीकृत हो जाती है ।

स्टेन्दलर के अनुसार माता-पिता के सामिप्य तथा निकटता का अनुभव बालक के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। माता-पिता बच्चे पर अपना ध्यान केंद्रित करके अथवा उनके क्रिया-कलापों की सराहना करके भी उसके समाजीकरण में सहायता करते हैं। माता-पिता बालक के सभी कार्य करके देने की अपेक्षा यदि केवल कार्य करने में सहायता करके उसके समाजीकरण में सहायक हो सकते है । बालक यदि किसी कार्य को स्वतंत्र रूप से पूर्ण कर लें तथा इसके लिए यदि उसे अपेक्षित स्वीकृति तथा सराहना प्राप्त हो जायें तो वह धीरे-धीरे अपने सभी कार्य स्वतंत्र रूप से करना सीख जाता है।

इसी प्रकार जो बालक सामाजिक परिस्थितियों में वयस्कों के आक्रामक व्यवहार को बार-बार देखते हैं, वह बच्चे प्राय: आक्रामक व्यवहार ही करने लगते हैं क्योंकि वही उन्हें समाज का

स्वीकार्य व्यवहार प्रतीत होता है। बालक को बचपन में यदि इस प्रकार के व्यवहार के लिए दंडित न किया जाए, तो भविष्य में उनमें यह प्रवृत्ति और बढ़ जाती है। बचपन में दंडित करने से अनुचित व्यवहार की प्रवृत्ति बढ़ती है।

8.4 सामाजिक विकास की कसौटियाँ (Criteria's of Social Development)

बालक के सामाजिक विकास को विभिन्न कसौटियों के आधार पर माप सकते हैं ।

8.4.1 सामाजिक प्रौढ़ता सामाजिक प्रौढ़ता का अर्थ है. कि समाज के मूल्यों, नियमों, अभिवृत्तियों और सामाजिक व्यवहार आदि की प्रौढ़ता । यह गुण एक व्यक्ति में यदि समाज की प्रत्याशाओं के अनुसार विकसित हो चुके हैं तो वह व्यक्ति समाज की दृष्टि से पूर्ण रूप से सामाजिक प्रौढ़ता रखता है । वह व्यक्ति सामाजिक, मूल्यों और नियमों में श्रद्धा रखता है तथा उन्हीं के अनुसार कार्य करता है । सामाजिक प्रौढता का विकास धीरे-धीरे आयु बढ़ने के साथ-साथ होता है । इस कसौटी के आधार पर बालक में विकास के स्तर को पहचाना जा सकता है।

6.4.2 सामाजिक अनुरूपता : सामाजिक अनुरूपता का अर्थ है - समाज के मानकों आदर्शो और मूल्यो के अनुरूप व्यवहार करना । प्रत्येक समूह और समाज अपने सदस्यों से आशा करता है कि वह अपने समूह और समाज के मूल्यों और नियमों के अनुरूप व्यवहार करेंगे । जो सदस्य इन मूल्यों और नियमों के अनुरूप कार्य करते हैं, वह अपने समूह के वास्तविक सदस्य कहलाते हैं । बालकों के व्यवहार में सामाजिक अनुरूपता जितनी अधिक होती है, उन बालकों का सामाजिक विकास उतना ही अच्छा होता है । सामाजिक विकास और सामाजिक अनुरूपता में धनात्मक सहसंबंध है ।

8.4.3 सामाजिक समायोजन: सामाजिक समायोजन के आधार पर सामाजिक विकास का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । जिस बालक का समायोजन जितना अच्छा होता है, उसका सामाजिक विकास भी उतना ही अच्छा होता है । ऐसे बच्चे की सामाजिक स्वीकृति भी अधिक होती है ।

8.4.4 सामाजिक अन्त: क्रियायें: सामाजिक अन्त: क्रियाओं का अर्थ है दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक प्रक्रियायें । सहयोग, सहानुभूति, व्यवस्थापन, आत्मीकरण आदि, कुछ संगठनात्मक प्रकार की सामाजिक अन्त: क्रियायें हैं । बालक में सामाजिक विकास जितना अधिक होता है, उसमें संगठनात्मक सामाजिक अन्त: क्रियायें उतनी ही अधिक होती हैं । इसी प्रकार विघटनात्मक सामाजिक क्रियायें दोषपूर्ण सामाजिक विकास का चिन्ह है ।

8.4.5 सामाजिक कार्यक्रमो में भाग लेना:

बालक के सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने से उसके सामाजिक विकास के स्तर का ज्ञान होता है । बालक डेढ़ वर्ष की आयु से दूसरों के साथ खेलने व बातचीत में रूचि लेने लगता है । पाँच वर्ष की आयु तक वह सग्रिहक कार्यक्रमों में भाग लेने लगता है । सामाजिक कार्यक्रमों से वह समाज के नियमों व मूल्यों को सीखता है । बालक को सामूहिक कार्यक्रमों में भाग लेने के जितने अधिक अवसर प्राप्त होंगे, उसका उतना ही अधिक सामाजिक विकास होगा ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluatio)

1. समाजीकरण की प्रक्रिया की प्रक्रियायें कौन-कौन सी हैं ?
2. बालक के प्रारम्भिक सामाजिक अनुभवों का उसके जीवन में क्या महत्व होता है ?
3. सामाजिक विकास की कसोटियां कौन-कौन सी है?

8.5 सामाजिक विकास के प्रतिमान

सभी संस्कृतियों के बच्चों में सामाजिक विकास के प्रतिमान समान रूप से पाए जाते हैं । प्रतिमानों का क्रम भी सभी बालकों में समान रूप से पाया जाता है । प्रत्येक आयु स्तर पर एक निश्चित मात्रा में सामाजिक विकास होता है । सामाजिक विकास के इन प्रतिमानों के आधार पर यह बताया जा सकता है कि निश्चित आयु स्तर पर बालक का सामाजिक विकास क्या होगा । बालक का वास्तविक सामाजिक विकास उस समय प्रारम्भ होता है, जब वह अपने पड़ोस के बच्चों के साथ खेलना प्रारम्भ करता है । यह आयु लगभग 3-4 वर्ष की होती है । सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने के अवसर तथा बालक की प्रतिभा का भी सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है ।

8.6 सामाजिक विकास की अवस्थायें और होने वाले परिवर्तन

बचपनावस्था, पूर्व बाल्यावस्था, पश्चात, बाल्यावस्था तथा वय: सधिकी अवस्थाओं में एक निश्चित क्रम में सामाजिक विकास होता है । आओं देखें, यह परिवर्तन किस प्रकार घटित होता है।

8.6.1 शैशवावस्था में सामाजिक विकास:

जन्म के समय से उस समय तक बालक दूसरे बच्चों में कोई रूचि नहीं लेता है जब तक कि उसकी सभी आवश्यकताओं की संतुष्टि सामान्य ढंग से होती रहती है । लगभग दो माह की आयु तक बालक वातावरण के केवल तीव्र उत्तेजनाओं के प्रति ही प्रतिक्रिया करता है । तीन माह की आयु का बालक विभिन्न ध्वनियों में भेद पहचानने लगता है तथा उसकी आँखों पर इतना नियंत्रण हो जाता है कि वह आस-पास के व्यक्तियों व उनकी गतिविधियों का निरीक्षण करने लगता है। प्रारम्भ में वह केवल वयस्क व्यक्तियों के ही संपर्क में रहता है। वह मानव की आवाज व मुस्कान के प्रति प्रतिक्रिया करने लगता है। अकेला होने पर वह रोता है। ऐसा वह वयस्कों का ध्यान आकर्षित करने के लिए भी करता है। बालक की इन प्रतिक्रियाओं से उसके सामाजिक विकास की उत्पत्ति होती है । इससे पहले का नवजात शिशु न सामाजिक होता है न असामाजिक क्योंकि वह न तो दूसरों को पहचानता है, न प्रतिक्रिया करता है। बालक सबसे पहले माँ को पहचानना आरम्भ करता है तथा उसी की आवाज व मुस्कान के प्रति प्रतिक्रिया करता है । धीरे-धीरे व अन्य व्यक्तियों को पहचानना भी आरम्भ कर देता है।

कर माह का बालक कुछ चेहरों को पहचानने लगता है । उसे हँसाने का प्रयास करने वाले व्यक्ति को देखकर वह मुस्कुराता है, वह कभी-कभी हँसता भी है । इस अवस्था में बालक सामाजिक उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया मुस्कराकर, हँसकर, रोकर अथवा मुखाकृति या हाथों की अनुक्रियाओं द्वारा करता है । पाँच -छ: माह की आयु में उसमें और अधिक सामाजिक विकास हो जाता है तथा वह क्रोध और मित्रता संबंधी व्यवहार को समझने लगता है । वह अपने परिवार के

लोगों को पहचानने लगता है, अपरिचितों के प्रति भय प्रदर्शित करता है तथा दूसरों को आकर्षित करने के लिए हाथ- पैर पटकता है तथा रोता है । वह दूसरे बच्चों को भी पहचानने लगता है ।

आठ- नौ माह का बालक ध्वनियों का अनुकरण करने लगता है । वह वयस्कों को व्यवहार संबंधी अभिव्यक्तियों का अनुकरण भी करने लगता है । वह दूसरे बच्चों के साथ खेलने लग जाता है । एक वर्ष का बालक अपरिचिततो को देखकर डरता है तथा रोता है । लगभग 15 माह का बालक वयस्कों में इतनी रूचि लेने लगता है कि उन्हीं के साथ रहना पसंद करता है तथा उन्हीं का अनुक रण करने का प्रयास करता है, वह दूसरे बच्चों के बालों और कपडों को पकड़ता है, और उनकी क्रियाओं और व्यवहारों का अनुकरण करता हैं, वह उनकी भाषा का अनुकरण भी करता है ।

दूसरे वर्ष में सामाजिक संबंधों का तीव्र गति से विकास होता है । लगभग डेढ़ वर्ष का बालक दूसरे बच्चों से मुस्कुराकर, हँसकर तथा शारीरिक अनुक्रियाओं और अभिव्यक्तियों द्वारा थोड़ा बहुत अपने विचारों का आदान-प्रदान करने का प्रयास करता है । इस अवस्था से पहले यदि बच्चे का खिलौना दूसरे बच्चे को दे दिया जाए तो छीना-झपटी हो जाती है । परन्तु दो वर्ष की अवस्था में यह छीना-झपटी कम हो जाती है ।बच्चे सहयोगात्मक खेल खेलना प्रारम्भ कर देते हैं।

8.6.1.1 शैशवावस्था के कुछ विशिष्ट सामाजिक व्यवहार -

जन्म से दो वर्ष तक के शिशु में अनुकरण करने, दूसरो की आश्रितता को पसंद करने, दूसरे से ईर्ष्या करने, अन्यों के साथ सहयोग, दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने, शर्माने तथा नकारात्मक व्यवहार करने आदि की कुछ विशिष्ट क्रियायें देखी जा सकती है ।

8.6.2 पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास-

पूर्व बाल्यावस्था 2 से 6 वर्ष की अवस्था है । इस अवस्था में बालक सामाजिक अधिगम घर, घर से बाहर पड़ोस अथवा स्कूल में करता है । इस अवस्था में सीखा गया सामाजिक व्यवहार प्राय: स्थायी रहता है, उसमें भविष्य में बहुत कम परिवर्तन होता है । इस अवस्था में यदि बालक स्कूल जाने लगे तो उसका विकास और भी तीव्र गति से होता है, क्योंकि वहाँ सामाजिक अनुभवों के अवसर अधिक रहते हैं । दो वर्ष का बालक प्राय: अकेला ही खेलना चाहता है । वह अपने आस-पास के अन्य बच्चों को अपने खेल में सम्मिलित नहीं करता । परन्तु उनके खिलौने लेने का प्रयास अवश्य करता है । तीन से चार वर्ष की आयु में बच्चे सामूहिक खेल खेलने लगते है । वह आपस में बातचीत भी करते है और इस प्रकार धीरे-धीरे उनमें मित्रता बढ़ती जाती है । वह अपनी आयु के बच्चों के साथ रहना पसंद करते हैं । अत: वयस्क व्यक्तियों के साथ उनके संबंध कम हो जाते

8.6.2.11 पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक व्यवहार के कुछ प्रकार-

आक्रामकता: पूर्व बाल्यावस्था में अधिकतर बच्चों का व्यवहार आक्रामक होता है । लगभग पाँच वर्ष की आयु में वह अपनी चरम सीमा पर होता है और उसके बाद धीरे-धीरे व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है । इस आयु में आक्रामकता के अनेक कारण हैं:

1) माता-पिता का तिरस्कारपूर्ण व्यवहार
2) दूसरों का ध्यान आकर्षित करने की इच्छा

3) ईर्ष्या

4) बालक या बच्चे के आक्रामक व्यवहार की नकल करना ।

5) पारिवारिक तनाव

6) अपनी उच्चता प्रदर्शित करने की इच्छा ।

आक्रामकता प्रदर्शित करने के लिए बालक हाथ- पाँव पटकता है, अथवा दूसरे बच्चों या वयस्कों के साथ मार-पीट करता है । साधारणतया वह यह व्यवहार अपने परिचितों के साथ ही करता **झगड़ा** - यह आक्रामकता से ही उत्पन्न होता है, परन्तु आक्रामकता से भिन्न है, क्योंकि आक्रामकता वैयक्तिक क्रिया जबकि झगड़े में दो या अधिक बच्चे सम्मिलित रहते हैं । यह प्रवृत्ति तीन-चार वर्ष की आयु तक अपनी चरम सीमा पर रहती है । उसके पश्चात् जैसे जैसे सामाजिक समायोजन बढ़ता जाता है, झगड़े की प्रवृत्ति कम होती जाती हैं । यह झगड़ा प्राय: खिलौनों पर होता है । बच्चे दूसरे के खिलौने छीनने, काटने, धक्का देने, जैसे व्यवहार करते हैं । बच्चे जब अलग-अलग खेलते हैं, तो झगड़ा कम होता है । प्राय: लड़के लड़कियों से ज्यादा झगड़ा करते देखे जाते हैं ।

चिढ़ाना- यह एक प्रकार की मौखिक आक्रामकता है, जिसके द्वारा एक बच्चा दूसरे बच्चे को क्रोधित करता है । प्राय: बच्चे अपने से छोटे व कमजोर बच्चों को चिढ़ाते है । प्राय: यह देखा गया है कि लड़के लड़कियों की अपेक्षा यह व्यवहार अधिक अपनाते हैं।

निषेधात्मक व्यवहार: प्राय: आशा के विपरीत कार्य या व्यवहार करने की प्रवृति है । निषेधात्मक व्यवहार का आरम्भ 18 माह की आयु मे ही हो जाता है तथा पाँच-छ: वर्ष की अवस्था तक चरम सीमा पर पहुँच जाता है । इसके पश्चात् यह व्यवहार कम होने लगता है । दस ग्यारह वर्ष की अवस्था में वह फिर तीव्र हो जाता है । तेरह वर्ष का बालक निषेधात्मक व्यवहार में बड़ों की आज्ञा नहीं सुनता, बुलाने पर छुप जाता है । ऐसी अवस्था में बच्चे समझाने से भी नहीं समझते।

सहयोग- समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्मिलित रूप से दो या अधिक बालकों का प्रयास सहयोग कहलाता हैं दो-तीन वर्ष का बालक झगड़ालू होता है, अत: उसमें सहयोग नहीं हो पाता । तीन से चार वर्ष की आयु के बालक में सहयोग दिखाई देता है । वह सामूहिक खेल में रूचि लेता है । बच्चा अन्य बच्चों की संगति में जितना अधिक रहेगा, सहयोग की भावना उतनी ही अधिक होगी । छ: सात वर्ष की आयु तक यह प्रवृत्ति बढ़ने लगती है । जिस परिवार के सदस्यों में सहयोग की भावना अधिक होती है, वहाँ बच्चों में भी इस भावना का विकास होता है।

ईर्ष्या- तीन से छ: वर्ष की आयु में ईर्ष्या चरम सीमा पर होती है । बच्चे सह करने का प्रयास करते हैं कि उनके पास सबसे अधिक बढ़िया खिलौने हैं । ईर्ष्या खेलने, पढ़ने, खिलौने व वस्त्रों के संबंध में होती है । छ: वर्ष तक की आयु में प्रतियोगिता की भावना भी विकसित हो जाती है । यह भावना उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के बच्चों में अधिक होती है ।

उदाहरण: छोटा बच्चा आत्म केंद्रित होता है । वह स्वार्थी भी होता है । परन्तु फिर वह अनुभव करने लगता है कि उस व्यवहार से उसकी सामाजिक स्वीकृति नहीं होती । अत: वह स्वार्थीपन दौड़कर दूसरे के समान व्यवहार करने लगता है । इस प्रकार उसमें उदारता के लक्षण दिखाई देने लगते हैं । प्राय: उच्च आर्थिक स्तर के परिवार के बच्चे अधिक स्वार्थी होते हैं और मध्य वर्गीय परिवार के बच्चे उदार होते हैं ।

सामाजिक अनुमोदन की इच्छा: बच्चों में प्रशंसा प्राप्त करने व ध्यान आकर्षित करने की प्रबल इच्छा होती है । प्रशंसा प्राप्त करने की यह इच्छा ही उसे सामाजिक समायोजन के लिए प्रेरित करती है । यह इच्छा जितनी प्रबल होगी, समायोजन उतनी ही शीघ्रता से होगा ।

आश्रितता: बच्चा किस काम को नहीं कर सकता, उसके लिए वह दूसरों पर आश्रित हो जाता है । प्रारम्भ में बच्चा अपने माता-पिता पर आश्रित रहता है । 3-4 वर्ष का बच्चा अपने साथी समूह पर आश्रित होने लगता है । असुरक्षा की भावना तथा बीमारियों से भी आश्रित की भावना उत्पन्न होती है ।

मित्रता: बच्चा प्रारम्भ में अपने भाई बहनों को ही मित्र भी मानता है । 4-5 वर्ष की आयु में पड़ोस के बच्चे व 6-7 वर्ष की आयु में विद्यालय के बच्चे भी मित्रों की श्रेणी में आ जाते हैं । प्राय: लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा मित्रता की भावना अधिक होती है ।

सहानुभूति: सहानुभूति बालक तभी प्रदर्शित करना सीखता है जब वह अपने को दूसरे की स्थिति में होने की कल्पना कर सकता है । छोटे बच्चे दूसरे बच्चे की सुरक्षा व सहायता करके सहानुभूति प्रकट करते हैं । बड़े बच्चे शब्दों में सहानुभूति प्रकट करते हैं ।

8.8.3 उत्तर बाल्यावस्था में सामाजिक विकास-

यह छ: सात से ग्यारह-बारह वर्ष तक की अवस्था है । इस अवस्था में पूर्व बाल्यावस्था के गुणों का और विकास होता है । भाषा का पर्याप्त विकास हो जाने के कारण बालक अपने विचारों और भावनाओं को अच्छी तरह व्यक्त कर पाता है । यह अवस्था कही जाती है । इस समय बालक समूह में रहना चाहता है और उसका सामाजिक विकास भी तीव्र गति से होता है । उसके समूह के सदस्यों का उसके विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है । लगभग आठ वर्ष की आयु तक बालक सामूहिक खेलों में बहुत रूचि लेता है ।

8.8.3.1 उत्तर बाल्यावस्था में सामाजिक व्यवहार के कुछ प्रतिमान-

सामाजिक अनुमोदन- बालक अपने खेल, व्यवहार, कपड़े, भाषा आदि के संबंध में सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करना चाहते हैं। असुरक्षा, अनुपयुक्तता, कायरता, ईर्ष्या अति-आश्रितता आदि लक्षण जिन बच्चों में होते हैं, उनमें अनुमोदन की भावना भी अधिक रहती है। आठ से दस वर्ष की अवस्था में यह भावना सबसे अधिक होती है ।

सुझाव ग्रहणशीलता: उत्तर बाल्यावस्था में सुझाव ग्रहणशीलता सर्वाधिक पायी जाती है । वह अपने साथी समूह के सदस्यों तथा नेता से सर्वाधिक सुझाव ग्रहण करता है । कभी-कभी विपरीत सुझाव- ग्रहणशीलता की भावना के विकास के कारण बालक प्राय: सुझाव से विपरीत कार्य करता है । यह एक निषेधात्मक व्यवहार है, और यह प्रवृत्ति प्राय: वयस्कों के प्रति पाई जाती है । नोट - उस वर्ष की अवस्था में यह भावना तीव्रतम होती है ।

स्पर्श और उपयोगिता: सामुदायिकता की अवस्था में समूह का प्रत्येक बालक दूसरे बालकों से आगे निकलने का प्रयास करता है । ऐसा वह अन्य लोगों का समर्थन प्राप्त करने के लिए करता है । इससे उनमें स्वतंत्रता की भावना भी उत्पन्न होती है ।

खेल: दूसरे बच्चों के साथ सहयोग की भावना से खेलकर ही बच्चा अच्छा खिलाड़ी बन सकता है । इसके लिए बालक उदार होना भी आवश्यक है । बालक का सामाजिक विकास जितना अधिक अच्छा होता है, वह उतना ही अच्छा खिलाड़ी बन पाता है ।

पक्षपात और सामाजिक विभेदीकरण: बालक जब विभिन्न साथी समूहों का सदस्य बनता है तब वह सामाजिक विभेदीकरण भी सीख जाता है । प्रारम्भ में वह दूसरे समूह के सदस्यो को हीन समझते हैं । धीरे-धीरे वह जाति, धर्म, आर्थिक स्तर के आधार पर विभेदीकरण करने लगते है । लगभग तीन-चार वर्ष की अवस्था में बालकों में पक्षपात संबंधी अभिवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जो बाद में पक्षपात संबंधी व्यवहार में बदल जाती है ।

उत्तरदायित्व- भाषा के विकास के साथ-साथ बालक की माता-पिता पर आश्रितता कम होती जाती है । धीरे-धीरे वह अपने कार्यस्वय करने लगता है । बालक में उत्तरदायित्व की भावना का विकासपूर्व बाल्यावस्था व उसके प्रशिक्षण पर निर्भर करता है । प्राय: बड़े आकार के परिवारों में बच्चों में यह भावना शीघ्र उत्पन्न हो जाती हैं । वह अपने से छोटे भाई-बहनों को समझाने लगता है । यह भावना लड़कियों में अधिक पायी जाती है । जिन बच्चों में आत्म विश्वास की कमी होती है, उनमें उत्तरदायित्व की भी कमी होती है ।

सामाजिक सूझ: सामाजिक सूझ का अर्थ है, सामाजिक परिस्थितियों के अर्थ को समझना । एक व्यक्ति का सामाजिक समायोजन तभी उच्च हो सकता है, जबकि वह विभिन्न परिस्थितियों में दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार, भाव और विचारों को समझ सकें । सामाजिक सूझ का विकास आयु बढ़ने के साथ-साथ होता है । उत्तर बाल्यावस्था में लड़कियों में सामाजिक सूझ लड़कों से अधिक होती है ।

यौन विरोध- प्राय: बचपनावस्था में लड़के और लड़कियों में सामन्जस्य होता है और वह एक दूसरे के साथ खेलते हैं। पाँच- छ: वर्ष की अवस्था में कुछ विरोधी भाव उत्पन्न होने लगते हैं, जो उत्तर बाल्यावस्था में बढ़ जाते हैं । लड़के- लड़कियों को हीन समझने लगते हैं । वह एक दूसरे की क्रियाओं को पसंद नहीं करतें इस भावना के कारण लड़के या लडकियों में हीनता और उच्चता की भावना विकसित होने लगती हैं, जिसका उनके व्यवहार पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं ।

8.6.4 वय: संधि अवस्था में सामाजिक विकास:

वय: संधि अवस्था से किशोरावस्था तक अर्थात् ग्यारह-बारह वर्ष की अवस्था से अठारह वर्ष की अवस्था तक बालक का अधिकांश सामाजिक विकास हो जाता है । वय: संधि अवस्था के प्रारम्भ होते ही बालकों में शारीरिक विकास के साथ-साथ उनके अभिवृत्तियों में भी परिवर्तन आ जाता है । वह समूह क्रियाओं में भाग लेने कम कर देते हैं तथा एकांत में रहना पसंद करते हैं । बालक के समाज विरोधी व्यवहार में भी वृद्धि होने लगती है । यह अवस्था ऋणात्मक अवस्था कहलाती है । समाज और जीवन के प्रति विरोधी अभिवृत्ति के कारण कभी-कभी बच्चे का सामाजिक विकास ढंग से नहीं हो पाता । यह विकास में पठार की स्थिति है । कुछ बच्चों में इस अवस्था में सामाजिक विकास में व्यवधान भी उत्पन्न हो जाता है । प्राय: बच्चा सामाजिक प्रत्याशाओं के ठीक विपरीत व्यवहार करता है ।

लड़कियों में प्राय: तेरह- चौदह वर्ष तथा लडको में चौदह- पन्द्रह वर्ष की अवस्था में समाज विरोधी व्यवहार चरम सीमा पर होता है । इस अवस्था में प्राय: स्वयं के प्रति अभिवृत्तियों में भी परिवर्तन आते हैं । यह परिवर्तन ऋणात्मक दिशा में होते हैं । इसका प्रभाव उनकी प्रतिष्ठा

पर भी पड़ता है । फलस्वरूप बच्चों का समायोजन बिगड़ जाता है । बच्चे आक्रामक व झगड़ालू हो जाते है । शारीरिक परिवर्तनों के कारण वह चिंतित रहता है तथा वह सभी व्यक्तियों से शर्माता है।

8.8.5 किशोरावस्था में सामाजिक विकास:

वय: संधि अवस्था के समाप्त होते ही बालक में सामाजिक विकास एक बार पुन: तीव्र गति से होने लगता है । किशोरावस्था लगभग तेरह- चौदह वर्ष से अट्ठारह वर्ष तक की अवस्था है । इस अवस्था के अंत तक उसका सामाजिक विकास पूर्णता की ओर अग्रसर हो जाता है । उसका व्यवहार वयस्कों के व्यवहार के समान हो जाता है । प्राय: देखा गया है कि किशोरावस्था में सामाजिक क्रियायें चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं । बालक अधिकांश समय साथी समूह में रहने लगता है । उसकी अभिवृत्तियों, रूचियों और व्यवहार पर परिवार की अपेक्षा साथी समूह का अधिक प्रभाव पड़ता है । वह नए समूह बनाता हैं तथा नए समूह का सदस्य बनने का प्रयास करता है । लड़कों में यह साथी समूह लडकियों की अपेक्षा बड़े और संगठित होते हैं । इस अवस्था में अंतरंग मित्र बनाते हैं । इस अवस्था में किशोर गैंग भी बनाते हैं । यह गैंग अपने समान रूचियों के कारण बनते हैं । यह गैंग प्राय: समाज विरोधी कार्यो में अपना समय लगाते हैं । इनमें बदले की भावना अधिक होती हैं ।

किशोरावस्था में मित्रों का चुनाव अनेक व्यक्तित्व विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है । विपरीत लिंग के लोगों को मित्र बनाने की इच्छा अधिक रखते हैं । इस अवस्था में मित्र पहले की अपेक्षा अधिक पक्के होते हैं और प्राय: उनकी संख्या भी अधिक रहती है । आयु के बढने के साथ-साथ किशोरों को सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने के अधिक अवसर प्राप्त हो जाते हैं । अत: उनकी सामाजिक सूझ बढ जाती है । फलस्वरूप वह सामाजिक परिस्थितियों का प्रत्यक्षीकरण अधिक अच्छे ढंग से करने लग जाता है । वह झगड़ा करना कम कर देता है और उसका सामाजिक समायोजन बढ़ता जाता है । इस अवस्था में अंत तक अधिकांश किशोर गैंग छोड देते हैं तथा केवल समान रूचियों और समान मूल्यों के लोगों से ही मित्रता रखते हैं । उनमें पर्याप्त सामाजिक परिपक्वता आ जाती है । वह सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार करने लगते है । उसमें उत्तरदायित्व की भावना आ जाती है तथा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति स्नेह व आदर की भावना भी उत्पन्न हो जाती हैं ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. पूर्व बाल्यावस्था के विशिष्ट सामाजिक व्यवहारों का वर्णन करो
2. वय: संधि की अवस्था में बालक सामाजिक विकास में क्या अवरोध आते हैं ?

8.7 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

बालक के सामाजिक विकास पर बालक के स्वारम्प परिवार,पड़ोस आदि का बहुत प्रभाव पड़ता हैं।

शारीरिक बनावट और स्वास्थ्य: जिन बालकों का शरीर सुसंगठित और सुंदर होता है, उन्हें अपने समूह और समाज में अच्छा स्थान प्राप्त होता है । इस प्रकार के बच्चों का समाज की विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन अच्छा होता है । फलस्वरूप उनका सामाजिक विकास अन्य

बालकों की अपेक्षा शीघ्र और सामान्य होता है । इन्हें सामाजिक परिस्थितियों में सीखने के अवसर भी अधिक मिलते है । बेडोल ,गूँगे, बहरे बच्चों के साथ बाकी बच्चे मित्रता करना पसंद नहीं करते, अत: उनको सामाजिक विकास के अवसर कम मिलते हैं । शरीर और स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर बच्चे अपनी कमजोरियों के कारण धीरे-धीरे अंर्तमुखी हो जाते है । उनमें सामाजिकता के गुण, मित्रता और सहयोग के गुणों का अधिक विकास नहीं हो पाता ।

परिवार: परिवार का आकार, वातावरण व सामाजिक आर्थिक स्तर बालकों के सामाजिक विकास को बहुत प्रभावित करते हैं । छोटे परिवार में बालकों का लाड़ प्यार मिलता है और सामान्य सामाजिक विकास की सम्भावना अधिक रहती है । बड़े परिवार में इतना लाड़ प्यार तो नहीं मिलता परंतु उन्हें अन्य बच्चों के व्यवहार के अनुकरण के अवसर अधिक प्राप्त होते हैं । अत: उनका सामाजिक विकास भी शीघ्र होता है । सहयोग, उत्तरदायित्व, पक्षपात, तिरस्कार बच्चे अपने परिवार से ही सीखते हैं । परिवार के सदस्यों का जैसा सामाजिक व्यवहार होता है, बालक भी उसी प्रकार का व्यवहार सीख लेता है । निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवारों के बच्चों में हीनता की भावना हो सकती है । जिसके कारण वह उत्तरदायित्व सम्भालने में कठिनाई महसूस करते हैं । आत्मविश्वास की कमी के कारण उन्हें विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन में भी कठिनाई रहती है ।

पड़ोस और विद्यालय: बालक का सामाजिक विकास उनके पड़ोस व विद्यालय से भी प्रभावित होता है । पड़ोस के वयस्कों तथा बच्चों के सामाजिक व्यवहार का बच्चे के सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है । पड़ोस के सामाजिक कार्यक्रमों तथा वातावरण का भी बच्चे के सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है । विद्यालय में शिक्षकों और मित्रों का बहुत प्रभाव रहता है । बच्चे अपने साथियों के व्यवहार के साथ-साथ बड़े बच्चों के व्यवहार को भी देखते और सीखते हैं । इससे उनकी सामाजिक सूझ और प्रत्यक्षीकरण में वृद्धि होती है । फलस्वरूप वह समाज के विभिन्न मूल्यों से संबंधित व्यवहार का अधिगम करता है । विद्यालय के कार्यक्रमों में भाग लेकर वह सामाजिक व्यवहार करता है । विद्यालय में वह सहयोग मित्रता, उत्तरदायित्व और आत्म निर्भरता सीखता है ।

मनोरंजन: मनोरंजन की अधिक सुविधायें प्राप्त होने से बालक हँसमुख रहता है । इससे उसे सामाजिक समायोजन करने में सहायता मिलती है । फलस्वरूप उसका सामाजिक विकास शीघ्र होता है । इससे उसमें समाज विरोधी व्यवहार उत्पत्र होने की सम्भावना भी कम हो जाती है।

अन्य कारण: बालको के व्यक्तित्व का उनके सामाजिक विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है । जिन बच्चों में अनुपयुक्तता या हीनता की भावना होती है, उनमें आत्म विश्वास की कमी होती है । उन बालकों का विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन उपयुक्त नहीं होता । उनका सामाजिक विकास भी पूर्ण नहीं हो पाता । जिन बालकों में सामाजिक अनुमोदन की इच्छा अधिक होती है, उनका विकास बहुत तीव्र गति से होता है ।

8.8 सारांश (Summary)

सामाजिक विकास का तात्पर्य है कि बालक स्वयं को लगातार परिवर्तित होती हुई सामाजिक परिस्थितियों में व्यवस्थित करता रहें । यदि एक बालक सामाजिक विकास की अवस्थानुसार तय प्रक्रिया तथा प्रतिमानों के अनुरूप अपने को परिवर्तित नही कर पाता है तो उसे

असामान्य माना जाता है । समाजीकरण की प्रक्रिया में बालक की शारीरिक बनावट, स्वास्थ्य, परिवार, आर्थिक दशा, पड़ोस, विद्यालय आदि का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । अभिभावकों तथा शिक्षकों का यह दायित्व है कि वह बालक के सामाजिक विकास पर लगातार निगाह रखे ताकि वह समाज में एक सफल नागरिक के रूप में जीने में सक्षम हो सकें।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. "सभी संकृतियों के बच्चों में सामाजिक विकास के प्रतिमान पर जाते हैं ?" इस कथन की सत्यता / असत्यता पर प्रकाश डालिए ।
2. सामाजिक विकास की अवस्थायें कौन-कौन सी हैं ?
3. 'किशोरावस्था में सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है' इस कथन से आप क्या समझते हैं

इकाई-9

- संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

इकाई की संरचना

9.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

9.2 भूमिका

9.3 संवेगात्मक विकास की प्रकृति एवं विशेषताएँ ।

9.4 विकास की विभिन्न अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास की प्रवृत्ति ।

9.5 संवेगों के आयाम ।

9.6 प्रमुख संवेग- भय. क्रोध एवं प्रेम ।

9.7 विभिन्न संवेग, विद्यालय एवं शिक्षक

9.7.1 प्रमुख संवेग एवं विद्यालय. संवेगात्मक विकास में द्वन्द्व की भूमिका ।

9.7.2 संवेगात्मक विकास के संदर्भ में शिक्षक ।

9.8 सारांश

9.9 संदर्भ

9.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

प्रस्तुत अध्याय में जीवन में संवेगों का महत्व संवेग का अर्थ, संवेगात्मक विकास की प्रकृति, संवेग की विशेषताएँ, प्रमुख संवेग, संवेगों को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में शिक्षक की भूमिका का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आशा है कि आप समझ सकेंगे कि-

- संवेग तथा संवेगात्मक विकास क्या है?
- संवेगों की तथा संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं?
- संवेगों को उत्पन्न करने वाली विद्यालयों परिस्थितियाँ कौन-कौन सी है?
- संवेगात्मक विकास में विद्यालय व शिक्षक का योगदान क्या हो सकता है?

9.2 भूमिका (Role)

बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का विकास ही उसके संतुलित विकास को पूर्णता प्रदान करता है । संवेगात्मक विकास जीवन के विविध पक्षों से जुड़ा हुआ है । अत: संवेगों के विकास को संपूर्ण विकास से अलग करना कठिन कार्य है । किन्तु फिर भी अध्ययन की दृष्टि से इस पर अलग से विचार करना उपयुक्त है । संवेग मनुष्य के व्यवहार के संगठन व गतिशील पक्ष हैं । संवेग मनुष्य के संपूर्ण व्यवहार में व्याप्त है और वे मनुष्य को सम्पूर्ण: प्रभावित करते हैं?

जन्म के कुछ काल पश्चात् ही से बालक का संवेगात्मक विकास प्रारम्भ हो जाता है । किन्तु इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि संवेग क्या है?

9.2.1 संवेग का अर्थ:

मानव अनुभव के रूप में संवेग सामान्य रूप से अभिहित मानसिक स्थिति है । संवेग का समानार्शी अंग्रेजी भाषा का शब्द है । इरा शब्द की उत्पत्ति लेकिन 'भाषा के शब्द से हुई है । शब्द का अर्थ है- उत्तेजित होना । इस प्रकार संवेग को व्यक्ति की उत्तेजित दशा कहते हैं। उदाहरणार्थ- क्रोध में व्यक्ति की बुद्धि काम नहीं करती है, शरीर कॉपने लगता है, हृदय जोर-जोर से धडकने लगता है। इसी उत्तेजित दशा का नाम संवेग है । इस दशा में हमारा बाहय और आन्तरिक व्यवहार बदल जाता है।

आइए, हम कुछ विशेषज्ञों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से संवेग के अर्थ पर विचार करें- क्रो एवं क्रो-संवेग गतिशील आन्तरिक समायोजन है, जो व्यक्ति के संतोष, सुरक्षा और कल्याण के लिए कार्य करता है'।

बुड बर्थ- 'संवेग व्यक्ति' की उत्तेजित दशा है।

वुड यग- संवेग प्राणी की उत्तेजित मनोवैज्ञानिक और शारीरिक दशा है, जिसमें शारीरिक क्रियाएँ तेज और भावनाएँ प्रबल हो जाती है और इनमे एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने की प्रवृति रहती है।

व्यवहारवादियो ने संवेग की स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया है यह प्रसन्नता अप्रसन्नता की विषयीगत भावना, बाह्य प्रतिक्रियायें, चेहरे के हावभाव तथा शारीरिक संस्थितियाँ, आन्तरिक प्रतिक्रियायें- रक्त का दबाव, हृदय गति मे परिवर्तन, पसीना आना आदि । इसके अलावा मुस्कुराना, हँसना, रोना, चीखना, क्रोधित होगा, भयभीत होना, प्रेम करना सवेगों की सुपरिभाषित प्रतिक्रियाए है।

संवेग के अन्तर्गत भाव, आवेग तथा शारीरिक एवं दैहिक प्रतिक्रियायें सभी आती है । यह भाव आबेग तथा दैहिक प्रतिक्रियायें विभिन्न रूप से प्रकट होती है । विभिन्न सांवेगिक दशाओं को भिन्न-भिन्न भागो से जाना जाता है, किन्तु कई बार कुछ इतनी जटिल सांवेगिक अवस्थायें होती हैं जिन्हे कोई नाम नही दिया जा सकता । भाव संवेग का अंग होता है । भाव शारीरिक के स्थान पर मानसिक अनुभव है जो संवेग के कारण उत्पत्र होता है । संवेग के बाह्य उत्तेजना, भाव, शारीरिक अवयवों में ग्रंथियों के परिवर्तन सभी सम्मिलित होते हैं ।

9.3 संवेगात्मक विकास की प्रकृति एवं विशेषतायें (Nature and Characterstics of Emotional Development)

संवेग मानव मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं । विकासशील व्यक्तित्व पर संवेगों का प्रभाव निम्न प्रकार से होता है ।

(1) संवेग मानव व्यवहार के प्रेरक होते हैं ।

(2) जीवन मे विशिष्ट परिस्थितियों का सामना करने की ऊर्जा संवेगों से प्राप्त होती है ।

(3) जीवन के दैनन्दिनी अनुभव में संवेग आनन्द की वृद्धि करते हैं ।

(4) विभिन्न कार्यो में रूचि बनाये रखने में संवेग सहयोग देते हैं ।

(5) व्यक्ति के समाज के साथ समायोजन को संवेग प्रभावित करते हैं ।

(6) व्यक्तियों के मध्य संवेग संप्रेषण का कार्य करते हैं ।

(7) संवेग व्यक्ति को सामाजिक स्तर के अनुरूप स्वय के परिष्कार हेतु निर्दिष्ट करते हैं ।

(8) संवेगात्मकता से वंचित होना व्यक्तित्व में सुसमायोजन उत्पत्र करता है ।

(9) उग्र संवेगात्मक स्थितियाँ मानसिक संतुलन व तर्क शक्ति को अस्त व्यस्त कर देती है ।

प्रत्येक विशिष्ट प्रकार के संवेग में कुछ न कुछ विशिष्टता होती है । इन विशिष्टताओं को समझने के लिये सवेगों की प्रकृति जानना आवश्यक है । संवेगों की प्रकृति निम्न लिखित प्रकार से व्यक्त की जा सकती है ।

– **तीव्रता**

संवेग में तीव्रता होती है । संवेगात्मक स्थिति व्यक्ति में असाधारण हलचल उत्पन्न कर देती है । किन्तु इस तीव्रता की मात्रा में शिक्षा, आयु व परिस्थिति के आधार पर अन्तर होता है ।

– **व्यापकता**

संवेग सभी प्राणियों में समान रूप से पाये जाते है यथा प्रेम भय, अथवा क्रोध का संवेग । संवेग पशु, पक्षी, मनुष्य सभी में पाये जाते है ।

– **वैयक्तिक्ता**

संवेगों' को अभिव्यक्त करने का ढंग सबका अलग अलग होता है अर्थात् एक ही प्रकार से संवेग में अलग-अलग व्यक्तियों की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है यथा भय में स्तब्धता, डरकर पलायन, डर का सामना करना सभी प्रतिक्रियायें हो सकती हैं ।

– **संवेगात्मक संबंध**

संवेग के अनुभव का संबंध किसी वस्तु, विचार अथवा व्यक्ति से होता है अर्थात् किसी वस्तु विचार से या उसे देख कर व्यक्ति को भय होता है इनके अभाव में भय का संवेग उत्पत्र ही नहीं होता ।

– **संवेगात्मक मनोदशा**

एक निश्चित संवेग उसके समरूप मनोदशा का ही निर्माण करता है अर्थात् एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर क्रोध कर डाँटता है तो दूसरा व्यक्ति क्रोध के ही फलस्वरूप किसी तीसरे व्यक्ति को डाँटेगा । सुख अथवा दुख की भावना विशिष्ट संवेग में एक विशिष्ट भावना होती है और उसके साथ ही प्रत्येक संवेग के साथ सुख या दुख की भावना लगी रहती है ।

– **विचार शक्ति की समाप्ति**

संवेग अपनी तीव्रता के फलस्वरूप मनुष्य की विचार शक्ति को समाप्त कर देता है जिससे संवेग में व्यक्ति बिना सोचे समझे कुछ भी व्यवहार कर बैठते हैं भले ही बाद में पछताना पडे ।

– **क्रिया की प्रवृति**

संवेग की प्रतिक्रिया के रूप में एक निश्चित दिशा में क्रिया की प्रवृति होती है । क्रिया की इस प्रवृति के कारण व्यक्ति कुछ न कुछ करता है तथा लक्ष्य से दृष्टि नीचे कर लेगा ।

– **व्यवहार में परिवर्तन**

संवेगात्मक स्थिति में व्यक्ति का संपूर्ण व्यवहार के स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है । यथा क्रोध में व्यक्ति के व्यवहार व उसके सामान्य व्यवहार में पर्याप्त परिवर्तन होता है ।

– **मानसिक दशा में परिवर्तन**

सांवेगिक स्थिति में व्यक्ति की मानसिक दशा में निम्नलिखित परिवर्तन हो जाते है यथा किसी वस्तु या स्थिति का ज्ञान, स्मरण अथवा कल्पना करना, ज्ञान के कारण सुख या दुख की अनुभूति, अनुभूति के परिणाम स्वरूप उत्तेजना और अन्त में उत्तेजना के परिणाम स्वरूप कार्य करने की प्रवृति ।

– **शारीरिक परिवर्तन**

सांवेगिक अवस्था के परिणाम स्वरूप दो प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते हैं । प्रथम आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन तथा बाह्य शारीरिक परिवर्तन ।

(1) आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन

हृदय की धड़कन की गति बढ जाना, रक्त का संचार बढना, भय और क्रोध के समय पाचक रक्त का श्राव बंद हो जाना आदि ।

(2) बाह्य शारीरिक परिवर्तन

शरीर की स्थिति में विभिन्न परिवर्तन हो जाना प्रसन्नता के समय हँसना, मुस्कराना, चेहरे का खिल जाना, क्रोध में मुँह लाल हो जाना, पसीना आना, आवाज का कर्कश होना, होठो और भुजाओं का फड़कना आदि ।

संवेग बार बार उत्पन्न होते हैं तथा संवेगों की अभिव्यक्ति मूर्त वस्तुओं के संदर्भ में होती है अर्थात् प्रेम, भय, क्रोध किसी न किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति होता है ।

संवेगों को छिपाना कठिन होता है । विशेषरूप से बाल्यकाल में प्रत्यक्ष रूप से संवेगों की अभिव्यक्ति बालक करता है यथा - रोना, चिल्लाना, नाखून काटना, अँगूठा चूसना आदि के रूप में । जैसे-जैसे आयु बढ़ती है संवेगों की अभिव्यक्ति में मात्रा व परिस्थिति के अनुसार परिष्कार आ जाता है ।

स्वमूल्यांकन(Self Evaluation)

1. संवेगो को परिभाषित कीजिए|
2. संवेग व्यक्तित्व को किस प्रकार प्रभावित करते है?
3. जेज़, संवेग की दशा मे होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन करो|

9.4 बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास की प्रवृत्ति (Tendency of Emotional Development of Child in different Stages of Development)

शिशु जन्म लेते ही रोता है, हाथ पैरो को फेंकता है । यह व्यवहार वास्तव में संवेगात्मक ही है । इस संवेगात्मक व्यवहार में मित्रता नहीं होती है अर्थात, उद्दीपक के आधार पर होने वाली अनुक्रिया में अन्तर नहीं होता । इस स्थिति में संवेगात्मक व्यवहार सामान्य उत्तेजना के रूप में ही होता है । शिशु अपने भय, क्रोध, सुख-दुख सभी को समान रूप से अभिव्यक्ति करता है । यथा शिशु भय, दुख अथवा क्रोध को उत्पत्र करने के लिये की जाने वाली क्रियाओं जैसे सुई चुभाना, शारीरिक क्रियाओं में बाधा उत्पन्न करना अथवा हवा में उछाल कर पुन: पकड़ लेना आदि में बालकों की संवेगात्मक अनुक्रियाएँ एक समान ही रहती है ।

संवेगात्मक विकास एवं शारीरिक विकास घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं । शारीरिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के साथ ही संवेगात्मक व्यवहार में भी परिवर्तन होता रहता है । शिक्षक विकास की आगे की तीन अवस्थाओं से विशेषरूप से संबंधित है । किन्तु फिर भी इन तीन के अतिरिक्त पूर्व की विकास की चरम सीमा तक पहुंचने में सहायक हो सकता है । अत: संवेगात्मक विकास की प्रवृत्ति शारीरिक विकास के संदर्भ में जानना उपयुक्त होगा ।

9.4.1 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास:

शेरमन ने शिशुओं की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन उनको भयभीत व क्रोधित करने वाले उद्दीपको को प्रस्तुत करके किया और पाया कि शिशुओं के क्रोध व भय की सवेगात्मक प्रतिक्रिया में कोई अंतर नहीं होता । गुडनबर्ग ने 'संवेगात्मक विकास के लिये शिशुओं के चित्रों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि शिशुओं के चित्रों मे संवेगात्मक प्रतिक्रिया में अन्तर नही किया जा सकता । कैथरीन ब्रिजेस ने एक मारन से लेकर 2 साल तक के शिशुओं पर अध्ययन किया और निष्कर्ष प्राप्त किया कि जन्म के पश्चात विकास के आधार पर संवेगात्मक विकास होता है तथा शिशु के संवेगात्मक व्यवहार के तीन चरण होते हैं ।

प्रथम मे संवेगात्मक व्यवहार समान प्रकृति का होता है । द्वितीय अवस्था में धीरे- धीरे संवेगात्मक व्यवहार विशिष्ट परिस्थिति के अनुरूप होता जाता है । तृतीय अवस्था में भय, प्रेम, क्रोध आदि संवेगों के सुसंगठित व पहचान योग्य संवेगात्मक प्रतिक्रिया प्रतिमानों का विकास हो जाता है । ब्रिजेस द्वारा प्रस्तुत संवेगात्मक विकास का स्पष्टीकरण उनके निम्नांकित आरेख से जन्म के प्रथम दो वर्षो के संवेगात्मक प्रतिमान से स्पष्ट है:-

ब्रिजेस द्वारा प्रस्तुत इस कथन से यह स्पष्ट है कि जन्म के समय शिशु को संवेगात्मक व्यवहार उत्तेजना के रूप में होता है । तीन महीने से छ: महीने तक के बच्चे में प्रसन्नता, उत्तेजना आदि का संवेगात्मक विकास के रूप में अभिव्यक्त होने लगती है ।

छ: महीने की आयु में ही क्रोध, अरूचि तथा भय की अभिव्यक्ति होने लगती है । एक वर्ष का शिशु बड़ो के लिये प्यार, उल्लास, प्रसन्नता, व्यथा, क्रोध, अरुचि तथा भय के संवेगों की अभिव्यक्ति का विकास कर लेता है । दो वर्ष का होने पर शिशु में आहलाद का संवेग और जुड जाता है ।

9.4.2.1 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास:

संवेगात्मक विकास की विशेषताओं के आधार पर बाल्यावस्था को दो भागों में बाँटा जा सकता है (1) प्रारम्भिक बाल्यावस्था अथवा पूर्व विद्यालयी काल तथा (2) अंतिम बाल्यावस्था ।

9.4.2.1 पूर्व बाल्यावस्था की संवेगात्मक विशेषताएँ

- बालकों के संवेग शारीरिक विकारों से संबंधित रहते हैं यथा क्रोध की अवस्था में चीखना, चिल्लाना हाथ पैर पटकना आदि ।
- इस आयु में संवेग अस्थायी होते हैं । कुछ ही समय तक ये संवेग बने रहते हैं जैसे बालक यदि रो रहा है तो इच्छित वस्तु के प्राप्त होते ही रोना बन्द कर देता है ।बालक के संवेगों के रूप में परिवर्तित होता रहता है जैसे- हँसते- हँसते बालक रोने लगता है, क्रोध के बाद मुस्कराहट आदि ।

- बालकों के संवेग शीघ्रता से बार-बार प्रकट होते हैं । जैसे रोता हुआ बालक इच्छुक वस्तु प्राप्त होते ही चुप हो जाता है तथा वस्तु के छिन जाने पर फिर रोने लगता है ।
- बालकों के संवेग उग्र होते है । बालक जरा सी बात पर क्रोधित हो जाता है और क्रोध की अभिव्यक्ति उग्र रूप से होती है । हालिग बर्थ के अनुसार आयु बढ़ने के साथ उग्रता कम होती जाती है ।
- संवेगात्मक व्यवहार में भिन्नता होती है, जैसे भय की अवस्था में एक बालक रोने लगता है, दूसरा भागने लगता है तथा तीसर आँख बंद कर खड़ा ही रह जाता है आदि बालकों का संवेगात्मक व्यवहार जल्दी पहचान में आ जाता है क्योंकि वे अपने संवेगों को छिपा नहीं पाते हैं ।
- बालकों के संवेग आरोपित होते रहते हैं । जैसे एक बार कोई संवेग उत्पत्र होने पर थोड़ी देर बाद लगता है कि शान्त हो गया है, किन्तु ऐसा नहीं होता । वह संवेग किसी दूसरे पर आरोपित हो जाता है जैसे बड़ों से डाँट खाकर अपने से छोटो को पीटना ।
- संवेगात्मक अभिव्यक्ति में इस काल में भिन्नता होती है । विशेष अभिव्यक्ति के माध्यम से इच्छापूर्ति होने पर बालक अभिव्यक्ति के अन्य तरीके भी अपना सकता है ।
- बालकों के संवेगों की शक्ति में अन्तर आता रहता है । प्रारम्भ में संवेग तीव्र होते हैं किन्तु धीरे- धीरे उनकी तीव्रता घटती रहती है । जैसे प्रारम्भ में अपरिचित से भय, धीरे-धीरे भय में कमी होती जाती है ।

9.4.2.2 अन्तिम बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास-

अन्तिम बाल्याकाल जीवन का महत्वपूर्ण काल है । व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास हेतु इस काल में निर्देशन पर उपबोधन की अत्यन्त आवश्यकता होती है । हॉल ने भी इसी तथ्य क महत्व मानते हुये कहा है कि 12 से 18 वर्ष का काल मानव जीवन का अद्वितीय काल है । इस काल में मस्तिष्क अपना पूर्ण भार व आकार प्राप्त कर लेता है । स्वास्थ्य भी अपने उत्तम रूप में होता है तथा क्रियायें भी विविध होती है । ऐसी विधिता जो इस आयु से पूर्व न थी और भविष्य में भी नहीं होगीं इस आयु में ऊर्जा की कमी व थकान की आधार भी नहीं होतीं पारिवारिक वातावरण से बाहर बालक की रूचियों का स्वतंत्र विकास होता है । 'अत: स्पष्ट है कि विकास की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण काल है । इसकी मुख्य विशेषतायें निम्नवत् हैं:

विशेषताएँ

(1) जैसे- जैसे बालक की उम्र बढ़ती जाती है संवेगों की अभिव्यक्ति के उसके तरीकों में अन्तर आता जाता है । इस काल के अन्त तक बालक सामाजिक परिस्थिति के अनुसार अपने संवेगों पर नियंत्रण करना सीख लेते हैं ।

(2) बालक की सवेगात्मक अनुक्रियाये विस्तृत उद्देश्यों पूर्ण व विभेदक नहीं होती हैं ।

(3) बालक मूर्त वस्तुओं की अनुपस्थिति में भी संवेगों की अभिव्यक्ति कर लेता है ।

(4) इस काल में बालकों के दूसरों पर निर्भर रहने तथा अत्यधिक विचारोत्तेजक होने के कारण उनके संवेग अधिक संक्रामक होते हैं अर्थात् एक बालक में उत्पन्न कोई भी संवेग दूसरे पर भी प्रभाव डालता है|

(5) प्रारंभिक बाल्यकाल के भय जैसे पशुओं, ऊंचे स्थानों तथा आवाज आदि के अंतिम बाल्यकाल में समाप्त हो जाते हैं । असफलता, उपहास का पात्र बनना तथा दूसरों से भिन्न होने के भय भी उत्पन्न हो जाते हैं ।

(6) प्रारंभिक बाल्यकाल में संवेगों की अभिव्यक्ति की तीव्रता रहती है । उसकी संवेगात्मक प्रतिक्रिया, प्रचंड होती है । वह अपने संवेग की अभिव्यक्ति हाथ पैरो के संचालन व प्रचण्ड रूदन के माध्यम से करता है । प्रारंभिक बाल्यकाल के पश्चात (6 से 12 वर्ष तक) संवेगों की अभिव्यक्ति की उग्रता में कमी आ जाती है । उग्रता मे कमी आने के निम्नलिखित कारण होते हैं -

(1) बालक भाषा पर अधिकार कर लेने से भाषा के माध्यम से संवेगों को अभिव्यक्त लेता है ।

(2) अनुभव द्वारा बालक यह समझ लेता है कि उग्रतापूर्ण अभिव्यक्ति से वह अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं सकता है

(3) अभिभावको तथा शिक्षकों द्वारा बालक को विभिन्न प्रकार के निषेधों को आरोपित करना, कि वह मत करों, वह करो, तुम अब बड़े हो गये हो ।

(4) इच्छा पूर्ति में बाधकता चिढाना दूसरे बालकों से प्रतिकूल ढंग से तुलना करने तथा अवहेलना से माता पिता तथा शिक्षकों द्वारा पक्षपात करने, दूसरों को प्राथमिकता देने से विभिन्न संवेग तीव्रता से उत्पन्न होते हैं ।

(5) इस काल में आनन्द, प्रसन्नता, प्रेम, जिज्ञासा, दुख आदि की भावनायें भी उभरने लगती हैं ।

9.4.3.0 किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास:

किशोरावस्था में संवेगों को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में विविधता होती है किशोर जिस कार्य में संलग्न रहता है, उस प्रत्येक कार्य में संवेग भी संलग्न रहते हैं । किशोर के जीवन में संवेग तब उत्पत्र होते हैं जबकि उसकी इच्छा पूरी हो जाती है तथा इच्छा पूर्ति में बाधा उत्पत्र होती है या इच्छापूर्ति में किसी प्रकार की हानि की आशंका का खतरा महसूस होता है । किशोर के स्वधारणा को कोई घटना प्रभावित करती है, किशोर में छिपी प्रतिभा को अभिव्यक्त करती है उसकी कमजोरी को प्रकाश में लाती है, तब ही किशोर के जीवन में संवेगों की उत्पत्ति होती है । संवेगों की उत्पत्ति में सबसे शक्तिशाली कारणों में उन घटनाओं को सम्मिलित किया जाता है जिससे किशोर की स्वधारणा को ठेस पहुँचती है अर्थात किशोर में जो गुण है उसके विपरीत उसे समझा जाये । जिससे किशोर के आत्म सम्मान को धक्का पहुंचता है तथा जिसके कारण वह स्वयं से जो अपेक्षायें रखता है उन अपेक्षाओं को खतरा अनुभव हो ।

9.5 संवेगों के आयाम (Dimension of Emotions)

विकास में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान हैं । संवेग विभिन्न प्रकार के होते हैं । किन्तु संवेगों का वर्गीकरण करने से पूर्व वर्गीकरण के आधार के रूप में संवेगों के आयामों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर संवेगों का सूक्ष्य विवेचन कर उनका वर्गीकरण किया गया है । प्लुटचिक ने आठ प्रकार के प्रमुख संवेग को स्पष्ट किया है । वे आठ प्रकार के संवेग हैं, विनाश, पुन: उत्पादन, समावेश, अनुकूल होना, संरक्षण, वचन अस्वीकार तथा अन्वेषण । कुछ शोधों का निष्कर्ष है कि संवेग इससे भी अधिक है । अन्य अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि

संवेगों की संख्या कम है । इन सभी निष्कर्षो के आधार पर स्पष्ट है कि संवेगात्मक अनुभवों को सफलतापूर्वक ढंग से वर्गीकृत करने के लिये किसी एक स्पष्ट विचारधारा का अभाव है । संवेगों के वर्गीकरण पर एक मत होने के विकल्प के रूप में संवेगों के आयामों पर विचार कर लिया जाये, जिससे संवेगों में विभेदीकरण में सहायता प्राप्त हो सकती है ।

संवेगों के प्रमुख आयाम तीन रूप में स्पष्ट किये गये हैं-

उपगमन /परिहार

तीव्रता

प्रीतिकर/अप्रीतिकर

9.5.1. उपगमन/परिहार: सामान्य संवेगों के वर्गीकरण का आधार उपगमन व परिहार हो सकता है । आर्नोल्ड ने कहा है कि जो परिस्थिति संवेगों को उत्पत्र कर रही है व्यक्ति आकर्षित होकर उसकी और जाना चाहता है अथवा विकर्षित होकर उससे दूर जाना चाहता है । उदाहरण के लिये जैसे कुछ लोग तूफान से प्रेम करते हैं दूसरे वे हैं जो बिजली आँधी पानी से घृणा करते हैं । प्रथम प्रकार के व्यक्ति वर्षा और तूफान में बाहर जाकर खुश होना चाहते हैं । द्वितीय प्रकार के सारे घर के दरवाजे खिड़कियाँ बंद करके वर्षा और तूफान से दूर रहना चाहते हैं, वे दूरदर्शन अथवा रेडियों पर अच्छा कार्यक्रम देखकर तूफान से परिहार चाहते हैं।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि संवेगों को निम्न वर्गो में रखा जा सकता है ।

क **कप्रेम तथा आनन्द**- जिसमें व्यक्ति किसी की और आकर्षित होकर प्रवृत्त होता है ।

ख **खभय तथा व्यग्रता**: जिसमें व्यक्ति किसी स्थिति आदि से दूर जाना चाहता है ।

ग **गक्रोध:** व्यक्ति किसी की ओर प्रवृत्त तो होना चाहता है किन्तु आक्रामकता की प्रवृत्ति लेकर प्रवृत होता है ।

9.5.2 तीव्रता

कुछ मनोवैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि तीव्रता संवेग का एक मात्र आयाम है । संवेग की तीव्रता का स्तर ही वह मापक है जो एक संवेग का दूसरे संवेग से अन्तर कर सकता है । तीव्रता के आधार पर ही क्रिया की जाती है । क्रिया की निरन्तरता ही मनुष्य के व्यवहार का आधार है । संवेग को अन्य प्रकार से व्यवहार से भिन्न करने का आधार तीव्रता का स्तर ही है । इसी विचार का समर्थन लिंडजे तथा डुडी ने भी किया है । इस सिद्धान्त को क्रियात्मक सिद्धान्त का नाम दिया गया है । किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिक ' तीव्रता को संवेग का एक अंग मानते हैं, एक पात्र नहीं । उदाहरणार्थ प्लुटचिक ने आठ प्रकार के संवेग माने हैं जो मूलभूत मानव तथा पशु प्रवृति पर आधारित है । अपने इस वर्गीकरण का आधार प्लुटचिक ने संवेगों की तीव्रता को ही माना हैं । उदाहरणार्थ ' वंचित होने' के क्रम में तीव्रता की कमी क्रम के आधार पर शोक, क्लेश, व्यथा, निराशा तथा उदासी आदि हो सकती है । इन सभी संवेगों से जीवन में वंचित होने का भाव है । चाहे व्यक्ति धन से वंचित है अथवा अपने किसी प्रिय संबंधी से वंचित है) वस्तु अथवा व्यक्ति से वंचित होना ही संवेग की तीव्रता का निर्धारक है ।

9.5.3 प्रीतिकर/अप्रीतिकर-

संवेग का एक आयाम यह भी है कि संवेगात्मक स्थिति में व्यक्ति आनन्द प्राप्त कर रहा है अथवा कष्ट । कई बार ये दोनों प्रभाव परस्पर इस प्रकार सम्मिश्रित हो जाते हैं, कि उन्हें

अलग करना कठिन हो जाता है । जैसे जब बालक प्रथम श्रेणी की आशा करता है पर आशंकित भी है कि द्वितीय श्रेणी भी प्राप्त हो सकती है । फिर भी मिश्रित भावना में भी प्रीतिकर तथा अप्रीतिकर दोनों भावनाओं को अलग किया जा सकता है ।

संवेग के आयाम यह स्पष्ट करते हैं कि संवेगों का क्षेत्र मनोवैज्ञानिकों के लिये अनुसंधान के लिये एक जटिल क्षेत्र है । संवेगों का व्यवहार पर प्रभाव का मापन किया जा सकता है । किन्तु संवेगों को वस्तुनिष्ठ विधि से विश्लेषण कठिन कार्य है । क्योंकि मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में प्राप्त प्रतिक्रियायें वास्तविक जीवन की प्रतिक्रियाओं से भिन्न होती है तथा मनुष्येतर प्राणियों पर किये गये प्रयोग मनुष्यों के संवेगों के संबंध में अधिक जानकारी प्रदान कर सकते हैं ।

9.6 प्रमुख संवेग (Main Emotion)

विभिन्न आयु स्तर पर अलग-अलग संवेगात्मक व्यवहार के अध्ययन की अपेक्षा प्रमुख संवेगों का व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर संवेगात्मक विकास का अध्ययन शिक्षक के लिये अधिक उपयुक्त होगा । आइए, इसी दृष्टि से विभिन्न संवेगों को देखें:-

जन्म लेने के कुछ समय पश्चात ही शिशु में भय के संवेग को अनुभव करने की क्षमता का विकास हो जाता है । उस समय भय का कोई तीव्र उद्दीपक अचानक उपस्थित होने पर शिशु भयभीत होकर चीखने लगता है । शिशु की तुलना में बालक जिन से भय अनुभव करता है, वे सब / अधिगमित भय होते हैं । बालक की सुरक्षा को नुकसान पहुंचाने वाली किसी भी परिस्थिति, वस्तु अथवा व्यक्ति से वह भय अनुभव करता है । इसके साथ ही बालक अपने में ग्लानि की घनीभूत भावना से भी भयभीत रहता है । प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति तथा वस्तु के साथ ही साथ बालक अपने मानसिक विकास के साथ-साथ एकाकीपन अंधाकार असफलता तथा भविष्य से भय अनुभव करना सीख लेता है । व्यक्तियों से मिलने में भय अनुभव कर सकता है । परीक्षा से भयभीत हो सकता है । जिन परिस्थितियों में उसके सम्मान की हानि की संभावना हो तथा असफलता की संभावना हो ऐसी सभी परिस्थितियों से वह सामान्यत: भय को विकसित कर लेता है । 'भय' के संवेग पर किये गये शोधों के आधार पर जन्म से वयस्कता तक संवेगात्मक विकास की निम्नलिखित प्रवृत्ति देखी गई है -

- शैशवाकाल में भय संबंधी प्रतिक्रिया सीमित होती है) तात्कालिक शारीरिक सुरक्षा को हानि पहुँचाने वाली परिस्थितियों से ही भय उत्पन्न होता है ।
- प्रारंभिक बाल्यकाल में दूरगामी शारीरिक सुरक्षा की क्षति पहुंचाने वाले जैसे बड़ी आयु के बालक, पशु तथा काल्पनिक घटनाओं से बालक भय अनुभव करता है । वे भय अधिगम का परिणाम होते हैं इनका अधिगम पूर्व में अधिगमित भय की परिस्थितियाँ होती हैं इसके अतिरिक्त भय का विकास ग्लानि की भावना के फलस्वरूप भी होता हैं ।
- मध्य व अंतिम बाल्यकाल में असफल/अनुत्तीर्ण होने का भय सबसे अधिक होता है चाहे अनुत्तीर्ण होने का प्रत्यक्ष संबंध शारीरिक हानि से नहीं होता । इस आयु में परीक्षा का भय माता या पिता को गंवा देने का भय, मित्रों के मध्य सम्मान की हानि का भय, उपहास का पात्र बनने का भय तथा शारीरिक हानि होने का सामान्यीकृत भय प्रमुख होते हैं ।

- किशोरावस्था में बाल्यकाल के कुछ भय ज्यों के त्यों बने रहते हैं । इसके साथ ही कई नये भय विकसित हो जाते हैं । जैसे- विद्यालय में असफलता का भय, वाहन दुर्घटना, रोग, पैसे की कमी, पाप, लोभ, सामाजिक रूप से अयोग्य होने का भय, तथा विभिन्न कार्यो में माता-पिता की अस्वीकृति का भय ।
- किशोरावस्था के अंतिम काल में विशिष्ट भय की संख्या में तेजी से कमी आ जाती हैं । किन्तु कुछ नये प्रकार के भय का विकास हो जाता है । जिसमें धन से संबंधित, वैयक्तिक अनुपयुक्तता/अयोग्यता भविष्य में सफलता तथा वेशभूषा आदि का भय सम्मिलित है । बालक तथा वयस्क सभी उन सब परिस्थितियों के प्रति भी भय के संवेग को प्रदर्शित करते हैं जिनसे उनकी शारीरिक सुरक्षा को कोई खतरा नहीं है ।
- यदि किसी परिस्थिति का कोई एक कारक बालक/किशोर/वयस्क में भय के संवेग को उत्पन्न करता है तो वे पूर्ण परिस्थिति से ही भयभीत होने लगते हैं ।

भय के प्रकाशन में विविधता व भिन्नता होती है जैसे काँपना चीखना, पसीना आना भागना चेहरे का रंग उड़ जाना, रक्त चाप बढ जाना तथा कभी-कभी बेहोश भी हो जाना आदि ।

भय की उपयोगिता: भय की भिन्न- भिन्न मात्रा व्यक्ति को हानि से बचाने का रक्षा उपाय है। भय व्यक्ति को हानि के घातक स्तर तक पहुंचने से पूर्व प्रति रक्षा हेतु सचेत करते हैं । भविष्य की तैयारी में तथा भय का सामना करने की तैयारी में यह सहायक होते हैं । किन्तु भय कभी-कभी व्यक्ति द्वारा उद्दिष्ट कार्यो में बाधक भी बन जाते हैं । अत्यधिक भय से व्यक्ति ऐसे उपयुक्त कार्यो के प्रति भी उदासीन हो जाते हैं जो अत्यन्त महत्व के हैं और व्यक्ति, समाज तथा देश के लिए उपयोगी हो सकते हैं ।

क्रोध- सामान्यत: भय और क्रोध को उत्पन्न करने की स्थिति सम्भावनाद्ध समान रूप से कार्य करती है । भय के समान ही क्रोध के संवेग की उत्पत्ति का समय समान होता है अर्थात् जन्म के कुछ समय पश्चात् ही, तात्कालिक खतरों के प्रति शिशु क्रोधित हो जाता है । किन्तु क्रोध के संवेग की उपस्थिति बालकों में अस्थायी होती है । किन्तु व्यस्क को क्रोध का संवेग अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होता है तथा दूरस्थ खतरों के कारण भी क्रोध के संवेग की उत्पत्ति होती है ।

शैशव काल में क्रोध तथा भय के प्रति शारीरिक प्रतिक्रियाओं में अन्तर नहीं होता । शैशवावस्था में शिशु की आवश्यकताओं की विलम्ब से पूर्ति होने से क्रोध उत्पन्न होता है जैसे भूख के समय दूध की प्राप्ति में विलम्ब आदि ।

बाल्यावस्था में बालक की इच्छापूर्ति में रूकावट डालने वाले परिस्थितियाँ तो क्रोध उत्पन्न करती ही हैं किन्तु इनके साथ ही वे परिस्थितियाँ जो बालक के आत्म सम्मान, योजनाओं तथा इच्छाओं की पूर्ति में बाधा न होकर, केवल बाधा की संभावनाएँ उत्पन्न करें, भी क्रोध उत्पत्ति का कारण होती है । उदाहरणार्थ, यदि बालक की इच्छा किसी कार्य को करने की है, उसे बल पूर्वक रोक दिया जाए अथवा किसी भी प्रकार नियंत्रण किया जाये । इसके अतिरिक्त यदि अपनी असहायता भी इच्छापूर्ति में बाधक है जब भी क्रोध उत्पन्न होगा । यथा- ऊंचाई पर रखी वस्तु को प्राप्त करने में असमर्थता अथवा इच्छित वस्तु मिठाई का डिबा खोलने में असमर्थता ।

बाल्याकाल के संवेगों के अनियंत्रित प्रदर्शन को क्रोध के रूप में ही जाना जाता है किन्तु इनकी उत्पत्ति भी असुरक्षा से ही होती है । क्रोध की प्रतिक्रिया माता पिता के साथ द्वन्ह के परिणाम स्वरूप होती है । द्वन्ह की उत्पत्ति निम्नलिखित विषयों पर होती है जैसे: वेशभूषा,

भोजन तथा आना जाना आदि । इसी प्रकार समवयस्कों के साथ विभिन्न वस्तुओं पर अधिपत्य जमाने की दृष्टि से परस्पर क्रोध की उत्पत्ति होती है । सामानयत: भय व क्रोध को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में केवल मात्रा का ही अन्तर होता है ।

किशोरावस्था में उनके कार्यो में बाधा तथा आत्म सम्मान को खतरे की स्थिति में क्रोध की उत्पत्ति होती है । भय से क्रोध व क्रोध से भय की स्थिति में परिवर्तन सम्भव है । यह परिवर्तन खतरे की प्रकृति के मूल्यांकन पर निर्भर करता है वस्तुत: जीवन पर क्रोध की उत्पत्ति का कारण आत्म सम्मान अथवा पद के प्रति खतरा, आदतों तथा रूचियों में बाधा है । क्रोध के संवेग का विकासात्मक प्रतिमान तात्कालिक से दीर्घकालिक तथा सामान्य से विशिष्ट की और होता है ।

क्रोध की अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक और संवेगात्मक स्थिति है, जिसे झुंझलाहट का नाम दिया जा सकता है । कई बार क्रोध उत्पन्न होने पर भी क्रोध को प्रकाशित करना संभव नहीं होता । तब क्रोध एकत्रित होता जाता है तथा किसी साधारण सी बात पर भी क्रोध की तीव्र अभिव्यक्ति होती है । क्रोध का विषयान्तरण भी होता है । उदाहरणार्थ व्यक्ति क्रोध के कारण पर क्रोध नहीं कर पाता तब किसी दूसरे पर ही क्रोध को प्रकाशित करता है । एक व्यक्ति अपने आफिसर से डाँट खाकर अपनी पत्नी पर क्रोध उतारता है, पत्नी अपने नौकर पर क्रोध उतारती है।

प्रेम- सुरक्षा की प्रतिक्रिया, सुरक्षा की श्लाधा, समलैंगिक व विषयमलैंगिक मित्रता, वस्तुओं स्थान अथवा घटनाओं के प्रति आकर्षण के साथ जुड़ जाने को प्रेम का संवेग कहते हैं । प्रेम का संवेग का विकासात्मक प्रतिमान भय और क्रोध के संवेग से भिन्न होता है । जन्म के साथ ही बालक को प्यार मिलता है वही प्यार वह प्रतिदान स्वरूप दूसरों को देता है । प्रेम का बालक के संवेगात्मक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है । जैसे-जैसे बालक की आयु बढ़ती जाती है प्रेम की मात्रा व प्रेम की वस्तुओं में भी विविधता बढ़ती है । प्रेम के विकास में शारीरिक संरचना व शारीरिक विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । शारीरिक स्व तथा मानसिक स्व की सुरक्षा जन्म से लेकर वयस्कता तक प्रेम के संवेग का मूल तत्व है । बालक का अपने माता-पिता के प्रति प्रेम उसकी स्वयं की सुरक्षा की आवश्यकता को पूरा करता है । प्रेम के संवेग के सामान्य विकास का प्राकृतिक अवस्था में तीन प्रकार का लगाव बताया गया है ।

प्रथम में माता-पिता प्रेम पात्र होते हैं । द्वितीय में समव्यस्क तथा समयोनि प्रेम पात्र होते हैं और तृतीय में प्रेम पात्र विपरीत योनि होते हैं । किन्तु प्रेम के संवेग के पात्रों में परिवर्तन होने का तात्पर्य यह कदापि नहीं होता कि पूर्व प्रेम पात्र पर प्रेम का संवेग समाप्त हो गया हो ।

बालक के स्वस्थ विकास में अपने से बड़ों के प्रेम का अत्यधिक महत्व है । व्यक्ति जीवन भर यह चाहता है कि दूसरे उसका महत्व समझे उसको चाहे उसकी, आवश्यकता को अनुभव करें । बाल्यावस्था में किशोरावस्था में प्रेम सन्तोष तथा सुरक्षा प्रदान करता है । प्रेम के संवेग के महत्व पर लिये गये शोध अध्ययनों से यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि बालकों व वयस्को दोनों की दृष्टि से प्रेम महत्वपूर्ण है । शिशु प्रारंभ में अपनी शारीरिक रक्षा व मानसिक विकास के विषय में असहाय होता है इसके लिये अपने माता पिता पर निर्भर होता है । गोल्डकार्व ने अध्ययन करके निष्कर्ष प्राप्त किया कि जो बालक उनको चाहने वाले व्यस्को के साथ रहे उनको विकास अधिक अनुकूल प्रतिमान के आधार पर हुआ। इसके साथ ही

डेनिस के एक अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि अनाथालय में रहने वाले वे बालक जिनकी सामूहिक रूप से देखभाल होती है वे अधिक प्रतिरक्षात्मक अभिवृत्ति रखते हैं । जो दूसरों

का मित्रतापूर्ण व्यवहार स्वीकार करने में संकोची होते हैं, वह यह स्वीकार ही नहीं कर पाते कि दूसरों का उनके प्रति मित्रतापूर्ण व्यवहार हो सकता हैं ।

स्वमूल्यांकन(Self Evaluation)

1. किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ लिखिए।
2. संवेगो के आयामो को स्पष्ट कीजिए।
3. भय की उपयोगिता को उदाहरण देकर समझाइए।
4. 'प्रेम' के संवेगों की उत्पति किस प्रकार होती है?

9.7 विभिन्न संवेग एवं विद्यालय तथा शिक्षक (Different Emotion and School and Teacher)

बालक के जीवन मे स्वयं व अन्य के संबंध में विभिन्न संवेगों के विकास हेतु परिवार के पश्चात दूसरा महत्वपूर्ण स्थान विद्यालय का है । एक अवस्था मे विद्यालय परिवार से भी अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि बहुत से ऐसे अनुभव होते हैं जिन्हे केवल विद्यालय ही प्रदान कर सकता है । जैसे ही बालक प्रथम बार विद्यालयी संसार में प्रवेश करता है सुरक्षा के वातावरण से दूर हो जाता है । जहाँ उसे अजनबी वयस्क समूह तथा समवयस्क समूह के सम्पर्क में आकर अपने विकास काल में आत्म निर्भर होकर दूसरो के साथ संवेगात्मक क्रिया प्रतिक्रिया की प्रक्रिया से जुडना होता है । इस प्रक्रिया में संवेगात्मक संबंधो का एक छोर मित्रता- प्यार व दूसरा छोर घृणा एवं गहरी अरूचि तक हो सकता है । विद्यालय में सामाजिक संबंधों के माध्यम से समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा संवेगात्मक विकास बालक के स्वस्थ विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । लगभग सभी विद्यालयों में बौद्धिक कार्य को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है । बालक की बौद्धिक प परिलब्धि पर उसके संवेगों का प्रभाव पड़ता है तथा उसकी संवेगात्मकता बौद्धिक परिलब्धि से प्रभावित होती है । क्योंकि परिलब्धि की भावना स्वभावत: आत्म गौरव का श्रोत होती है । इसके विपरीत असफलता, क्रोध व भर्त्सना का श्रोत होती है । यद्यपि असफलता का अनुभव निराशाजनक होता है फिर जीवन में असफलता का सामना कभी न कभी सभी को करना पड़ता है । यदि कार्य करने की प्रेरणा इतनी शक्तिशाली हो कि असफलता के पश्चात भी उद्देश्य पूर्ति के लिये पुन: उत्साहपूर्वक प्रयास करें, तब असफल व्यक्ति को अधिक हानि नहीं पहुंचा सकती । दृढ़ प्रेरणा के अभाव में असफलता विघटनकारी हो सकती हैं । विद्यालय में असफल होने पर बालक असफलता की कडुवाहट को सहन करता है और निराशा अनुभव करता है । दूसरों से अवहेलना व दोषारोपण भी प्राप्त करता है । यह स्थिति तब और हानिकारक हो जाती है जब बालक असफलता की निराशा से यह अनुभव करने लगता है कि उसमें सफल होने की योग्यता ही नहीं है अथवा सफल होना उसका अधिकार ही नहीं है । ऐसे में वह स्वयं को अस्वीकार करने लगता है । इस प्रकार के विचार के परिणाम स्वरूप बालक परिलब्धि को वस्तुनिष्ठता से न माप कर स्वयं के प्रति अपनी दोषपूर्ण अभिवृत्ति के आधार पर परखता है । वह स्वयं को दूसरी के स्तर से जांचने लगता है ।

9.7.1 प्रमुख संवेग व विद्यालय:

विद्यालयी जीवन में यद्यपि सभी संवेगों पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए पर प्रेम, भय तथा क्रोध का इस अवस्था में विशेष महत्व है । आइए, संक्षेप में इनकी चर्चा करें ।

9.7.1 प्रेम

बालक मात-पिता शिक्षक तथा समवयस्क सभी से प्रेम पाना चाहता है तथा दूसरों को देना चाहता है । बालक के प्रति प्रेम का अर्थ है उसे स्वीकार करना अर्थात् उसका महत्व उसी के कारण है किसी अन्य के लिये साधन के रूप में नहीं । शिक्षक अथवा माता-पिता बालक को इसीलिये प्यार नहीं करते है कि वह सुन्दर है, विनम्र है अथवा अनुशासित है, अपितु वह जैसा भी है उसी रूप में उसी के लिये उसमें प्रेम करते है । इस प्रकार बालक के व्यक्तित्व का आदर कर उससे प्रेम करते हैं ।

मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपने से जुड़े बच्चों के प्रति प्रेम अनुभव करते है । ये शिक्षक बच्चों से उनके माता-पिता के समान ही प्रेम करते हैं और विद्यार्थी भी इस प्रकार के शिक्षक के साथ प्रेम की भावना का अनुभव करता है यहाँ तक कि बेहद विद्रोही प्रकृति के बालक में भी ऐसी धनीभूत इच्छा होती है कि उसे पसंद किया जाय' । बालक भी उस शिक्षक को अधिक पसंद करते हैं जो प्रेम करने के साथ ही अनुशासन प्रिय भी होते है ।

शिक्षक को बालकों की संवेगात्मक अनुभव की दृष्टि से यह भी जानना आवश्यक है कि ईर्ष्या की भावना विद्यार्थियों में तब जन्म लेती है जब शिक्षक पक्षपात करते हैं । यों तो शिक्षक के पास अपने व्यवहार का बिल्कुल सही माप तौल करना संभव नहीं है किन्तु यह ध्यातव्य है कि शिक्षक जानबूझ कर पक्षपात न करें तथा जो बालक स्वयं को अवहेलना का पात्र समझ लेते है उनके प्रति अधिक संवेदनशील हो तथा उनकी भावनाओं को चोट खाने से बचायें । क्योंकि प्रत्येक बालक चाहता है कि वह यह अनुभव करें कि दूसरे उसे चाहते हैं । प्रेम का दान, प्रतिदान दोनों मिलकर बालक को संवेगात्मक सुरक्षा प्रदान करते हैं । बालक को जो मिलेगा उसे ही वह दूसरों को देना सीखता है । इसी संदर्भ में बालकों में प्रेम की कमी के लक्षणों से शिक्षक का परिचित होना आवश्यक है ।

बालक के प्रति प्रेम विहीन अभिवृत्ति का लक्षण है कि बालक प्रेम के पात्र के रूप में बाध्य नहीं है अपितु साधन है । जैसे माता-पिता अथवा शिक्षक बालक को अपनी किसी उपलब्धि का साधन मानकर स्वीकार करें । अनुशासन में रहने वाला बालक शिक्षक की बालक को अनुशासन में रखने की योग्यता का परिचायक हो और इसीलिये शिक्षक उस बालक को प्यार करता है । बालक की उपलब्धि शिक्षक अथवा माता-पिता को उनकी हीन ग्रंथियों से छुटकारा दिलाने का साधन बनती है । इसी प्रकार बालक का अपरिपक्व व्यवहार भी शिक्षक द्वारा बालक को अस्वीकार करने का कारण बन जाता है जैसे एक बालक का जरा-जरा सी बात पर रोना । जब बालक धीमी-गति से अधिगम करें, उत्तर देने में विलम्ब करें, अथवा स्वतंत्रता का थोड़ा भी प्रयास करें और इस व्यवहार को शिक्षक द्वारा अनुशासनहीनता की संज्ञा दे दी जाये तो भी बालक दुखी होता है । बालक की कमजोरियों को नापसंद करने के तरीकों के माध्यम से बालक को प्रताड़ित करने के उद्देश्य से दूसरे बालकों से पक्षपात करना, दूसरो की उपस्थिति में बालक की निन्दा करना / अस्वीकार करना ही बालक के प्रति प्रेम की कमी हैं ।

शिक्षक का व्यंग्य भी बालक के अस्वीकार का ही एक रूप है, जो सर्वथा त्यागने योग्य है । प्रेम की कमी के रूप में शिक्षक द्वारा अस्वीकार कर बालक का स्वयं के महत्व को स्वयं ही स्वीकार करने की भावना पर भी प्रभाव डालता है । अवहेलना के शिकार बालक स्वयं की रक्षा हेतु अधिक सशंकित रहते हैं । दूसरे की दयालुता को वे स्वीकार नहीं कर पाते तथा तब यथार्थत: दयालुता को स्वीकार करना उनके लिये कठिन होता है । वे अपने महत्व को दूसरों पर प्रकट करने की प्रक्रिया में आक्रामकता को ही साधन बना लेते हैं । कई बार अवहेलना की अभिव्यक्ति अच्छी बनने की प्रक्रिया के रूप में होती है जो अस्वस्थ प्रकार की होती हैं । इसी प्रकार बालक एकांकी और चुप भी हो जाता है जो अस्वस्थ संबेगात्मक विकास का ही परिचायक है।

9.7.1.2 भय -

बालक के आत्म-विश्वास को कमजोर बनाने वाली स्थिति भय उत्पन्न करती है । बीमारी अथवा थकान इस भय में वृद्धि उत्पन्न कर देती है । बालक की योग्यता से अधिक की उससे अपेक्षा करना, उसकी सुरक्षा के प्रति खतरा, असफलता की पुन: याद दिलाना, प्यार का अभाव हो जाने के खतरे, उसको तुच्छ प्रमाणित करने वाली परिस्थितियाँ उसमें भय के साथ ही स्वयं के प्रति तुच्छता का भाव व ग्लानि उत्पन्न कर देती है । भयपूर्ण स्थिति में व्यस्कों का भी भयभीत हो जाना बालकों को और भयभीत बना देता है । भय के साथ व्यवहार का अर्थ पूर्व में ही भय की रोकथाम है । भय की तीव्रता तब अधिक होती है जब भय का सामना करने के लिये बालक तत्पर न हो ।

अत: भय का सामना करने के लिये पूर्व में ही बालक को तत्पर करना, बालक की क्षमताओं व योग्यताओं में वृद्धि करना उपयुक्त है । उदाहरणार्थ यदि कोई बालक वाचन करने से डरता है तो सर्वप्रथम शिक्षक सहानुभूतिपूर्ण ढंग से केवल अपने सामने वाचन करवाये फिर उसके मित्र समूह के सामने और उसके पश्चात् सबके सामने वाचन करवाए ।

9.7.1.3 क्रोध:

बालक के प्रतिदिन के जीवन में क्रोध के अनेकों अवसर होते हैं । बालक की योग्यता से अधिक कार्य उसे सौंप देना, उसकी आदतों के विपरीत क्रियायें करवाना, उससे की गई मांग में विपर्याय, विद्यालय व परिवार में वास्तविक अथवा काल्पनिक पक्षपात, बलात् अनुशासन, उसकी उपयुक्त इच्छाओं की पूर्ति में विलम्ब अथवा पूर्ण बाधा, वयस्कों की आक्रामकता का आभास कराने वाली व्यस्कों की क्रिया जो शारीरिक आक्रमण के साथ ही मानसिक आक्रामकता पूर्ण हो सकती है जैसे दूसरे बालक की तुलना, व्यंग्य, बालक की क्षमताओं की कमी का अभाव अथवा बालकों की संवेदनशीलता को आघात पहुंचाना, ये सब स्थितियाँ बालकों में क्रोध के संवेग को जन्म देती है ।

ऐसी स्थिति में अपने महत्व को प्रदर्शित करने के लिये बालक आक्रामक हो उठता है । अपने आत्म-विश्वास को स्वयं की दृष्टि से तथा दूसरों के सामने बनाये रखने के प्रयत्न में उसका व्यवहार समस्यात्मक हो जाता है । बहुत समय से एकत्रित क्रोध अचानक किसी साधारण सी घटना में उग्र रूप में भी प्रकाशित हो सकता है।

क्रोध के संवेग की अभिव्यक्ति में यदि क्रोध का पात्र बालक की शक्ति से परे है तो अपनी शक्ति के अन्तर्गत आने वाले पर क्रोध का विस्थापन हो जाता है । कई बार स्थान का

विस्थापन भी होता है जैसे बालक विद्यालय में उपयुक्त व्यवहार करता है किन्तु घर पर क्रोध पूर्ण व्यवहार करता है । क्रोध की बाह्य अभिव्यक्ति का अभाव बालक के स्वस्थ संवेगात्मक विकास का द्योतक नहीं है । क्रोध के संवेग को उपर्युक्त दिशा देने के लिये बच्चे में क्रोध के पीछे छुपे कारकों को जानना शिक्षक के लिए आवश्यक होता है ।

9.7.2 संवेगात्मक विकास में द्वंद की भूमिका :

बालकों में संवेगात्मक द्वन्द संवेगात्मक विकास का महत्वपूर्ण अंग हैं । संवेगात्मक द्वन्द अधिगम, शैक्षिक उपलब्धि तथा स्वस्थ व एकीकृत व्यक्तित्व के विकास में विघटन का कार्य करता है तथा अत्यन्त कष्टप्रद होता है । शिक्षक की भूमिका बालकों को अनावश्यक कष्ट से बचाने, प्रभावशाली अधिगम कराने तथा सुसंगठित व्यक्तित्व के विकास में बालकों की सहायता करने की होती है । संवेगात्मक द्वन्द्व से तात्पर्य व्यक्ति के अन्दर निहित प्रेरक तथा निर्धारित उद्देश्यों के मध्य विरोधाभास तथा प्रेरकों से समायोजन की अक्षमता है । बालक का आन्तरिक द्वन्द बाह्य द्वन्द को जन्म देता है जिससे शिक्षक को बालक के द्वन्द को समझने में सहायता मिलती है । उदाहरणार्थ, एकाकी, निराश और व्यंग्य बालक तथा सामाजिक कार्यो में लिप्त बालक मानसिक द्वन्द्व से संग्रहित होते हैं । कुछ द्वन्द अस्वाभाविक होते हैं । इस प्रकार के द्वन्द से बालक की रक्षा करना तथा उसे संवेगात्मक अपरिपक्वता से बचाना है ।

एक बालक को सामान्यत: निम्न प्रकार के मानसिक द्वन्द पाए हैं जो -

- वर्तमान एवं भविष्य के बीच का मानसिक द्वन्द
- श्रेष्ठता और पूर्णता के बीच का मानसिक द्वन्द
- स्वतंत्रता और दूसरों को प्रसन्न रखने का मानसिक द्वन्द
- अन्धविश्वास का द्वन्द
- बालक का विभिन्न रूपों में भूमिका का द्वंद शिक्षकों तथा अभिभावकों का दायित्व है कि वह बालकों के अर्न्तद्वन्द को समझकर उनको सकारात्मक उपयोग करें ।

9.7.3 संवेगात्मक विकास के संदर्भ में शिक्षक :

संवेगात्मक विकास में सहायक होने के संदर्भ में शिक्षक की सजगता' अपेक्षित है । उसे सर्वप्रथम बालक की क्रिया तथा कथन दोनों पर ध्यान देना होगा, क्योंकि बालक अपने संवेगों को दूसरों के साथ ही स्वयं से छिपाने के संदर्भ में विविध प्रकार के कथन व क्रिया करता है । इनके पीछे छिपी वास्तविक भावनाओं को भी शिक्षक को समझना चाहिए ।

विद्यार्थियों के साथ ही शिक्षक को स्वयं की भावनाओं के प्रति भी सजग रहना होगा । क्योंकि शिक्षक बालक के व्यवहार में क्या देखता है तथा बालक का व्यवहार शिक्षक को कैसे प्रभावित करता है, इन दोनों प्रभावों पर शिक्षक की स्वयं की भावनाओं का प्रभाव होता है । निःसंदेह शिक्षक के स्वयं के अर्न्तद्वंद विद्यार्थी के साथ उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं । इस प्रकार शिक्षक बालक के संवेगात्मक व्यवहार की व्याख्या करते समय स्वयं के संवेगों को समझकर बालकों के साथ अपने व्यवहार में अपने संवेगों का प्रभाव न पड़ने दें।

विद्यालय में बालक अपने साथ अनेक प्रकार के संवेग यथा मित्रता व शत्रुता पूर्ण भावनायें लेकर आता है । विद्यालय में यदि छात्र असहानुभुति वाले शिक्षकों के हाथ में पड़े तो शत्रुतापूर्ण व आत्मवचना वाली स्थिति का ही दृढ़ीकरण होगा । बालक विद्यालय में जो

संवेगात्मक स्थिति लेकर आता है उसे सहानुभुतिपूर्ण शिक्षक द्वारा उपयुक्त परिस्थिति प्रस्तुत करके एक सीमा पर परिष्कृत किया जा सकता है । इसी प्रक्रिया में विद्यार्थियों की संवेगों को छिपाने की प्रकृति का ज्ञान भी शिक्षक के लिए आवश्यक है । आयु बढ़ने के साथ बालक के संवेगों की अभिव्यक्ति बाह्य न होकर आन्तरिक हो जाती है । इस की अति होने पर शिक्षक के लिये विद्यार्थियों के संवेग को समझने में कठिनाई होती है । यह स्थिति अधिक कठिन होती है जब बालक स्वयं अपने संवेग को न समझ कर व्यस्क की भाँति छिपाना प्रारम्भ कर देता है । संवेगों को छिपाने की प्रकृति दो प्रकार से स्वस्थ विकास में बाधा उत्पन्न करती है ।

प्रथम- संवेग की अभिव्यक्ति का अवसर चूक जाना । उदाहरणार्थ विद्यार्थी की आत्म गौरव की भावना को तीव्र आघात पहुँचने पर क्रोध को दबाकर अन्य मुखौटा पहन लेना जिससे क्रोध का निरन्तर पोषण होकर किसी सामान्य से कारण पर संचित क्रोध की उग्र अभिव्यक्ति ।

द्वितीय- जब वास्तविक संवेगात्मक द्वन्द्व को छिपाकर उस संवेग के विपरीत व्यवहार बाहय रूप से करता है और निरन्तर आशांकित रहता है कि हीं उसके कृत्रिम विपरीत व्यवहार के पीछे छिपी वास्तविक संवेगात्मक स्थिति को पहचान तो नहीं लिया जायेगा ।

9.8 सारांश (Summary)

बालक के स्वस्थ संवेगात्मक विकास में विद्यालय व शिक्षक की महत्ती भूमिका है । संवेगात्मक विकास बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष है । बालक के व्यक्तित्व के पूर्णत: स्वस्थ विकास में अपनी भूमिका का सफल निर्वाह करना ही शिक्षक का दायित्व है ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. शैशवावस्था व बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास को स्पष्ट करते हुए बताइये कि दोनों में क्या अन्तर है?
2. संवेगों का बालक के स्वस्थ विकास में क्या महत्व है?
3. संवेगात्मक विकास में शिक्षक की क्या भूमिका हो सकती है?
4. क्रोध के विषयान्तरण से आप क्या समझते हैं? विषयान्तरण के आधार कौन से हैं? उदाहरण हुए उन उपायों को बताइये, जिनसे इनका निराकरण किया जा सकें ।
5. संवेगों को छिपाने के क्या क्या दुष्परिणाम होते हैं, एक कुशल शिक्षक बालक के वास्तविक संवेगों की जानकारी कैसे प्राप्त कर सकता है?
6. प्रमुख संवेग कौन कौन से हैं? प्रमुख संवेगों के संदर्भ में विद्यालय की भूमिका उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

9.9 संदर्भ (Refernces)

1. आर्नोल्ड, एमबी. (1960) : इमोशन एंड पर्सपेलिटी, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क
2. आसुबेल डी.पीत्र (1960) : इमोशनल डवलपमेंट एनसाइक्लोपीडिया आफ एजूकेशनल रिसर्रा, तीसरा एडीसन, द मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क ।
3. काफी सी.एन (1972) : मोटीवेशन एंड एमोशन ग्लीन व्यू आईइलेवन स्काट फोरेसमेन

4. गेट्स, जेरसील्ड एवं अन्य, (1950): एजुकेशनल साइकोलॉजी, द मेकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क
5. गैसे ए (1928) एनफैंसी एंड झूमन ग्रोथ, द मैकमिलन कम्पनी न्यूयार्क
6. गुडइनफ एल. (1931) : इनार इन यंग चिल्ड्न, अनइवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा, प्रेस
7. चौबे एस.पीत्रे, मनोविज्ञान और शिक्षा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
8. प्लूटचिक आर. (1962) : द इमोशन्स, फैक्टस, थियरीज एंड ए न्यू मॉडल, रेन्द्वम हाऊस, न्यूयार्क
9. स्टीफेन्स जे.एम.(1956) एजुकेशनल साइकोलॉजी, हेनरी एंड कम्पनी न्यूयार्क
10. स्किनर सी.ई (1956) एजुकेशनल साइकोलॉजी, स्टेपिल्स लन्दन
11. स्मिथ पीएच. (1962) : साइकोलॉजी इन टीचिंग, न्यू जर्सी, एंगलबूठ क्लिफ्स ।

इकाई-10

नैतिक विकास, पियाजे तथा कालबर्ग के विशेष संदर्भ में (Moral development with special Reference to Piaget & Kohlberg)

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

10.2 विकास का अर्थ एवं उसके विभिन्न पक्ष

10.3 नैतिक विकास- अर्थ एवं परिभाषा

10.4 नैतिकता का अधिगम

10.5 नैतिक विकास के प्रतिमान

10.6 नैतिक विकास की अवस्थायें

10.7 संदर्भ

10.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

जीवन का परम लक्ष्य है चरित्र का निर्माण करना। चरित्र मे व्यक्तित्व के नैतिक पक्ष के विकास पर अधिक जोर दिया जाता है । आइए हम लोग विचार करें कि नैतिकता है क्या, इसके क्या सिद्धान्त तथा प्रतिमान हैं, तथा विभिन्न अवस्थाओं में नैतिकता का विकास कैसे होता है । आशा है कि इकाई की समाप्ति पर आप इस योग्य होंगे कि-

- नैतिक विकास का अर्थ स्पष्ट करके उस परिभाषित कर सकें ।
- नैतिकता के अधिगम की विभिन्न विधियों का वर्णन कर सकें ।
- नैतिक विकास के प्रतिमानों का परिचय दे सकें ।
- नैतिक विकास की विभिन्न अवस्थाएँ बना सकें ।
- नैतिक विकास के प्रभावी कारकों को समझा सकें ।
- नैतिक विकास के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या का सकें ।
- नैतिक विकास में पियाजे के योगदान पर प्रकाश डाल सकें ।
- नैतिक विकास में कोलबर्ग के योगदान का वर्णन कर सकें ।

10.2 विकास का अर्थ एवं उसके विभिन्न पक्ष (Meaning and Different Aspects of Development)

विकास को जीवन के प्रारम्भिक वर्षों तक में सीमित करने की सामान्य परंपरा रही है यह सही नहीं है । व्यक्ति का विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ जन्म के समय से ही हो जाता है और वह जब तक चलती रहती है जब तक व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त नहीं कर लेता । शिशु के पूर्ण विकसित मनुष्य बनने की प्रक्रिया उसके अपने आसपास के उद्दीपकों के साथ सम्पर्क

द्वारा विकसित होती है । हरलॉक ने विकास को उन प्रगतिशील परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया है जो व्यक्ति को परिपक्वता की और ले जाते हैं-

विकास केवल मानसिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है वरन् यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है । शिक्षा में व्यक्ति के विकास में मानसिक पक्ष के साथ-साथ शारीरिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा नैतिक पक्षों को भी महत्व देना आवश्यक है । विकास के ये सभी पक्ष परस्पर सम्बन्धित होते है । शिक्षा -मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और उसका लक्ष्य बालक के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना है । अत: शिक्षक को विकास के विभिन्न पक्षों तथा विकास के फलस्वरूप प्राप्त नवीन योग्यताओं एवं विशेषताओं के बारे में जानना अत्यंत आवश्यक है ताकि इनका उपयोग कर शीघ्रातिशीघ्र परिपक्वता प्राप्त की जा सकें जो कि विकास का चरम लक्ष्य भी है ।

10.3 नैतिक विकास- अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Moral Development)

नैतिकता शब्द अँग्रेजी के Morality का हिन्दी रूपांतर है। शब्द लैटिन भाषा से बना है जिसका अर्थ है- प्रथायें, लोक-रीतियों का शिष्टाचार । प्रत्येक समाज के कुछ निश्चित मानदण्ड तथा नियम होते हैं तथा उन समाज के प्रत्येक सदस्य से इन्हीं मानदण्डों के अनुरूप व्यवहार की आशा की जाती है । ये मानदण्ड, रीतियों या प्रथाये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते रहते हैं । दुःर्खीम ने नैतिकता को उन असंख्य नियमों में स्थित बताया है जो समाज द्वारा पूर्वनिर्धारित होते हैं । उनके अनुसार- नैतिकता क्रिया सम्बन्धी नियम हैं जो आचरण का पूर्व निर्धारण करते हैं । वह यह बताते हैं कि एक दी हुई दशा में कैसे कार्य करना चाहिये तथा सही ढंग से व्यवहार करना चाहिए ।

नैतिक व्यवहार को परिभाषित करते हुये हरलॉक ने भी सामाजिक पक्ष पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया है । उनके अनुसार नैतिक व्यवहार का अर्थ सामाजिक समूह के नैतिक नियमानुसार आचरण करना है ।

अर्थात् नैतिकता सामाजिक समूह में रहकर ही विकसित हो सकती है इसे अनुवांशिक रूप से हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है । नैतिकता का विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति चेतन रूप में सही एवं गलत अच्छा-बुरा आदि के मानदण्डों को स्वीकार करता हैं । जन्म के समय बच्चा निर्नैतिक होता है । प्रारम्भिक बाल्यावस्था में एक नैतिक बोध उत्पन्न होता है जब बच्चा यह महसूस करता है कि कुछ व्यवहार के तरीके अन्य लोगों द्वारा प्रशंसित है जबकि कुछ व्यवहार के तरीके अपनाने पर दण्ड मिलता है । नैतिक मूल्य पहले उसके लिए बाह्य होते हैं पर धीरे-धीरे वह इन मूल्यों का आन्तरीकरण कर लेता है । वे मूल्य उसके विकसित होते हुये 'अहम्' के साथ जुडते है तथा उसका अन्त: करण विकसित होता जाता है जो बच्चें के व्यवहार को संचालित करता है ।

कई अर्थो में नैतिक विकास बच्चे के सामान्य सामाजिक अनुभवों का प्रतिफल है । इस प्रकार के अनुभवों से बच्चा सामाजिक प्रत्याशाओं को समझना सीखता है साथ ही उसे उचित-अनुचित का ज्ञान भी होने लगता है । अत: नैतिक विकास वास्तव में सामाजिक विकास का ही एक पक्ष है ।

10.4 नैतिकता का अधिगम (Learning of Morality)

जन्म के समय बालक मे किसी प्रकार के मूल्य विकसित नही होते। सामाजिक संपर्को मे विस्तार के साथ-साथ वह यह सीखता जाता है कि समाज की दृष्टि से भी क्या उचित है और क्या अनुचित और इसी के साथ-साथ उसकी नैतिकता विकसित हो जाती है । बालकों में सामाजिक- नैतिक विकासक्रम के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि अलग-अलग आयु स्तर पर बालकों में त्रातकता अधिगम भिन्न प्रकार का होता है । नैतिक- मूल्यों के अधिगम के कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित है-

प्रयास एवं भूल- प्रारम्भ में बालक नैतिक व्यवहारों को 'प्रयास एवं त्रुटि' के आधार पर सीखता है । लगभग दो वर्षो की आयु तक वह प्रयत्न व भूल के आधार पर सीखता है । क्योंकि इस अवस्था तक बालक का ज्ञान बहुत सीमित होता है अतः परिवार में इसे जो व्यवहारगत प्रशिक्षण दिया जाता है उसे वह कर-करके भूल जाता है । वह फिर सीखता है और त्रुटियाँ करता है । इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है । धीरे-धीरे वह व्यवहार बच्चे की आदतों का एक अंग बन जाता है तथा बच्चा नैतिक व्यवहार करना सीख लेता है ।

ब.पुरस्कार एवं दण्ड- पुरस्कार एवं दण्ड को प्रलोभन एवं भय की भी संज्ञा दी जा सकती है । परिवार एवं विद्यालय में बालक अनेक मूल्य प्रलोभन और भय के आधार पर सीखता है । पुरस्कारों एवं दण्ड का प्रयोग कर बालक को यह बताया जाता है कि कौन सा व्यवहार और कार्य उचित है और कौन अनुचित । परिवार में अभिभावकों एवं विद्यालय के अध्यापकों द्वारा दण्डित किये जाने के भय से बालक नैतिक दृष्टि से उपयुक्त कार्यो एवं व्यवहारों को अपनाता है साथ ही वह यह भी समझने लगता है कि समाज की प्रत्याशाओं के अनुरूप व्यवहार दर्शाने पर पुरस्कार प्राप्त होता है अतः वह उन व्यवहारों को अपनाने का प्रयास करता है जो समाज द्वारा स्वीकृत एवं प्रशंसित होते हैं । परन्तु यहां नैतिक विकास सामान्य रूप से होने के लिये यह आवश्यक है कि परिवार समाज तथा विद्यालय के मूल्यों में एकरूपता हो, कोई अर्न्तविरोध न हो अन्यथा बालक के सामने अर्न्तद्वन्ह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और इसका नैतिक विकास असंतुलित व असामान्य हो सकता है ।

स. रूढ़ियों एवं प्रथाओं की भूमिका- प्रथा का अर्थ है समाज से मान्यता प्राप्त कार्य और व्यवहार करने की विधियाँ जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होती रहती है । जबकि रूढ़ियाँ समाज-कल्याण से जुडी हुई भावनायें है । बालक जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है वह इन रूढ़ियों और प्रथाओं का पालन करना सीखता जाता है) बालक जैसे-जैसे रूढ़ियों और प्रथाओं के महत्व को समझते जाते हैं वैसे-वैसे ही वे उन्हें अपने व्यवहार का अंश बनाते जाते हैं ।

द. अन्तःकरण की भावना की भूमिका- कुछ लोगों का विचार है कि बालक जब जन्म लेता है तो उसमें भले और बुरे के ज्ञान की योग्यता होती है । विकास के साथ-साथ बालक अपनी इस योग्यता से परिचित होता जाता है । आइजिक के अनुसार इस योग्यता को अंतःकरण या पराअहम् कहा जा सकता है । जब कभी बालक सामाजिक त्रातक मूल्यों से हटकर व्यवहार करने का प्रयास करता है तो यही अंतःकरण की भावना उसे ऐसा करने से रोकती है । प्रारम्भ में बालक का व्यवहार वातावरण सम्बन्धी प्रतिबन्धों की वजह से नैतिक होता है । आयु बढ़ने के साथ-साथ बालकों का नैतिक व्यवहार सामाजिक प्रतिबन्धों के स्थान पर अंतःकरण से नियंत्रित होने लगता है ।

य. अपराध बोध और शर्म की भूमिका- एक निश्चित विकास अवस्था के बाद व्यक्ति का अन्तःकरण इतना विकसित हो जाता है कि वह व्यक्ति को नियम विरूद्ध कार्य करने पर चेतावनी देने लगता है । यदि किसी कारणवश व्यक्ति का व्यवहार उसके अंतःकरण के अनुरूप नहीं हो पाता तो वह एक अपराध बोध और शर्म महसूस करता है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक के अनुसार- अपराध बोध तब होता है जब व्यक्ति यह स्वीकार कर लेता है कि उसका आचरण उसा नैतिक मूल्य के विपरीत है जिसका पालन किया जाना चाहिए था ।

परन्तु बालक के अपराध बोध और शर्म उस समय ही उत्पन्न होते है जब उसमें उचित अनुचित की भावना का एक निश्चित मात्रा में विकास हो चुका हो तथा उसमें आत्मालोचना की योग्यता हो । हरलॉक ने भी इन भावनाओं के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है- यदि बच्चा अपराध बोध न करे तो सामाजिक अपेक्षा के अनुसार कार्य करने के लिये अभिप्रेरित नहीं होगा ।

10.5 नैतिक विकास के प्रतिमान (Pattern of Moral Development)

नैतिक विकास के दो भिन्न पहलू है अ. नैतिक व्यवहार का विकास ब. नैतिक प्रत्ययों का विकास । अध्ययनों से यह देखा गया है कि नैतिक ज्ञान और नैतिक व्यवहार में अधिक सम्बन्ध नहीं है । इसका प्रमुख कारण यह है कि बालक का व्यवहार ज्ञान के अतिरिक्त अन्य परिस्थितिजन्य कारकों से भी प्रभावित होता हैं ।

10.5.1 नैतिक व्यवहार पक्ष-

बालक समाज की प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार करना सीखता है । प्रत्यक्ष शिक्षण के द्वारा बालकों को समझाया जा सकता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित । प्रत्यक्ष शिक्षण के साथ यदि पुरस्कार, सामाजिक अनुमोदन प्रशंसा इत्यादि जुड़े हो तो वह बालक पर सर्वाधिक प्रभाव डालते हैं । बालक के नैतिक व्यवहार अधिगम में वहीं सिद्धान्त कार्य करते हैं जो सामान्य अधिगम में । सामाजिक नैतिक मूल्यों के अधिगम में स्थानान्तरण के नियम भी कुछ परिस्थितियों में कार्य करते हैं । बच्चें कई बार दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार प्रतिमानों का तादात्मीकरण भी करते है । बच्चा उस व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानों के साथ तादात्मीकरण स्थापित करता है जो उसके व्यवहार की प्रशंसा करते हैं

10.5.2 नैतिक प्रत्ययों का विकास-

यह नैतिक विकास का द्वितीय पक्ष है । इस पक्ष के अंतर्गत बालक उचित और अनुचित के नियमों और मूल्यों को सीखता है । वह जो भी नैतिक मूल्य सीखता है वह सभी मौखिक या अमूर्त रूप में होते हैं । बालक में नैतिक मूल्यों का विकास तभी होता है जब उसमें पर्याप्त मात्रा में मानसिक क्षमताओं का इतना विकास हो जाता है कि वह सीखे गए नैतिक मूल्यों का सामान्यीकरण कर लेता है । अध्ययनों से पता चला है कि बालक में नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित पहले कुछ विशिष्ट प्रत्ययों का विकास होता है । बालक की मानसिक क्षमताओं का जैसे-जैसे विकास होता जाता है, नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित प्रत्यय विशिष्ट से सामान्य होते जाते है । लगभग नौ वर्ष की अवस्था तक बालक के नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित प्रत्यय अधिक

सामान्यकीकृत हो जाते हैं । किशोरावस्था के प्रारम्भ होने तक बालक में नैतिक मूल्यों का विकास पर्याप्त मात्रा में हो जाता है ।

10.6 नैतिक विकास की अवस्थायें (Different Stages of Moral Development)

10.6.1 बाल्यावस्था में नैतिक अभिवृत्तियों -

बाल्यावस्था में बालक में कोई भी विवेक नहीं होता है और वह मूल्यों का कोई पैमाना ही जानता है । अत: उसका व्यवहार किसी नैतिक मानक से निर्धारित नहीं होता । कालान्तर में वह अपने माता-पिता, शिक्षकों तथा खेल के साथियों से समाज की आचार संहितायें सीख लेता है । जिन लोगों के सम्पर्क में वह आता है उनके व्यवहार का अनुकरण करता है । समाज द्वारा अनुमोदित तरीके से व्यवहार करना सीखना एक लम्बी एवं धीमी प्रक्रिया है जो बाल्यावस्था से प्रारम्भ होकर किशोरावस्था तक चलती है । परन्तु इसकी नींव बाल्यावस्था में ही पड़ जाती हैं ।

इस अवस्था में बच्चा आवेग के अनुसार व्यवहार करता है । उसका किसी काम को अच्छा या बुरा समझना प्राप्त सुख या दुःख पर निर्भर होता है, न कि उसे समूह का हित या अहित होने पर । अपनी सीमित बुद्धि के कारण वह व्यवहार का मूल्यांकन दूसरों पर पड़ने वाले प्रभावों से नहीं कर सकता बल्कि केवल अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों से करता है । वह किसी काम को बुरा केवल तब समझता है जब उसका स्वयं उसके ऊपर कुप्रभाव पड़ता है । इसके अंदर अपराध बोध नहीं होता क्योंकि उसे अच्छे- बुरे के निश्चित मानकों का ज्ञान नहीं होता है । उदाहरण के लिए दूसरों की चीजें लेने में उसे यह भावना नहीं होती कि उसने अपराध किया है, क्योंकि सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों का मानक उसे ज्ञात नहीं होता ।

10.6.2 पूर्व बाल्यावस्था में नैतिक विकास-

छोटे बच्चों का बौद्धिक विकास अभी इतना नहीं होता कि वह अच्छे और बुरे के सूक्ष्म सिद्धान्तों । को सीख सकें या उन्हें व्यवहार में लागू कर सकें । उसे विशिष्ट परिस्थितियों में नैतिक व्यवहार क्या है यह सीखना पड़ता है । क्योंकि उसकी धारण-शक्ति अभी अपरिपक्व होती है, अत: यह सीखने की प्रक्रिया धीमी होती है ।

छोटे बालकों में नैतिक संप्रत्यय आत्मनिष्ठ होते हैं । किसी काम को स्वयं करके जो परिणाम वह स्वयं देखता है उसी के आधार पर वह उसे भला बुरा समझता है । यद्यपि बालक यह नहीं जानता कि कुछ काम अच्छे और कुछ बुरे क्यों होते हैं पर वह यह जानता है कि कुछ कामों को अच्छा और कुछ को बुरा कहा जाता है । इस जानकारी से उन नैतिक प्रत्ययों की नींव डलती है जो बड़े होने पर उसके व्यवहार का पथ-प्रदर्शन करते है । बालक समाज अनुमोदित व्यवहार के तरीके अपनाता है बर्बर यह जाने कि वह ऐसा क्यों कर रहा है । सामान्यतया मध्य वर्ग के माता-पिता, निम्न या उच्च वर्ग की माता-पिता की अपेक्षा समाज- अनुमोदित मानकों के अनुसार व्यवहार कराने में अधिक सख्त होते हैं ।

10.6.3 उत्तर बाल्यावस्था में नैतिक विकास-

ज्यों-ज्यों बालक का अनुभव और दूसरे लोगों से संपर्क बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसे मालूम होता जाता है कि उसके परिवार के मानदण्ड एवं समाज के मानदण्डों में भिन्नता है । माता-पिता की प्रत्येक बात सदैव ही उपयुक्त नहीं होती । इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे नये नैतिक मानकों का निर्माण होता है, और इनका प्राय: माता-पिता के मानकों से विरोध होता है । अब बालक की नैतिक नियमावली एक बड़ी सीमा तक उस समूह की नैतिक नियमावली के द्वारा निर्धारित होती है जिससे उसका सम्बन्ध होता है । इसके अतिरिक्त उसके सम्प्रत्यय छोटी आयु में जितने संकीर्ण और विशिष्ट थे उतने अब नहीं रहते । अब वह अपने सम्प्रत्ययों का सामान्यीकरण कर देता है । जिससे इनमें विशिष्ट परिस्थिति की जगह हर परिस्थिति का समावेश हो जाता है । उदाहरण के लिये वह सीख लेता है कि चोरी, चाहे वह रूपये- पैसे की हो, वस्तुओं की हों, या दूसरों के श्रम की, सदा बुरी होती है ।

नौ से लेकर बारह वर्ष की आयु तक बालकों के ईमानदारी के आदर्श पहले की अपेक्षा ऊँचे हो जाते हैं । बाल्यावस्था की समाप्ति तक बालक की नैतिक नियमावली धीरे-धीरे प्रौढ़ की भाँति हो जाती है । इस अवस्था में बालक अपने समवयस्कों के मानदण्डों से नीचे नहीं गिरना चाहता अत: अब कभी वह गलत व्यवहार करता है तो वह इसका दोष दूसरों पर मढ़ देता है । वह सच्चाई की अपेक्षा अपने बचाव में अधिक दिलचस्पी रखता है । पकड़े जाने पर वह दोषी अनुभव करने की बजाए शर्म अनुभव करता है । इस प्रकार नैतिक लज्जा, नैतिक व्यवहार के विकास में एक शक्तिशाली कारक है । इस अवस्था में उसमें न्याय और औचित्य की बुद्धि विकसित हो चुकी होती है और यदि वह समझता है कि उसे अनुचित दण्ड दिया गया है तो वह उसे अस्वीकार कर देता है ।

स्वमूल्यांकन

1. विकास का क्या अर्थ है? स्पष्ट कीजिए।
2. नैतिकविकास का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. नैतिक विकास की विभिन्न अवस्थाएँ कौन-कौन सी हैं।

10.7 संदर्भ

1. Srivastava, G.N.P. (1987) : Recent trends in Educational Psychology. Agra Psychol. Research Cell, Agra - 4.
2. Flavell, John. H. (1963) : The development psychology of Jean Piaget; Van Nostrand Reinhold Comp.

इकाई-11

अधिगम का प्रत्यय, स्वरूप और प्रकार (CONCEPT, NATURE AND TYPES OF LEARNING)

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

11.2 अधिगम का प्रत्यय व स्वरूप

11.3 अधिगम की विशेषतायें

11.4 अधिगम की प्रक्रिया का विश्लेषण

11.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्व

11.5.1 प्रेरणा और अधिगम

11.5.2 शिक्षा का स्थानान्तरण तथा अधिगम

11.5.3 ध्यान तथा अधिगम

11.5.4 रूचि तथा अधिगम

11.5.5 अभ्यास तथा अधिगम

11.5.8 आकांक्षा का स्तर तथा अधिगम

11.5.7 सीखने की इच्छा तथा अधिगम

11.5.8 विषय सामग्री का रूप तथा अधिगम

11.5.9 शिक्षण विधि तथा अधिगम

11.5.10 बुद्धि तथा अधिगम

11.5.11 स्वास्थ्य तथा अधिगम

11.6 अधिगम के प्रकार

11.7 सारांश

11.8 संदर्भ

11.0 उद्देश्य एवं लक्ष्य (Aims and objectives)

अधिगम मानव के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार में अनुभवों द्वारा संशोधन है ताकि बालक का व्यवहार व उसकी क्रियाएं समाज सम्मत हो सकें। यदि अधिगम को मनोविज्ञान से हटा दिया जाए तो मनोविज्ञान शून्य हो जाएगा - क्योंकि अधिगम का आधार है 'व्यवहार' जो कि मनोविज्ञान की आत्मा है। अत: निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर इस इकाई में

अधिगम के प्रत्यय प्रकृति एवं प्रकारों को विवेचित करने का प्रयास किया गया है -

- अधिगम के प्रत्यय, परिभाषाओं और विशेषताओं के बारे में छात्र जान सकें।
- अधिगम की प्रकृति क्या है और प्रेरणा का अधिगम पर क्या प्रभाव पड़ता है इसके बारे में छात्रों को जानकारी हो सकें।
- शिक्षा के स्थानान्तरण के बारे में छात्र जानकारी प्राप्त कर सकें।

- रूचि ध्यान अभ्यास तथा आकांक्षा के स्तर का अधिगम पर क्या प्रभाव पड़ता है छात्र इसे विश्लेषित कर सकें।
- छात्र बुद्धि व अधिगम के सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकें।
- छात्र अधिगम के प्रकारों के बारे में जानकारी पा सकें।

11.1 अधिगम का प्रत्यय व स्वरूप (Nature and concepts of learning)

मानव व्यवहार को नियमित करने में अधिगम एक आधारभूत प्रक्रिया है। अधिगम मानव व्यवहार के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। व्यक्ति की आदतें, रुचियाँ, विश्वास तथा रीति-रिवाज सभी अधिगम से प्रभावित रहते हैं भाषा, अभिवृत्ति व संवेगात्मक प्रतिक्रियायें सभी सीखी जाती है। इस प्रकार मानव की प्रत्येक क्रिया अधिगम से प्रभावित होती हैं।

जीवन के आरम्भ से ही अधिगम प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। शैशव में विकास भी अधिगम के कारण ही होता है। प्रकृति मनुष्य को विभिन्न कार्यो को करने की क्षमता प्रदान करती है। अधिगम की क्षमता प्रदान करती है। अधिगम की क्षमता की मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होती है।

अधिगम एक व्यापक शब्द है अधिगम की प्रक्रिया जन्म लेने के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है। जन्म लेने के बाद बच्चा अपने चारों और के वातावरण के सम्पर्क में आता है और उसके प्रति प्रतिक्रिया करने लगता है। इस प्रकार व्यक्ति व वातावरण के मध्य अन्तःक्रिया के फलस्वरूप ही अधिगम की प्रक्रिया होती है। अधिगम एक मानसिक क्रिया है। मानसिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति व्यवहारों के द्वारा होती है। मानव व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जन होता रहता है। जब बच्चा स्वभावतः किसी नवीन परिस्थिति के सम्पर्क में आता है और वह अपनी प्रवृत्तियों की संतुष्टि इस नवीन परिस्थिति में पुराने सीखे हुये व्यवहार के आधार पर करने में समर्थ नही हो पाता है तो वह परिस्थिति के साथ समायोजन करने के लिये प्रयास करने लगता है। इस प्रयास के परिणामस्वरूप वह क्रमशः गलत व्यवहार छोड़ने लगता है। और सफलीभूत व्यवहार को अपनाने लगता है। स्वाभाविक व्यवहार या पुरानी अनुभूति में होने वाले प्रगतिशील परिवर्तन को सीखना कहते है। उदाहरणार्थ यदि बालक के सामने एक जलती अंगीठी रखी है वह उसे जिज्ञासा वश छूता है और उसे छूते ही उसका हाथ जल जाता है इसलिये वह अपने हाथ को तेजी से हटा लेता है और फिर कभी उसके पास नहीं जाता, क्योंकि उसने अपने अनुभव से यह सीख लिया है कि आग उसे जला देगी। इस प्रकार सीखना पूर्व अनुभव द्वारा व्यवहार में प्रगतिशील परिवर्तन है।

अधिगम की परिभाषायें

मॉरगन एवं किंग के अनुसार : अनुभव के कारण व्यवहार में कोई स्थाई परिवर्तन होने के रूप में अधिगम को परिभाषित किया जा सकता है।

(Learning can be defined as any relativity permanent change in behaviour which occurs as a result of practice or experience.)

वुडवर्थ के अनुसार : नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की क्रिया है।

(The process of acquiring new knowledge and new responses is the process of learning.)

स्किनर के अनुसार : प्रगतिशील व्यवहार व्यवस्थापन की प्रक्रिया को सीखना कहते हैं।

(Learning is a process of progressive behaviour adoption.)

गेट्स व अन्य विद्वान : सीखना अनुभव और प्रशिक्षण के परिणाम स्वरूप व्यवहार में परिवर्तन है।

(Learning is the modification of behaviour through experience and training)

गुथरी के अनुसार : सीखना किसी परिस्थिति में भिन्न ढंग से कार्य करने की वह क्षमता है जो कि परिस्थिति के अनुसार पूर्व अनुभवों के कारण आती है।

(Ability to learn is to respond difficulty to situation because of a past experience to a situation.)

क्रो एवं क्रो के अनुसार : सीखना आदतों ज्ञान और अभिवृत्ति का अर्जन है।

(Learning is the acquisition of habits, knowledge and attitudes.)

गिलफोर्ड के अनुसार : हम इस शब्द की परिभाषा विस्तृत रूप में यह कर सकते है कि सीखना व्यवहार के फलस्वरूप व्यवहार में कोई भी परिवर्तन है।

(We may define the term very broadly in saying. that learning is any change in behaviours resulting from behaviours) अधिगम की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अधिगम प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:-

i. सीखने या अधिगम की क्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता है।
ii. अधिगम द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में आये परिवर्तन स्थाई और अस्थाई दोनों प्रकार के होते हैं।
iii. व्यवहार में यह परिवर्तन पूर्व अनुभवों पर आधारित होते हैं।

सीखने की प्रक्रिया में दो तत्व निहित होते है - पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता व परिपक्वता। बालक परिपक्वता की और बढ़ता हुआ, अपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रियाएं करता है वही अधिगम है। अधिगम चेतन का अचेतन रूप में जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। अधिगम की क्रिया पर परिपक्वता का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। परिपक्वता का सम्बन्ध शारीरिक क्षमता के विकास से है। शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यता का विकास भी होता जाता है। इस विकास के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में भी परिवर्तन होता रहता है।

व्यवहार में परिवर्तन परिपक्वता व सीखने के कारण होता है। परिपक्वता के कारण सीखने की व समायोजन करने की क्षमता बढ़ती है परिपक्वता का अर्थ है कि विकास की एक निश्चित अवस्था में बच्चे कार्य करने के योग्य हो जाते हैं जिन्हें वे इससे पूर्व करने में समर्थ नहीं होते। परिपक्वता व अधिगम की क्रिया में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। अधिगम की क्रिया केन्द्रीय स्नायु मण्डल ज्ञानेन्द्रियों आदि की सहायता से पूर्ण होती है। जैसे-जैसे बालक का शरीर परिपक्वता की ओर बढ़ता जाता है वह अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने लगता है और उसके व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के लिये शारीरिक माँसपेशीय, गामक तथा मानसिक परिपक्वता की आवश्यकता होती है। प्रौढ़ता व्यक्ति की वह स्वाभाविक अभिवृद्धि है जो बिना

किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों जैसे शिक्षा एवं अभ्यास आदि के भी अनवरत रूप से चलती रहती है।

11.3 अधिगम की विशेषतायें (Characteristics of Learning)

योकम एवं सिम्पसन (Yoakam and Simpson) ने सीखने की कुछ सामान्य विशेषताओं का उल्लेख किया है।

(i) सीखना विकास है (Learning is Development) व्यक्ति हर समय जिन क्रियाओं ओर पदार्थों के सम्पर्क में आता है उनसे कुछ न कुछ अनुभवों को प्राप्त करता है और सीखता है परिणामस्वरूप उसमें शारीरिक व मानसिक विकास होता है । इस प्रकार अधिगम ही विकास की आधारशिला है।

(ii) अधिगम जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है: जन्म लेने के साथ ही बच्चा अपने वातावरण (माता-पिता, भाई-बहन विभिन्न लोगों के) सम्पर्क में आता है । उनसे कुछ न कुछ अनुभव एवं क्रियाएँ सीखता रहता है ।

(iii) अधिगम सार्वभौमिक है: अधिगम की प्रक्रिया किसी विशिष्ट स्थान अथवा विशिष्ट मनुष्यों में नहीं पायी वरन् सभी पशु पक्षियों कीड़ो व जीवों में पायी जाती है ।

(iv) अधिगम परिवर्तन है व्यक्ति के व्यवहारों, विचारों, इच्छाओं, मूल प्रवृत्तियों एवं भावनाओं में शोधन अथवा परिवर्तन आना ही सीखना है ।

(v) अधिगम अनुकूलन है (Learning is adjustment) जन्म लेते ही शिशु किसी न किसी रूप में अपने वातावरण से अभियोजन करना प्रारम्भ कर देता है । अभियोजन के लिये उसे अनेक नवीन व्यवहारों क्रियाओं, भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि को सीखना पड़ता है ।

(vi) अधिगम अनुभवों का संगठन है (Learning is Organisation of experience) हर एक क्षण व्यक्ति नये-नये अनुभव प्राप्त करता है ओर इन्हीं नवीन और पुराने अनुभवों के संगठन द्वारा व्यक्ति सीखता है ।

(vii) अधिगम उद्देश्य पूर्ण है: (Learning is Purposive) किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ही व्यक्ति कार्य को सीखता है । उद्देश्य बिना सीखने की क्रिया निष्फल होती है ।

(viii) अधिगम विवेकपूर्ण है : (Learning is rational) किसी कार्य को विवेकपूर्ण ढंग से करना ही अधिगम है ।

(ix) अधिगम सक्रिय है: (Learning is active) किसी भी कार्य को सीखने के लिये व्यक्ति को सक्रिय होना पड़ता हैं आधुनिक युग में करके सीखने की प्रक्रिया पर ही बल दिया जा रहा है ।

(x) अधिगम वातावरण की उपज है: (Learning is a product of environment) बालक जो कुछ सीखता है, वातावरण से सीखता है । सीखने के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ, साधन एवं प्रभावशाली वातावरण का होना आवश्यक है ।

(xi) अधिगम व्यक्तिगत ब सामाजिक दोनों है: (Learning is both individual and social) यद्यपि व्यक्ति स्वत: प्रयत्न करके कार्यो को सीखता है परन्तु अनेक बाते ऐसी होती है जो वह दूसरों से देखकर सुनकर सीखता है ।

(xii) अधिगम खोज करना है: (Learning is discovery) किसी कार्य को सोच समझ कर करना और एक निश्चित परिणाम पर पहुँचना ही सीखना है व्यक्ति में जितनी अधिक क्षमता खोज करने की होती है उतनी ही तीव्रता से वह नयी नयी बाते सीखता है ।

(xiii) अधिगम नया कार्य करना है: (Learning is doing something new) किसी नये कार्य के करना ही अधिगम है सीखने में नये कार्य की पुनरावृत्ति होना आवश्यक है ।

11.4 अधिगम की प्रक्रिया का विश्लेषण (Analysis of Learning Process)

यदि अधिगम (सीखने) की प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाए तो इसमें मुख्य बिन्दु उभरता है ।

- व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्रक्रिया करता है ।
- इस प्रक्रिया से नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है ।
- इस नई परिस्थिति के प्रति समायोजन करने के लिए फिर स्वाभाविक प्रक्रिया शुरू होती है ।
- कभी-कभी इस समायोजन में व्यक्ति को असफलता भी मिलती है ।
- इस असफलता को सफलता में बदलने के लिए व्यक्ति नवीन मार्गों को अन्वेषित करता है ।
- इस अन्वेषण के फलस्वरूप व्यक्ति के स्वाभाविक एवं अतीतकालीन अनुभूतियों एवं व्यवहार में उन्नतिशील परिवर्तन तथा परिमार्जन होता है।
- जब इस समायोजन में सफलता मिलती है तो व्यक्ति बार-बार प्रयास करता है।
- इस बार-बार के प्रयास से परिमार्जित अनुभवों एवं व्यवहार में स्थायित्व आ जाता है। इसी स्थायित्व को अधिगम कहा जा सकता है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. अधिगम की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये ?
2. गेट्स के अनुसार अधिगम के परिभाषा क्या है
3. सीखने के प्रक्रिया के दो मुख्य तत्वों को समझाइए।
4. परिपक्वता का अधिगम मे क्या स्थान है ?
5. अधिगम की विभिन्न परिभाषाओं के बारे मे वर्णन करते हुये उसकी प्रक्रिया स्पष्ट कीजिये।
6. अधिगम की विभिन्न विशेषतायें क्या है ?

11.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors influencing learning)

अधिगम ऐसी प्रक्रिया है जो तभी सफल हो सकती है जब उसके आवश्यक तत्व उसे प्रभावित करें। इन तत्त्वों में सम्भवत: अभिप्रेरण का महत्व सर्वाधिक है।

11.5.1 अभिप्रेरण का अर्थ (Meaning of Motivation)

अवधान क्रिया की सफलतापूर्वक पूर्ति में सहायक प्रक्रिया रूप में अभिप्रेरण का विशेष महत्व है। अभिप्रेरण विभिन्न प्रेरकों की प्रक्रिया है। यह प्रेरक व्यक्ति की आवश्यकताओं से उत्पन्न होते है। आवश्यकताएँ दो प्रकार की होती है पहले प्रकार की आवश्यकताएँ शारीरिक आवश्यकताएं कहलाती हैं जैसे भूख,प्यास नींद तथा दूसरे प्रकार की आवश्यकता सामाजिक तथा मानसिक होती हैं जैसे सम्मान प्राप्ति, सामाजिक स्वीकृति स्नेह प्राप्ति आदि। व्यक्ति जब आवश्यकता अनुभव करने की स्थिति में होता है तो उसमें एक प्रकार की अतिरिक्त शक्ति आ जाती है जो उसे आवश्यकता पूर्ति हेतु लक्ष्य की ओर ले जाती है और इसी शक्ति से अवधान क्रिया की पूर्ति में सहायता मिलती है। मैक्डोनाल्ड अभिप्रेरण को परिभाषित करते हुए लिखते हैं - "अभिप्रेरण व्यक्ति में एक ऊर्जा परिवर्तन है जो कि भावात्मक जागृति तथा पूर्वानुमान उद्देश्य सम्बन्धों द्वारा विशेषित होता है।"

(Motivation is an energy change within the person characterized by effective arousal and anticipatory goal relations)

11.5.1 अभिप्रेरणा के कार्य सीखने के संदर्भ में (Functions of Motivation)

(क) अभिप्रेरण व्यवहार का उद्दीपन (energise) करता है -

इससे व्यवहारकर्ता को शक्ति मिलती हैं जिससे व्यवहार आगे बढ़ता है। इसी से कार्य विशेष में व्यक्ति की रूचि बनी रहती है। हैब (Hebb) का विचार है कि अभिप्रेरित अवस्था में क्षमता (Efficiency) तथा पर्याप्तता (adequacy) बढ़ जाती हैं।

(ख) अनुप्रेरक व्यवहार को नियंत्रित (regulate) करते हैं -

अभिप्रेरित व्यवहार लक्ष्य निर्देशित होता है और उद्देश्यपूर्ण तथा सतत् रहकर विशिष्ट दिशा में बढ़ता है जैसे एक बालक जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होना चाहता है, का पूरा ध्यान अपने लक्ष्य की पूर्ति में केन्द्रित हो जाता है और वह उन्हीं साधनों तथा विधियों का उपयोग करेगा जो उसके लक्ष्य प्राप्ति में सहायक हो सकें।

(ग) व्यवहार चयनित होता है-

अभिप्रेरण से प्रभावित व्यक्ति अनेक सम्भावित साधनों में से केवल उसी का चुनाव करता है जो उसके लक्ष्य प्राप्ति में उपयोगी है तथा उसमें अन्य साधनों को छोड़ देने की प्रकृति देखी जाती है। जो प्रेरणाएँ सीखने को अधिक प्रभावित कराती हैं उन स्वाभाविक प्रेरणाओं में मूल प्रवृत्ति, सहज क्रिया, अनुकरण तथा कृत्रिम प्रेरणाओं में पुरस्कार दण्ड, स्पर्धा सम्मान, प्रशंसा, निन्दा, भूख आदि का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

11.5.2 शिक्षा का स्थानान्तरण एवं अधिगम (Transfer of learning)

एक विषय अथवा परिस्थिति के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान का अन्य विषयों अथवा परिस्थितियों में उपयोगी सिद्ध होना शिक्षण का स्थानान्तरण कहलाता है। स्थानान्तरण दो प्रकार का होता है :-

- धनात्मक
- निषेधात्मक

यदि एक विषय अथवा परिस्थिति का अध्ययन दूसरे विषय अथवा परिस्थिति के अध्ययन में सहायता पहुँचाता है तो इस प्रकार के शिक्षा के स्थानान्तरण को धनात्मक शिक्षा का स्थानान्तरण कहते है। उदाहरणार्थ साइकिल चलाने वाले व्यक्ति के लिए स्कूटर चलाना आसान हो जाता है।

जब किसी विषय अथवा परिस्थिति का अध्ययन किसी दूसरे विषय अथवा परिस्थिति के अध्ययन में बाधक सिद्ध होता है इस प्रकार के स्थानान्तरण को निषेधात्मक शिक्षण का स्थानान्तरण कहते है। जैसे टेनिस खिलाडी के लिए क्रिकेट खेलना कठिन हो जाता है।

बोरिंग, लैंगफील्ड व वेल्ड के शब्दों में - जब एक कार्य का अधिगम दूसरे कार्य के अधिगम को कठिन बना देता है, तो उसे नकारात्मक स्थानान्तरण कहते है।

(When learning one task makes learning a second task harder we speak of negative transfer).

शिक्षण का स्थानान्तरण अधिगम कार्य में सहायक होता है। शिक्षक को चाहिये कि वे बालकों को जो विषय पढ़ाये उसमें सन्निहित सिद्धान्तों को बालकों के सामने स्पष्ट कर दें ताकि वे उन सिद्धान्तों का जीवन के अन्य पहलुओं मे उपयोग कर सकें।

शिक्षकों को चाहिए कि पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों में स्थानान्तरण होने के लिए बालकों को वे बाते बता दें जो विभिन्न विषयों में समान रूप से पायी जाती है। जैसे हिन्दी पढ़ाते समय व्याकरण की विशेषताओं को स्पष्ट कर दिया जाये तो संस्कृत विषय पढ्ने में सुविधा होगी। तथा शिक्षकों को यह भी चाहिए कि विभिन्न प्रकार के बालकों को ज्ञान प्रदान करने के लिए साहचर्य के नियम को ध्यान में रखें।

बालकों को मात्र पुस्तकीय ज्ञान ही प्रदान न करें वरन् उन्हें कार्य व अनुभव करते हुए सीखने का अवसर प्रदान करें ताकि बालक इन सीखे हुए विचारों को नागरिक जीवन में प्रवेश कर समाज के कल्याण में प्रयोग कर सकें।

शिक्षक बालकों की सामर्थ्य के अनुकूल शिक्षण पद्धति का प्रयोग करें ताकि बालकों को ज्ञानार्जन करने में एवं ज्ञान का स्थानान्तरण करने में सुविधा प्राप्त हो सकें।

11.5.3 ध्यान व अधिगम (Attention and learning)

ध्यान एक मानसिक प्रक्रिया है। चेतना को किसी वस्तु या विचार में केन्द्रित करना ही ध्यान कहलाता है। वातावरण में बालक के चारों और विभिन्न उत्तेजक होते हैं जैसे मेज, कुर्सी, श्यामपट्ट चॉक, शिक्षक, सहपाठी आदि। इन उत्तेजनाओं में किसी एक को चुनकर उस पर चेतना को केन्द्रित

करना ही ध्यान है। इस प्रकार ध्यान चयनात्मक व प्रेरणात्मक है। अत: ध्यान वह प्रेरणात्मक एक चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी उत्तेजना को चुनकर उसे अपने चेतना केन्द्र में लाते हैं।

अधिगम प्रक्रिया में ध्यान का होना अति आवश्यक है। ध्यान के स्थिर होने से दुर्बल उद्दीपन होने पर भी उसकी अनुभूति व्यक्ति को होगी। ध्यान के विकास में शारीरिक क्षमता, इच्छा शक्ति तथा पर्यावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। सभी आयु स्तरों पर समान ध्यान की क्षमता नहीं पाई जाती। छोटी आयु में ध्यान की क्षमता कम होती है और आयु वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है। अरुचिकर तथा कठिन कार्यो में छात्रों का ध्यान शीघ्रता से भंग हो जाता है। अत:

शिक्षक को बालकों के ध्यान को कक्षा में बनाये रखने के लिए समय-समय पर तीव्र उद्दीपकों जैसे सहायक सामग्री, उदाहरण आदि प्रस्तुत करते रहना चाहिये।

11.5.4 रूचि व अधिगम (Interest and Learning)

रूचि किसी वस्तु के सम्बन्ध को जोड़ने वाली मानसिक संरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी वस्तु से अपना सम्बन्ध समझता है। जो वस्तु बालक को अच्छी लगती है। उसके प्रति उसकी रूचि हो जाती है। रूचि का सम्बन्ध आवश्यकताओं, इच्छाओं, आदर्शो तथा विचारों से है। रुचियाँ आवश्यकताओं की द्योतक नहीं बल्कि वे आवश्यकता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। रुचियों के विकास में आवश्यकताओं के साथ-साथ बालक के सम्मुख प्रस्तुत आदर्श एवं विचार, संस्कृति, समाज में अनुभव एवं अवसर का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। अधिगम की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि बालकों की पाठ में रूचि हो। अरुचिकर पाठ में बालकों का ध्यान भी नहीं केन्द्रित होता है व पाठ समझने में भी कठिनाई होती है। अत: शिक्षक को विषयवस्तु कक्षा में रुचिकर व नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिये, ताकि बालक उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक के रूप में समझे जिससे वांछित फल प्राप्त हो सकें।

रूचि का सही प्रयोग करने के लिए कक्षा या जहाँ भी अधिगम की प्रक्रिया हो रही है, पर्यावरण ऐसा होना चाहिए जिसमें बालकों को क्रियाशीलता का पर्याप्त अवसर हो और वे समझें कि वे इस स्थिति में भाग भी ले रहे हैं। इस प्रकार रूचि के साथ प्राप्त अधिगम तीव्र गति से होता हैं।

11.5.5 अभ्यास व अधिगम (Exercise and Learning)

किसी क्रिया को बार-बार करने को ही अभ्यास कहा जाता है। अभ्यास का सीखने की किया पर काफी प्रभाव पड़ता है। अभ्यास के द्वारा किसी कार्य को बार-बार करने से कार्य करने की गति में क्रमश: प्रगति होती है। प्रत्येक प्रयास के बाद अशुद्धियों की संख्या कम हो जाती है। परन्तु अभ्यास के लिए कितना समय आवश्यक है? इस पर कई प्रयोग किये गये व ज्ञात हुआ कि आधे घंटे का अभ्यास एक बार में पर्याप्त होता है। इतने में मस्तिष्क में थकान नहीं आती। अभ्यास समयावकाश देते हुए करना चाहिये। अभ्यास प्रतिदिन थोड़ा सा अवश्य किया जाना चाहिये। प्रतिदिन की बजाय एक ही दिन अधिक मात्रा में अभ्यास किया जाये तो उससे अधिक लाभ नहीं होता है।

11.5.6 आकांक्षा का स्तर व अधिगम (Levels of Aspiration and Learning)

आकांक्षा स्तर उस सीमा का संकेत करता है जहाँ तक कोई व्यक्ति अपने जीवन में उद्देश्य को प्राप्त करने की इच्छा रखता है। एक ही प्रकार का उद्देश्य रखने वाले दो व्यक्तियों का आकांक्षा स्तर विभिन्न हो सकता हैं उदाहरणार्थ दो छात्र जो इन्जीनियर बनना चाहते हैं दोनों ही एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए लालायित हैं लेकिन उनमें इंजीनियर बनने की सीमाएं अलग-अलग हो सकती है। एक की लालसा यह हो सकती है कि वह उच्चतम शिक्षा ग्रहण करके अच्छे कार्य में अपना जीवन व्यतीत करे लेकिन दूसरे की लालसा हो सकती है कि वह थोड़ी बहुत मात्रा

में सीखकर अपना दैनिक कार्य चलाने लगे। इस प्रकार दो अध्ययनरत छात्रों की आकांक्षा स्तर में भिन्नता हो सकती है।

आकांक्षा स्तर पर अधिगम की तीव्रता या मंद गति निर्भर करती है। बालक का आकांक्षा स्तर ऊँचा है व उसमें क्षमता भी है और उसे अवसर भी प्राप्त होते हैं तो वह जल्दी सीखेगा व अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने में सफल होगा।

11.5.7 सीखने की इच्छा व अधिगम (Desire to learn and learning)

जब बालक किसी कार्य को सीखने की इच्छा रखकर सीखेगा तभी वह उसमें सफलता प्राप्त कर सकता है। इस ध्येय से सीखा जाये कि हमें वह सीखना है। जब बालक के अन्दर यह भावना होती है तो वह अधिक तेजी से किसी बात को ग्रहण कर लेता है। यदि बालक अनिच्छा के साथ सीखने का कार्य कर रहा है तो सीखने की गति धीमी होगी।

आवश्यक है कि कक्षा शिक्षण में शिक्षक छात्रों में पाठ के प्रति सीखने की इच्छा जागृत करें। पाठ को इतना रुचिकर व उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला बनाया जाये कि वह स्वयं ही प्रेरित हो कि यह हमें सीखना हैं।

11.5.8 विषय सामग्री का स्वरूप व अधिगम (Nature of subject matter and Learning)

सीखने वाली विषय सामग्री का स्वरूप भी सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है। यदि विषय सामग्री छात्रों के स्तर से अधिक कठिन होती है तो सीखने की क्रिया कठिन होती है सीखने की मात्रा कम व गति धीमी होती है। यदि विषय सामग्री छात्रों के स्तर की, रूचि की व उपयोग की होती है तो छात्र उसी कार्य को शीघ्र सीख लेते हैं। इसी प्रकार अर्थहीन विषय सामग्री की अपेक्षा अर्थ युक्त विषय सामग्री सीखने में कम कठिनाई होती है।

शिक्षक के लिए आवश्यक है कि कक्षा में पढ़ाते समय विषय सामग्री की प्रकृति का ध्यान रखे और बच्चों की आयु रूचि व योग्यता को ध्यान में रखते हुए विषय सामग्री पढावें।

11.5.9 शिक्षण विधि व अधिगम (Method of teaching and learning)

सीखने की क्रिया पर शिक्षण विधि का अत्यधिक प्रभाव पढ़ता है। शिक्षण विधि कई प्रकार की है जैसे - अंश विधि, पूर्ण विधि, निरन्तर विधि, स्तर विधि, निष्क्रिय विधि सक्रिया विधि। सीखने की क्रिया में कौन सी विधि उपयुक्त होगी यह विषय सामग्री के स्वरूप पर निर्भर करता है।

शिक्षक का दायित्व है कि शिक्षण कार्य को भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग करके रुचिकर बनाये। विभिन्न विषयों को किसी विधि से पढ़ाया जायेगा इसे विषय सामग्री व बच्चों की उम्र व उनकी क्षमता के अनुरूप निर्धारित करें।

11.5.10 बुद्धि व अधिगम (Intelligence and learning)

सीखने की क्रिया बहुत कुछ बुद्धि स्तर पर आधारित होती है। अधिक बुद्धिमान व्यक्ति किसी कार्य को शीघ्र ही सीख लेते हैं, क्योंकि वे विषय सामग्री के तथ्यों एवं उनके पारस्परिक

सम्बन्धों को शीघ्र समझ लेते हैं। फलस्वरूप उन्हें सीखने में आसानी होती है।

एक कक्षा में सभी प्रकार के थोड़ा कम बुद्धि वाले, सामान्य बुद्धि वाले व अधिक बुद्धि वाले छात्र होते हैं। ऐसे में शिक्षक का दायित्व है कि वह इस प्रकार से पढ़ाने की चेष्टा करे कि सभी छात्र लाभान्वित हो सकें। सामान्यत: सामान्य बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए कक्षा में पढ़ाया जाता है। परन्तु शिक्षक का कर्तव्य है कि सामान्य से कम व अधिक दोनों प्रकार की बौद्धिक क्षमता रखने वाले छात्रों की आवश्यकताओं को भी पूरा करने का प्रयत्न करें।

11.5.11 स्वास्थ्य व अधिगम (Health and learning)

स्वास्थ्य का अर्थ शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से है। किसी कार्य को सीखने के लिए उसकी मांसपेशियों पर बल पड़ता है। जब शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है तो मानसिक भी लगभग ठीक ही रहता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियां उचित रूप से कार्य करती है। अधिगम कार्य की सफलता ज्ञानेन्द्रियों पर ही निर्भर करती है यदि शरीर व मन स्वस्थ न हुआ तो थकान शीघ्रता से आ जायेगी व ध्यान व रूचि कार्य में न रह जायेगा। साथ ही यदि मंद बुद्धि के बालकों को सामान्य या तीव्र बुद्धि वाले छात्रों की तरह पढ़ाया जायेगा तो भी वे थकान शीघ्र महसूस करने लगेगा व रूचि पाठ में नहीं रह जायेगी। इसी प्रकार तीव्र बुद्धि वाले को सामान्य बुद्धि छात्रों के अनुरूप पढ़ाने पर उनकी पाठ में रूचि नहीं रह जाती है अत: आवश्यक है कि कक्षा का उचित ढ़ंग से वर्गीकरण किया जाये।

उपरोक्त वर्णित तत्व अधिगम की क्रिया व गति को प्रभावित करते हैं। अत: कक्षा में छात्रों की रूचि, आवश्यकता बुद्धि को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य किया जाना चाहिये जिससे अधिकतम अधिगम हो सकें, क्योंकि अधिगम प्राकृतिक रूप से ही अपने साथ कई तत्वों को लेकर चलता है यदि यह तत्व उसके साथ न हों तो अधिगम सफल नहीं जो सकता।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. स्वाभाविक व कृत्रिम अभिप्रेरणा मे क्या अन्तर है ?
2. शिक्षण के स्थानान्तरण का अधिगम पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. अभ्यास अधिगम को किस प्रकार प्रभावित करता है ?
4. सीखने की इच्छा अधिगम को किस प्रकार प्रभावित करती है ?
5. अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्वों का विस्तार से वर्णन कीजिये ?
6. शिक्षक का स्थानान्तरण कितने प्रकार का होता है और उसका अधिगम पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

11.6 अधिगम के प्रकार (Types of Learning)

अधिगम की कई विधियाँ हैं। यह विधियाँ विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर आधारित हैं। इन्हीं आधारों पर अधिगम के प्रकारों का निर्धारण किया जाता है। व्यक्ति अपने जीवन में कई प्रकार से सीखता है।

11.6.1 निरीक्षणात्मक (Observational)

निरीक्षण का तात्पर्य किसी वस्तु पर अवधान को केन्द्रित करना होता है। निरीक्षण वस्तुत: प्रत्यक्षीकरण ही होता है। अवधान के केन्द्रीकरण से प्रत्यक्षीकरण और अधिक समृद्ध होता

है। बच्चा अपने आस-पास के वातावरण का निरीक्षण करता है और धीरे-धीरे उनसे सीखता है। शिक्षा के क्षेत्र में निरीक्षण पद्धति से सिखाने के लिये शिक्षकों को प्रतीकों का प्रयोग न करके मूर्त वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि बालकों का ध्यान मूर्त वस्तुओं पर शीघ्र केन्द्रित होता है। अमूर्त व सूक्ष्म वस्तुओं पर वह अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते।

11.6.2 अनुकरणात्मक (Imitation)

जब व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का अनुकरण करके सीखता है तो उसे अनुकरण विधि कहते है। अनुकरण प्राय: जान बूझकर और कभी-कभी अनजाने में भी होता है। हम बिना जाने ही अज्ञात रूप से दूसरों का अनुकरण करते हैं। शिक्षा में हम चेतन रूप से प्रयास करके किसी कौशल को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जैसे लिखना, चित्र बनाना सीखना। छोटे बालक अनुकरण द्वारा सीखते हैं। यदि बालकों को अच्छे वातावरण में रखा जाए तो वे अच्छी बातों को अनुकरण द्वारा सीख जायेंगे। बालक प्रारम्भिक शिक्षा अनुकरण के माध्यम से प्राप्त करता है जैसे बोलना, हँसना, चलना, खाना, पीना, कपड़े पहनना आदि। नृत्य, संगीत, खेल आदि बालक प्रदर्शन और अनुकरण विधि द्वारा ही सीखता है।

11.6.3 प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना (Trial and Error)

इस विधि का प्रतिपादन थार्नडाइक महोदय ने किया है। थार्नडाइक का विचार है कि जब प्राणी के सम्मुख कोई नवीन समस्या उत्पन्न होती है तो उस समस्या के समाधान हेतु वह किसी न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया है तो उस समस्या के समाधान हेतु वह किसी न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया करने लगता हैं आरम्भ में यह प्रतिक्रियायें त्रुटिपूर्ण होती हैं परन्तु निरन्तर करते रहने पर किसी प्रतिक्रिया में संयोगवश सफलता मिलने पर सफलीभूत प्रयास की पुनरावृत्ति की जाती है जिसके कारण क्रमश: गलतियाँ दूर होती जाती हैं। इसमें साधन और साध्य के सम्बन्ध का प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट न होकर अत्यन्त कम या नहीं के बराबर होता है।

प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखने में वह प्रक्रियाएं जो सीखने वाले को सफल प्रतीत होती हैं और उसे उत्तेजना देने वाली होती हैं, दुहराई जाती है। जो प्रतिक्रियायें असफल होती हैं और बाधा उपस्थित करने वाली होती है, छोड़ दी जाती हैं। जब एक प्रयास व्यक्ति को तुष्टि देता है तब सीखने वाला उन प्रतिक्रियाओं सीखने वाले को कष्ट पहुंचाती है, तो वह ऐसे काम और क्रियाओं की वह समाप्ति कर देता है। और कई बार प्रयत्न करने से त्रुटियों व भूलो की आवृत्ति कम होती जाती है। और अन्त में एक समय ऐसा भी आ जाता है कि वह व्यक्ति कार्य को सही ढंग से करने की क्रिया सीखने में सफल हो जाता है।

थार्नडाइक का प्रयोग - थार्नडाइक ने एक भूखी बिल्ली को एक पिंजरे में बन्द कर दिया। इस पिंजड़े को पहेली पेटी (Puzzle box) कहा गया है। इस पिंजरे के अन्दर एक बटन था जिसे दबाने से पिंजरे का दरवाजा खुलता था। पिंजरे के बाहर खाना रखा था। भूखी बिल्ली पंजा मार कर बाहर निकलने के लिये उछलने कूदने और छटपटाने लगी। इस उछल कूद में अचानक किसी प्रकार उसका पंजा बटन पर पड़ गया और दरवाजा खुल गया। जब बिल्ली बाहर निकल आई। इसी प्रकार बिल्ली को लगातार कई दिनों तक पिंजरे में बन्द किया गया और बाहर से निरीक्षण किया गया। कुछ दिनों बाद पाया गया बार-बार प्रयत्न के कारण बिल्ली प्रथम प्रयास में ही दरवाजा खोलने में सफल हो गयी।

इसी तरह व्यक्ति भी प्रयत्न और भूल द्वारा सीखता है। यह विधि विद्यार्थियों को बहुत सहायता पहुँचाती है। निरन्तर परिश्रम व प्रयत्न करने से आत्मा विश्वास, धैर्य और परिश्रम के गुणों का विकास होता है। इस विधि द्वारा सीखा हुआ अधिगम स्थायी होता है। यह विधि गणित, विज्ञान व व्याकरण के लिये बहुत उपयोगी है। यह विधि छोटे बालकों के लिये उपयोगी नहीं है, परन्तु मन्द बुद्धि के बालकों के लिये विशेष रूप से उपयोगी है।

11.6.4 सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना (Conditioning)

पावलव व वॉटसन आदि मनोवैज्ञानिक के अनुसार स्वाभाविक उत्तेजना का अस्वाभाविक उत्तेजना से सम्बन्ध स्थापित हो जाने और अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक उत्तेजना की तरह प्रतिक्रिया करने के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन तथा परिमार्जन को सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना कहते है।

पावलन ने अपने प्रयोग में एक भूखे कुत्ते को सर्वप्रथम घन्टी बजाने (अस्वाभाविक उत्तेजना) के बाद शीघ्र ही भोजन (स्वाभाविक उत्तेजना) दिया। फलस्वरूप कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। यह कार्य प्रणाली कई बार दोहरायी गयी। धीरे-धीरे घन्टी की आवाज (अस्वाभाविक उत्तेजना) का सम्बन्ध स्वाभाविक उत्तेजना (लार टपकने) से हो गया और घन्टी की आवाज सुनते ही कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। इसे सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना कहते है।

यह विधि पशुओं व बच्चों के सीखने की व्याख्या करती है। इस विधि द्वारा बच्चों में अच्छी आदतों का निर्माण किया जा सकता है। जैसे सफाई की आदत, बड़ों के प्रति आदर आदि।

अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है। सभी अधिगम सामाजिक वातावरण में होता है।

सम्बन्ध प्रत्यावर्तन इस सिद्धान्त का प्रयोग करके कुसमायोजित बच्चों में बुरी आदतों को समाप्त करके अच्छी आदतों का पुननिर्माण कर सकते है।

छोटे बच्चों को वर्णमाला पढ़ाते-सिखाते समय भी सम्बन्ध प्रत्यावर्तन विधि का प्रयोग किया जाता है। जैसे a - apple से सम्बन्धित है, या गिनती मोतियों के माध्यम से सिखाई जाती है।

11.6.5 सूझ से सीखना (Insight Learning)

सूझ का अभिप्राय यह है कि निरीक्षण क्रिया का अन्त सफलतापूर्वक हो गया और वस्तु सम्बन्धी उपयुक्त जानकारी प्राप्त हो गयी। वह मानसिक संगठन जिसके द्वारा एक समस्या सहसा सब सम्बन्धों के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती है सूझ कहलाती है। सूझ द्वारा सीखना उच्च कोटि का अधिगम है। यह वह मानसिक प्रयास है जिसमें बुद्धि व कल्पना का प्रयोग होता है। इसमें व्यक्ति उच्च बौद्धिक स्तर पर स्थिति का अवलोकन करके समस्या को पूर्ण रूप से समझकर प्रतिक्रिया करता है और सीखता है। इस विधि में मस्तिष्क के प्रयोग या बौद्धिक कुशलता पर अधिक बल दिया जाता है। यह विधि प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर है। इसमें समस्या का हल आकस्मिक रूप से प्राप्त होता है। इसमें अभ्यास के अभाव में भी समस्यायें सुलझ जाती है। इस विधि में अचेतन मस्तिष्क अधिक सक्रिय रहता है, चेतन क्रियायें अपेक्षाकृत कम होती हैं।

कोहलर का प्रयोग - कोहलर ने एक वनमानुष को एक पिंजड़े में बन्द करके उसके पास दो छड़ियों को रख दिया। यह दोनों एक दूसरे में फिट होकर एक लम्बी छड़ी बन जाती थी। पिंजड़े के बाहर कुछ केले रख दिये गये। वनमानुष भूखा था इसलिए उसने पिंजरे के बाहर हाथ

फैलाकर केले को पाना चाहा किन्तु केला बहुत दूर था इसलिये उसका हाथ वहां तक नहीं पहुंचा। इसके पहले उसे एक छडी से खींचकर प्राप्त करना सिखाया गया था। एक छडी द्वारा भी उसने खींचने का प्रयास किया पर वह सफल नहीं हुआ। तब वह दोनों छड़ियों से खेलने लगा। खेलते-खेलते वह एक छड़ी का सिरा दूसरी छड़ी के पास लाया और उसने एक को दूसरे में फिट कर दिया। एकाएक छड़ी का एक छोर दूसरे से मिल जाने पर छड़ी लम्बी हो गयी और उसने लम्बी छडी से केला खींच लिया। वनमानुष को यह सूझ अचानक मिली। सूझ मिलने से पहले वनमानुष ने केले की दूरी, छड़ी की लम्बाई आदि से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया और सूझ द्वारा सम्बन्ध का समाधान करके लक्ष्य की प्राप्ति की।

सीखने की सभी क्रियाओं में सूझ की आवश्यकता पड़ती है। सूझ व्यक्ति को उस समय सहायता देती है जब गन्तव्य तक पहुँचने में विविध बाधायें आती हैं। सूझ द्वारा व्यक्ति अचानक समस्या के समाधान तक पहुँच जाता है। इस विधि की निम्न विशेषताएं हैं -

- यह विधि बालकों की कल्पना, तर्क विचार शक्ति के विकास के लिये अवसर प्रदान करती है।
- यह विधि रचनात्मक कार्यो में अधिक सहायता दे सकती है।
- शिक्षा के उच्च स्तर पर सूझ विधि ही (अनुसन्धान कार्य आदि में) में अधिक उपयोगी व आवश्यक है।
- इस विधि द्वारा सीखने के लिये अध्यापक को विद्यार्थी को तब तक प्रोत्साहित करते रहना चाहिये ब तक सूझ द्वारा हल न निकले। जिज्ञासा व रूचि होने पर ही बालक सूझ द्वारा हल निकालता है।
- यह सिद्धान्त अनुभवों के संगठन एवं पूर्णता पर बल देता है इसलिये शिक्षक को विद्यार्थी के अनुभवों को पुर्नसंगठित करने पर बल देना चाहिये। कक्षा में सूझ विधि का प्रयोग करते समय शिक्षक को विद्यार्थी के सम्मुख समस्या पूर्ण रूप से प्रस्तुत करनी चाहिये।

उदाहरणार्थ - बीजगणीत में पूरी समस्या प्रस्तुत की जाये उसके किसी खण्ड अथवा सूत्र को नहीं। बालक इनमें से किसी एक विधि द्वारा नहीं बल्कि समय-समय पर आवश्यकतानुसार विभिन्न विधियों द्वारा सीखता है। शिक्षक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह बालक को विभिन्न विधियों के अनुसार सीखने के लिये प्रोत्साहित करता रहें।

11.7 सारांश (Summary)

सीखने से तात्पर्य है, "संचयी उन्नति"। अनुभव के कारण व्यवहार में कुछ स्थाई परिवर्तन होने को सीखना या अभिगम कहा जा सकता है। यदि अपने शब्दों में कहा जाए - सीखना जीवन पर्यन्त चलते विकासोन्मुख सार्वभौमिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों को संगठित व पुनर्संगठित कर वातावरण के साथ अपने को समायोजित करता है। सीखने को प्रभावित करने वाले कारकों में अभिप्रेरणा, शिक्षा का स्थानान्तरण, त्याग, रूचि, अभ्यास, शिक्षण विधि, बुद्धि, आयु स्वास्थ्य आदि का विशेष प्रभाव पड़ता हैं। वैसे तो हर प्राणी जीवन में प्रति क्षण कुछ न कुछ औपचारिक या अनौपचारिक से सीखता है, परंतु मुख्यत: व्यक्ति निरीक्षण, अनुकरण, प्रयास व त्रुटि प्रत्यावर्तन, सूझ आदि ढंग क्रियाओं से अधिगम को सुदृढ़ करते है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. निरीक्षण विधि द्वारा बालक किस प्रकार सीखते है?
2. अनुकरण विधि का प्रयोग विद्यार्थी शिक्षा के किस स्तर पर अधिक करते है?
3. प्रयास व त्रुटि द्वारा सीखने की विधि का प्रतिपादन किसने किया था । इस विधि द्वारा सीखने के क्या लाभ हैं?
4. पॉवलाव के प्रयोग का वर्णन कीजिये?
5. सूझ द्वारा सीखने का प्रयोग किस स्तर के बालक अधिक करते हैं?
6. अधिगम के विभिन्न प्रकारों को बताते हुये अनुकरण विधि का वर्णन कीजिए?
7. सम्बन्ध प्रत्यावर्तन विधि द्वारा सीखना कैसे होता है? विस्तार से समझाइए।
8. सूझ द्वारा सीखने में और प्रयास और भूल द्वारा सीखने में क्या अन्तर है?

11.8 सन्दर्भ (References)

1. Flavell J.H. (1963): The development psychology of jean pight. Newyork I, Van
1. Nostrand Company INC
2. Gupta K.M. (1989): Moral Development in school children the Academic press Haryana India.
3. Harlock E.B. (1953): Development Psychology, Mc Grow Hill Book Co. Inc.
4. U.S.A.
5. Piaget J. (1932): The moral judgement of the child, kegan Paul Londan.
6. Verma m. (1976): Moral development in child, chugh publication Allahbad.

इकाई-12

अधिगम के सिद्धान्त (THEORIES OF LEARNING)

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

12.2 अधिगम के सिद्धान्त -

12.3 विभिन्न प्रकार के अधिगम सिद्धान्त

12.4 साहचर्य सिद्धान्त या उत्तेजना प्रतिक्रिया सिद्धान्त - सम्बन्धवाद

12.4.1 थार्नडाइक का सम्बन्धवाद

12.4.2 पॉवलाव का अभ्यानुकूलन का सिद्धान्त

12.4.3 स्किनर का क्रियापरक अभ्यनुकूलन का सिद्धान्त

12.4.4 अन्य सम्बन्धवादी

12.5 संज्ञानात्मक - क्षेत्र सिद्धान्त

12.5.1 वरदीमर, कौफा कोहलर के विचार और प्रयोग

12.5.2 टौलमैन का चिन्हों से सीखने का सिद्धान्त

12.6 अधिगम सिद्धान्तों में नये विकास

12.6.1 सामाजिक अधिगम का सिद्धान्त

12.6.2 लूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

12.7 सारांश

12.8 संदर्भ

12.1 संदर्भ उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

अधिगम कैसे होता है? उसको प्रभावित करने वाले नियम कारक और तत्व कौन-कौन से हैं, उसे अधिक प्रभावी कैसे बनाया जाए? आदि समस्याओं पर विधिवत क्रमबद्ध अध्ययन या परीक्षण करके मनोवैज्ञानिक किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। सिद्धान्त से तात्पर्य है - ज्ञान के क्षेत्र की विधिवत व्याख्या। अत: विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के अधिगम के क्षेत्र के यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष ही अधिगम सिद्धान्तों के रूप में प्रतिष्ठित हुए है। इस इकाई में इन्ही कुछ प्रमुख अधिगम सिद्धान्तों को उनके शैक्षिक निहितार्थों सहित समझाने का प्रयास किया गया है।

आशा है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी इस योग्य होंगे कि -

- अधिगम सिद्धान्तों की प्रकृति एवं प्रकारों के विषय में बता सकें।
- विभिन्न विचारधाराओं के प्रतिनिधि सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि से अवगत हों और उनकी विशिष्टताओं का विवरण दे सकें।
- साहचर्य सिद्धान्तों और संज्ञानात्मक-क्षेत्र सिद्धान्तों के मूल अन्तर को स्पष्ट कर सकें।
- इन सिद्धान्तों के प्रतिपादकों के विचारों और प्रयोगों का विवरण दे सकें।

- शिक्षा के क्षेत्र में योगदान के संदर्भ में विभिन्न अधिगम सिद्धान्तों में नये विकास और इनके महत्व को स्पष्ट कर सकें।
- अधिगम-सिद्धान्त में नये विकास और इनके महत्व को स्पष्ट कर सकें।
- वर्तमान प्रचलित अनुर्देशन-प्रविधियों का ज्ञान रखकर और उनके महत्व को समझा सकें।

12.2 अधिगम सिद्धान्त-प्रकृति एवं प्रकार्य

(Learning theory, its nature and functions)

12.2.1 अधिगम सिद्धान्त क्या है?

अधिगम की प्रक्रिया, उसके तत्त्वों, कारकों एवं नियमों को लेकर मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। इस क्षेत्र में विस्तृत अन्वेषण के परिणाम स्वरूप एक बड़ी संख्या में अधिगम के नियम प्रतिपादित किए गये हैं। इन परीक्षणों पर आधारित निष्कर्ष ही विभिन्न अधिगम सिद्धान्तों के मूलभूत आधार हैं। बड़ी संख्या में उभरे नियमों और उनसे सम्बन्धित स्वतंत्र चरों (independent variables) के आधार पर प्राप्त विस्तृत ज्ञान को सार्थक रूप देकर मनोवैज्ञानिकों ने कुछ सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

12.2.2 सिद्धान्तों के प्रकार्य

अधिगम के सिद्धान्तों के चार मुख्य प्रकार्य है जो एक दूसरे से सम्बन्धित है :

(अ) यह अधिगम के प्रति एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं अधिगम की प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने (analysis) और उसके विषय में अनुसंधान की विधियां प्रतिपादित करके इस विषय में अनुसंधान की एक रूपरेखा बनाने में सहायक होते हैं

(ब) अधिगम के सिद्धान्त इसके नियमों के विषय में विस्तृत ज्ञान को सारांश में प्रस्तुत करने में सहायता देते हैं।

(स) अधिगम सिद्धान्त निम्न महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर ढूँढने की ओर सृजनात्मक प्रयत्न करते हैं

- अधिगम क्या है और इसकी प्रक्रियाओं का आधार क्या है?
- सीखने के नियम हमें "क्या" का उत्तर देते हैं किन्तु इसके कारणों का उत्तर सिद्धान्तों द्वारा प्राप्त होता है।

"The laws give us the ‘how’ of learning the theories attempt to give us the why"

(द) यह सिद्धान्त इस बात पर भी प्रकाश डालते है कि मानव शिशु कुछ सफल प्रतिक्रियाओं को क्यों ग्रह करता है और अशुद्ध प्रक्रियाओं से किस प्रकार मुक्ति पाता है। इस प्रकार सीखने के सिद्धान्तों के ज्ञान के आधार पर शिक्षकों एवं अभिभावकों को सफल और उपयोगी शिक्षण का चयन करने में सहायता मिलती हैं।

12.3 विभिन्न प्रकार के अधिगम सिद्धान्त (Types of Learning Theories)

सीखने के सिद्धान्त को हम मुख्यतया दो भागों में विभाजित कर सकते है :

- साहचर्य के सिद्धान्त को हम मुख्यतया दो भागों में विभाजित कर सकते है :
- साहचर्य सिद्धान्त या उत्तेजना-प्रतिक्रिया सिद्धान्त।
  (Associationist or Stimulus - Response theories)
- संज्ञानात्मक - क्षेत्रवादी सिद्धान्त (cognitive - theories)

सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करते समय यह बात उभर कर सामने आती है कि इन सिद्धान्तों में अन्तर इस बात को स्पष्ट करते है कि इनके प्रतिपादन करने वाले मनोवैज्ञानिक अपने समय की दार्शनिक, वैज्ञानिक विचारधाराओं और सामाजिक आवश्यकताओं से प्रभावित थे। व्यक्ति एवं उसके विकास के विषय में उनकी धारणाओं ने उन्हें सीखने की प्रक्रिया के विशिष्ट अंगों पर बल देने पर प्रेरित किया। इसका अध्ययन करने की विधियाँ और उनसे निकले निष्कर्ष भी इसी बात के परिचायक हैं।

12.4 साहचर्य सिद्धान्त या उत्तेजना-प्रतिक्रिया सिद्धान्त, संबन्धवाद

(Association theories or stimulus - Response Theories, connection) इन अधिगम सिद्धान्तों से सम्बन्धित प्रमुख व्यक्तियों के नाम है: थार्नडाइक (Thorndike) पॉवलोव (Pavlov) स्किनर (Skinner) हल (Hull) गथरी (Guthrie) डालर्ड (Dollard) मिलर (Miller) इत्यादि

साहचर्य सिद्धान्तों के विकास की पृष्ठभूमि :

इन सिद्धान्तों की एक मुख्य विशेषता यह है कि इनके प्रतिपादकों ने वैज्ञानिक निरीक्षण विधि को अपनाया। 1879 में विल्हेल्म बुंट (Wundt) द्वारा जर्मनी में पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला खोले जाने पर मनोविज्ञान में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग आरम्भ हुआ।

अमेरिका में वैज्ञानिक विधि का प्रभाव स्पष्ट था किन्तु अमेरिकी मनोवैज्ञानिकों की रूचि केवल मनुष्य की चेतन प्रक्रियाओं में ही न थी बल्कि उसके व्यवहार के निरीक्षण में भी थी। न केवल मनुष्य क्या सोचता है बल्कि वह क्या करता है" उनके अरराने यह मुख्य प्रश्न था। इस विचारधारा व्यवहारवाद के प्रमुख प्रतिपादक वॉट्सन थे। लेबोरेट्री में जानवरों पर प्रयोग करके उससे मानव व्यवहार के विषय में निष्कर्ष निकालने की यह विधि उत्तेजना-प्रतिक्रिया सिद्धान्त के नाम से भी जानी गई। इस विचारधारा के प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के विचार निम्नलिखित हैं । मनोवैज्ञानिकों के विचार निम्नलिखित है।

12.4.1 थार्नडाइक का सम्बन्धवाद (Thorndike's Connectionism)

थार्नडाइक (Eird L. Thorndike 1874-1949) मनोविज्ञान प्रयोगशाला में पशुओं पर प्रयोग करने वाले प्रथम मनोवैज्ञानिक थे। प्रयोगशाला में जानवरों के सामने समस्याएं प्रस्तुत करके, समस्याएं प्रस्तुत करके, समस्याएं सुलझाने की उनकी प्रक्रियाओं का निरीक्षण करके उन्होंने महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले। उनका प्रसिद्ध मोनोग्राफ एनीमल इंटेलिजेंस (Animal Intelligence) 1989 में प्रकाशित हुआ।

भूखी बिल्ली को पिंजरे में रखकर उसके द्वारा खाने तक पहुंचने के लिए बाहर निकलने के प्रयासों का सूक्ष्म निरीक्षण करने का उनका प्रयोग बहुत प्रसिद्ध हैं। थार्नडाइक ने अपने प्रयोग में एक भूखी बिल्ली को इस प्रकार के सहर में बंद कर दिया, जिसके अंदर की चिटकनी पर दबाव पड़ते ही सन्दूक स्वत: खुल जाए। उन्होंने सन्दूक के बाहर एक मछली का टुकड़ा रख दिया। भूखी बिल्ली को सन्दूक से बाहर मछली देखकर उसे पाने के लिए उछल कूद मचानी शुरू कर दी। इस प्रक्रिया में संयोग से एक बार बिल्ली का पांव उस चिटकनी पर पड़ गया जिससे दरवाजा स्वत: खुलता था। दरवाजा खुलते ही बिल्ली बाहर आई तथा मछली खाकर भूख मिटाई। यह प्रयोग उसी बिल्ली पर उसे भूखा रखकर कई बार दोहराया गया। धीरे-धीरे बिल्ली के व्यर्थ के प्रयत्नों की संख्या कम होती गई तथा बाद में ऐसी स्थिति आ गई कि बिल्ली बिना भूल किए पहली बार में ही दरवाजा खोलने लगी। इस प्रयोग से थार्नडाइक ने अर्थ निकाला कि बार-बार दोहराने से उत्तेजक और प्रतिक्रिया के बीच में संबंध स्थापित हो जाते है, जो अभ्यास द्वारा दृढ़ हो जाते है। इसलिए उनके सिद्धान्त की बांड थ्योरी या संबंधवाद भी कहा जाता है। यह अनुबन्ध गामक प्रत्यक्षात्मक संवेगात्मक अथवा विचारात्मक हो सकते है।

12.4.1.1. थार्नडाइक के सीखने के नियम (Laws of Learning)

थार्नडाइक के सीखने के नियम दो प्रकार के है।

(1) मुख्य नियम (2) गौण नियम

मुख्य नियम :- इसमें तीन निम्न नियम है -

(अ) तत्परता का नियम (Law of readiness) तत्परता या तैयारी के नियम का यह तात्पर्य है कि जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को सीखने के लिये 'अपने मन व शरीर को तैयार रखता है तो वह कार्य को जल्दी सीख लेता है। यहां तत्परता का अर्थ "मानसिक मेल" से है। यदि सीखे जाने वाले कार्य से मानसिक मेल है तो व्यक्ति उसे सीखने के लिए तत्पर रहता है और जल्दी सीखता है। शिक्षक बालकों में अपने पाठ के अध्ययन के प्रति तत्परता की भावना का विकास कर सकते हैं और यह जानने का प्रयत्न करें कि बालक पढ़ायी जाने वाली विषय वस्तु को सीखने के लिए विकासात्मक रूप से तत्पर है कि नहीं।

(ब) अभ्यास का नियम (Law of Exercises) जब हम किसी कार्य को बार-बार करते है तो यह कार्य हमारे लिए सरल हो जाता है और उसकी कठिनाई धीरे-धीरे कम हो जाती है। यह नियम सीखने के क्षेत्र में काफी उपयोगी है। अभ्यास के द्वारा व्यक्ति की कार्य क्षमता बढ़ जाती है और अभ्यास की कमी से उसका हास हो जाता है। कुशलता की प्राप्ति के लिए कुछ अन्य तत्व भी आवश्यक होते हैं, जैसे संवेगात्मक (emotional) विचारात्मक (ideational) व प्रत्यक्षात्मक (Perceptual) तत्व आदि।

(स) प्रभाव का नियम (Law of Effect) यह थार्नडाइक का प्रमुख सीखने का नियम है। उनके अनुसार उत्तेजक प्रतिक्रिया अनुबन्धों की दृढ़ता केवल उनके एक समय पर contiguous होने पर ही नहीं निर्भर करती बल्कि इस बार पर निर्भर करती है कि प्रतिक्रिया (response) के क्या परिणाम (effect) होते है। यदि प्रतिक्रिया के बाद सन्तुष्टि होती है तो यह अनुबन्ध मजबूत होते है। और यदि इसके बाद कोई कठिनाई होती है तो यह कमजोर पड़ जाते है। वॉट्सन और गुथरी जैसे व्यवहारवादी जो मुख्यतया उत्तेजना-प्रतिक्रिया (S - R)के समकालिक (contiguous) होने को ही महत्व देते हैं, इस परिणाम के नियम को नहीं मानते।

12.4.1.2 गौण नियम

थार्नडाइक ने तीन प्रमुख नियमों के साथ-साथ अधिगम के कुछ उपनियमों की और भी संकेत दिया। ये उपनियम या गौण नियम किसी न किसी रूप में मुख्य नियमों की सहायता करते है। इसमें से प्रमुख नियमों के नाम निम्नवत है -

- बहु विधि अनुक्रिया का नियम
- रुझान या मनोवृत्ति का नियम
- तत्त्वों की पूर्ण सामर्थ्य का नियम
- सादृश्यता द्वारा तत्त्वों की अनुक्रिया का नियम
- साहचर्य परिवर्तन का नियम

थार्नडाइक के सिद्धान्त का मूल्यांकन :- इस सिद्धान्त का महत्व मुख्यत: दो कारणों से है:-

(1) थार्नडाइक ने उद्दीपन और अनुक्रिया के रूप में सीखने की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण किया।

(2) उन्होंने यह सिद्ध किया कि सीखने की क्रिया मुख्यत सम्बन्ध स्थापित करना है। जो व्यक्ति जितनी जल्दी सम्बन्ध स्थापित कर लेता हैं, वह उतनी जल्दी कार्य को सीख जाता है।

शिक्षा का योगदान

थार्नडाइक के अधिगम सिद्धान्त का शिक्षा के क्षेत्र में काफी प्रभाव पड़ा। टीचर्स कालेज, कोलंबिया में यह शुद्ध मनोविज्ञान के साथ-साथ इसे एप्लाइड साइक्लॉजी में भी प्रयोग करते रहे। सीखने की क्रिया को नियमों पर आधारित करके उन्होंने कक्षा-शिक्षण कार्य को अधिक युक्तिपूर्ण बताया है।

सीखने में पारितोषिक और दंड की भूमिका के विषय में उनके विचार शिक्षा में काफी प्रभावी रहे। उनके अनुसार अधिगम में दण्ड की अपेक्षा पारितोषिक की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हैं अपने सिद्धान्त में उन्होंने पुनर्बलन को महत्व दिया है। उन्होंने कहा कि यदि बच्चा सीखने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं है तो उसे उस समय सिखाना उपयुक्त नहीं रहेगा।

आलोचना -

- इस सिद्धान्त में अभ्यास के नियम के आधार पर व्यर्थ के प्रयत्नों एवं रटने पर बल दिया गया है।
- थार्नडाइक का सिद्धान्त केवल विवरणात्मक व्याख्या ही प्रस्तुत करता है। सीखने की क्रिया किस प्रकार होती
- है तथा व्यक्ति क्यों सीखते हैं, इन प्रश्नों का उत्तर इसमें नहीं मिलता हैं।
- इस सिद्धान्त के विचारक मानव को एक मशीन की तरह से मानते हैं जिसमें केवल कार्य कारण व क्रिया प्रतिक्रिया ही होती है।

12.4.2 पावलोव का अभ्युनुकूलन का सिद्धान्त (Pavlov's Classical Conditioning)

पृष्ठभूमि -

प्रसिद्ध रूसी शरीर विज्ञान शास्त्री पॉवलोव ने सर्वप्रथम अभ्युनुकूलित सहज क्रियाओं अथवा प्रतिवर्चों का प्रयोगात्मक अध्ययन किया। इन क्रियाओं को यह नाम भी उन्हीं का दिया हुआ है। अधिगम के सिद्धान्तों पर उनका प्रभाव केवल रूस में ही नहीं, उसके बाहर भी महत्वपूर्ण रहा। अमरीकी मनोवैज्ञानिकों के अधिगम सिद्धान्तों पर भी (विशेषतया, गथरी, स्किनर और हल) उनका प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। पाचन क्रिया के विज्ञान के अध्ययन पर उन्हें 1904 में नोबल पुरस्कार भी प्रदान किया गया।

12.4.2.1 पावलोव के प्रयोग

पावलोब ने सर्वप्रथम शारीरिक प्रतिक्रियाओं या सहज क्रियाओं को उत्तेजना से जोड़ने का प्रयास किया। भूखे कुत्ते के साथ किया गया उनका प्रयास प्रसिद्ध है। पावलोव एक भूखे कुत्ते को एक ध्वनि रहित बाक्स में रखकर उसकी पाचन की क्रिया का अध्ययन कर रहे थे, इसी प्रक्रिया में अचानक उनके प्रयोग के द्वारा एक प्रमुख अधिगम के सिद्धान्त का निरूपण हो गया। इस प्रयोग में भूखे कुत्ते को खाना देते समय घण्टी बजाई जाती थी। खाना देखकर कुत्ते के मुँह में लार आना स्वाभाविक था। कुछ दिन बाद घण्टी तो बजाई जाती थी किन्तु तुरन्त खाना नहीं दिया जाता था। परन्तु घण्टी के बजते ही कुत्ते के मुँह में लार टपकने लगती थी। बाद में घण्टी की आवाज के साथ प्रकाश को जोड़कर भी यह प्रयोग किया गया तथा पाया गया कि अनुक्रिया वहीं हुई जो पहले खाना तथा घण्टी की आवाज के साथ हुई थी। इस प्रयोग की साधारण व्याख्या यह हो सकती है कि जब दो या दो से अधिक उत्तेजनाओं किसी प्रयोज्य पर दिए जाते है-पहले नई तथा बाद में मौलिक तो कुछ समय बाद नई उत्तेजना भी मौलिक उत्तेजना की तरह प्रभावशाली हो जाती है। इस सिद्धान्त का तंत्र निम्न रूप द्वारा अधिक अच्छी तरह से समझाया जा सकता है:-

1. कुत्ते को भोजन दिया जाता	(स्वाभाविक उत्तेजना (Unconditioned stimulus)
लार टपकना	(स्वाभाविक सहज क्रिया (Unconditioned reflex)
2. खाने के साथ घण्टी को जोड़ना	
1. बार-बार दोहराना	
2. केवल घंटी बजना	
लार टपकना (अभ्यनुकूलित प्रतिवर्त	(conditioned reflex)
(अभ्युनूकूलित उत्तेजक	(conditioned stimulus)

अभ्युनूकूलित उत्तेजक के फौरन बाद बार-बार अभ्युनुकूलित उत्तेजक भोजन का दिया जाना ही पुनर्बलन हैं जब कुछ समय तक केवल घण्टी बजाई जाती है तो प्रतिक्रिया लार टपकना कमजोर पड़ती है और धीरे-धीरे गायब हो जाती है।

अमरीकी मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्रतिवर्च (reflex) के स्थान पर प्रतिक्रिया का नाम दिया।

12.4.2.2 पावलोव का प्रभाव

इनके कार्य ने अमरीकी व्यवहारवाद और उसमें जुडे हुए अधिगम सिद्धान्तों के ऊपर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। इसके दो पहलू हैं -

1. साहचर्य का सिद्धान्त एवं दो उत्तेजकों को एक साथ प्रस्तुत करना (Pairing of S's).
2. अभ्युनुकूलित प्रतिक्रिया (conditioned response) को सीखने की आधारभूत इकाई के रूप में प्रयोग करना।

12.4.2.3 अनुकूलित अनुक्रिया और शिक्षा

यह सिद्धान्त बालकों को अक्षर विन्यास तथा गुणा सिखाने में काफी सहायक हैं बालकों में स्वभाव निर्माण, अभिवृति के विकास, मानसिक एवं संवेगात्मक अस्थिरता के उपचार करने में यह सिद्धान्त काफी सहायक है।

12.4.3 स्किनर का क्रिया पर अभ्यानुकूलन (Operant conditioning) का सिद्धान्त

स्किनर ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि अधिगम में क्रियाशीलता अभिप्रेरणा के कारण आती है। स्किनर ने कबूतरों-चूहों पर प्रयोग कर यह धारणा विकसित की यदि किसी क्रिया के बाद कोई वक्त प्रदान करने वाला उद्दीपन मिलता है तो उस क्रिया को शक्ति मे) वृद्धि हो जाती है। स्किनर अधिगम में पुनर्बलन को अत्यधिक महत्व देते है जब भी किसी व्यवहार को पुनर्बलित किया जाता है तब उस व्यवहार की पुनरावृति के संयोग अधिक बनते है। स्किनर ने जो प्रयोग किए है उनको अधिक अच्छी तरह समझने के लिए यह देखना उचित होगा कि स्किनर के सिद्धान्त का थार्नडाइक व पावलोव के सिद्धान्त से क्या सम्बन्ध है।

थार्नडाइक से समानता - स्किनर और थार्नडाइक के सिद्धान्तों में काफी अन्तर होते है हुए भी इनमें निम्न मुख्य समानता है

- दोनो व्यवहारवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।
- दोनों सम्बन्धवादी सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं
- दोनों ने पुनर्बलन को अधिगम का मुख्य आधार माना है।
- दोनों की शैक्षिक समस्याओं में विशेष रूचि है।

स्किनर के ऑपरेट कंडिशनिंग सिद्धान्त और पावलोव के सम्बन्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त के ध्यातव्य बिन्दु निम्नवत् है -

- पावलोव के सिद्धान्त में एक ज्ञात उत्तेजना को (S) पुनर्बलन की स्थिति में एक प्रतिक्रिया (R) से
- सम्बद्ध किया जाता है। व्यवहार में उत्तेजकों को अत्यधिक महत्व दिये जाने के कारण यह (S) प्रकार का सिद्धान्त माना जाता है।स्किनर के सिद्धान्त में प्रतिक्रियाओं को अधिक महत्व दिया गया है इसलिए वह (R) प्रकार का सिद्धान्त कहलाता है। उनके अनुसार प्रतिक्रियाएं निर्गमित होती हैं और उसे क्रियापरक कहा गया है। हमारी दैनिक जीवन की अधिकतर क्रियाएं, चलाना, बोलना इत्यादि इसी प्रकार के व्यवहार का उदाहरण हैं।
- उत्तेजक (S) महत्वपूर्ण होते हुए भी पूर्णतया व्यवहार को नियंत्रित नहीं करते । क्रियापरक व्यवहार में प्राणी की अवस्थाओं और परिस्थितियों की बहुत बड़ी भूमिका है । उसकी अवस्थाओं, उत्प्रेरणाओं के आधार पर एक से उत्तेजकों की प्रतिक्रियाएं भिन्न हो सकती हैं।

क्रियापरक व्यवहार के अधिगम में पुनर्बलन (reinforcement)नकारात्मक (negative) है या सकारात्मक (positive) व्यवहार के सीखने पर इसका प्रभाव पड़ता है। दोनों प्रकार के पुनर्बलन अभ्यानुकूलित(conditioned) किये जा सकते हैं। पारितोषिक और दण्ड को, सीखने में पुनर्बलन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है किन्तु स्किनर के अनुसार अवांछित व्यवहार को रोकने में दण्ड की भूमिका सदैव सफल नहीं होती।

12.4.3.1 स्किनर का प्रयोग

अपने सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने के लिए स्किनर ने एक विशेष प्रकार से बनाये गए बॉक्स के द्वारा प्रयोग किए। इस उपकरण का नाम एस्कनर्स बॉक्स ही पड़ा। भूखे चूहे द्वारा लीवर दबा कर खाना प्राप्त करने की प्रतिक्रिया को सीखने का अध्ययन करके स्किनर ने अभ्यनुकूलित सीखने में अभ्यास तथा पुनर्बलन दोनों के महत्व को स्पष्ट किया।

12.4.3.2 शिक्षा में स्किनर का योगदान

शिक्षा में अभिक्रमित अनुदेशन की विधि मूलतया स्किनर की ही देन है। उन्होंने विभिन्न शैक्षिक विषयों जैसे गणित, वर्तनी, पढ़ना इत्यादि सिखाने में अध्यापक की क्षमता बढ़ाने के लिए टीचिंग मशीन का आविष्कार किया। परिणाम स्वरूप अब प्रोग्रामिंग एक महत्वपूर्ण विधि के रूप में प्रयोग की जा रही है। इस प्रक्रिया में सीखना, विद्यार्थी तथा सीखने के लिए तैयार की गई सामग्री के बीच अत: क्रिया द्वारा सम्बन्ध स्थापित होता है। यह विधि सीखने का एक मात्र साधन ही नहीं है। अपितु कक्षा शिक्षण में भी इसका प्रयोग सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

प्रोग्राम की प्रस्तुति मशीनों एवं पुस्तकों द्वारा भी की जा सकती है। इसमें ज्ञान को इकाइयों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और यह सरल से कठिन की ओर जाती हैं। प्रत्येक इकाई के अंत में विद्यार्थी प्रश्नों के द्वारा स्वयं मूल्यांकन कर सकता है। यह मूल्यांकन फीडबैक दे कर पुनर्बलन देता है। एक यूनिट में प्राप्त ज्ञान उसके बाद आने वाले यूनिट का आधार होता हैं। इससे अधिगम में सहायता मिलती है।

12.4.4 कुछ अन्य सम्बन्धवादी (connectionist) विचारक

12.4.4.1 हल का प्रबलन (reinforcement) का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त उ -प्र (S - R) सिद्धान्त का ही परिष्कृत रूप है। व्यवहारवादी विचारक होते हुए भी हल प्रयोजनवाद से भी प्रभावित हुए। इन्होंने थार्नडाइक और स्किनर की एस-आर (S - R)विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए स्वतंत्र (independent) और आश्रित (dependent) चरों के बीच मध्यवर्ती चरों (intervening variables)को सीखने के लिए महत्वपूर्ण माना। इसीलिए इन्होंने सीखने की प्रक्रिया में उत्तेजना और प्रतिक्रिया के साथ-साथ, सीखने वालों की मनोदशा, उनकी आवश्यकताओं (needs)तथा लक्ष्यों (goals)को भी उचित स्थान दिया है। इस प्रकार इनके सिद्धान्त को केवल (S - R) न होकर (S- O-R) के रूप में देखा जा सकता है जिसमें (O) अपनी सम्पूर्ण पृष्ठभूमि को लिए हुए स्वयं प्राणी है। हल सीखने की क्रिया का आधार आवश्यकताओं की पूर्ति (need of satisfaction) को मानता है। उसके अनुसार थार्नडाइक का प्रभाव का नियम तभी कार्य करता है, जब उसके द्वारा आवश्यकताओं एवं मूल उत्प्रेरणाओं में कमी (need and drive reduction) आती है।

12.4.4.2 मिलर एवं डालर्ड का सिद्धान्त

मिलर (Miller) और उनके सहयोगी डालर्ड (Dollard) की विचारधारा हल के सिद्धान्त के अनुरूप ही है, जिन्होंने अपने सिद्धान्तों में मनुष्य की आवश्यकताओं एवं मूल उत्प्रेरणाओं (drives) को विशेष महत्व दिया और एक प्रकार से व्यक्ति के विकास का आधार भी अधिगम को ही माना है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. सहचर्यवाद सीखने के सिद्धांत को प्रस्तुत करता है ?
2. थार्नडाइक के सीखने के नियमों की व्याख्या कीजिये।
3. पावलोव तथा स्किनर के अभ्युकूलन सिद्धान्त मे अन्तर बताइये।
4. प्रोग्राम द्वारा सीखने की विधि का संक्षेप मे वर्णन कीजिये।
5. दैनिक जीवन के उदाहरण द्वारा समबद्ध प्रतिक्रिया के सिद्धान्त का विवेचन कीजिये।
6. व्यवहारवादियो द्वारा प्रस्तुत सीखने के प्रमुख सिद्धान्त तथा नियमों का वर्णन कीजिये।

12.5 संज्ञात्मक-क्षेत्र सिद्धान्त (Cognitive-field Theories)

इन सिद्धान्तों से सम्बन्धित कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नाम : वरदीमर (wertheimer) कोहलर (Kaffka) कौफका टोलमैन (Tolman) है।

इस सिद्धान्तों की आधारशिला जर्मनी में मैक्स वरदीमर द्वारा प्रस्तुत किये गए विचारों से रखी गई। यह वाट्सन के समकालिक थे किन्तु उनके शुद्ध व्यवहारवाद के विपरीत यह सीखने में केवल व्यवहार को महत्व न देकर व्यक्ति की चेतन क्रियाओं को भी अधिगम का एक अभिन्न तत्व मानते थे। मनोविज्ञान के अन्य सिद्धान्तों की भाँति ही इनके सिद्धान्त उस समय की प्रमुख विचारधाराओं और विधियों को चुनौती देते हैं।

12.5.1 वरदीमर के सिद्धान्त की विशेषता

प्रचलित मनोवैज्ञानिक प्रणालियों में व्यवहार का अध्ययन उसके सम्पूर्ण रूप को न लेकर उसके विभिन्न अंगों के अलग-अलग विश्लेषण पर आधारित था। मनुष्य के चेतन अनुभवों को भी अलग-अलग भागों में विश्लेषण द्वारा ही समझने का प्रयास किया जाता था। वरदीमर ने मुख्यतया इसी का विरोध किया। उनके अनुसार चेतन अनुभव को अलग-अलग भागों में विभाजित करने से उसकी सार्थकता नष्ट हो जाती है। इसलिए वह चेतन क्रियाओं को उनके समग्र सार्थक (Meaningful whole) रूप में अध्ययन करने में विश्वास रखते थे। व्यवहार को केवल एक यांत्रिक उ-प्र (SR) प्रक्रिया के रूप में न देखकर, व्यक्ति द्वारा परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण को उन्होंने महत्व दिया। यह विचारधारा मूलतः प्रत्यक्षीकरण (Perception) से ही सम्बन्धित थी किन्तु बाद में अधिगम को भी इससे समाहित किया गया और अधिगम सिद्धांत एवं विधियां इससे प्रभावित हुए। गेस्टाल्ट (Gestalt) में, वरदीमर के अनुसार किसी सम्पूर्ण सिस्टम (System) के विभिन्न अंश (Parts) एक दूसरे से गतिशील (Dynamic) रूप से अंतर संबंधित होते है जिसके परिणामस्वरूप गतिशील समग्रताएं (Dynamic wholes) आकृति (form) या आकार बनते है।

उदाहरण - कैलीडोस्कोप में अलग-अलग टुकड़ों के अंतर सम्बन्धों से बने आकार।

इन आकारों को ही जर्मन शब्द गेस्टॉल्ट का नाम दिया । इनके विभिन्न अंशों का बिल्कुल अलग-अलग निरीक्षण करके समग्ररूप को समझा नहीं जा सकता। विभिन्न गेस्टाल्ट एक दूसरे से अलग-अलग हो सकते हैं क्योंकि उनके अंशों का आपस में अंतर सम्बन्ध भिन्न होगा।

उदाहरण -संगीत की एक धुन उसमें प्रयुक्त स्वरों के अंतरसंबंध के आधार पर ही पहचानी जाती है। उन्हीं स्वरों का आपस में अन्तर सम्बन्ध बदल जाने से उसका प्रत्यक्षीकरण दूसरी धुन के रूप में होता है

वरदीमर द्वारा प्रतिपादित विचारधारा गेस्टाल्ट साईकालॉजी के रूप में जानी जाती है।

12.5.1.1 अधिगम सिद्धान्त (Learning theory) पर प्रभाव

वरदीमर के दो साथी कोहलर (Kohier) और कौफका (Koflka) भी जर्मन थे जो बाद में अमेरिका चले गये। इनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों, कोहलर (The mentality of Apes -1925) और कोपका (The growth of the Mind - 1924) का अमरीकन अधिगम सिद्धान्त पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। इनके द्वारा दिए गए परीक्षण मुख्यतया प्रत्यक्षीकरण एवं समस्या सुलझाने (Problem - solving) से सम्बन्धित थे किन्तु उनके आधार पर अधिगम के विषय में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकले। इनकी पुस्तकों में थार्नडाइक के प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखने के नियम की आलोचना की गई।

- अधिगम के अनुभवों के आधार पर स्मृति-चिन्ह बनते हैं जो सीखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। वह स्मृति चिन्ह सम्बन्धवादी (connectionist) सिद्धान्त में वर्णित उ-प्र बाँड्स से भिन्न है। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार यह अलग-अलग असंबंधित तत्व नहीं बल्कि सुव्यवस्थित सम्पूर्ण (organised wholes) है। इसलिए सीखना पुराने चिन्हों को हटाकर नये चिन्ह जोड़ने की नहीं, बल्कि एक गेस्टाल्ट के दूसरे में बदलने की प्रक्रिया है। यह परिवर्तन अनुभवों से, विचार करने से या समय बीतने से भी हो सकते हैं।

12.5.2 अर्न्तदृष्टि या सूझ द्वारा सीखना (Learning by Insight)

अर्न्तदृष्टि द्वारा सीखने का अर्थ है किसी समस्या को सुलझाते समय कभी-कभी अचानक से उसका हल सूझ जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार बालक को समस्या का हल बताने की जरूरत नहीं बल्कि स्वयं के प्रयास द्वारा उसे समस्या का हल ढूँढना चाहिए। इस सम्बंध में कोहलर का प्रयोग निम्नवत था।

कोहलर का वनमानुष के साथ प्रयोग -

कोहलर ने पिंजरे में खेलते हुए वनमानुष को लकड़ी के दो ऐसे टुकड़े दिए जिनको मिलाकर एक लम्बी लकड़ी बनाई जा सकती थी। उसकी सहायता से वह बाहर पड़े केले को प्राप्त कर सकता था। लकड़ी से केले को प्राप्त करने के असफल प्रयत्न के बाद वह उन टुकड़ों से ही खेलने लगा। अचानक ही वह दोनों टुकड़े आपस में जुड़ गए। वनमानुष ने समझ लिया कि लम्बी लकडी से केला प्राप्त किया जा सकता है। वह पिंजरे के दूसरे भाग में गया और वहाँ से केला खींचकर खा लिया। इसी प्रकार लकड़ी के खाली बकरों को एक दूसरे पर रखकर वह ऊँचाई पर लटके केले तक पहुंचना भी सीख गया।

निष्कर्ष - इस प्रकार सूझ द्वारा समस्या का निरीक्षण करके उसके विभिन्न अंशों के आपसी संबंधों की खोज से समस्या का हल सीखा जा सकता है।

इस प्रकार के अधिगम की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है -

- स्कूल वस्तुओं के स्थान पर सीखने वाला प्रतिमाओं का उपयोग करता है।
- प्रत्ययात्मक विचारों में शाब्दिक चिन्हों का प्रयोग होता है।
- गत्यात्मक प्रयत्नों के आधार पर सफलता प्राप्त होती है।

12.5.2.2 अन्तदृष्टि या सूझ के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता

- यह सिद्धान्त व्यावहारिक समस्याओं को हल करने तथा रचनात्मक अथवा क्रियात्मक कार्यो को सीखने में प्रयुक्त होता है।
- इस प्रकार सीखने से बालक की मानसिक शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास होता है, विशेषकर कल्पना करना, तुलना करना, सम्बन्ध देखना, तर्क करना आदि।
- अंकगणित तथा रेखागणित की समस्याएं हल करने तथा व्याकरण शिक्षा में इसका उपयोग होता है।
- इसके अनुसार बालकों में स्वयं-लाभ पद्धति का विकास होता है। बालक खोज के मार्ग पर अग्रसर होता है।
- परिस्थिति की सम्पूर्णता पर बल देने के कारण यह सिद्धान्त सम्पूर्ण मानसिक ज्ञान के आधार पर बुद्धि के विकास की व्याख्या करता है।

12.5.2.3 समालोचना

हिलगार्ड के अनुसार इस प्रकार से सीखने के लिए बालक में पर्याप्त मानसिक योग्यता होनी चाहिए। बालक अपने पूर्वार्जित ज्ञान के प्रकाश में नई परिस्थितियों और समस्याओं का अवलोकन करता है। उनके मतलब और सम्बन्धों को समझता है।

यह क्रियायें मंदबुद्धि अथवा पिछड़े बालकों के लिए संभव नहीं है। वे प्रभाव (effect)और सम्बन्ध (connections) द्वारा अधिक सरलता से सीख सकते है।

12.5.3 टोलमेन (Tolman) का सप्रयोजन व्यवहारवाद (Purposive Behaviourism) या चिन्हों का अधिगम (sign learning)

पृष्ठभूमि

टोलमैन (1886-1959) मूलतः व्यवहारवादी थे। किन्तु उनके विचार विशुद्ध व्यवहारवादियों पावलोव, वॉटसन, थार्नडाइक, स्किनर, हल आदि से भिन्न थे। उनका अधिगम का सिद्धान्त उ-प्र प्रक्रियाओं के साथ संज्ञानात्मक तत्त्वों (cognitive elements) को भी सहमति करता है। उनकी अधिगम की व्याख्या संबंधवादी (connectionist) एवं संज्ञानात्मक-क्षेत्र (cognitive-field) विचारधाराओं को जोड़ने वाली कड़ी है।

12.5.3.1 व्यवहार के विषय में टोलमैन के विचार

- व्यवहार का विश्लेषण अलग-अलग प्रक्रियाओं (actions) के स्थान पर गत्यात्मक क्रियाओं (moment) के रूप में किया जाना चाहिए।

- व्यवहार संप्रयोजन (purposive) एवं लक्ष्य की दिशा में (goal directed) होता है।
- निर्धारित लक्ष्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर व्यवहार वातावरण में उपस्थित परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप बदलता है। अर्थात् मध्यस्थ चरों (intervening variables) को इन्होंने सीखने में महत्व दिया।
- जानवरों के व्यवहार की व्याख्या में भी टोलमैन ने संज्ञानात्मक तत्त्वों, जैसे प्रेरकों, ज्ञान, अपेक्षाओं, इरादों एवं प्रयोजनों को महत्व दिया है।

12.5.3.2 टोलमैन की सीखने की व्याख्या - (चिन्हों से सीखना)

उनके विचार से सीखने वाला अलग-अलग क्रियाओं करके, उनसे बनी श्रृंखला (chain) से नहीं सीखता बल्कि वह चिन्हों (signs) के द्वारा सीखता है जो सीखने की प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इस प्रक्रिया में मुख्य चरण इस क्रम से होते है -

- सीखने वाला सम्पूर्ण परिस्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता हैं।
- उसके मन में इस प्रत्यक्षीकरण पर विचार होता है, जिसके आधार पर नई ज्ञानात्मक संरचनाओं (cognitive structures) का निर्माण होता है।
- सम्पूर्ण परिस्थिति के विभिन्न पहलुओं का एक ज्ञानात्मक मानचित्र (cognitive map) बन जाता है जिसके आधार पर आगे सीखने की क्रिया में मार्गदर्शन मिलता है तथा चिन्हों (signs) के रूप में उत्तेजना प्राप्त होती रहती है। भूल भुलैया में सीखने से सम्बन्धित चूहों पर किए गए प्रयोग में टोलमैन ने इन क्रियाओं को प्रदर्शित किया है। इसी के आधार पर उनका सिद्धान्त चिन्हों से सीखने (sign learning) का सिद्धांत कहलाता है।

12.5.3.3 टोलमैन के सिद्धांत का मूल्यांकन

टोलमैन ने व्यवहारवाद को एक नई दिशा दी क्योंकि उसे ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (cognitive processes),समस्या सुलझाना (problem solving) क्रियात्मक विचार आदि से संबन्धित समस्याओं पर विचार करने की ओर प्रेरित किया। इसी लिए उनके द्वारा सुझाए गए प्रोग्राम आज के संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (modern cognitive psychology) में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. वाटसन और वरदीमर के विचारो मे क्या मुख्य अन्तर है ?
2. गेस्टाल्ट क्या है और किस प्रकार बनते है ?
3. संज्ञानात्मक क्षेत्रवादी सिद्धान्त मे, अधिगम मे स्मृति की भूमिका को स्पष्ट कीजिये।
4. सूझ द्वारा सीखने के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता बताइये।
5. टोलमैन के संप्रयोजन व्यवहारवाद की विशेषताएँ बताइये।
6. सहचर्यवादी और संज्ञानात्मक-क्षेत्र सिद्धान्तों की तुलनात्मक व्याख्या कीजिये।
7. संज्ञानात्मक क्षेत्र सिद्धान्तों की शैक्षिक उपयोगिताएँ उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

12.6 अधिगम सिद्धान्तों में नये विकास
(Latest Development in Learning Theories)

पृष्ठभूमि -

समय के बीतने के साथ व्यवहारवादियों (Behaviourists) और संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों (Cognitive psychologists) के विचारों में मूल अन्तर होते हुए भी अधिगम के क्षेत्र में वह एक दूसरे की विचारधाराओं और पद्धतियों को किसी हद तक स्वीकृत करते हुए दिखाई देते है। एक और व्यवहारवादियों ने अपने क्षेत्र को बढ़ाकर संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की रूचि के कुछ तथ्यों को स्वीकार किया, दूसरी ओर संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने प्रबलन (reinforcement) और क्रियापरक अभ्यनुकूलन (operant conditioning) आदि प्रत्ययों को अपने प्रयोगों में शामिल किया। मानव अधिगम में स्मृति ओर प्रत्यक्षीकरण के साथ-साथ उन्होंने उत्प्रेरणा, पारितोषित एवं व्यवहार परिमार्जन (behaviour modification) आदि तथ्यों को भी महत्व दिया है। इसी संदर्भ में कुछ नये अधिगम सिद्धांत उभरे, जिनका संक्षेप में वर्णन निम्नवत् है।

12.6.1 सामाजिक-अधिगम का सिद्धान्त (Social learning theory)

इसके प्रतिपादकों में मुख्य नाम बंदूरा का है । वैसे वालटर्स मिलर, डांलर्ड आदि भी इसी

विचारधारा के है। इन्होंने सीखने की क्रिया में उन सामाजिक परिस्थितियों को विशेष महत्व दिया है, जो व्यक्ति को विशेष रूप से सीखने की ओर प्रेरित करती है, या उसके सीखने के समय उपस्थित होती है।

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त की मुख्य धाराएँ :

- व्यक्तित्व का विकास विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों में कुछ व्यक्तिगत एवं सामाजिक कुशलताओं
- को सीखने का ही परिणाम है।
- मनुष्य की विचार शक्ति और स्वयं दिशा-निर्धारण की योग्यता को बहरा ने सीखने में महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार

"मनुष्य एक विचारवान प्राणी है जो ऐसी क्षमताएँ रखता है जो उसे स्वयं-दिशा निर्धारण की शक्ति प्रदान करती है सामाजिक अधिगम का सिद्धान्त अप्रत्यक्ष, चैन्हिक और स्वयं-व्यवस्थित होने वाली प्रक्रियाओं की महत्वपूर्ण भूमिका पर बल देता है। (एलबर्ट बन्दूरा)

"Man is a thinking organism possessing capabilities that provide him with some power of self-direction..... The social learning theory places special emphasis on the important roles played by vicarious, symbolic and self-regulatory process" (Albert-Bundura)

– -व्यवहारवादियों के सीधे अनुभव और करके सीखने (learning by doing) की अपेक्षा इन्होंने निरीक्षण (observation) द्वारा और अप्रत्यक्ष रूप से चिन्हों द्वारा सीखने (vicarious and symbolic learning) को महत्व दिया।

– सीखने में मॉडल (model) का महत्वपूर्ण स्थान है। बालक केवल मॉडल व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण ही नहीं करता बल्कि इस बात से भी प्रभावित होता है कि मॉडल के कौन से व्यवहार दंडित किए जाते हैं और किन पर पारितोषिक मिलता है। इस प्रकार सीखने की

प्रक्रिया का एक दूसरा पहलू सामने आता है जिसमें बालक के सामाजिक परिवेश में उपस्थित महत्वपूर्ण व्यक्तियों माता-पिता, अभिभावकों और संगी-साथी (peer group) आदि की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि इनके व्यवहार और उसके प्रभावों से बालक परोक्ष रूप से सीखता है।

स्पष्ट है कि बंदूरा का सिद्धान्त व्यक्ति द्वारा उसकी सामाजिक परिस्थितियों के संज्ञानात्मक प्रत्यक्षीकरण (cognitive perception) को सीखने का आधार मानता है।

12.6.1.2 शिक्षा तथा नई शैक्षिक प्रविधियों पर प्रभाव

– बंदूरा द्वारा की गई खोज के द्वारा बहुत से उन सामाजिक तत्त्वों का विश्लेषण हुआ जो सीखने में महत्वपूर्ण एवं प्रभावी है।

– यह सिद्धान्त अधिगम की दोनों एक-पक्षीय विचारधाराओं के प्रमुख तत्त्वों को अपने में समाहित करता है। हिलगर्ड ने इसे एक प्रकार का संज्ञानात्मक व्यवहारवाद कहा है।

– वर्तमान अधिगम एवं अनुदेशन प्रविधियों को इसके परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

– अधिगम सिद्धान्तवादियों द्वारा प्रतिपादित विचारों ने शैक्षिक कार्यक्रमों को क्रियात्मक रूप से प्रभावित किया। जिसके परिणामस्वरूप नई अनुदेशन प्रविधियाँ एवं सीखने की निर्देशिकाएँ विकसित हुई।

– शैक्षिक प्रक्रिया में यह महत्वपूर्ण है कि व्यवहार के लक्ष्य निर्धारित किए जाएं और विद्यालय में शैक्षिक कार्यक्रमों को विद्यार्थियों के विशिष्ट लक्ष्यों के अनुसार चलाया जाये । इसमें व्यवहारवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है।

– इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की विधियाँ क्या हों? इसके लिए कार्यो और कौशलों के विश्लेषण पर बल दिया गया है । इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक, लक्षित कार्य का विश्लेषण उसकी मूल व्यावहारिक इकाइयों में करके देखें कि वह किस प्रकार व्यवस्थित है। इस प्रकार बालक के प्रारम्भिक ज्ञान का मूल्यांकन करके उसके आधार पर लक्षित कौशलों को प्राप्त करने के लिए प्रभावी शैक्षिक प्रोग्राम बनाया जाये। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से कार्य करने वाले मनोवैज्ञानिक गाने है। सीखे जाने वाले कौशलों की क्रमबद्ध सूची में इन्होंने प्रदर्शित किया कि यह कौशल एक दूसरे पर आधारित है। कार्यों के प्रशिक्षण में अधिगम सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयत्न इनके कार्य का आधार है। गाने का मुख्य योगदान शैक्षिक विषयों के लिए प्रशिक्षण अनुक्रमों का निर्धारित करने में है। इनके अनुसार यह अनुक्रम सोपानिक होते हैं और सरल से कठिन की ओर व्यवस्थित किये जाते है। उन्होंने विशेष रूप से गणित, विज्ञान, अंग्रेजी आदि विषयों के लिए प्रशिक्षण अनुक्रम बनाये। गाने का प्रशिक्षण सिद्धान्त कुशलताओं के सोपानों पर ही आधारित है।

– सीखने की प्रभावी विधियाँ निर्धारित करने के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप सीखने की निर्देशिकायें उपलब्ध हुई जिसमें रॉबिन्सन का नाम महत्वपूर्ण है। जिन्होंने सीखने में अभ्यास को भी महत्वपूर्ण माना - अधिगम में अध्यापक की भूमिका को भी बाद के विचारकों ने एक अलग दृष्टिकोण से देखा शिक्षण को नई संज्ञात्मक संरचनाओं के बनाने की प्रक्रिया के रूप में देखते हुए इस विचारधारा में अध्यापक की भूमिका विचारों के व्यवस्थित करने वाले के रूप में प्रस्तुत की गई है। इसके फलस्वरूप शिक्षण में संज्ञानात्मक चरों को लेकर खोज की गई इस क्षेत्र में औसुबेल का योगदान महत्वपूर्ण है। इनके अनुसार सीखने से पहले विद्यार्थी को प्रस्तुत विषय-वस्तु का निरीक्षण करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। इसके आधार पर वह पाठ के विभिन्न

अंशों का विश्लेषण करके उनके अंतरसंबंधों को समझ सकता है और अधिक प्रभावी ढंग से सीख सकता है। इस विधि में गेस्टाल्टवादियों के विचारों का प्रभाव स्पष्ट होता है।

12.6.2 ब्रूनर (Burner) का संज्ञानात्मक विकास (cognitive development theory) का सिद्धान्त-

स्तर की विशेष रूचि मानसिक योग्यताओं के विकास में थी। इनके विचारों पर पियाजे के संज्ञानात्मक विकास संबंधी सिद्धान्त का प्रभाव पड़ा। शिक्षा के क्षेत्र में इनकी पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है।

इनके अनुसार अनुदेशक सिद्धान्त सीखने का वर्णन नहीं करते बल्कि यह बताते हैं कि किस प्रकार सीखा जाए और अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन कैसे किया जाए?

स्तर कहते है कि अनुदेशन सिद्धान्त में सीखने और विकास दोनों का समावेश होना चाहिए। इन्होंने अनुदेशन प्रविधि की चार मुख्य विशेषताऐं बताई है -

– सीखने के लिए तैयारी - अनुदेशन प्रविधियाँ बालक के उन अनुभवों और संदर्भों पर आधारित हो जो बालक को सीखने के लिए इच्छुक और योग्य बनाते है ।

– -ज्ञान की संरचना - यह बताएं कि ज्ञान की संरचना किस प्रकार की जाये जिससे कि बालक उसे आसानी से ग्रहण कर सकें।

– क्रम - विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए प्रभावी क्रम बनाएं।

– पुनर्बलन - पारितोषिक किस प्रकार के हों ओर उनके बीच समयांतर कितना हो। पारितोषिक बाहरी से भीतरी संतुष्टि की ओर चलें।

ब्रूनर का कहना है कि बालकों के विकासात्मक स्तरों ओर व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए किसी भी विषय को सही प्रकार से क्रमबद्ध करके सफलतापूर्वक सिखाया जा सकता है।

(Any subject can be taugh effectively is some intellectually honest form to any child at any stage of development)

ब्रूनर के सिद्धान्त ने शिक्षाविदों के विचारों और अभिवृतियों को प्रभावित किया है। इन पर आधारित खोज और अनुदेशन प्रोग्रामों के विषय में अधिक जानकारी नहीं है।

12.7 सारांश (Summary)

अधिगम के सम्बन्ध में बड़ी संख्या में उभरे नियमों और उनसे सम्बन्धित स्वतंत्र चरों के आधार पर प्राप्त विस्तृत ज्ञान को सार्थक रूप देकर मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम सिद्धान्तों को निरूपित किया।

यद्यपि अधिगम के क्षेत्र में बहुत से सिद्धांत आए है, परन्तु यह सब सिद्धांत मुख्यत: दो विचारधाराओं का ही प्रतिनिधित्व करते है - 1. साहचर्य सिद्धांत, 2.संज्ञानात्मक क्षेत्रवादी सिद्धांत इस इकाई में स्किनर पावलोव, टालमैन, कोहलर, वर्दीमर के साथ-साथ बहरा तथा लूनर के योगदान को अधिगम सिद्धांतों के संदर्भ में उनके शैक्षिक निहितायों सहित समझाने का प्रयास किया गया जिसके ज्ञान से शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों ही शिक्षण, अधिगम को अधिक प्रभावी बना सकते है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. नई प्रविधियों के विकास में गाने (Gangue) की भूमिका को समझाइए।
2. अनुदेशन प्रविधियों में अध्यापक की क्या भूमिका है?
3. ऑसुवेल ने सीखने की क्या प्रभावी विधि बताई?
4. बन्दूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धान्त और शिक्षा में इसके प्रभाव का विवरण दीजिए।
5. ब्रूनर के संज्ञानात्मक-विकासात्मक (cognitive development) सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए

12.8 संदर्भ (References)

1. Crow and_Crow (1964) : Human Development and learning Eurasia publishing House P.Co.Ltd. N.Delhi
2. Hilgard, E.R.and Bower, G.H. (1971) : "Theories if Learning"5th ed
3. Hilgard, E.R. (Ed) (1964) : "Theories of learning and Instruction" Sixty third year book of the national society for the study of Education. National Society for the study of Education Chicago Press.
4. Hill W.F. "Learning A Survey of Psychological Interpretation"
5. रॉय पी. एन. शर्मा के.एल. (1981) शिक्षा-मनोविज्ञान लक्ष्मीनारायण अग्रवाल - आगरा
6. सारस्वत, मालती: शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा आलोक प्रकाशन इलाहबाद
7. Scanell Educands AJ Dale P. Educational Psychology. The Teaching-learning Process Allied Publishers Pvt. Ltd
8. स्किनर शिक्षा मनोविज्ञान एस. चांद एंड कं. नयी दिल्ली।

इकाई-13

अधिगम के सूचना प्रसाधन सिद्धांत (INFORMATION PROCESSING THEORIES OF LEARNING)

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य
13.2 सूचना प्रसाधन सिद्धांत की अवधारणा
13.3 तिहासिक पृष्ठभूमि
13.4 सूचना प्रसाधन का एक कार्यकारी मॉडल
13.5 प्रमुख ज्ञानात्मक प्रसाधन कुशलताओं का विकास
13.6 सूचना प्रसाधन उपागम की वर्तमान स्थिति
13.7 सूचना प्रसाधन शोधों के कुछ शैक्षिक उपयोग
13.8 सारांश
13.9 संदर्भ

13.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

सूचना प्रसाधन सिद्धांत में मानव मस्तिष्क तथा उसके सोचने विचारने की प्रक्रिया की तुलना कम्प्यूटर से की गई है तथा सिद्ध किया गया कि जिस तरह कम्प्यूटर में सूचनाओं का प्रसाधन होता है, वैसे ही मानव मस्तिष्क में सूचना प्रसाधन उपागम उन प्रक्रियाओं को उल्लेखित करने का प्रयत्न हैं, जो वातावरण से प्राप्त उद्दीपकों को उल्लेखित करने का प्रयत्न है, जो वातावरण से प्राप्त उद्दीपकों से सूचनायें उद्धरण करने में क्रियाशील होते है। यह इकाई इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर तैयार की गई है कि इसके ध्यानपूर्वक पढ़ने और समझने के बाद शिक्षार्थी इस योग्य होंगे कि:

- सूचना प्रसाधन सिद्धांत की अवधारणा को स्पष्ट कर सकें।
- सूचना प्रसाधन उपागम के उद्धव को समझ सकें।
- सूचना प्रसाधन के अध्ययन में कार्यकारी मॉडल के विभिन्न आयामों का प्रत्यास्मरण कर सकें।
- लघुकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृतियों के कार्यो में अंतर कर सकें।
- कम्प्यूटर तथा मानव के प्रसाधन क्रियाओं में अंतर कर सकें।
- छोटे बालकों की बौद्धिक कमियों के अवधान संबंधी कारकों को स्पष्ट कर सकें।
- स्मृति प्रक्रियाओं के विकास के कारकों को स्पष्ट कर सकें।
- बालकों में समस्या समाधान योग्यता के विकास में पियाजे और सूचना प्रसाधन दृष्टिकोणों में भिन्नता कर सकें।
- सूचना प्रसाधन सिद्धांत की वर्तमान स्थिति को स्पष्ट कर सकें।
- शिक्षण में सूचना प्रसाधन उपागम द्वारा दिए सुझावों को स्पष्ट कर सकें।

13.2 सूचना प्रसाधन उपागम की अवधारणा (Concept pf Information Processing Approach)

मानव व्यवहार को समझने के जो प्रयत्न विलियम उन्ट (Wilhelm wunott) के समय के किए गए उनमें एक वृत सा नजर आता है। उन्ट ने मानव व्यवहार को समझने के लिए पूर्णत: अतर्निरीक्षण से प्राप्त मानसिक अनुभूतियों का सहारा लिया। जबकि वाटसन (Watson) तथा स्किनर (skinner) जैसे लोगों ने मानसिक अनुभूतियों को मानव व्यवहार को समझने में कोई स्थान नहीं दिया तथा अंतर्निरीक्षण (Introspection) विधि का बहिष्कार किया। इन लोगों ने उद्दीपक (stimulus)अनुक्रिया (Response)के बीच किसी भी मानसिक मध्यस्थ प्रक्रिया के अध्ययन करने से इन्कार किया क्योंकि उसका कोई प्रत्यक्ष सत्यापन नही किया जा सकता था। परंतु सूचना प्रसाधन सिद्धांतों (Information processing theories) ने मानसिक प्रसाधन क्रियाओं को ज्ञानात्मक अववोध में पुन: प्रमुख स्थान दिया। इस प्रकार S-O-R मॉडल से S-R अंत में सूचना प्रसाधन सिद्धान्तों के द्वारा हम फिर S-O-R मॉडल पर वापस आ गए। यह मॉडल व्यवहारवादी मॉडल की अपेक्षा गेस्टल्टवादी मॉडल के अधिक करीब है। ज्ञान प्राप्त करने का सूचना प्रसाधन उपागम (Information processing Approach) उन प्रक्रियाओं को उल्लेखित करने का प्रयत्न हैं जो वातावरण से प्राप्त उद्दीपकों से सूचनायें उद्धरण (Extract) करने में क्रियाशील होती है। यह प्रक्रियायें तंत्रिका क्रियाओं की अपेक्षा कार्यकारी के रूप में उल्लेखित होती है जो अकसर नियमों के रूप में होती है। सूचना प्रसाधन पद्धति की गतिशील संक्रियायें अक्सर फ़्लोचार्ट (Flow chart) के रूप में दर्शायी जाती है। जिससे उन पक्षों की श्रृंखला प्रदर्शित होती है जो किसी विशेष निविष्ट (Input) के प्रसाधन में शामिल होते है।

सूचना प्रसाधन सिद्धांत में व्यक्ति को एक सूचना प्रसाधक के रूप में देखा जाता है। सूचनाओं के प्रसाधन संबंधी तंत्र के स्वभाव गत अनुभवों की स्मृति तथा व्यक्ति के लक्ष्यों पर निर्भर करता है। इस सिद्धांत की आधारभूत मान्यता यह है कि उद्दीपक और अनुक्रिया के बीच प्रसाधन पदों की एक क्रमिक श्रृंखला होती है। यह प्रसाधन पद क्रमिक होते है तथा प्रत्येक पद उन सूचनाओं पर संक्रिया (Operation) करता है जो उसे उपलब्ध होती है। यह क्रम परस्पर व्यापी हो सकते है। अर्थात पहले पद के पूर्ण होने के पहले ही उसके बाद का पद क्रियाशील हो जाए। किसी पद की संक्रियाओं में समय लगता है तथा वह उस पद में प्राप्त सूचनाओं को रूपांतरित करके प्रसाधन के अगले चरण को उपलब्ध कराती है।

13.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

कम्प्यूटर तकनीक विशेषकर कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग की अवधारणाओं से सहायता लेते हुए पिछले 3-4 दशकों में मानव प्रत्यक्षीकरण (Human perception) तथा ज्ञानात्मक विकास (Cognitive development) में सूचना प्रसाधन दृष्टिकोण का तेजी से विकास हुआ है। इस शताब्दी के छठे दशक के उत्तरार्द्ध में पियाजे (Piaget) द्वारा प्रयोगात्मक अनुसंधानों के निष्कर्षो के प्रकाशन के साथ वर्तमान युग का आरम्भ हुआ। उसके अध्ययनों की पुनरावृत्ति अधिकतर सफल रही। परंतु धीर-धीरे उसके सिद्धांतों के आगे उनके आशय का परीक्षण करने की ओर ध्यान गया। इन अध्ययनों में उन्हीं कार्यो का प्रयोग किया गया जिनका निर्माण पियाजे ने बालकों की तर्क प्रक्रिया को जानने के लिए किया था। जैसे-जैसे शोधकर्ताओं ने उसके सिद्धान्तों की नवीन

व्यवस्था की उन्हें सूचना प्रसाधन उपागम से (Information processing Approach) प्राप्त विचारों पर आश्रित होना पड़ा। परंतु सूचना प्रसाधन पियाजे के सिद्धांत का विकल्प नहीं है। वर्तमान मे यह एक उपागम है जिसे बहुत से सिद्धांतवादी ग्रहण करते हैं तथा अपनी सैद्धांतिक अवधारणाओं को एक सामान्य ढीले-ढाले रूप से संबंधित ढाँचे (Structure) से उद्धत (derive) करते हैं। सूचना प्रसाधन ढाँचे के अंतर्गत सिद्धांतों की रचना सम्भव है परंतु यह कहना भूल होगी कि सूचना प्रसाधन का कोई एक महान सिद्धांत होगा।

1950-60 के मध्य में एलेन नीवेल (Allen Newell) और हरबर्ट साइमन (Hebert simon) जैसे सूचना प्रसाधनवादी लोगों ने मानव मस्तिष्क की तुलना कम्प्यूटर से करना आरम्भ किया। साइमन तथा उसके साथियों ने इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर तथा मानव मस्तिष्क में दो प्रमुख समानतायें देखी :(अ) दोनों ऐसी युक्तियाँ (Devices) है जिनकी सूचनाओं के भण्डारण (storing) उन्हें पुन: प्राप्त करने (retriving) तथा उनका विश्लेषण करने की क्षमता शामिल है।

(ब) दोनों सूचना प्रसाधन (Information processing)पद्धतियों में हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर (Software) होते है। कम्प्यूटर में उसका हार्डवेयर उसका भौतिक आयाम (Physical Parameter) है, जैसे उसका की-बोर्ड या निविष्टि पद्धति एवं स्मृति तथा तर्क इकाईयां (Logic units) सॉफ़्टवेयर में वह योजनायें या अभिक्रमित निर्देश (Programmed Instruction) आते है जो कम्प्यूटर मशीन को यह बताते है कि जो सूचनायें उसने प्राप्त की है उन्हें वह किस प्रकार सुसंगठित करें उन्हें पुन: प्राप्त करे तथा उन पर किस प्रकार की क्रियायें करें। इसी प्रकार मानव मन (चिंतन संकाय) की भौतिक मशीनरी या उसका हार्डवेयर उसका मस्तिष्क, नाड़ीय तथा संवेदी ग्राहक यंत्र है (sensory receptors) तथा सॉफ़्टवेयर के रूप में मन उन नियमों, योजनाओं, अभिप्रेरणाओं तथा इरादों जैसे मानसिक कार्यक्रमों पर आश्रित रहता है जो इस निर्णय में सहायक होते है कि उसे किस प्रकार की सूचनाओं का पंजीकरण (registration)करना है किस प्रकार उनकी व्याख्या (interpreted) करनी हे तथा उनको किस प्रकार पुन: प्राप्त करना या उनका विश्लेषण करना है।

समय के साथ गत वर्षो में कम्प्यूटर काफी संवर्धित हुए है। न केवल उनकी भण्डारण (स्मृति) क्षमता में वृद्धि हुई है, उनके सॉफ़्टवेयर सुधार के फलस्वरूप अब वे और अधिक कार्य अधिक कुशलता से कर सकते है। इसी प्रकार सूचना प्रसाधन सिद्धांतवादियो के अनुसार आयु के साथ जैसे-जैसे बालकों के मस्तिष्क तथा नाडीय संस्थान अधिक परिपक्व होते जाते है (अर्थात हार्डवेयर में सुधार होता है) तथा वे उद्दीपकों पर ध्यान देने, उनकी व्याख्या करने तथा जो कुछ उन्होंने अनुभव किया है (सॉफ्टवेयर में सुधार होता है) तथा वे उद्दीपकों पर ध्यान देने, उनकी व्याख्या करने तथा जो कुछ उन्होंने अनुभव किया है (सॉफ्टवेयर में सुधार) उसे याद रखने की नयी नीतियाँ अपनाते हैं। उन्हें सूचनाओं पर और अधिक क्रियायें करने तथा समस्याओं को हल करने में अधिक प्रवीण होना चाहिए।

13.4 सूचना प्रसाधन का एक कार्यकारी मॉडल

जब कोई व्यक्ति किसी सूचना पर ध्यान देता है और उसको भविष्य में प्रयोग के लिए धारण करता है, इस अंतराल में कौनसी मानसिक क्रियायें होती है। एटेकिन्सन और शिफरिन की यह मान्यता है कि व्यक्ति सूचनाओं का प्रसाधन उसी प्रकार करता है जैसे कम्प्यूटर करते है,

इसी के अनुसार उन्होंने सूचना प्रसाधन क्रिया को दर्शाने के लिए एक मॉडल प्रस्तुत किया। उसका कुछ संशोधित तथा संबंधित मॉडल नीचे दिया गया है।

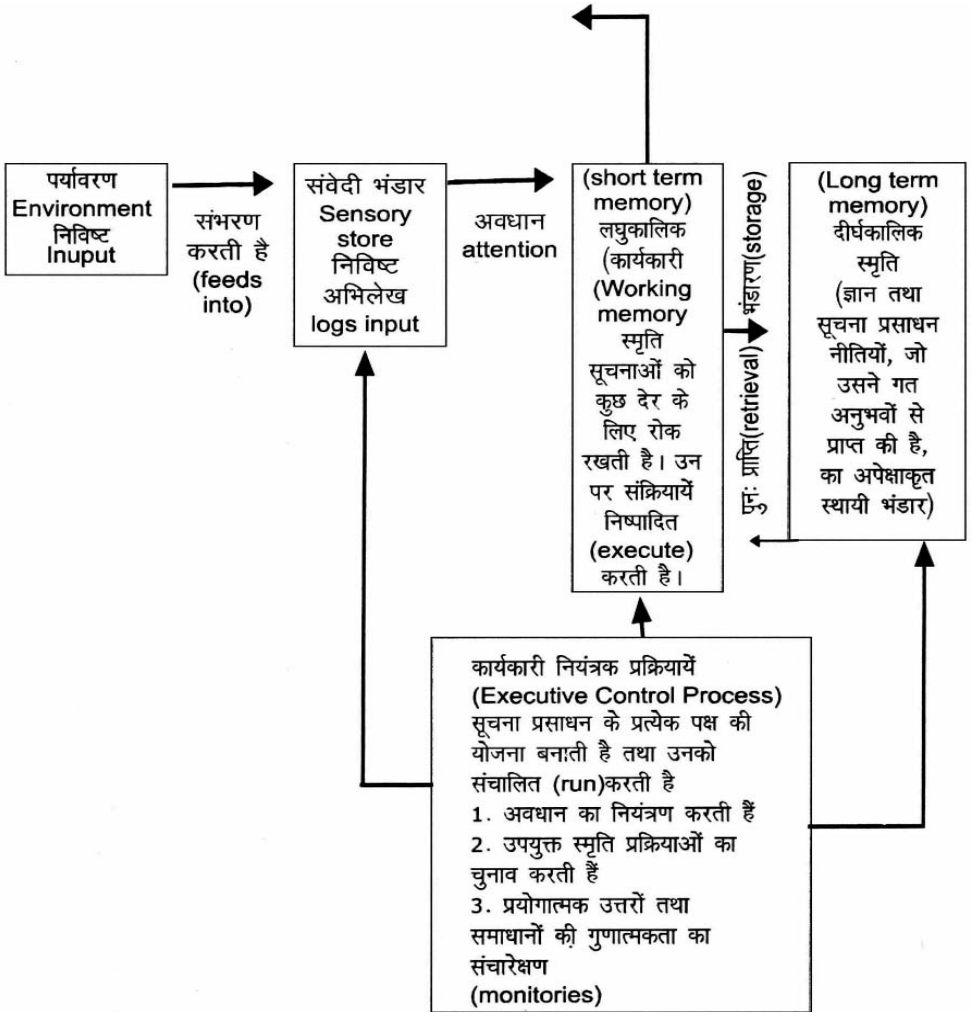

चित्र सूचना प्रसाधन का एक कार्य प्रदर्शी चित्र

(Based on Atkinson and Shiffirin)

जैसा कि हम उपरोक्त चित्र में देखते है कि ऐसा विचार किया जाता है कि आने वाली सूचना कई अंर्तसंबधित परन्तु अलग-अलग प्रसाधन इकाइयों से प्रभावित होती है। इन इकाइयों की कुछ प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार है :

13.4.1 संवेदी स्टोर (भंडार)

यह सूचना प्रसाधन संस्थान की निविष्ट अभिलेख इकाई है यह अपक्व संवेदी निविष्ट को जैसा कि व्यक्ति ने महसूस किया है उसके उत्तर-बिंब या गँज के रूप में केवल थोड़ी देर (कदाचित् एक सेकंड से भी कम) के लिए रोके रखता है। इस प्रकार संवेदी स्टोर की सामग्री बहुत वाष्पशील या उड़नशील होती है तथा यदि उस पर कोई आगे प्रक्रिया न की जाए तो वह शीघ्र ही लुप्त हो जाएगी। परंतु यदि इसमें प्राप्त सूचना पर ध्यान दिया जाए तो वह लघुकालिक स्मृति में

भेज दी जाएगी। कौन से कारक संवेदी स्मृति को विशेष संवेदना पर ध्यान देने के लिए निर्देशित करते है इस बारे में पूरा ज्ञान नहीं है, परंतु ऐसा लगता है कि इस प्रकार के निर्देशन में उद्दीपक (संवेदना) की विशेषतायें या महत्व तथा उस क्षण में व्यक्ति की प्रेरणा-दशा दोनों कारक शामिल हैं कुछ उद्दीपन अपनी चमक, गति विलक्षण, आकार, ध्वनि-तीव्रता तथा इसी प्रकार अन्य विशेषताओं के कारण ध्यान का केन्द्र बनते है व्यक्ति अपनी कुछ रुचियों एवं प्रेरणाओं आवश्यकताओं की पूर्ति के अपने वातावरण की खोज करता है तथा इस प्रयत्न में उन उद्दीपकों पर विशेष ध्यान देता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक लगते है। इस प्रकार उद्दीपन की विशेषता तथा व्यक्ति की प्रेरणायें (आवश्यकतायें) एक साथ मिलकर यह निर्णय लेते है कि किस उद्दीपक (संवेदना) पर ध्यान दिया जाए।

13.4.2 लघुकालिक स्मृति (STM) या कार्यकारी स्मृति :

यह प्रसाधन इकाई सूचनाओं की सीमित मात्रा शायद 4 से 7 टुकड़ों का कई सेकेंड तक संचित रख सकती है। इसकी अन्य विशेषतायें इस प्रकार है:

- इसमें वही सूचनायें होती है जिन पर संवेदी निविष्ट में ध्यान दिया जाता है।
- इसे कार्यकारी या सक्रिय स्मृति भी कहते है। क्योंकि सारी चेतन ज्ञानात्मक क्रियायें इसी इकाई में होती है। यह तात्कालिक तथा प्रत्यक्ष होती है।
- इसमें वह सभी सूचनायें होती है जो वर्तमान में सक्रिय है। परंतु इसमें केवल सीमित मात्रा में सूचनायें उपलब्ध होती हैं क्योंकि तत्काल प्रसाधन की क्षमता सीमित होती है।
- इसमें प्राप्त सूचनाओं को यदि रिहर्सल द्वारा कायम न रखा जाए तो वह विस्मृत हो जाती है।

उदाहरण के लिए यदि हम किसी व्यक्ति को टेलीफोन करना चाहते है तो हम उसके नंबर को डायरेक्टरी या ऑपरेटर से प्राप्त करते है तथा उसे उतने ही समय के लिए याद रखते हैं जब तक उस नंबर का प्रयोग करते हैं परंतु यदि वह ऐसा नम्बर है कि हमें उसकी बार-बार आवश्यकता पड़ेगी तो हम उसे बार-बार दोहराकर उसका रिहर्सल करते हैं। ऐसी सूचना दीर्घकालिक स्मृति में भेज दी जाती है जहां से उपयुक्त समय पर हम उसे पुन: प्राप्त करते है।

इसी कारण से समस्या समाधान में कठिनाई होती है, क्योंकि मानव अपने सक्रिय स्मृति में एक समय में केवल सीमित सूचनायें रख सकता है तथा उनका परीक्षण कर सकता है।

- यह इकाई वर्तमान सूचनाओं से पहले से संग्रहीत सामग्री से संबंधित करने का भी कार्य करती है।
- इसे दीर्घकालिक स्मृति की सूचनाओं को नवीनतम करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।
- इसकी धारण क्षमता तथा प्रत्यास्मरण क्षमता दोनों सीमित होती है।
- लघु अवधि-स्मृति आवश्यक रूप से श्रवण संबंधी होती है। दृष्टिय उद्दीपकों को श्रवण संबंधी संकेतों में पुन: संकेतिक किया जा जाता है। जो कुछ सुना जाता है उसे संरचनात्मक तरीके से संगठित किया जाता है जो सामान्यत: लयबद्ध संहिता के रूप में होता है इस प्रकार की संहिती क्रिया का याद करने में संकेतों की सुखला का काम करती है। इस प्रकार लघुकालिक स्मृति के दो मुख्य कार्य है:

(अ) प्राप्त ' सूचनाओं को सीमित अवधि के लिए रोक रखा जाए, जिससे

(ब) उन पर संबंधित उपयुक्त क्रियायें की जा सकें।

13.4.3 दीर्घकालिक स्मृति (LTM) :

दीर्घकालिक स्मृति हमारे अर्जित ज्ञान, गत अनुभवों एवं घटनाओं की छाप (impressions) तथा उन नीतियों (strategies) का अपेक्षाकृत स्थायी भंडार है जो व्यक्ति को सूचना प्रसाधन तथा समस्या का हल ढूंढने में सहायक होती है। लघुकालिक स्मृति की ये सूचनायें जिनको भविष्य में प्रयोग की सम्भावना है उन्हें दीर्घकालिक स्मृति में भंडारण (Storage) के लिए बढा दिया जाता है। इसी प्रकार नवीन सूचनायें जिन पर लघुकालिक स्मृति में संक्रिया की जाती है वे दीर्घकालिक स्मृति में भेज दिए जाते हैं तथा स्थायी भंडारण का अंग बनते है । इसकी अन्य विशेषतायें इस प्रकार है:

(अ) स्मृति संरचना मप्र में संचित संबंधित सामग्री का स्थायी संगठन है।

(ब) इन संरचनाओं के विकास में काफी समय प्रयत्न एवं ध्यान की आवश्यकता होती है परंतु एक बार जब यह संरचनायें स्मृति को पूर्णत: समर्पित हो जाती है तो उनकी पुन: प्राप्ति बिना किसी प्रयास के हो जाती है या यूं कहिये कि यह प्रक्रिया स्वचालित सी हो जाती है। परंतु यह पुन: प्राप्ति केवल तभी होती है जबकि दी हुई सूचना किसी विशिष्ट साहचर्य (association) की अपेक्षा स्मृति के किसी निविष्ट क्षेत्र में पहुंचने के लिए पर्याप्त होती है।

(स) इसकी क्षमता सीमा अज्ञात है परंतु इसकी जटिलता उसके विकास की मात्रा से ही सीमित होती है।

दीर्घकालिक स्मृति (LTM) की सूचनायें घंटों दिनों या वर्षो संचित रह सकती है। उनकी क्षमता सीमा का पता नहीं, कदाचित जैसा फ्रायड (Freud) ने कहा कि जो कुछ भी एक बार संग्रहित हो जाता है वह (LTM) में सदैव रहता है । शायद पुन: प्राप्ति करने की क्रियाओं की अकुशलता ही हमें (LTM) की सीमा को समझने तथा जो कुछ हमने कभी सीखा है उसको साभिप्राय, जान बूझ कर याद करने में बाधक होती है।

(द) LTM में निरंतर सुधार (modification) होता रहता हैं इसमें संग्रहित मद (stored items) बिना परिवर्तन के नही रहते। समय के साथ वे बदल सकते है। किसी घटना के कुछ वितरण लुप्त हो सकते है तथा अन्य स्मृति में बने रह सकते है। यह भी हो सकता है कि जब किसी स्मृति की याद की जाये तो उसमें नवीन संदेश (perspects) या व्याख्या जुड़ जाय, अर्थात वह नवीन रूप में प्रस्तुत हो। इसी प्रकार जिन स्मृतियों का प्रयोग नहीं किया जाता वही सामान्यत: धूमिल होती प्रतीत होती है। नीचे एक उदाहरण से सूचना प्रसाधन प्रक्रिया की अवधारणा अधिक स्पष्ट हो सकेंगी।

मान लीजिए इतिहास की कक्षा में कोई अध्यापक स्वतंत्रता प्राप्ति और उसके बाद की घटनाओं के बारे में बता रहा है तथा एक उसको ध्यानपूर्वक सुन रहा है तथा उसके बतायें तथा श्यामपट्ट पर लिखे मुख्य बिंदुओं को अपनी कापी में नोट करता चल रहा है। ऐसी दशा में श्यामपट्ट से आने वाली प्रकाश तरंगों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों से आने वाली और भी बहुत सी प्रकाश तरंगें उसकी आँखों तक पहुंचती है। इसी प्रकार शिक्षक के बाल के अतिरिक्त अन्य ध्वनियां भी उसके कान से टकराती है। विभिन्न प्रकार सुगंध उसकी गंध-संवेदी इंद्रियों पर पड़ती है तथा दाब और ऊष्मा उसकी त्वचा के संग्रहकों (receptors)को उत्तेजित करती है। परंतु छात्र

इतने अधिक उत्तेजकों (उद्दीपकों) में से केवल शिक्षक की आवाज तथा उसके द्वारा श्यामपट्ट पर लिखे जैसे कुछ चुने हुए उद्दीपकों पर ही ध्यान देता है। इस प्रकार की चयनशील अवधान (Selective attention) प्रक्रिया एक प्रकार की क्षणिक स्मृति ग्रहण प्रक्रिया द्वारा क्रियान्वित होती है, जिसे संवेदी स्मृति कहते हैं। इस प्रक्रिया में उद्दीपक बहुत क्षणिक समय के लिए ज्ञानेंद्रियों पर ठहरते है जैसे प्रकाश तरंगें एक चित्र के रूप में रेटिना (retina) पर ठहरती है संवेदी स्मृति केवल (शायद एक सेकेंड से भी कम के लिए रहती है) केवल उतने समय के लिए रहती है (कुछ क्षणों) जिसमें व्यक्ति प्राप्त सूचनाओं को पहचान सकें।

जब छात्र कक्षा में शिक्षक द्वारा बताई या श्यामपट्ट पर लिखी बातों के नोट्स ले रहा होता है तो वह जानता है कि इन सूचनाओं की उसको आगे परीक्षा में आवश्यकता होगी इसलिए वह उन पर ध्यान देता है। निष्कर्ष रूप यह सूचनायें संवेदी रजिस्टर से लघुकालिक स्मृति में प्रवाहित होती है जहाँ वह इतनी अवधि के लिए रहती है कि छात्र उनको अपनी नोट बुक में अधिलेख कर ले। बाद में, जब वह इन नोट्स को आने वाली परीक्षा के लिए अध्ययन करता है तो कदाचित् वह इन सूचनाओं को बार-बार दोहराता है और आखिर में वे दीर्घकालिक स्मृति में अभिलेखित होती है जहाँ वह कम से कम तब तक रहती है जब तक परीक्षा में उसकी आवश्यकता होती है।

अब मान लीजिए शिक्षक छात्र से एक साधारण प्रश्न करता है स्वतंत्रता प्राप्ति के कितने समय बाद भारतीय संविधान लागू हुआ ?

सूचना-प्रसाधन पद्धति के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए छात्र में क्रमश: निम्न संभावित प्रसाधन (processing) क्रियायें होगी:

(अ) जो प्रश्न शिक्षक ने किया है उसे संवेदी रजिस्टर में प्रविष्टि देना।

(ब) और इस निविष्ट (input)पर ध्यान देना जिससे यह निश्चित हो जाए कि संबंधित सूचनायें प्रश्न लघुकालिक स्मृति में प्रवाहित होगी।

(स) समस्या की सही व्याख्या करने के बाद दीर्घकालिक स्मृति में स्वतंत्रता प्राप्ति और संविधान लागू होने की तिथियों को खोजना।

(द) इन दोनों का पता लगाकर इन्हें लघुकालिक या कार्यकारी स्मृति में स्थानान्तरण करना जिससे घटाने वाले उपरोक्त प्रश्न या समस्या का हल प्राप्त किया जा सकें।

इस प्रकार हम देखते है सूचनाओं का सफलतापूर्वक प्रसाधन तथा उनके समस्या समाधान में प्रयोग के लिए छात्र को यह जानना होगा कि वह क्या कर रहा है, तथा उसे उचित निर्णय लेना होगा। यदि उसने स्वतंत्रता प्राप्ति की तथा संविधान लागू होने की तिथियों के महत्व को न समझकर उनको अपनी नोट बुक में अंकित नहीं किया हो तो यह सूचनायें कक्षा में दी जाने वाली अन्य सूचनाओं में खो गई होती। इसी प्रकार यदि उसे घटाने की क्रिया का ज्ञान नहीं होगा या वह इस ज्ञान को दीर्घकालिक स्मृति से सफलतापूर्वक पुन: स्थापित नहीं कर पाता तो वह इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता। परंतु यह सूचनायें स्वत: अपने आप विभिन्न स्टोर भंडारों या सूचना प्रसाधन पद्धति की विभिन्न प्रसाधन इकाइयों में प्रवाहित नहीं होती। इन निर्देशों को सक्रिय रूप से मार्ग दर्शित तथा प्रवाहित करना पड़ता है। इसी लिए उपरोक्त मॉडल में प्रबंधक नियंत्रक प्रक्रियायें (executive control processes) शामिल की गई है। ऐसा समझा जाता है कि यह प्रबंधक प्रक्रियायें जिनके द्वारा हम सूचनायें एकत्रित करते है उनका भंडारण करते है उन्हें पुन:

प्राप्त करते हैं तथा उन पर विभिन्न संक्रियायें (operation)करते हैं, एक स्वैच्छिक नियंत्रण (voluntary control) के अंतर्गत होती है। वास्तव में मानव की यही विशेषता उसे कम्प्यूटर से श्रेष्ठता प्रदान करती है। समस्या समाधान में कम्प्यूटर मनुष्य से कहीं कम काम करता है तथा अपनी सभी प्रकार की प्रक्रियाओं के लिए उस पर आश्रित है। उसके कार्य संबंधी सूचना पहले से उसकी मशीन में अभिलिखित (log) कर दी जाती है। जिसकी सहायता से वह उसको दी हुई समस्या का समाधान करती है तथा उसके समाधान में उन नीतियों (strategies) का प्रयोग करती है तथा आदेश प्रोग्रामर (programmer) या मानव प्रबंधक उसे देता है । मशीन केवल आवश्यक संगणना (computations) करती है। इसके विपरीत मानव को अपनी ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (cognitive processes) के वह सभी कार्य जो प्रोग्रामर कम्प्यूटर के लिए करता है करना पड़ता है, जैसे प्रक्रियाओं को आरम्भ करना, संगठित करना तथा उनकी देखभाल करना मानव इसका निर्णय स्वयं लेता है कि वह किस सूचना पर ध्यान देगा, ध्यान दी गई सूचना को किस प्रकार धारण करेगा उनके पुन: प्राप्त करने के लिये कौन सी नीति अपनाएगा या उस पर कौन सी प्रक्रियायें करेगा। हम समस्याओं के समाधान में अपने स्वयं के कार्यक्रम तय करते है । और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उन समस्याओं के चुनाव में भी हमें स्वतंत्रता होती है जिन्हे हम हल करने का प्रयत्न करेंगे।

उपरोक्त सूचना प्रसाधन मॉडल का एक प्रमुख आशय यह है कि केवल आवश्यक तर्क या ज्ञानात्मक ढ़ाँचे के अभाव में ही हम समस्या समाधान में असफल नहीं होते इसके असफलता के कई अन्य कारण भी हो सकते हैं जैसे :

(अ) व्यक्ति समस्या से संबंधित सबसे प्रमुख सूचना पर ध्यान नहीं दे रहा है या उसे समझ नहीं पा रहा है।

(ब) वह सभी संबद्ध सूचनाओं को लघुकालिक स्मृति में नहीं रोक पा रहा है जिससे वह उन पर उपयुक्त संक्रिया (operations) कर सकें।

(स) उसमें उन नीतियों (strategies) का अभाव है जो उसे नवीन सूचनाओं को सफलतापूर्वक दीर्घकालिक स्मृति में स्थानान्तरित करने या उसके पहले से संचित ज्ञान को पुन: स्थापित (retrieve) करने में सहायक हो। यह भी हो सकता है कि उसने उन निर्णायक नियमों (concritical) तथा संक्रियाओं को प्राप्त या धारण न किया हो जिनकी समस्या समाधान में आवश्यक है।

(द) उसमें उन प्रबंधक नियंत्रण प्रक्रियाओं (coexecutive control processes) का भी अभाव हो सकता है जो उसे समस्या समाधान के सभी आवश्यक पक्षों का समन्वय (co-ordinate) करने योग्य बनाए।

समस्या समाधान में मानव गलतियों की, सूचना प्रसाधन सिद्धांत पर आधारित यह व्याख्या निश्चित ही पियाजे के विश्लेषण से कहीं अधिक विस्तृत है। क्योंकि पियाजे सामान्यत: यह मानता है कि व्यक्ति किसी समस्या का समाधान इसलिए नहीं कर पाता क्योंकि हल ढूँढने के लिए उसमें आवश्यक ज्ञानात्मक संरचना (cognitive structures) का अभाव है।

सूचना प्रसाधन के कार्यकारी मॉडल में निम्नलिखित आयाम होते है.

- पर्यावरण निविष्ट (environment input)

- संवेदी भंडार या निविष्ट अभिलेख जहाँ सूचनायें उत्तरबिंब (aftereimage) या गज के रूप में केवल कुछ क्षणों एक सैकण्ड से भी कम के लिये रुकती है जिससे उन्हें पहचाना जा सकें।
- लघुकालिक कार्यकारी स्मृति यहां सूचनायें कुछ देर सैकडों के लिए रोकी रखी जाती है जिससे उस पर संक्रियायें की जा सकें।
- दीर्घकालिक स्मृति, यह उन ज्ञान तथा सूचना प्रसाधन नीतियों जो उसने गत अनुभव से प्राप्त कार्यकारी प्रबंधक प्रक्रियायें, जो सूचना प्रसाधन के हर पक्ष की योजना बनाती है जैसे (1) अवधान नियंत्रण (2) उपयुक्त स्मृति प्रक्रियाओं तथा समस्या समाधान की नीतियों का चुनाव इत्यादि।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. संवेदी भंडार की सूचना प्रसाधन में क्या भूमिका हैं?
2. दीर्घकालिक स्मृति की क्या विशेषता हैं?

13.5 प्रमुख ज्ञानात्मक प्रसाधन कुशलताओं का विकास

(Development of Main Cognitive Processing Skills)

किसी सिद्धांत या उपागम की उपयोगिता या महत्व इस बात पर निर्भर करती है की यह किसी क्षेत्र में प्रचलित व्याख्याओं या विश्लेषणों को कितनी सफलता से नवीन अंतर्दृष्टि दे सकती है। इस दृष्टि से नीचे हम यह देखते है कि सूचना प्रसाधन कुशलताओं के लिए विकास की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए बालकों के बौद्धिक विकास को समझने में किस प्रकार नवीन अंतर्दृष्टि प्रदान करते है।

13.5.1 अवधान संबंधी प्रक्रियायें:

अबधान का अभिप्राय विश्लेषक नाड़ी यंत्रों (analyzing neutral mechanism) उद्दीपन निविष्ट क्षेत्र (stimulus input field) के किसी विशेष भाग पर केन्द्रित होना है।

निश्चय ही इसके पहले कि व्यक्ति किसी सूचना को धारण (retain) करे तथा उसका समस्या समाधान में प्रयोग करें, वह उस सूचना की पहचान (detect) करता है और उस पर ध्यान केंद्रित करता है। जीवन के प्रथम कुछ वर्षो में नाड़ी संस्थान में काफी तीव्रता से विकास होता है। इससे यह अनुमान लगाना स्वाभाविक लगता है कि आयु के साथ संवेदी रजिस्टर, संवेदी निर्विष्ट (sensory) को इकट्ठा करने और उन्हें रोके रखने में जिससे उनका आगे विश्लेषण किया जा सकें अधिक कुशल हो जाते है। परंतु वर्तमान अनुसंधान इसकी पुष्टि नहीं करते है। हाल के अनुसंधानों से यह संकेत मिलता है कि पूर्व शिक्षा काल के बालक भी अपने संवेदी रजिस्टर में इतनी सूचना रख सकते है जितना कि बड़े बालक या प्रौढ़ (House1982)3। यही नहीं वे इस सूचना को कुछ अधिक समय तक धारण (retain) कर सकते हैं (Cown,Soumi and 1982)4 इसलिए ऐसा सम्भव नहीं लगता कि जो बौद्धिक कमियाँ (intellectual shortcomings) छोटे बच्चे प्रदर्शित करते हैं वह उनके अपरिपक्व या अकुशल संवेदी रजिस्टर के कारण होती है। इस प्रकार की अक्षमता के कुछ अन्य कारण इस प्रकार हो सकते है।

(अ) उनका संकुचित अवधान परास (short attention span)

2 से 5 वर्ष के बच्चों को यदि कोई बार-बार दोहराने वाला काम दे दिया जाए तो यह अक्सर उस पर कुछ मिनटों से अधिक नहीं लगे रह सकते। टेलीविजन देखने जैसे रुचिकर कार्य में भी 2-3 वर्ष के बालक अक्सर दूसरों से बात करने के लिए या किसी खिलौने से खेलने के लिए कमरे में इधर-उधर चक्कर लगाते रहते है। छोटे बालक समस्या से संबंधित आवश्यक सूचना इकट्ठा करने के लिए अपने अवधान को लंबे समय तक कायम नहीं रख सकते। कदाचित् इसलिए वे बहुत सी समस्याओं को हल करने में असफल होते है। (ब) उपयुक्त अवधानगत रण-नीति (strategy)बनाने में योजनाबद्धता का अभाव:

5 वर्ष के आस पास बच्चे समस्या समाधान के प्रयत्न में काफी लग्नशील (persistent) होते है। परंतु समस्या से संबंधित सूचना इकट्ठा करने की उनकी रण-नीति बहुत अव्यवस्थित होती है तथा उसमें योजनाबद्धता का अभाव होता है। एक अध्ययन (Alice Vliestra 1982)6 में 5,8 और व 11 वर्ष के बालकों को एक नकली घर (moke-up of a house) का परीक्षण करने दिया गया । उसके बाद उन्हें उसी प्रकार के 6 अन्य घरों को खोजने को कहा गया, जब तक कि वे -

(अ) नकली घर तथा तुलनात्मक 6 घरों के बीच कम से कम एक भिन्नता न ढूँढ लें।

(ब) या नकली घर तथा तुलनात्मक 6 घरों के बीच सभी भिन्नतायें ढूँढ लें।

इस अध्ययन में देखा गया कि 5 वर्ष के बालक निर्देश समझने में स्पष्ट रूप से असफल रहे। उसकी जगह वह अस्त-व्यस्त (haphazardy) तरीके से भिन्नताओं को ढूँढ़ते रहे। 8 वर्ष के बालकों ने भिन्नताओं को ढूंढने में अधिक व्यवस्थित प्रयत्न कर प्रदर्शन किया परन्तु एक भिन्नता बताने वाले प्रश्न पर वह केवल एक भिन्नता तक सीमित नहीं रहे। केवल 11 वर्ष के बालकों के प्रयत्न योजनाबद्ध थे। उन्होंने दोनों प्रकार के निर्देशों को भली-भाँति पालन किया तथा अपने दृष्टिव्य खोज को संबंधित निर्देशों तक ही सीमित रखा।

इससे यह लगता है कि छोटे बालकों में रुचिकर नवीन उद्दीपकों को खोजने की प्रवृत्ति उनको उन सूचनाओं को योजनाबद्ध तरीके से इकट्ठा करने में बाधक होती है जो उन्हें समस्या के समाधान में सहायक हो या जो कार्य उन्हें करने को दिया गया है उसे अच्छी तरह करने में सहायक हो।

(स) उन सूचनाओं को नजरंदाज (ignore) करने में असमर्थता जो स्पष्ट रूप से समस्या समाधान के लिए निरर्थक है :- (Patricia Miller & Micheal weis (1981) के एक अध्ययन में 7,10 और 13 वर्ष के बच्चों को कई उन जानवरों की स्थिति को याद रखने के लिए कहा गया जो विभिन्न कपड़ों के पटे (cloth fiap) के पीछे छिपाए गए थे। जब प्रत्येक पट्टे को उसमें छिपे जानवर को प्रकट करने के लिए उठाया गया तो बालकों को जानवर के साथ एक कोई घरेलू वस्तु भी दिखाई दी जो उस जानवर के ऊपर या नीचे स्थित थी। यहाँ सीखने का कार्य यह था कि बालक किसी चयनित सूचना जानवरों पर ध्यान दे और अन्य सम्भाव्य (potential) ध्यान फेरने वाली निविष्ट जैसे घरेलू वस्तुओं को नजरंदाज करें। जब यह जानने के लिए बालकों का परीक्षण किया गया कि क्या उन्होंने यह सीख लिया है कि प्रत्येक जानवर कहां स्थिति है तो यह देखा गया कि 13 वर्ष के बालक व 10 वर्ष वाले बालकों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे थे और 10 वर्ष वाले बालक 7 वर्ष वाले बालकों की अपेक्षा थोड़ा अधिक अच्छे थे। जब मिलर और विस (Miller and Weiss 1981)1 ने यह जानने के लिए कि बालकों ने निरर्थक सूचनाओं पर कितना ध्यान दिया उनसे यह प्रश्न किया कि किस जानवर के साथ कौन सी घरेलू वस्तु थी तो

परिणाम बिलकुल उल्टे थे। 13 वर्ष के बच्चों ने 7 और 1० वर्ष के बच्चों की अपेक्षा बहुत कम घरेलू वस्तुओं को याद रखा जबकि 7 और 10 वर्ष के बच्चों ने लगभग उतने ही निरर्थक वस्तुओं का याद रखा जितनी कि जानवरों की स्थिति।

इस अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि केवल सार्थक सूचनाओं पर ध्यान देने में तथा बाहय निविष्टयों को जानकर नजरंदाज करने में बड़े बालक, छोटे बच्चों से कहीं अधिक अच्छे होते है।

(द) छोटे बालक अवधान प्रक्रियाओं (attentional processes) को जानते हुए भी उसका प्रयोग नहीं करते - अवधान प्रक्रियाओं का ज्ञान आयु के साथ बढ़ता हैं 5 वर्ष का बालक भी यह महसूस करता है कि उसे कम से कम पहले कार्य से सम्बन्धित उद्दीपकों पर ध्यान देना चाहिए और तब उन घरेलू वस्तुओं को उन उद्दीपकों को याद करने में सहायक के रूप में याद करना चाहिये। 7 और 10 वर्ष के बालक यह भी जानते है कि उन्हें कार्य सम्बन्धित उद्दीपकों जानवरों पर ही ध्यान देना चाहिए निरर्थक सूचनाओं घरेलू वस्तुओं को नजरंदाज करना चाहिए जिससे जो उनको करने के लिए कहा गया है उसे वे भली भांति कर सकें। पर फिर भी वह आकस्मिक (incidental) या निरर्थक कार्य पर क्यों ध्यान देते है। मिलर और उसके साथियों (Miller and his associates 1986)8 का एक अध्ययन इस का उत्तर पाने में कुछ सहायक होता है। उनके अध्ययन से ऐसा लगता है कि 6 वर्ष का बालक जो भी रणनीति जानता है तथा उसको समस्या समाधान में प्रयोग करने की आशा करता है वह उन आकर्षक आकस्मिक उद्दीपकों को खोजने की इच्छा के सामने अभिभूत (over whelmed) हो जाती है जो उसका ध्यान पाने के लिए प्रतियोगिता करती है। इसके विपरीत 8 वर्ष के बालक संक्रमक (transitional) अवस्था होते है। वह कभी-कभी जो कुछ ज्ञान उन्हें होता है उसके आधार पर उपयुक्त अवधान रणनीति अपनाते है। परन्तु उसके प्रयोग में पारंगत न होने के कारण जब उसके छुट-पुट प्रयोग से उन्हें अपने कार्यो में उसका फल नहीं प्राप्त ' होता तो उस नीति को त्याग देते है। परन्तु इस अध्ययन में ऐसा लगा कि 10 वर्ष के बालक यह जान चुके है कि उपयुक्त अवधान रणनीति से फायदा होता है क्योंकि वह उसका 8 वर्ष के बालकों की अपेक्षा अधिक प्रयोग करते है। तथा जिस कार्य में चयनित अवधान (selective attention) की आवश्यकता होती है उसमें उनसे कही आगे होते है।

इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता लगता है कि अवधान (attention) का विकास प्रत्यक्ष रूप से एक लम्बी प्रक्रिया है जिसमें बालक पहले अपने ज्ञान के आधार पर उपयुक्त अवधान रणनीति बनाता है तथा जैसे-जैसे अधिक से अधिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति में उनके प्रयोग की आवश्यकता होती है वह उन पर अधिक आश्रित होता है। विभिन्न अध्ययन (Vlieststav,1982,Cole and New comb 1983) से यह संकेत मिलता है कि छोटे बच्चों को भी अपने वातावरण की सार्थक विशेषताओं पर अधिक चयनित रूप से ध्यान देने में प्रशिक्षित किया जा सकता है। उन्हें कई सम्बन्धित सूचनाओं पर ध्यान देने तथा सभी संभाव्य ध्यान बटाने वाली निविष्टियों पर ध्यान न देने के लिये प्रोत्साहित एवं प्रशिक्षित किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अवधान उन प्रक्रियाओं को जो बालक समझ सकता है या जान सकता है, के निर्धारण में अहम भूमिका निभाता है।

अवधान का अभिप्राय विश्लेषक नाड़ी यंत्रों का उद्दीपक निविष्ट क्षेत्र (input area) के किसी विशिष्ट भाग पर केन्द्रित होना है। हाल के अनुसंधानों से यह प्रतीत होता है कि संवेदी

रजिस्टर की कुशलता क्षमता का आयु के साथ विकास नहीं होता। पुर: शिक्षा काल के बालक भी अपने संवेदी रजिस्टर में इतनी सूचनाएँ रख सकते है जितनी की प्रौढ़। इसलिये छोटे बालकों की बौद्धिक कमियाँ उनकी अपरिपक्व संवेदी रजिस्टर के कारण न होकर निम्नलिखित कारणों से हो सकती है -

1. **संकुचित अवधान परास** :- छोटे बालक अधिक समय तक अपने अवधान को कायम नही कर सकते अर्थात् किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते।
2. **उपयुक्त अवधान-गत रणनीति बनाने में योजना-हदता का अभाव** :- छोटे बालकों में रुचिकर नवीन उद्दीपकों के प्रति आकर्षण की प्रवृति उन्हें उन सूचनाओं को योजना-बद्ध तरीके से संगठित करने में बाधक होती है जो उन्हें समस्या समाधान में सहायक हो सकते है।
3. उन निरर्थक सूचनाओं पर ध्यान न देने में असमर्थता जो समाधान में बाधक हो सकती है।
4. अवधान प्रक्रियाओं को जानते हुए भी उस पर ध्यान न देना।

13.5.2 स्मृति प्रक्रियायें

इनमें वे प्रक्रियायें आती है जो प्राप्त अनुभव ' को धारण करने एवं उन्हें पुन: प्राप्त करने में सहायक होती हैं। एक बार जब हम किसी प्रकार की सूचना पर ध्यान देते हैं तो यदि हमें अपने अनुभव से कुछ सीखना होता है या आगे इस सूचना को किसी समस्या के हल में प्रयोग करना होता है तो हमें उसे याद रहने का कोई रास्ता ढूँढना पड़ता है। स्मृति दो प्रकार की होती है: पहचान स्मृति (recognition memory) और प्रत्यस्मरण स्मृति (recall memory) पहचान स्मृति में व्यक्ति किसी सूचना को देखकर यह महसूस करता है कि उसने उसे पहले देखा है, अर्थात् वह विभिन्न सूचनाओं के मध्य सम्बद्ध सूचना को पहचानता है। प्रत्यास्मरण स्मृति में हम उस सम्बद्ध सूचना को पुन: प्राप्त करते हैं जो वर्तमान में हमारे सामने प्रस्तुत नहीं है।

ऐसा लगता है कि पहचान स्मृति बालकों में जन्मजात होती है। क्योंकि नवजात शिशु भी जिन वस्तुओं के बार-बार सम्पर्क में आते है उन्हें पहचाने का संकेत देते हैं। रुचिकर अनुभवों के प्रत्यास्मरण की योग्यता भी 2-3 मास में दिखने लगती है। जन्म के प्रथम 2-3 वर्षो में दोनों प्रकार की स्मृतियों का तेजी से विकास होता है। उदाहरण के लिए 5- 12 मास के शिशु अक्सर किसी वस्तु को एक दो बार थोड़ी देर के लिए देख कर भी उस परिचित वस्तु के रूप को पहचान लेते है तथा उनके इस ' 'ज्ञान' ' को कई सप्ताह तक धारण रखने की सम्भावना हो सकती है (Fagan 1984) इसी प्रकार 2 वर्ष के शिशु अक्सर उन रुचिकर घटनाओं का प्रत्यास्मरण करते है जो कई मास पूर्व घटित हुई थी (Nelson 1984)9तथा जान जूझ कर उन कार्यो को करने की याद रखने में काफी प्रवीण होते है जिन्हे वे अपने लिए महत्वपूर्ण समझते है। जैसे जब माँ बाजार जा रही है तो वह उसे अपने लिए कुछ कैण्डी लाने के लिए याद दिलाते है (Somerville etal, 1983)10

प्रत्यास्मरण क्षमता में नाटकीय सुधार 3 से 12 वर्ष के बीच आता है परन्तु पुर: शिक्षा काल के बालकों को कमी यह है कि उनमें पहचान - स्मृति का विकास प्रत्यास्मरण स्मृति की अपेक्षा कही अधिक होता है । एक अध्ययन में (Brown 1975)11 यह देखा गया कि यदि 4 वर्षो के बच्चों को 12 वस्तुओं को 2 मिनट तक अध्ययन करने दिया जाय और बाद में यदि उन्हें

अन्य वस्तुओं के साथ मिला कर दिखाया जाये तो वह लगभग सभी को पहचान लेंगे परन्तु यदि उन्हें उन वस्तुओं के ही नाम बताने को कहा जाय तो वह केवल 2 से 4 वस्तुओं के ही नाम बता पायेंगे जब कि 8 वर्षो के बालक 7 से 9 वस्तुओं तक का प्रत्यास्मरण कर सकते हैं। यहाँ दो प्रमुख प्रश्न आते है।

हम यह क्यों मानते है कि छोटे बच्चे उन सूचनाओं को जिन्हें वे परिचित वस्तु के रूप में पहचानते हैं उनके केवल बहुत थोड़े भाग का प्रत्यास्मरण करते है।

प्रत्यास्मरण स्मृति शैशवाकाल से किशोरावस्था के बीच क्यों इतनी नाटकीय ढंग से बढ़ती है। सूचना प्रसाधन वादी इन प्रश्नों से सम्बन्धित 4 सम्भावनाओं परिकल्पनाओं पर विचार करते है:

बड़े बालकों के पास अधिक अच्छे "कम्प्यूटर' ' होते है अर्थात् उनके पास अधिक क्षमता वाली तथा अधिक कुशल सूचना प्रसाधक पद्धति होती है।

आयु के साथ बालक दीर्घ कालिक स्मृति में सूचनायें प्राप्त करते तथा आवश्यकता पड़ने पर उनको पुन: प्राप्त करने की अधिक प्रभावी रणनीतियां प्राप्त करते है तथा उनका बराबर प्रयोग करते हैं।

बड़े बालकों तथा किशोरों में अधिक अच्छा प्रत्यास्मरण इसलिए होता है कि क्योंकि वे स्मृति के बारे में अधिक अच्छा ज्ञान रखते है जैसे चीजों को पूर्ण रूप से (thoroughly) सीखने के लिए उन्हें कितनी देर तक उनका अध्ययन करना चाहिये । किस प्रकार के स्मृति कार्य में अधिक प्रयत्न करना पड़ता है। किस कार्य के लिए कौन सी रणनीति सबसे अच्छी है, इत्यादि।

बड़े बालकों में छोटे बालकों की अपेक्षा संसार के बारे में अधिक ज्ञान होता है जिससे उनके लिए बहुत सा अधिगम-पदार्थ (Learning material) उनका परिचित होता है और परिचित पदार्थ का सीखना और याद रखना अपरिचित पदार्थ की अपेक्षा अधिक सरल होता है। इन परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए किये हुए अध्ययनों से निम्नलिखित तथ्य प्राप्त हुए।

दीर्घकालिक स्मृति की क्षमता में समय के साथ कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता। छोटे तथा बड़े बालकों दोनों में जितना वह सम्भवत: प्रयोग कर सकते है उससे अधिक दीर्घकालिक भण्डारण (storage) क्षमता होती है और जीवन के प्रथम मास के बाद इसमें वृद्धि के कोई ठोस सबूत नहीं मिलते (Perlmuter 1986)

इस बात के भी कोई ठोस सबूत नहीं है कि बाल्यकाल में लघुकालिक स्मृति की भौतिक क्षमता में वृद्धि होती है (Dempster 1985) वास्तव में यह क्षमता वाली परिकल्पना इस बात की व्याख्या नहीं कर सकती कि छोटे बच्चे प्रौढ़ों की अपेक्षा उनसे सम्बन्धित मदों को क्यों अधिक याद रख पाते है। (Lindberg 1980)

इस लिए इसकी (1984) यह परिकल्पना अधिक उपयुक्त लगती है कि बड़े बालकों की स्मृति परास (memory span) श्रेष्ठता उनकी संक्रियात्मक कुशलता के कारण होती है। जो बालक स्मृति कार्य के पदों से अधिक परिचित होते है तथा उन पर अधिक शीघ्र संक्रिया कर सकते है वह उन बालकों से अधिक लम्बा स्मृति परास रखते है जो उन्हें पहचानने और उन पर संक्रिया करने में धीमी गति से कार्य करते हैं (Case 1985, Dempstar1981 and Hoird and Polich 1985)

ऐसा लगता है कि बहुत सी सूचना प्रसाधन कुशलतायें जिनको शुरू के जीवन में प्राप्त करने में बहुत अधिक समय ओर समर्थ लगता है वह बाद के जीवन में स्वचालित हो जाती है।

उदाहरण के लिए हम आप 25x9 = ? का उत्तर 225 बड़ी जल्दी और बिना किसी प्रयत्न के दे सकते हैं। परन्तु एक छोटे बालक के लिए इसका उत्तर पाने के लिए पूरी गुणा की प्रक्रिया करनी पड़ती है (25x9) जैसे 9x5 = 45, दाई तरफ रखा 4 हासिल में ले गये, फिर 9x2=18 उसमें हासिल जोड़ा 18+4=22 और 5,225 जैसे लम्बी तथा मेहनती प्रक्रिया से गुजरना पडेगा। शायद वह इन सब प्रक्रियाओं के अपने मन में न कर सकें। संक्रियात्मक कुशलता में वृद्धि का एक कारण केन्द्रित नाड़ी संस्थान में होने वाले परिपक्व परिवर्तन (maturational changes) हो सकते हैं (Case 1984) या फिर यह कि बड़े बालक अंकों और उन पर की जाने वाली संक्रियाओं इत्यादि से अधिक परिचित होते है। जिससे मानसिक क्रियाओं को करने में उनकी अपनी सम्पूर्ण स्मृति क्षमता के काफी कम भाग की आवश्यकता होती है (Flavell 1985)16 यद्यपि वास्तविक कारण अब भी अस्पष्ट है पर इस बात पर आम सहमति है कि बड़े बालक छोटे बालकों की अपेक्षा कई अर्थों में अधिक तीव्र तथा स्वचालित गति से सूचना प्रसाधन करने वाले होते है (Kail, 1986 2 Wjotmeu 1986)17 इसलिए कम से कम यह एक कारण अवश्य है जिससे आयु के साथ स्मृति में सुधार आता है। विभिन्न अध्ययनों के आधार पर हमें बड़े बच्चों में अधिक स्मृति विकास के चार महत्वपूर्ण कारण नजर आते है।

(1) बड़े बच्चे छोटे बच्चों की अपेक्षा सूचनाओं को अधिक तेजी से तथा अधिक स्वचालित गति से प्रसाधन करते है जिससे उन्हें नवीन सूचनाओं पर संक्रिया के करने के लिए कार्यकारी स्मृति में अधिक जगह मिल जाती है।

(2) बडे बच्चे सूचनाओं को दीर्घ कालिक स्मृति में भेजने तथा उनको पुन: प्राप्त करने की अधिक प्रभावशाली रणनीतियाँ (strategies) प्रयोग करते है।

(3) बडे बालकों का ज्ञान भण्डार सामान्यत: छोटे बच्चों की अपेक्षा अधिक होता है उनका यह समृद्ध ज्ञान-आधार उनकी सीखने और याद रखने की योग्यता को बढ़ाता है।

(4) उन्हें स्मृति के स्वभाव के बारे में भी अधिक ज्ञान होता । इस ज्ञान के दो पहलू हैं।

(अ) बडे बालकों को अपने समर्थ तथा समस्या को हल करने की नीतियों का अधिक अच्छा ज्ञान होता है जैसे किसी बालक को शायद यह आभास हो कि वह गणित की अपेक्षा शाब्दिक समस्याओं को अधिक अच्छी तरह हल कर सकता है यदि वह कठिन समस्याओं को हल करने की आशा रखता है तो उसे उससे सम्बन्धित सबसे अधिक सम्बन्ध (relevant) सूचनाओं पर ध्यान देना चाहिये या उसे यह निष्कर्ष निकालने के पहले कि जो हल उसने निकाला है वह सही है फिर से उस हल का परीक्षण कर लेना चाहिये, इत्यादि इस ज्ञान को तात्विक ज्ञान (meta cognition) की संज्ञा दी गई है।

(ब) बड़े बच्चे यह अधिक जानते हैं कि जो कुछ वह याद रख सकते हैं उसकी एक सीमा है। कुछ चीजें अन्य चीजों की अपेक्षा अधिक आसानी से याद रखी जा सकती है। तथा याद रखने में कुछ रणनीतियाँ अन्य की अपेक्षा अधिक प्रभावी होती है, इस ज्ञान को तात्विक - स्मृति (meta-memory) की संज्ञा दी गई हैं।

इस प्रकार के ज्ञान बड़े बालकों को सबसे उपयुक्त स्मृति रणनीतियां के चुनाव में तथा लघु कालिक स्मृति और दीर्घकालिक स्मृति के बीच सूचनाओं के प्रवाह को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं।

निश्चित ही विकास के उपरोक्त चार आयाम स्वतंत्र नहीं होते वह एक दूसरे को प्रभावित करते है। उदाहरण के लिए सूचना प्रसाधन के स्वचालित होने से प्रभावी स्मृति सहायक प्रक्रियाओं

जैसे सूचनाओं के संगठन या उनके विस्तरण (elaboration) इत्यादि के प्रयोग के लिए बालक के कार्यकारी स्मृति में अधिक जगह मिल जाती है। उसी प्रकार ज्ञान के भण्डार में विस्तार से सूचनाओं के प्रसाधन में गति आती है तथा सूचनाओं के वर्गीकरण तथा विस्तरण में सहायता मिलती है।

इस प्रकार वर्तमान में यही निष्कर्ष निकलता दिखता है कि स्मृति कुशलताओं के विकास की कोई सबसे मान्य या अच्छी व्याख्या (explanation) नहीं है उपरोक्त प्रस्तुत सभी विकास प्रत्यास्मरण स्मृति (recall memory) के नाटकीय विकास में जो बाल्यकाल में होती है, अपना महत्वपूर्ण योगदान देते है।

स्मृति प्रक्रियायें प्राप्त अनुभव को धारण करने और उन्हें पुन: प्राप्त करने में सहायक होती है। यह दो प्रकार की होती है।

1. पहचान स्मृति 2. और प्रत्यास्मरण स्मृति

1. पहचान स्मृति :-

पहचान स्मृति जन्म-जात होती है तथा यह हर आयु में प्रत्यास्मरण स्मृति से कहीं अधिक होती है।

2. प्रत्यास्मरण स्मृति :

प्रत्यास्मरण स्मृति में 3 वर्ष से 12 वर्ष के बीच नाटकीय सुधार होता है।

लघु कालिका तथा दीर्घ कालिका स्मृतियों की भौतिक क्षमता में आयु के साथ कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है। इसलिये केस (Case) की यह परिकल्पना अधिक उपयुक्त लगती है कि बड़े बालकों की स्मृति परास (Memory Span) श्रेष्ठता उनकी संक्रियात्मक कुशलता के कारण होती है। जो बालक स्मृति कार्य के मदों से अधिक परिचित होते हैं या उन पर अधिक शीघ्रता से संक्रिया कर सकते हैं उनका स्मृति परास अधिक लम्बा होता है। विभिन्न अध्ययनों के आधार पर हमें बड़े बालकों में अधिक स्मृति परास के 4 मुख्य कारण प्रतीत होते हैं -

(1) वे सूचनाओं को अधिक तेजी से तथा स्वचालित गति से प्रसाधन करते है। जिससे उन्हें, नवीन सूचनाओं पर संक्रिया करने के लिए कार्यकारी लघुकालिक स्मृति में अधिक जगह मिल जाती है।

(2) वे सूचनाओं को दीर्घकालिक स्मृति में भेजने तथा वहां से पुन: प्राप्त करने की अधिक प्रभावशाली रणनीति अपनाते हैं।

(3) इनका ज्ञान भंडार छोटे बच्चों की अपेक्षा अधिक समृद्ध होता है।

(4) इन्हें स्मृति में संबंधित अपने तथा स्मृति के स्वभाव के बारे में अधिक ज्ञान होता है अर्थात् इनका तात्विक ज्ञान (metacognition) तथा तात्विक स्मृति (meta memory) अधिक होती है। यह सभी आयाम एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. अवधान सम्बन्धी प्रक्रियाओं से आप क्या समझते है ?
2. स्मृति प्रक्रियाओं मे आयु के विकास का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है।

13.5.3 समस्या समाधान :

धारित (retained) सूचनाओं का प्रयोग बालकों में समस्या समाधान कुशलता के विकास की व्याख्या में सूचना प्रसाधनवादी एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। पियाजे की ही तरह सूचना-प्रसाधनवादी भी यह मानते है कि आयु के साथ बालकों में उनके द्वारा प्रयुक्त समस्या समाधान विधियों में गुणात्मक परिवर्तन आता हैं। परन्तु वह पियाजे की समस्या समाधान कुशलताओं के विकास की व्याख्या को काफी व्यक्ति निष्ठ अस्पष्ट तथा अधूरी मानते है। पियाजे के अनुसार संवेगात्मक विकास की निम्न चार अवस्थाएं होती है । तथा समस्या समाधान की योग्यता इन्हीं अवस्थाओं के अनुरूप होती है।

– संवेदी चालक अवस्था
– पुन: संक्रियात्मक अवस्था
– मूर्त संक्रियात्मक अवस्था
– अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था

बालकों के विशेष कर उनके संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन पर पियाजे का बहुत अधिक प्रभाव रहा है। उसका सबसे प्रमुख योगदान उसकी इस विचारधारा का है कि बालक स्वाभाविक रूप से एक उत्सुक प्राणी होते हैं जो सक्रिय रूप से अपने वातावरण की खोज करते है तथा जिस घटना को यह नहीं समझते, उसको समझने के लिए व्याख्याओं (Explanation) का निर्माण करते है। मानव स्वभाव के बारे में यह एक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण था जो उस समय प्रचलित परम्परागत विचारधारा से बिल्कुल विपरीत था जिसमें बालक को वातावरण के प्रभावों को निष्क्रिय रूप से प्राप्त करने वाला माना जाता था तथा जिसे संसार के तरीकों को सिखाना पड़ता था और उसे चिंतन के लिए प्रशिक्षित करना होता था। परन्तु पियाजे के सिद्धांत की प्रति-पुष्टि के लिए किये गये अध्ययनों से उसमें कई कमियों का पता चला जैसे

– बालक जिस समय हमें पियाजे के सिद्धांत के अनुसार अपेक्षा करनी चाहिये, उस समय बहुत सी बौद्धिक क्रियाओं का प्रदर्शन नहीं करते या निर्धारित विकास अवस्था में प्रवेश नहीं करते।

– पियाजे के सिद्धांत क्षमता (competence) और निष्पादन (performance) में विभेदीकरण नहीं करते। पियाजे का आशय उन अधस्थ क्षमताओं या ज्ञानात्मक संरचनाओं का पता लगाना था जो यह निर्धारित करती है कि बालक विभिन्न ज्ञानात्मक कार्यो पर कैसा प्रदर्शन करेगा। वास्तव में उसकी यह धारणा थी कि यदि कोई व्यक्ति उसके परीक्षण पर किसी समस्या को हल करने में सफल नहीं होता तो उसका कारण यह होता है कि उसमें उन अधस्थ संकल्पनाओं (underlying concepts) या चिंतन संरचनाओं का अभाव होता है जो उसके हल के लिए आवश्यक है। बहुत से शोधकर्ता ऐसा विश्वास करते है कि निर्णायक क्षमताओं के अतिरिक्त इस प्रकार की असफलता के अन्य कई कारण भी हो सकते है। जैसे उदाहरण के लिए चार और पाँच वर्ष के बालक जो ऐसा लगता था कि जीव और निर्जीव में अंतर जानते थे या अविचारित (random) तथा सउद्देश्य घटनाओं में अंतर जानते थे, पियाजे के परीक्षणों में असफल रहे। क्योंकि पियाजे ने उनसे उन सिद्धांतों की व्याख्या करने को कहा जो वह समझते थे पर स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर सकते थे। उनकी असफलता का कारण अक्सर उनकी भाषा सम्बन्धी या अपने विचारों को स्पष्ट व्यक्त करने में कमजोरी थी ना कि आवश्यक विचार संरचना (thought structure) इसी प्रकार सूचना प्रसाधन वादियों का यह विश्वास है कि कई छोटे बच्चे बहुत से

मूर्त संक्रियात्मक कार्यो (tasks) पर इसलिए असफल नहीं होते कि उनमें अपने चिन्तन की वस्तुओं पर संक्रिया करने की क्षमता नहीं होती जैसा की पियाजे की मान्यता है बल्कि इसलिये कि उनमें कार्य से सम्बन्धित सभी सूचनाओं को स्मृति में इकट्ठा करने तथा उन्हें रोक रखने कि योग्यता नहीं है।

बाद में पियाजे ने भी क्षमता तथा निष्पति (competency and performance) में विभेदीकरण करने की आवश्यकता समझी।

– पियाजे के अनुसार उसकी बौद्धिक विकास की अवस्थायें समग्र संरचनायें (holistic structures) है। अर्थात् चिन्तन के वे संगत तरीके है जो काफी विस्तृत क्षेत्र के कार्यो पर प्रयोग किये जाते हैं उदाहरण के लिए अब हम कहते है कि बालक मूर्त-संक्रियात्मक अवस्था में है तो उसका अर्थ यह है कि वह ज्ञानात्मक संक्रियाओं पर आश्रित होगा तथा उन विशाल बौद्धिक समस्याओं के बारे में जिनका उसे सामना करना पड़ता है तार्किक चिन्तन कर सकेगा।

अन्य शोध कर्ताओं ने पियाजे की समग्र संरचना की अवधारणा को चुनौती दी है तथा इस विचार पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया है कि ज्ञानात्मक विकास अवस्थाओं में होता है (Brainerd 1978, Flavell1985)[18]

– पियाजे के सिद्धांत की एक बड़ी कमी यह है कि वह यह स्पष्ट रूप से नहीं बता पाता कि बालक बुद्धि की एक स्थिति से दूसरी स्थिति में कैसे जाते है।

पियाजे के अनुसार मस्तिष्क तथा नाड़ी संस्थान की बढ़ती परिपक्वता बालक की वस्तुओं एवं घटनाओं के बढ़ते हुए जटिल अवबोध (increasing complex understanding) की रचना करने में सहायता होती है । इसीलिए शायद बालक

(1) अपने पारस्परिक स्तर तथा वर्तमान संज्ञानात्मक संरचना के स्तर के अनुरूप नवीन अनुभवों के बराबर आत्मसात करते रहते है।

(2) इन अनुभवों के आधार पर अपने चिन्तन को समायोजित एवं परिमार्जित करते है।

(3) अपनी संरचनाओं को अधिक से अधिक जटिल मानसिक मनोबन्धों (Schemata) के रूप में पुनर्गठित करते हैं जिससे उनमें वातावरण के नवीन पक्ष के साथ ज्ञानात्मक संतुलन को पुनस्थापित करने की योग्यता आती है। इस प्रकार जैसे जैसे बालक अधिक से अधिक परिपक्व होता है अधिक जटिल सूचनाओं को आत्मसात करता है, नवीन मनोबन्धों की रचना करता है तथा पुनर्गठित करता है। वह परिचित वस्तुओं एवं घटनाओं को नवीन दृष्टि से देखता है और एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर धीरे-धीरे अग्रसर होता है।

परन्तु इस प्रकार की अस्पष्ट व्याख्या उत्तर प्रदान करने के स्थान पर कहीं अधिक प्रश्नों को जन्म देती है जैसे

1. संवेदी चालक अवस्था से पुर: संक्रिया अवस्था या एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने के लिए किन परिपक्व परिवर्तनों की आवश्यकता होगी

मानसिक प्रतीकों (Symbols) की रचना करने के लिये, संज्ञानात्मक संक्रियाओं को समझने के लिए या विचारों पर संक्रिया करने के लिए और परिकल्पनात्मक (hypothetical) वस्तुओं के बारे में सोचने के लिए उसे किरन प्रकार के अनुभव होने चाहिए ' इनके बारे में पियाजे के विचार स्पष्ट नहीं है सूचना प्रसाधन सिद्धान्त संज्ञानात्मक विकास तथा विकास के अन्य पक्षों से उसके सम्बन्धों के बारे में अधिक समझ प्रदान करते है।

राबर्ट सिंगलर (Siegler 197819,198120, 198321) का नियम निर्धारण उपागम (rule assessment approach) बड़ी अच्छी तरह प्रदर्शित करता है कि सूचना - प्रसाधन वादी तार्किक चिन्तन तथा समस्या-समाधान कुशलताओं के विकास का किस प्रकार अध्ययन करते है । सिगलर की आधारभूत मान्यता सीधी सीधी है।

जब बालक के सामने कोई नवीन चक्कर खिलाने वाला (puzzling) अनुभव आता है या कोई समस्या हल करने के लिए होती है तो वह पहले सूचनायें इकट्ठा करता है उसके बाद जो कुछ उसने देखा या अनुभव किया है उसकी व्याख्या करने के लिए एक नियम बनाता है सम्भवत: जो नियम वह तात्कालिक कार्य पर लगाने के लिए प्रयोग करता है वह मुख्यत: उस सूचना पर निर्भर करेगा जिसका उसने कूट (encode) किया है अर्थात जिस पर उसने ध्यान दिया है और उसकी व्याख्या (interpret) की है। सिगलर के अनुसार समस्या-समाधान कुशलता के विकास को समझने के लिए हमें पहले उन नियमों को पहचानना होगा जो बच्चे अपनी समस्याओं के हल में प्रयोग करते है और उसके बाद यह पता लगाना होगा कि यह नियम समय के साथ कैसे और क्यों बदलते है। औपचारिक-संक्रियात्मक तर्क (Formal operating reasoning) के मूल्यांकन के लिए सिगलर ने अपने नियम-निर्धारण उपागम में जिन कार्यो का प्रयोग किया है वे पियोज ओर इन्हेल्डर (Inhelder and piaget1958)22 के समान, तुला-संतुलन वाली समस्यायें थी। तुला-संतुलन उपकरण जैसा कि आगे दिखलाया गया है, के हर बाजू पर चार खूंटियां (pegs) समान अंतर पर है।

एक बार जब विभिन्न खूटियों पर -भार रखे जाते है तो बालक को यह भविष्य वाणी करने की कहा जाता है कि यदि तुला के ब्रेक को जो उसे निश्चल रखे हुए हैं छोड़ दिया जाये तो

क्या वह संतुलित रहेगी?

क्या वह बांई ओर झुकेगी'

क्या वह दांई ओर झुकेगी?

स्पष्ट रूप से समस्या के दो महत्वपूर्ण पक्ष है: हर बाजू पर भारों की संख्या तथा उनकी आलम्ब से दूरी। सिगलर के अनुसार बालक तुला समस्याओं को हल करने के लिए निम्न चार नियमों में से कोई एक का सहारा ले सकते है तथा यह नियम, जिस प्रकार की सूचना पर वह ध्यान देते है तथा उनका संकेतन (encode) करते है, उस पर निर्भर करेगा-

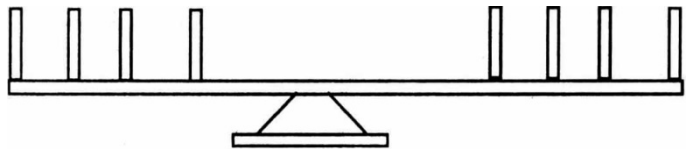

1. नियम.

बालक केवल भारों की संख्या पर ध्यान देता है और यह निष्कर्ष निकालता है किस भुजा पर अधिक भार होगा वह झुकेगी। यदि दोनों बाहुओं (arms) पर भार बराबर होगा तो तुला संतुलित रहेगी।

2. नियम.

बालक भार पर अधिक ध्यान देता है और बराबर वह भविष्यवाणी करता है कि जिस बाहु पर अधिक भार होगा वह झुकेगी। केवल जब दोनों बाहुओं पर भार बराबर होंगे वह भारों की अवलम्ब (fulcrum) से दूरी पर ध्यान देगा।

3. नियम.

बालक भविष्यवाणी करते समय सदैव भार तथा दूरी दोनों पर ध्यान देता है, परन्तु यदि एक बाहु पर अधिक भार है जब कि दूसरी बाहु के भार अबलम्ब से अधिक दूरी पर है, तो उसमें अर्तद्वन्द्व (mental conflict) होता है और वह केवल अटकल लगाता है कि क्या होगा?

4. नियम

बालक सदैव भार और दूरी दोनों पर ध्यान देता है तथा यह समझने लगता है कि प्रत्येक बाहु पर बल-पूर्ण (torque) भार x दूरी का फलन (function) है अर्थात् उस पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए यदि बाई तरफ वाली बाहु पर दूसरी खूंटी पर तीन भार है तथा दांई बाहु पर चौथी खूँटी पर दो भार है तो बांया घुर्ण बल =3x2=6 तथा दायां पूर्ण बल =2x4=8 इसलिए दाहिनी बाहु झुकेगी।

यह देखने के लिए कि बालक संतुलन समस्याओं के लिए हल में कौन सा नियम प्रयोग करता है, कौन सी रण-नीति अपनाता है, सिगलर ने निम्नलिखित छः प्रश्न बालक के सामने रखे ओर सभी प्रश्नों पर उसकी प्रतिक्रियाओं के प्रतिरूपों (patterns) का अध्ययन किया। यदि बालक बराबर उपरोक्त किसी एक नियम का पालन करता है तो: उसके उत्तर नीचे की तालिका में प्रदर्शित चार प्रतिरूपों (patterns) में से किसी एक के अनुरूप होंगे।

तालिका 1 संतुलन समस्याएं तथा सिगलर के हर नियम के हर नियम के प्रयोग के अनुरूप उत्तरों के प्रति रूप (Shaffer opp cil p. 343) रूप से उद्घृत

समस्यायें	सही उत्तर	सिगलर के नियम			
1.	संतुलन Blance	100% सही	100% सही	100% सही	100% सही
2.	बांया झुकाव	100% सही	100% सही	100% सही	100% सही
3.	बांया झुकाव	0%रहेगा भुजा संतुलित	100% सही	100% सही	100% सही
4.	बांया झुकाव	100% सही	100% सही	100% सही अटकल	100% सही
5.	बांया झुकाव	0% सही दाहिना झुकाव	0% सही दाहिना झुकाव	33% सही अटकल प्रतिक्रिया	100% सही
6.	संतुलन	0% दाहिना झुकाव	0% दाहिना झुकाव	33% सही अटकल	100%

उदाहरण के लिए यदि कोई बालक नियम एक की रणनीति अपनाता है अर्थात केवल भार को encode करता है तो वह समस्या 1,2 और 4 को हल कर सकेगा परन्तु यह गलत निर्णय लेगा कि समस्या तीन में तुला संतुलित होगी तथा 5 और 6 में दाहिनी ओर झुकेगी। इसी प्रकार नियम तीन का प्रयोग करने वाला समस्या 1,2 और 3 को हल कर लेगा परन्तु 4,5,6 में अटकल लगायेगा। जब सिगलर (1981) ने तील से 20 वर्ष के विषय पर इन छः प्रश्नों का प्रयोग किया तो उसने देखा कि 4 से 20 वर्ष के 91 प्रतिशत लोगों ने इस प्रकार प्रतिक्रियायें की, मानों वे चार में से किसी एक नियम का प्रयोग कर रहे है। यही नहीं विभिन्न नियमों का प्रयोग करने वालों में आयु की भिन्नता भी थी, जैसे -

- तीन वर्ष के लगभग सभी बच्चे कोई नियम नहीं प्रयोग कर रहे थे
- चार से पांच वर्ष के बालक केवल भार को कूट (encode) कर रहे थे इस तरह समस्या के समाधान में पहले नियम पर आश्रित थे।
- आठ वर्ष तक आते आते बालक सामान्य: नियम दो या तीन का प्रयोग कर रहे थे।
- बारह वर्ष के अधिकांश बालक समस्या समाधान के विधि के रूप में नियम तीन पर स्थापित हो गये थे।
- बीस वर्ष वाले अधिकांश लोगों के नियम तीन पर आश्रित होना जारी रखा परन्तु इनमें से 30 प्रतिशत लोगों ने भार x दूरी सिद्धांत को खोज निकाला और वे नियम 4 पर आश्रित हो रहे थे।

इन सबसे ऐसा आभास होने लगता है कि यह अध्ययन भी पियाजे की तरह समस्या समाधान कुशलता में आयु विभिन्नता को दर्शाता है। परन्तु सबसे प्रमुख अंतर यह है कि यह ' 'कैसे' ' और ' 'क्यों ' का भी उत्तर देता है जो पियाजे में नहीं मिलता। सिगलर का नियम-निर्धारण उपागम शोधकर्ता को यथार्थ रूप से (exactly) यह निर्दिष्ट करने देता है कि बालक कैसे सम्बन्धित सूचनाओं का प्रसाधन कर रहे हैं या करने में असफल हो रहे हैं। इस प्रकार यह संकेत देता है कि वे किसी विशेष समस्या या उससे मिलती जुलती समस्याओं को ' 'क्यों' ' नहीं हल कर पा रहे हैं। सिगलर की निम्नलिखित एक अन्य व्याख्या इसको और अधिक स्पष्ट करती है।

सिगलर (1976)23 ने उन 5 और 8 वर्ष के बालकों का अनुपरीक्षण किया जो नियम एक का प्रयोग कर रहे थे अर्थात केवल भार की संख्या पर ध्यान दे रहे थे। यदि उनके उत्तरों से उनकी चिन्तन "अवस्था" का अनुमान लगाया जाता जैसा पियाजे करता तो यह निष्कर्ष निकलता कि उन सभी में इन समस्याओं के लिए, समान संज्ञानात्मक संरचनायें (cognitive structure) थी। परन्तु जब सिगलर ने उन्हें ऐसे अनुभव प्रदान किये जो यह प्रदर्शित करते कि नियम-1 अपर्याप्त था तो अक्सर 8 वर्ष के बालकों ने इस नियम का परित्याग करके नियम-2 या नियम 3 को अपनाया परन्तु 5 वर्ष के बालकों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं आया। परन्तु ऐसा क्यों हुआ? इसके लिए सिगलर की परिकल्पना यह थी कि 8 वर्ष के बालक 5 वर्ष के बालकों की अपेक्षा अधिक सूचनायें कूट करते थे। शायद वे भार तथा दूरी दोनों पर ध्यान दे रहे थे परन्तु तुला-संतुलन समस्या के हल में केवल भार पर आश्रित थे। और जब केवल भार कानियम अपर्याप्त साबित हुआ तो उन्होंने दूरी की सूचना जिसका उन्होंने कूट किया थाउस पर ध्यान देना शुरू किया। इस प्रकार नियम- 1 से निकल कर नियम-2 या नियम-3 पर आ गये। इसके विपरीत शायद 5 वर्ष के बालकों ने तुला उपकरण के प्रत्येक भाग पर केवल भार की संख्या को कूट किया और दूरी पर सूचना की पूर्णत: उपेक्षा की। यदि ऐसा है तो जब उनका केवल भार वाला नियम

अपर्याप्त साबित हुआ तो उनके पास उसी नियम को बराबर प्रयोग करने या किसी भी नियम पर न कार्य करने के अलावा कोई तीसरा विकल्प नहीं होना चाहिये।

सिगलर ने अपनी परिकल्पना की पुष्टि के लिए एक साधारण स्मृति परीक्षा ली जिससे उसने बालकों को उन स्थितियों तथा भारों को याद करने के लिए कहा जिसे. उन्होंने उसी समय संतुलन तुला पर देखा था। 5 वर्ष के बालकों का केवल तुला के दोनों बाहुओं पर रखे भारों की याद आई परन्तु 8 वर्ष के बालकों ने भार तथा दूरी दोनों सूचनाओं को याद रखा। परन्तु क्या 5 वर्ष के बालकों को कभी नियम-2 का प्रयोग सिखाया जा सकता है? ही निश्चित रूप से, परन्तु उसके लिए पहले उन्हें दूरी की सूचनाओं को कूट करने का प्रशिक्षण देना होगा जिससे कि जब उन्हें यह लगे की भार का नियम अपर्याप्त है तो वह इस दूरी की निविष्ट (input) पर विचार कर सकें।

इस सबका आशय यह हुआ कि 5 वर्ष के बालक की नवीन नियम सीखने की योग्यता केवल उनके वर्तमान नियम या समस्या समाधान के लिए संज्ञानात्मक संरचना पर निर्भर नहीं करती बल्कि उनकी सम्बन्ध सूचनाओं के कूट करने की योग्यता पर भी निर्भर करती है।

इस प्रकार सूचना प्रसाधनवादी पियाजे के साथ इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि विभिन्न प्रत्ययों (concepts) में पारंगत होने के पहले बालक वैकल्पिक अबबोधों (alternate understanding) की एक श्रृंखला से प्रति की ओर बढ़ते है परन्तु इनका विश्वास है कि नियम निर्धारण उपागम पियाजे के उस सिद्धांत से अधिक परिशुद्ध है, क्योंकि यह संकेत देता है कि बाल का चिन्तन किसी विशिष्ट रूप में क्यों है तथा उन सूचनाओं का उल्लेख करने में सहायक होता है जिस पर बालकों को एक स्तर से दूसरे स्तर पर जाने के लिए ध्यान देना चाहिये।

सूचना प्रसाधनवादी पियाजे की इस धारणा से सहमत है कि आयु के साथ बालकों में उनके द्वारा प्रयुक्त समस्या-समाधान विविधों में गुणात्मक परिवर्तन आता है परन्तु वह पियाजे की समस्या समाधान कुशलताओं के विकास की व्याख्या को व्यक्तिनिष्ठ, अस्पष्ट तथा अधूरा मानते हैं।

पियाजे के अनुसार समस्या समाधान की योग्यता संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाओं के अनुसार होती है । अर्थात बौद्धिक क्रियाओं का विकास अवस्थाओं में होता है। परन्तु बाद के अध्ययनों में पियाजे के सिद्धांत में निम्नलिखित कमियां देखने को मिलीं -

1. पियाजे के अनुसार अक्सर बालक में जिस अवस्था में जिन बौद्धिक क्रियाओं के करने की क्षमता आनी चाहिये उसका प्रदर्शन 'उनमें देखने को नहीं मिलता।
2. उसके सिद्धांत क्षमता और निष्पादन में विभेदीकरण नहीं करते।
3. उसके शोधकर्ता उसकी इस धारणा से सहमत नहीं कि बौद्धिक विकास की अवस्थायें एक समग्र संरचनाएं (holistic structure) हैं तथा इस अवधारणा पर प्रश्न चिन्ह लगाया कि ज्ञानात्मक विकास अवस्थाओं में होता है।
4. पियाजे के सिद्धांत यह स्पष्ट नहीं करते कि बालक एक अवस्था से दूसरी' अवस्था तक कैसे जाते हैं। पियाजे के अनुसार आयु के साथ नाड़ी संस्थान की बढ़ती हुई परिपक्वता के कारण बालक अधिक से अधिक जटिल वस्तुओं और घटनाओं को समझने तथा उन पर संक्रिया करने योग्य बनते हैं। परन्तु इस प्रकार की अस्पष्ट व्याख्या कई प्रश्नों को जन्म देती है जैसे उदाहरण के लिए संवेदी बालक अवस्था से पुन: संक्रियात्मक अवस्था में जाने के लिये किन परिपाटी परिवर्तनों की आवश्यकता होगी? किस प्रकार के अनुभवों

की आवश्यकता होगी? आदि सूचना प्रसाधनवादी इन प्रश्नों के अधिक स्पष्ट उत्तर प्रदान करते है।

13.6 सूचना - प्रसाधन उपागम की वर्तमान स्थिति (Latest Condition of Information Processing Approach)

"ज्ञानात्मक विकास" मनोविज्ञान में एक प्रमुख शोध विषय बन गया है। इस दिशा में बौद्धिक विकास के जो सिद्धांत वर्तमान में प्रचलित है 'उसमें से पियाजे का सिद्धांत अपने आप में सबसे क्रमबद्ध और विस्तृत सिद्धांत है। वास्तव में उसके मानने वाले सूचना प्रसाधन वादियों के उपागम (approach) को केवल एक खंडमय (fragmental) उपागम मानते हैं क्योंकि उसके अनुसार सूचना प्रसाधनवादी केवल विशिष्ट ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं पर ही निष्ठापूर्वक ध्यान देते है और विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञानात्मक विकास को केवल साधारण कुशलता प्राप्त करने या समस्या समाधान की रणनीति के रूप में देखते हैं। वह यह प्रश्न करते हैं कि इस प्रकार का केवल "विशिष्ट पर ध्यान" हमें बालकों में वास्तविकता की संरचना में जो परिवर्तन आता है और जिसमें काफी समय लगता है उसके समग्र दृष्टिकोण को समझने में कैसे सहायक हो सकता है।

इस पर सूचना प्रसाधनवादी यह कह सकते है कि पहले तो पियाजे के सिद्धांत (theory) की ज्ञानात्मक विकास की व्याख्या में बहुत सी जो समस्यायें थी उन्होंने ही उनके कार्यो को प्रेरणा दी। यद्यपि बहुत से सूचना प्रसाधनवादी नव-पियाजे (Neo-Piagetian) वादी है जो पियाजे के विशाल योगदान को सहज रूप में स्वीकार करते हैं परन्तु उनका यह कहना बिल्कुल सही है कि जितना पियाजे सोचता था बालकों का चिन्तन समस्याओं या उसके क्षेत्रों के संदर्भ में उतना समरूप नहीं होता। वे पियाजे की इस दृष्टिकोण को भी चुनौती देते हैं कि उनके बौद्धिक विकास के अध्ययन छिन्न-भिन्न (disorderly)ए या अव्यवस्थित (chaotic) हैं। कम से कम अवधान, स्मृति तथा समस्या समाधान के क्षेत्र में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे सूचना प्रसाधन सिद्धांत के अनुरूप पूर्व निर्धारित क्रम में विकसित होते है तथा शैशवाकाल से किशोरावस्था एक धीरे-धीरे अधिक व्यवस्थित तथा योजनाबद्ध होते जाते हैं। यद्यपि इस दिशा में काफी शोध करना बाकी है, परन्तु सूचना प्रसाधन, उपागम पियाजे द्वारा वर्णित यह सब महत्वपूर्ण विकास, जैसे श्रेणीबद्धता वर्गीकरण, यथार्थ चित्रण संधारण, परिकल्पनात्मक निगमनिक तर्क (Seriation,Classification, perspective talking conservation and hypothetical deducting reasoning) जैसे योग्यताओं के उद्भव (appcarance)तथा परिमार्जन (refinement) की अधिक समृद्धि तथा विस्तृत व्याख्या करने में सहायक है।(case 1985, Flavell 1985, Rosser 1983)।

सारांश में, सूचना-प्रसाधन उपागम एक विकासशील सिद्धांत है जिसे पियाजे के पहले की तरह रूपरेखा (frame work) का विकल्प मानने के स्थान पर उसका पूरक मानना अधिक उपयुक्त होगा। निश्चित ही यह ज्ञानात्मक विकास का यह नया दृष्टिकोण बराबर बढ़ता रहेगा जो कि पियाजे के सिद्धांत में जो कमियां रह गई हैं उन्हें दूर करेगा और इस तरह बौद्धिक विकास के ऐसे विस्तार पूर्ण सिद्धांत को बनाने में योगदान देगा जिसमें दोनों उपागमों (Approaches) की सर्वश्रेष्ठ विशेषतायें शामिल होंगी।

13.7 सूचना - प्रसाधन शोधों के कुछ शैक्षिक उपयोग (Educational Implication of Researches related to Information Processing Theories)

पियाजे ने शिक्षकों को अपने छात्रों को अधिमग सीखने में सहायता देने के लिए कई सुझाव दिये थे। इसमें से सबसे प्रमुख सुझाव यह था कि उन्हें अपने छात्र को स्वाभाविक रूप से एक ऐसे जिज्ञासु प्राणी के रूप में देखना चाहिये जो अपने अनुभव के माध्यम-से-नवीन (moderately nevel) पक्ष से अपने स्वयं को -ज्ञान का निर्माण करके सबसे अच्छी तरह सीखता है। वातावरण से आने वाली जो सूचना उसकी समझ के लिये चुनौती पूर्ण होती है वह उसे अपने वर्तमान ज्ञान का पुन: मूल्यांकन करने पर बाध्य करती है। परन्तु यदि जो अवधारणायें (concepts)शिक्षक उन्हें सिखाना चाहता है वह बहुत अधिक जटिल है तो बालक उन्हें आत्मसात करने या उस शिक्षण के साथ समन्वय करने में असफल होंगे। शिक्षक का कार्य छात्रों को तथ्यों से अवगत, कराना उनके लिए सक्रिय रूप से समस्याओं की संरचना करना या सही उत्तरों को पुनर्वासित करना उतना आवश्यक नहीं जितना कि वह वातावरण, पृष्ठभूमि (setting) और सामग्री जुटाना है जो उत्सुक बालकों को अपने आप प्रमुख अवधारणाओं (concepts) की खोज करके आंतरिक संतुष्टि प्रदान कर सकें।

सूचना प्रसाधनवादी भी इस बात से सहमत हैं कि बालक एक सक्रिय और उत्सुक खोजकर्ता है जो उन अनुभवों से जो उसकी समझ से कुछ उच्च स्तर के होते हैं नवीन ज्ञान का निर्माण कर सबसे अच्छी तरह सीखते है। परन्तु प्रभावी शिक्षण के लिए इन लोगों के अपने दिशा निर्देश (guide lines) पियाजे से अधिक स्पष्ट है तथा उनका आशय यह है कि शिक्षक को जैसा पियाजे ने कल्पना की थी उससे कहीं अधिक सक्रिय और निर्देशिक भूमिका निभानी चाहिये । इस दिशा में उन्होंने निम्नलिखित सुझाव दिया है -

13.7.1 शिक्षक को उन कार्यो या समस्याओं, जिन्हें वह छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने जा रहा है, की आवश्यकताओं का भली भांति विश्लेषण करना चाहिये। उसे यह जानना आवश्यक है कि :

(अ) इन समस्याओं में सही उत्तर पाने के लिए या पाठ को समझने और सीखने के लिए बालकों को किन सूचनाओं को कूट करना या उन पर ध्यान देना चाहिये।

(ब) किन मानसिक क्रियाओं को करना चाहिये।

इस ज्ञान के बिना शिक्षक यह नहीं समझ पायेंगे कि छात्र गलतियां क्यों कर रहे हैं और उन्हें अपनी गलतियों को सुधारने में सहायता नहीं दे पायेंगे।

13.7.2 शिक्षक को बालकों की लघुकालिक स्मृति की मांग (demand) को घटा कर न्यूनतम करना चाहिए -

जिन समस्याओं में छोटी कक्षा के बालकों को 3-4 से अधिक सूचना टुकड़ों (bits) को कूट करने (encode) की अर्थात उन पर ध्यान देने की जरूरत होगी वह समस्यायें लघुकालिक भण्डारण के लिए उन पर उनकी क्षमता से अधिक भारी पड़ेगी तथा उन पर तार्किक चिन्तन करने में बाधक होगी। इसलिए शिक्षक को किसी नवीन समस्या को या अवधारणा को सरल रूप में

प्रस्तुत करना चाहिये। यदि किसी समस्या में कई पद (steps) है तो छात्रों को उसे टुकड़ों में या उप-नेमकाओं (Sub-routines) में विभक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये। छात्रों को उन भागों के हल को अपनी नोटबुक में लिख लेना चाहिए, जिससे लघुकालिक भण्डारण पर मांग कम हो सकें। एक बार जब छात्र किसी अवधारणा (concepts) को समझ लेंगे और उनकी सूचना प्रसाधन-क्रिया अधिक स्वचालित हो जायेगी, तो उनकी लघुकालिक भण्डारण क्षमता इन्हीं विचारों या समस्याओं को जब वह अधिक जटिल में रूप प्रस्तुत किये जाते हैं, को हल करने में सहायक होगी (case 1985)।

13.7.3 शिक्षक को छात्रों के गलत उत्तरों को उनमें नया अधिगम प्रदान करने का अवसर समझना चाहिये। उन्हें ऐसे रास्ते ढूँढने चाहिये जिससे

- यह पता चल सकें कि बालक ने समस्या से सम्बन्धित सभी सूचनाओं को कूट कर लिया है या नहीं।
- यह पता चल सकें कि वह किस नियम के प्रयोग के कारण गलत हल पर पहुंचा।

इसके पहले कि बालक उन अनुभवों से फायदा उठायें जो यह दर्शाते हैं कि जो नियम उसने प्रयोग किया है वह अपर्याप्त है, उसकी संगत सूचनाओं के कूट करने (encode) करने की असफलता को दूर करना होगा (Siegler 1976)1 अर्थात उसे इन सूचनाओं पर ध्यान केन्द्रित कराना होगा जिस पर उसने पहले ध्यान नहीं दिया।

13.7.4 बालकों को ऐसे खेल खिलाने चाहिये जिससे स्मृति का प्रयोग हो । ऐसे चुनौती पूर्ण खेल जिसमें ध्यान को एकाग्र करने की आवश्यकता होती है, जैसे की पजल (puzzle)को हल करना, ऐसे खेल बच्चों को केवल आनन्द दायक ही नही लगते वह उन सूचनाओं 'के महत्व को भी समझाने में सहायक होते हैं।

13.7.5 शिक्षक को छात्रों को प्रभाव स्मृति रणनीति को सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिये:-

- यह अवसर कई प्रकार से प्रदान किये जा सकते हैं।
- जिन सूचनाओं के बारे में शिक्षक छात्रों को बता रहा है उन्हें वर्गीकृत समूहों में प्रस्तुत ' करना।
- बालकों को छांटने तथा वर्गीकरण करने के लिए ऐसे आइटम्स देने चाहिए जिसका आसानी से वर्गीकरण हो सकें।
- ऐसे प्रश्न उत्तर वाले खेल खिलौने चाहिए जैसे-कुत्ते,बिल्ली तथा मछलियों में क्या समानता है? चिड़िया और मधुमक्खियाँ, हैलिकॉप्टरो और प्रक्षेपों से किस प्रकार भिन्न है। ऐसे प्रश्न छोटे कक्षा के बालकों के लिए चुनौतीपूर्ण है और उन्हें उन प्रत्यात्मक समानताओं और भिन्नताओं के प्रति सचेत करते है जिन पर संगठनात्मक रणनीतियां निर्भर करती है।

13.7.6 शिक्षक को अपने पाठ की संरचना

इस प्रकार प्रस्तुत करनी चाहिये जिससे बालकों मे तात्विक ज्ञान (meta congition) को प्राप्त करने की सम्भावना हो और वह यह समझ सकें कि उन्हें अपनी ज्ञानात्मक क्रियाओं की किस प्रकार योजना बनानी चाहिये, किस प्रकार उनका संचारेक्षण (monitering) करना चाहिये और उन पर नियंत्रण करना चाहिये। उन्हें केवल उपयुक्त सूचना प्रसाधन कुशलताओं को सिखाने से

काम नहीं चलेगा क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि वह उनका प्रयोग करे। यदि इन कुशलताओं का प्रयोग अन्य नवीन स्थितियों में करना है तो बालकों को यह समझना होगा कि वह रणनीतियाँ उन्हें अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में किस प्रकार सहायक होगी। शिक्षक के रूप में बालकों को सहायता देने के लिए आपको अपने स्वयं के तात्विक ज्ञान (metacognition) का प्रयोग करना होगा। जैसे बालकों को इस दिशा में सुझाव देकर जैसे "तुम महीनों के नाम आसानी से याद रख सकोगे यदि तुम उनका ऋतुओं के अनुसार समूह बनाओं"

- जो रणनीतियाँ उन्होंने सीखी है उन पर प्रश्न करके जैसे "जो तुमने पढ़ा है उसका सारांश बनाना क्यों महत्वपूर्ण है?"
- तुम्हें अपने उत्तरों की दुबारा जांच करने की क्या आवश्यकता है? इत्यादि

यह सभी विधियां बालक के तात्विक ज्ञान सम्बन्धी कुशलताओं को बढ़ाने में सहायक होती है तथा उस ज्ञान को बौद्धिक चुनौतियों का सामना करने मे प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

13.8 सारांश (Summary)

वास्तव मे सूचना प्रसाधन सिद्धांत व्यवहारवादी सिद्धांत की अपेक्षा गेस्टाल्टवादी मॉडल के अधिक करीब है। इस सिद्धांत में व्यक्ति को एक सूचना प्रसाधक के रूप में देखा जाता है तथा इस सिद्धांत में आधारभूत मान्यता यह है कि उद्दीपन और अनुक्रिया के बीच प्रसाधन पदों की एक क्रमिक श्रृंखला होती है, इस श्रृंखला में पहले प्रसाधन पद के क्रियाशील 'होने के पश्चात् ही अगला प्रसाधन पद क्रियाशील होता है।

सूचना प्रसाधनवादी प्रभावी शिक्षा के लिए शिक्षकों को निम्नलिखित सुझाव देते हैं।

1. समस्याओं जिन्हे वे छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने जा रहे है उनकी आवश्यकताओं (requirement) का उन्हें भली भांति विश्लेषण करना चाहिये जैसे -

(अ) समस्या समाधान के लिए छात्रों को किन सूचनाओं पर ध्यान देना चाहिये।

(ब) किन मानसिक क्रियाओं में उन्हें प्रशिक्षण देना चाहिये।

2. लघुकालिक स्मृति की मांग को न्यूनतम करना चाहिये।
3. उनके गलत उत्तर पर यह जानना चाहिये कि -

(अ) क्या उन्होंने समस्याओं से संबंधित सभी सूचनाओं पर ध्यान दिया है?

(ब) किस नियम के प्रयोग के कारण उन्होंने गलत उत्तर दिये तथा उनकी कमियों को दूर करना चाहिये।

4. ऐसे चुनौतीपूर्ण खेल खिलौने चाहिये जिसमें ध्यान को एकाग्र करने की आवश्यकता हो जैसे पजल्स (puzzles) को हल करना।
5. छात्रों को प्रभावी स्मृति रणनीति से सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिये।
6. शिक्षक को अपने पाठ की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत करनी चाहिये जिससे बालकों में तात्विक ज्ञान (metacognition) प्राप्त करने की संभावना है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. छोटे बालकों को बौद्धिक कमियों के अवधान सम्बन्धी कारणों का उल्लेख करें।
2. लघु तथा दीर्घ कालिक स्मृतियों में कोई तीन अन्तर बतायें।
3. शिक्षण में सूचना प्रसाधन सिद्धांत द्वारा दिये गये सुझावों पर प्रकाश डालें।

13.9 संदर्भ (References)

1. KlahvD and illance J.C. (1976) Cognitive Development An Information processing view. Earl baum Hiusdak, New Jersey.
2. Atkinson, R.C. and shiffirin, R.M. (1986) : Human Memory :A Proposed System and its Control Processes, in K.W.Spence (Eds) Psychology of learning and motivation: Academic press, Orlando Fi.
3. HouseB.J. (1982) : Learning process: Developmental Trends. InJ. Worell (Ed). Psycological development in the Elementary Years Academic Press Orlando florida.
4. Coin, N Suomi Morse and Sorse, P.A. (1982) - Echohic storage in infant perceptions child development.53, pp. 984990.
5. Anderson, D.R.Lorch. E.R. FieldD.d. Collins. PA. and Nathan J.G. (19860 Television Viewing at Home Age Trends in Visual Dattention and Time with T.V. Child Development 57 ,pp. 1024-1033.
6. Vlieststra A.A,G, (1982) Children's Responses to Task Instruction: Age Changes and Training Effects Child Development 53,pp.534-542.
7. Miller, H.P.and Weiss M.G. (1981) Children Attention Allocation, Under anding of Attention and Performance on the Incidental Learning Task, Children Development, 52 pp. 1183-1190.
8. Miller, P.H. Haynes, F.F. De. Marie - Ramsy. J. (1986) Children Strategies for Gathering Information in Three Task Child Development, 57 pp. 1429-1439.
9. Nelson K. (1984) : The Transition from fant to child memory in Mescovitch (Ed) Infant Memory in relation to normal and Pathological memory in Humans and other Animals, Plenum New York.
10. Somerville, S.C. Wellmon H.M. and Cultice J.C. (1983) : Young Children's Deliberate Reminding Journal of Genetic Psychology 143, pp. 87-96
11. Brown A.L. (1975) : The Development of Memory Knowing about Knowledge and knowing how to know in H.W. Rece (Ed) Advance in Child Development and Behaviour (vol.10) Academic Press Ortando, Florida.
12. Perlmuter, M. (1986) : A Lifespan view of Memory. In P.B. Baltes D.L. Featherman and R.M. Lerner (Eds). Life Span Development and Behaviour (vol 7) Erbium Hilldale New Jersey (Shaffer D.R. 1989) Development Psychology Sec Ed. Books/De Pub. Co. Pacific Groove California p.335)

13. Dempster, F.N. (1985) : Short Term Memory Development in Childhood and Adoles Cence, In Brainerd and M Pressely (Ed) Basic Process in Memory Development Progress in Cognitive Development Research, Springer Verlag New York Shaffer opplitpal 335).

14. Lindberg M.A. (1980) : Is Knowledge Base Development a Necessary and Sufficient Condition for Memory Development Journal of Experimental Child psychology 30, 410-410 Shaffer opp cal 335).

15. Case R. (1984) : The Process of Stage Transition : A Neopiagetian view In R.J. Sternberg (Ed) Mechanism of Cognitive Development, W.H. Freeman New York 1984 Shaffer opp cal 335).

16. Flavell, J.H. (1985) : Cognitive Development (2nd Ed) Prentice Hall, Engliwood Cliffs. New Jersey.

17. Kail R. (1986) : Source of Age Difference in Speed of Processing Child Development, 57 pp. 969-987 (Shaffer opp cal. P. 336).

18. Brainerd C.J. (1978) : The Stage Question in Cognitive Development Theory. Behavioural and Brain Science. 2, pp.173-213 Flavell J.H. opp cl.

19. Siegler R.S (1978) : The Origin of Scientific Thinking. In R.S. Siegler (Ed) Childrens Thinking : What Develops, New Jersey (Shaffer opp.w.p.342).

20. Siegler R.S (1981) : Development Sequences within and Between Concepts, Monographs of The Society for Research in Child Development 46, Serial No. 189 (Schaffer opp.at p. 342).

21. Siegler R.S (1983) : Information Processing Approaches to Development in P.H. Mussen (Ed) Hand Book of Child Psychology vol. I Hostry Theory and Methods, Wiley New York Shaffo opp at p. 342).

22. In Helder B and Piaget J. (1958) : The Growth of Logical Thinking from Childhood to Adolescence basic books. New York (Shaffer opp at p. 342).

23. Siegler R.S (1976) : Three aspects of Cognitive Development Cognitive Psychology 8, pp.481-520.

24. Rosser R.A. (1983) : The Emergence of Spatial Perspective Talking : an Information Processing Alternative to Egocentrism, Child Development, 54 pp. 660-668 (Shaffer opp. Cal. P. 344).

इकाई-14

अधिगम का स्थानान्तरण (TRANSFER OF LEARNING)

इकाई की संरचना

14.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

14.2.0 अधिगम के स्थानान्तरण का अर्थ

14.3.0 अधिगम का स्थानान्तरण: प्रकार

14.4.0 अधिगम का स्थानान्तरण: सिद्धांत

14.5.0 अधिगम स्थानान्तरण के निर्धारक

14.8.0 अधिगम स्थानांतरण के लिए शिक्षण

14.7.0 सारांश

14.8.0 संदर्भ

14.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

विद्यालयों में दिये जाने वाला ज्ञान निरर्थक होता है यदि छात्र व्यावहारिक जीवन में उनका उपयोग न कर सकें। जब बालक /व्यक्ति सीखी हुई क्रिया का अन्य समान परिस्थितियों में उपयोग करते है, तो वह अधिगम का स्थानान्तरण कहलाता है। इस इकाई का गठन शिक्षार्थियों को इसी तथ्य को विस्तृत रूप से समझाने के लिए, निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है कि इसके अध्ययन के उपरान्त आप -

- अधिगम के स्थानान्तरण का अर्थ बता सकेंगे।
- अधिगम-स्थानांतरण के प्रकारों के विभेदक लक्षणों का उल्लेख कर सकेंगे।
- अधिगम-स्थानान्तरण के विभिन्न प्रकारों के उदाहरण दे सकेंगे।
- अधिगम-स्थानान्तरण के विभिन्न सिद्धांतों का वर्णन कर सकेंगे।
- उन दशाओं को अनुमानित कर सकेंगे जो किसी सीखी गयी बात के स्थानांतरण को प्रभावित कर सकती है।
- अधिगम-स्थानान्तरण के विभिन्न निर्धारकों की व्याख्या कर सकेंगे।

14.2.0 अधिगम के स्थानान्तरण का अर्थ (Meaning of Transfer of Learning)

अधिगम के स्थानांतरण का शाब्दिक अर्थ है कि एक विषय अथवा परिस्थिति की शिक्षा का दूसरे विषय अथवा परिस्थिति में उपयोग किया जाना। आपने अपने दैनिक जीवन में देखा होगा कि साइकिल चलाने वाला स्कूटर चलाना बड़ी आसानी से सीख लेता है या जो विद्यार्थी भौतिकी में अच्छा होता है - उसे गणित सीखने में सरलता रहती है। साइकिल चलाने वाले को बिना साइकिल चलाने वाले से स्कूटर सीखने में सुविधा इसलिए होती है कि क्योंकि साइकिल चलाने का कौशल स्थानांतरित होकर स्कूटर चलाने में सहायता प्रदान करता है अर्थात ज्ञान / शिक्षण / कौशल का एक परिस्थिति से दूसरी समान परिस्थिति में बड़ी सरलता से स्थानांतरण हो

जाता है क्योंकि एक विषय के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान उसी विषय तक सीमित नहीं रहता है अपितु वह दूसरी परिस्थितियों एवं विषयों के अध्ययन में भी उपयोगी रहता है।

अधिगम के स्थानांतरण को और अच्छी तरह समझने के लिए आइए, इस सम्बन्ध में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के विचार देखें।

14.2.1 अधिगम का स्थानांतरण: परिभाषा (Transfer of learning: Definition)

क्रो तथा क्रो के अनुसार 'एक अधिगम क्षेत्र से चिन्तन, अनुभूति आदतों, ज्ञान या कौशलों को दूसरे-क्षेत्र में प्रयोग करना अधिगम का स्थानांतरण कहलाता है।

सोरेन्सन के अनुसार 'स्थानान्तरण का आशय एक परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, प्रशिक्षण तथा आदतों का दूसरी परिस्थिति में स्थानांतरण से है।

हिलगार्ड व एटकिंसन का कथन है - 'किसी कार्य को सीखने का जो प्रभाव उत्तरकालीन अधिगम या किसी अन्य कार्य के निष्पादन पर पड़ता है वह प्रशिक्षण या अधिगम का स्थानांतरण कहलाता है।

फर्ग्यूसन का मत है कि - स्थानांतरण का केन्द्रीय भाव सहवर्ती परिवर्तन में निहित है तथा सामान्यतः अभ्यास के परिणामस्वरूप एक कार्य का निष्पादन दूसरे कार्य के निष्पादन में परिवर्तन लाता है।

क्लाजमियर ने कहा है कि अनेक लोग इस बात से सहमत हैं कि साधारण अर्थ में स्थानांतरण का सम्बंध उत्तरकालीन अधिगम पर पूर्व अधिगम के प्रभाव से है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिगम की एक परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, चिन्तन प्रक्रिया, कौशल अनुभव, आदत आदि अन्य परिस्थिति में प्रयुक्त होते हैं। बाद में किये जाने वाले अधिगम पर पूर्व अधिगम का प्रभाव पड़ता है। यही प्रभाव अधिगम का स्थानांतरण है।

14.3.0 अधिगम का स्थानांतरण : प्रकार - (Transfer of learning)

अधिगम का स्थानांतरण मुख्यत: तीन प्रकार का होता है - (1) सकारात्मक स्थानांतरण (2) नकारात्मक स्थानांतरण, तथा (3) शून्य स्थानांतरण। अन्य विद्वान ने स्थानांतरण के प्रकारों के रूप में द्विपार्शिवक स्थानांतरण ऊर्ध्व स्थानांतरण तथा क्षैतिज स्थानांतरण का उल्लेख किया है। आईये अधिगम-स्थानांतरण के इस प्रकारों का परिचय प्राप्त करे -

– **सकारात्मक स्थानांतरण (Positive Transfer)**

जब किसी कार्य का अधिगम किसी उत्तरकालीन कार्य के अधिगम में मदद देता है तो इसे सकारात्मक स्थानांतरण कहते है, जैसे अंकगणित की समस्याओं को हल करने की विधियों का स्थानांतरण सांख्यिकी की समस्याओं को हल करने में होता है । हिन्दी भाषा में 'संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया व विशेषण की परिभाषाओं के अधिगम से अंग्रेजी में **noun,pronoun,verb** तथा **adverb** के अवबोध में मदद मिलती है।

– **नकारात्मक स्थानांतरण (Negative Transfer)**

यह तब होता है जब पूर्व अधिगम के परिणामस्वरूप बाद में किये जाने वाले अधिगम में बाधा पहुंचती है। उदाहरणार्थ, जब हम प्रक्रिया के विश्लेषण व सामान्यीकरण के अभाव में गामक आदतें (Motor habits) सीखते है तब त्रुटियों व नकारात्मक स्थानांतरण की संभावनाएँ अधिक

रहती है। पूर्व अधिगम उत्तरकालीन अधिगम पर व्यक्तिकरण प्रभाव डालता है तथा उसे अधिक कठिन बनाता है।

– **शून्य स्थानांतरण (Zero transfer)**

शून्य स्थानांतरण की दशा तब होती है जब पूर्व अधिगम बाद में किये जानेवाले अधिगम पर कोई प्रभाव नहीं डालता है। जैसे रेखागणित में पाइथागोरस प्रमेय सीखने का हिन्दी में अलंकारों के अधिगम पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

– **द्विपार्श्विक स्थानांतरण (Bilateral Transfer)**

यह एक प्रकार का सकारात्मक स्थानांतरण है। मानव शरीर के एक भाग दायां या बांया द्वारा अनुक्रियाओं के पूर्व अधिगम से शरीर के दूसरे भाग द्वारा अनुक्रियाओं के अधिगम में सहायता मिलती है। यही द्विपार्शिवक स्थानान्तरण है। उदाहरणार्थ, जब हम बाँये हाथ से किसी कार्य को करने हेतु अनेक प्रयास करते है, बाद में हम दांये हाथ से बहुत कम प्रयास करके भी उस कार्य को करना सीख जाते हैं। बाये हाथ से अभ्यास न करने की दशा में दाँये हाथ से कार्य सीखने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। दाँये हाथ से लिखने के कौशल का स्थानांतरण बाँये हाथ से लिखना सीखने के समय होता है|

– **क्षैतिज स्थानांतरण (Horizontal Transfer)**

जब एक विषय का अधिगम किसी दूसरे विषय के अधिगम को सरल बनाता है तब इसे क्षैतिज स्थानांतरण कहते है। उदाहरणार्थ, गुप्त काल के इतिहास से उस काल के साहित्य व संस्कृति का अवबोध विकसित करने में सहायता मिलती है।

– **ऊर्ध्व स्थानांतरण (Vertical Transfer)**

ऊर्ध्व स्थानांतरण तब होता है जब पूर्व अधिगम का प्रयोग अधिक जटिल या उच्च स्तरीय चीजें सीखने के लिए किया जाता है। जैसे भाग सीखते समय विद्यार्थी जोड़ घटाना व गुणा से सम्बंधित अधिगम का प्रयोग करते है। अनेक प्रत्यय-श्रेणी क्रमों को सीखते समय विद्यार्थी निम्नस्थ प्रत्ययों के अधिगम का प्रयोग करते है।

14.4.0 अधिगम का स्थानांतरण : सिद्धान्त (Transfer of Learning theories)

स्थानान्तरण के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित है, आइए हम इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांतों को संक्षेप में देखें।

14.4.1 औपचारिक अनुशासन का सिद्धान्त (Theory of Formal Discipline)

यह सिद्धांत मस्तिष्क के संकाय या शक्ति प्रत्यय से सम्बन्धित है। यह एक प्राचीनतम सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार स्मृति, तर्क, कल्पना, अवधान तथा निर्णय, आदि मन की शक्तियाँ है। जो स्वतंत्र इकाई के रूप में होती है। प्रत्येक कार्य में इनकी प्रकृति समान रहती है। ये शक्तियाँ एक दूसरे से स्वतंत्र रह कर ही सक्रिय होती है। परन्तु इन्हें समग्र रूप से प्रशिक्षित किया जा सकता है।

20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में धातुकला, काष्ठ कला आदि विषयों का शिक्षण, प्रत्यक्षीकरण के प्रशिक्षण हेतु किया जाता था। इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किये गये प्रयोगों से इस सिद्धांत के समर्थन में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिले।

14.4.2 समान तत्वों का सिद्धांत (Theory of Identical Elements)

इसका विकास थार्नडाइक द्वारा बुडवर्थ के सहयोग से किये गये कार्य से हुआ था तथा इसे औपचारिक रूप से 1903 में 'एजूकेशनल सायकॉलाजी में प्रस्तुत किया गया था । इस सिद्धांत के अनुसार एक परिस्थिति में किये गये अधिगम का दूसरी परिस्थितियों में स्थानांतरण उस सीमा तक होता है जिस तक सीखने वाला एक परिस्थिति के अवयवों या तत्त्वों को अन्य परिस्थितियों के अवयवों या तत्त्वों के समान पाता है । मूल अधिगम तथा उत्तरकालीन अधिगम में समान तत्वों की उपस्थिति बाद में किये जाने वाले अधिगम को सरल बनाती है। यह समानता प्रक्रिया, कौशल, उद्देश्य या विषय वस्तु में हो सकती है। जैसे-भूगोल का अध्ययन इतिहास के अध्ययन के अध्ययन में सहायक होता है। क्योंकि दोनों में मानचित्रों का उपयोग किया जाता है। इस सिद्धांत को भी अब सन्तोषप्रद नहीं माना जाता है।

14.4.3 सामान्यीकृत अनुभवों का सिद्धांत (Theory of Generalized Experience)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन जड़ ने किया था। इस सिद्धांत के अनुसार जिस सीमा तक किसी परिस्थिति में प्राप्त अनुभवों को सामान्यीकरणो के रूप में संगठित किया जाता है उस सीमा तक उनका स्थानांतरण होता है। जब व्यक्ति नियमों या सामान्यीकरणों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है तब उनका एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में स्थानांतरण अधिक होता है। सामान्यीकरण अवबोध का एक रूप है जिससे नयी अधिगम परिस्थितियों में अधिगम स्थानांतरण की संभावनाएं बढ़ जाता है।

स्कोल्कॉव व जड के प्रयोग से इस सिद्धांत की पुष्टि होती है। उन्होंने पानी के नीचे स्थित एक लक्ष्य को मारने के लिए प्रकाश के अपवर्तन के नियमों के शिक्षण का प्रभाव देखा। जिन लड़कों को अपवर्तन के नियम पढ़ाये गये वे न पढ़ाये गये लडकों से प्रारम्भिक प्रयासों में अधिक श्रेष्ठ नहीं पाये गये परन्तु दूसरे चक्र के प्रयासों में उनके निष्पादन में निश्चित सुधार दिखाई पड़ा। यह प्रभाव अपवर्तन सम्बन्धी मूल व्याख्याओं के परिणाम के कारण उत्पन्न माना गया।

14.4.4 गेस्टाल्ट सिद्धांत (Gestalt Theory)

इस सिद्धांत के अनुसार स्थानांतरण पूर्व तथा नई परिस्थिति में पूर्वअंश (Whole-part) सम्बन्धी तथा सीखने वाले द्वारा इन सम्बन्धों के प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर करता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिगम का स्थानांतरण तत्वों, शिक्षण विधियों तथा सीखने वाले की अनुक्रिया के संयोजन से प्रभावित होता है। एक परिस्थिति में किया गया अधिगम दूसरी परिस्थिति में प्रत्यक्षतः स्थानांतरित तब हो सकता है जब सीखने वाला दोनों परिस्थितियों में विषय वस्तु, विधि या अभिवृति में समानता का प्रत्यक्षीकरण करें। जब कोई व्यक्ति किसी अधिगम परिस्थिति में भाग लेता है तब वह अपनी अनुक्रियाओं को संगठित करता है। यह

संगठन अन्य परिस्थितियों में भी प्रयुक्त हो सकता है। एक परिस्थिति में विकसित सूझ भी अन्य परिस्थितियों में स्थानांतरित हो सकती है।

स्वमूल्यांकन **(Self Evaluation)**

1. अधिगम के स्थानांतरण को परिभाषित कीजिए|
2. शून्य स्थानांतरण से आप क्या समझते है|
3. स्थानांतरण के गेस्टाल्ट सिद्धांत को समझाइए|

14.5.0 अधिगम स्थानांतरण के निर्धारक (Determinates of Transfer of Learning)

अधिगम के स्थानांतरण को अनेक कारक प्रभावित करते हैं, यथा -

14.5.1 कार्य समानता (Task Similarity)

प्रारम्भिक कार्य तथा स्थानांतरण कार्य के मध्य की समानताएँ स्थानान्तरण की महत्वपूर्ण निर्धारक है। स्थानांतरण की मात्रा तथा दिशा कार्य-समानता से सम्बन्धित होती है। जितनी ही अधिक दो परिस्थितियाँ समान होती है। उतना ही अधिक एक परिस्थिति का अधिगम दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरण होता है। कार्य समानताएँ उद्दीपन तथा अनुक्रिया दोनों से सम्बन्धित हो सकती है। डीज व हल्स, तथा एलिस के शोध कार्यों से पता चला है कि प्रारम्भिक तथा स्थानांतरण कार्यो में उद्दीपन में अधिक समानता, सकारात्मक स्थानांतरण में वृद्धि लाती है। जैकिन्स व ब्राउन ने यह निष्कर्ष निकाला कि स्थानांतरण सूची के अधिगम में सामान्य सहचारी शब्दों से महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। डंकन के अनुसार गामक कौशलों में उद्दीपन समानता में वृद्धि के साथ-साथ स्थानांतरण की मात्रा भी बढ़ती जाती है। अंडरबुड ने यह पाया कि अनुक्रिया-समानता में वृद्धि के साथ-साथ सकारात्मक स्थानांतरण भी बढ़ता जाता है।

14.5.2 स्थानांतरण सतह (Transfer Surface)

आसगुड ने अन्तर-कार्य समानता तथा स्थानान्तरण में सम्बन्ध की व्याख्या हेतु 'त्रि-आयामी स्थानांतरण सतह' का विचार प्रस्तुत किया जिसमें निम्नलिखित तीन नियम निहित है -

(1) जैसे-जैसे उद्दीपनों में समानता बढ़ती है वैसे-वैसे अनुक्रिया अवयवों के कार्यात्मक दृष्टि से स्थिर रहने पर भी सकारात्मक स्थानान्तरण में वृद्धि होती है।

(2) अनुक्रिया अवयवों में समानता में वृद्धि के साथ-साथ उद्दीपन अवयवों के कार्यात्मक दृष्टि से स्थिर रहने पर नकारात्मक स्थानांतरण में कमी होती है।

(3) उद्दीपन अवयवों में समानता में वृद्धि के साथ-साथ नकारात्मक स्थानांतरण में तब वृद्धि होती है जब उद्दीपन तथा अनुक्रिया दोनों अवयवों में एक साथ विविधता उत्पन्न होती है।

14.5.3 कार्य विविधता (Task Variety)

विविध प्रकार के अनेक सम्बन्धित प्रारम्भिक कार्यो में अभ्यास एक जैसे कार्यो में अभ्यास की अपेक्षा अधिक स्थानांतरण उत्पन्न करता है। ऐसा तब होता जब प्रत्येक समस्या के लिए पर्याप्त अभ्यास किया गया हो।

14.5.4 कार्य की अर्थपूर्णता (Meaning fullness of the Task)

आसुबेल के अनुसार जब विषय सामग्री, भाषा / गणित से सम्बन्धित नियमों के कारण तार्किक रूप से व्यवस्थित होती है तथा बालक के पूर्व-ज्ञान से सम्बन्धित होती है तब सकारात्मक स्थानान्तरण होता है। जब हम एक बार प्रत्ययों व सामान्यीकरणो को सीख लेते हैं तब उनका मध्यस्थता परक गुण अधिगम के स्थानान्तरण में वृद्धि करता है।

14.5.6 प्रारम्भिक अधिगम (Initial Learning)

अभ्यास की मात्रा स्थानांतरण की महत्वपूर्ण निर्धारक है। जब प्रारम्भिक कार्य में बहुत कम अभ्यास किया जाता है तब नकारात्मक स्थानान्तरण की सम्भावना अधिक होती है। मैंडलर के शोध से यह निष्कर्ष निकला कि प्रथम कार्य में अभ्यास के निम्न स्तर के कारण नकारात्मक स्थानान्तरण होता है और बाद में स्थानान्तरण शून्य हो जाता है। फिर जब अभ्यास की मात्रा में वृद्धि की जाती है तब सकारात्मक स्थानान्तरण होता है।

14.5.6 उद्दीपन पूर्व-विभेदीकरण (Stimulus Prediferentiation)

अनेक बार किसी कार्य को सीखने से पूर्व व्यक्ति को बाद में किये जाने वाले अधिगम से सम्बन्धित उद्दीपन अवयवों की जानकारी हो जाती है। प्रारंभिक कार्य में यह प्राथमिक अनुभव उद्दीपन पूर्व-विभेदीकरण कहलाता है। इससे व्यक्ति को उद्दीपन तत्वों के पूर्व-विभेदन हेतु अवसर मिलते है व इसके फलस्वरूप बाद में सीखना आसान हो जाता है। बाद में सीखे जाने वाले जटिल प्रत्ययों व कौशल के अधिगम को आसान बनाने के लिये विद्यार्थियों को प्राथमिक अनुभव करने हेतु श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है।

14.5.7 जैविक कारक (Organismic Factors)

स्थानांतरण की मात्रा व्यक्ति की संज्ञानात्मक संरचना की गुणवत्ता व लचीलेपन पर निर्भर करती है। अंत: प्रज्ञ चिन्तन के स्तर पर मुख्यत: प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक समानताओं पर आधारित सामान्यीकरण स्थानान्तरित हो सकते हैं। परन्तु तार्किक संक्रियाओं के स्तर पर अत्यधिक अमूर्त सामान्यीकरण गणित तथा अन्य ऐसे कार्यो में स्थानान्तरित हो सकते है जो मात्र प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभवों से जुड़े नही होते है।

14.5.8 स्थानान्तरण मूल्य (Transfer Value)

सभी विषयों का स्थानान्तरण मूल्य अर्थात् उनमें ज्ञान के स्थानान्तरण की संभावनायें, समान नहीं होता है। गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान जीव विज्ञान, भाषा आदि विषयों का स्थानान्तरण मूल्य अधिक होता है जबकि सामाजिक अध्ययन, दर्शन शास्त्र आदि विषयों का स्थानांतरण मूल्य अपेक्षाकृत कम होता है। इस प्रकार विषय की प्रकृति के कारण अधिगम स्थानांतरण की संभावनाओं पर प्रभाव पड़ता है। यदि विद्यार्थियों को अधिगम की स्थानांतरण से परिचित कराया जाय तो इससे स्थानातरणीयता में वृद्धि होती है।

14.5.9 शिक्षण प्रक्रिया (Teaching Process)

प्रारम्भिक अधिगम के दौरान उपयुक्त निर्देशन देकर, विविध प्रकार के अनुभव प्रदान कर, क्रमबद्ध तथा संचयी अनुभव की व्यवस्था कर तथा विद्यार्थियों की स्थानान्तरण-योग्यता का मूल्यांकन कर शिक्षण सकारात्मक स्थानान्तरण की मात्रा में वृद्धि कर सकते है।

अन्वेषण विधि, अभिक्रम अनुदेशन, खेल-शिक्षण प्रतिमान, अग्रिम संगठन शिक्षण प्रतिमान, आगमनात्मक विधि, निगमनात्मक विधि, पृच्छा शिक्षण प्रतिमान, समस्या समाधान विधि, आदि का प्रयोग अधिगम-सामग्री की स्थानांतरणीयता को बढ़ाता है।

14.5.10 सीखने के लिए सीखना (Learning to learn)

यह स्थानांतरण का गैर विशिष्ट स्रोत है। जब विद्यार्थी अधीनस्थ कौशलों को साधिकार कर लेता है तब स्थानांतरण की संभावनाएँ बढ़ जाती है। इस प्रकार की समस्याओं पर विस्तृत अभ्यास करने के बाद ही व्यक्ति सीखने हेतु सीखने के लिए तत्पर होता है।

14.6.0 अधिगम स्थानान्तरण के लिए शिक्षण (Teaching for Transfer of Learning)

विद्यार्थियों को अनेक मनोचालक कौशलों में प्रशिक्षण दिया जाता है यथा-प्रेक्षण, विच्छेदन, प्रदत्त संकलन, परीक्षण प्रशासन, परीक्षण अंकन, प्रदत्त संगठन, नामांकन, चित्र बनाना, फोटो खींचना, जन्तु संरक्षण, जल जीवशाला बनाना, आदि। इन कौशलों के अतिरिक्त उन्हें विषय सामग्री की जानकारी दी जाती है तथा अनेक बौद्धिक योग्यताओं व मानसिक प्रक्रियाओं को प्रयोग करने के अवसर भी मिलते रहते है। यदि विद्यार्थी केवल विशिष्ट परिस्थितियों में सीखे ज्ञान का प्रयोग परिचित परिस्थितियों में ही करें तो उनकी अधिकांश विद्यालयी शिक्षा निरर्थक हो जायेगी। अर्जित ज्ञान का नयी व भिन्न परिस्थितियों में उपयोग जरूरी है। एक बार सूचना प्रक्रियाकरण व अन्य मानसिक योग्यताएँ सीख लेने के उपरांत विद्यार्थी को अन्य परिस्थितियों में उनके उपयोग हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए। सूझ द्वारा अधिगम तथा अधिगम के स्थानांतरण को संभव बनाने में शिक्षकों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। स्थानान्तरण की समस्या व्यापक उपयोगिता वाले प्रत्ययों व सामान्यीकरणों के शिक्षण की समस्या है। यदि शिक्षक उपयुक्त अधिगम अनुभव चुनने व आयोजित करने तथा अनुदेशन की उचित व्यवस्था करने में सफल हो जाएँ तो वे सकारात्मक स्थानान्तरण करने में सफल हो जाएंगे। इसके अलावा विद्यार्थियों के अधिगम के स्थानांतरण की संभावना बढ़ाने के लिए शिक्षक निम्न में से कुछ या अनेक उपाय अपना सकते है-

14.6.1 कार्य चयन तथा निर्माण

अनेक विषयों से सम्बन्धित पाठ्यक्रम को विशिष्टता-समानता (Specificity-generality) के सांतत्यक (Continum) पर संगठित किया जा सकता है। पाठ्य वस्तु में तथ्यात्मक सूचनाओं, उदाहरणों,प्रत्ययों, नियमों, सिद्धांतों विधियों, साहचर्यों आदि को पहचाना जा सकता है। मानसिक योग्यताओं या कौशलों को पदानुक्रमिक अनुक्रम (hierarchical order) सरल से जटिल की ओर, जैसे बोध, उपयोग, विश्लेषण संश्लेषण तथा मूल्यांकन, भी हो सकता है। प्राय: सभी विषयों में कुछ प्रधान प्रत्यय तथा नियम होते है व कुछ गौण प्रत्यय व नियम होते है इस प्रकार हम

प्रत्ययों व नियमों में भी पदानुक्रमिक संगठन की खोज कर सकते है। प्रधान प्रत्ययों व नियमों से सम्बन्धित अधिगम आगामी कार्यो में सकारात्मक रूप से स्थानान्तरित हो जाता है। अत: शिक्षकों को शिक्षण के दौरान गौण परन्तु विशिष्ट सूचनाओं के स्थान पर प्रधान प्रत्ययों व नियमों को पढ़ाने पर अधिक ध्यान देना चाहिये। विट्रोक तथा क्लाजमियर व अन्य द्वारा प्रस्तुत प्रमाण यह दर्शाते हैं कि जब विद्यार्थियों को नियमों का शिक्षण दिया जाता है तब वे समान वर्ग के आगामी प्रत्ययों को आसानी से अर्जित कर लेते है।

मैकड्यूगल ने यह पाया कि अपेक्षाकृत अनेक तथ्यों पर आधारित प्रत्ययों का धारण तथ्यों की तुलना में अधिक होता है तथा उनके स्थानान्तरण की संभावनायें भी अधिक होती है।

14.6.2 अनुदेशन प्रक्रिया :

अधिगम कार्यों को उनके स्थानान्तरण मूल्य के संदर्भ में सावधानी पूर्वक चुनने के बाद शिक्षकों को उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए। शिक्षण की प्रक्रिया को वैयक्तीकृत बनाकर, विद्यार्थियों की समस्याओं को दूर करने की उनकी क्षमताओं को विकसित करने हेतु उचित निर्देशन देकर, अनुदेशन के दौरान अनेक विविध प्रकार के अनुभव प्रदान कर तथा अनुभवों को एक उचित अनुक्रम में व्यवस्थित कर और विद्यार्थियों की स्थानांतरण योग्यता का मूल्यांकन कर शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा अधिगम स्थानांतरण में वृद्धि कर सकते है। शिक्षक अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction) कम्प्यूटर सहायक अधिगम (Computer Assisted Learning) अन्वेषण विधि (Discovery Method) व्यक्तिगत निर्देशित अनुदेशन (Individually Guided Instruction) अग्रिम संगठन शिक्षण प्रतिमान (Advance Organized model of Teaching) प्रत्यय अर्जन शिक्षण प्रतिमान (Concept Attainment model of Teaching) पृच्छा विधि (Inquiry method) आदि विधियों का प्रयोग कर सकते है|

14.6.3 प्रारम्भिक अधिगम पर बल :

प्रारम्भिक अधिगम की दशाएँ स्थानांतरण की मात्रा व दिशा से सम्बन्धित होती है। बाद में किये जाने वाले कार्यो को करने हेतु जरूरी ज्ञान, योग्यताओं व अन्य अपेक्षित चीजों पर ध्यान केन्द्रित कर अधिगम स्थानान्तरण को सुविधा युक्त बनाया जा सकता है। जब शिक्षक पढ़ाते समय यह सुनिश्चित करने की कोशिश करते हैं कि विद्यार्थियों ने प्रत्ययों तथा अन्य सूचनाओं को अच्छी तरह समझ लिया है तब विभिन्न विषयों में अधिगम के स्थानान्तरण की संभावनाएँ अधिक होती है। यदि विद्यार्थियों को विषय सामग्री के संगठन के वर्गीकरण, अनुक्रियाएँ व्यक्त करने तथा सूचना, आदि में जरूरी अनुदेशन दिया जाए तो स्थानान्तरण में आसानी होती है। जिन विद्यार्थियों का विभिन्न कार्यो में अधिकार प्राप्ति स्तर निम्न होता है वे स्थानान्तरण में असफल रहते है। निम्न विधियों के उपयोग से अधिगम के स्थानान्तरण मे वृद्धि की जा सकती है। -

- नियम पहचानने में सहायता देना,
- उद्दीपन सामग्री के संगठन के बारे में सूचनाएँ देना,
- प्रशिक्षण-समस्याएँ सुलझाते समय विद्यार्थियों को नियमों को अपने शब्दों मे व्यक्त करने देना।

14.6.4 अनुभव में विविधता :-

शोध परिणामों से यह पता चला है कि अनेक अनुक्रियाओं का प्रयोग करने के फलस्वरूप सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न होते है।

उदाहरणार्थ -

- शुरू में विविध प्रकार की समस्याओं पर अभ्यास के परिणामस्वरूप अन्य मिलती-जुलती समस्याओं में सकारात्मक स्थानान्तरण होता है (मारीसेट व हाबलैण्ड लायड)
- एक ही वर्ग की समस्याओं पर अभ्यास करने की अपेक्षा अनेक वर्गों को समस्याएँ सुलझाने में अभ्यास करने से स्थानान्तरण में वृद्धि होती है (विट्रोक व ट्रवेल्कर)
- एक ही वर्ग की समस्याओं को सुलझाने की वैकल्पिक विधियों मे प्रशिक्षण से दूसरे वर्ग की समस्याएँ सुलझाने में आसानी होती है (एकरमैन व लेबिन)

  नियमों तथा सामान्यीकरणो की स्थानान्तरणीयता में वृद्धि के लिए शिक्षकों को सामान्यीकरण विकसित करने हेतु विविधता पूर्ण अनुभव प्रयोग करने चाहिए।

14.6.5 संचयी अनुभव

विद्यार्थी लगातार अभ्यास करने पर भी अनेक गामक कौशलों प्रत्ययों व संज्ञानात्मक योग्यताओं को एक वर्ष या कुछ सप्ताहों में पूरी तरह नहीं सीख पाते है । इनके अधिगम के लिए वितरित अभ्यास की जरूरत पड़ती है । ये अभ्यास विद्यार्थियों द्वारा अनेक वर्षो के दौरान किये जाते है । ऊर्ध्व स्थानान्तरण की प्रकृति से स्पष्ट है कि विभिन्न विषय क्षेत्रों से सम्बन्धित पाठ्य वस्तु व कौशलों की लगभग पूर्ण रूपरेखा का संगठन पर अनुकूल स्थानान्तरण प्रभाव उत्पन्न किये जा सकते है । विद्यालयी काल ई? अधिगम में निरन्तरता बनाये रखने के लिए यह जरूरी है, विद्यार्थी द्वारा एक कक्षा में अर्जित प्रत्यय व बौद्धिक योग्यताएँ अगली अवस्था के लिए आधार प्रदान करें ।

14.6.6 अनुदेशन दशाएँ

अधिगम के स्थानान्तरण को सुनिश्चित करने हेतु निम्न न्यूनतम अधिगम दशाओं का होना जरूरी है :-

- ऐसी समस्या परिस्थिति का निर्माण जिसे विद्यार्थी महत्वपूर्ण मानें,
- उन सीमाओं का परिभाषीकरण जिनमें परम्परागत सही उपयोग में आने वाली विधियों और समस्याओं से भिन्नता स्वीकार की जाएगी,
- सूचनाएँ प्राप्त करने तथा उनका निर्वचन करने में विद्यार्थी को निर्देशन देना,
- सूचना प्रधान प्रतिपुष्टि देना ताकि विद्यार्थी अपनी विधियों व अनुक्रियाओं की पर्याप्तता की जांच कर सकें ।
- पाठान्तर्गत तथा पाठ की समाप्ति के बाद विद्यार्थियों के सामने ऐसी नयी परिस्थितियाँ प्रस्तुत करना जिनमें अर्जित ज्ञान, कौशलों व योग्यताओं के उपयोग का अवसर मिलता हो।

14.6.7 अति अधिगम :-

अतिअधिगम (Overlearning) स्थानान्तरण में सहायक है। इस पर बल देते समय शिक्षकों को अनेक उदाहरण देने चाहिये। जब विद्यार्थी केवल सतही ज्ञान अर्जित करते हैं या उनका अधिगम आशिक होता है, तब नकारात्मक स्थानान्तरण या शून्य स्थानान्तरण की संभावनाएँ अधिक होती है। अधिकतम स्थानान्तरण के लिए सघन शिक्षण लाभप्रद होता है स्थानांतरण में वृद्धि के लिए अधिगम की मात्रा बढ़ाने हेतु शिक्षक पुनरावलोकन, मुख्य समस्याओं पर चर्चाड्रिल, अनेक नयी परिस्थियों में सामग्री याद करना आदि प्रविधियों का प्रयोग कर आवश्यकता से अधिक अधिगम सुनिश्चित कर सकते है।

14.6.8 अर्थ पूर्ण अधिगम -

जब शिक्षक पढ़ाते समय विषय सामग्री को विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित अनुभवों से सम्बन्धित करके पढ़ाते है तब अधिगम का अधिक स्थानान्तरण होता है। जहाँ तक सम्भव हो नवीन ज्ञान को विद्यार्थियों के पूर्व अनुभवों से सम्बन्धित कर पढ़ाना चाहिए।

सामान्यीकरण पाठ्य पुस्तकों में दिये गये कथनों से अधिक स्पष्ट व महत्वपूर्ण होते है। सामान्यीकरण की भाषा यथा संभव विद्यार्थियों के बोध व परिपक्वता स्तर के अनुरूप होनी चाहिये। शिक्षको को यह प्रयास करना चाहिए कि वे सामान्यीकरणों का निर्माण अपने शब्दों में करें। उन्हें स्वयं पाठ्य पुस्तकों में दिये गये सामान्यीकरण लिखवाने से बचना चाहिये।

शिक्षक को विभिन्न घटनाओं में निहित नियमों के अवबोध पर भी बल देना चाहिए तथा जीवन से सम्बन्धित उन परिस्थितियों का भी संकेत देना चाहिए जिनमें नियमों का उपयोग किया जा सकें। इससे स्थानान्तरण में वृद्धि हो जाती है। शिक्षक के दौरान शिक्षक को सामान्यीकरण नियमों को तथ्यात्मक अवबोध से विभेदित करना चाहिये, सूझ को प्रबलित करना चाहिए व अन्य त्रुटियों को बताना चाहिए जो विद्यार्थी के सामने प्राय: आएंगी।

14.7.0 सारांश (Summary)

'स्थानांतरण' शिक्षा में अधिगम का प्राण है| इससे अधिगम की एक परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, चिंतन, प्रक्रिया, कौशल, अनुभव आदत आदि का अन्य परिस्थितियों में प्रयोग होता है। वैसे तो अधिगम के स्थानान्तरण के कई प्रकार है, पर उनमें सकारात्मक, नकारात्मक व शून्य प्रकार के स्थानान्तरण अधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के लिए अधिगम के स्थानान्तरण का अत्यधिक महत्व है क्योंकि विद्यालय समाज का लघु रूप होता है तथा शिक्षकों को चाहिए कि स्थानान्तरण के नियमों को ध्यान में रखते हुए शिक्षार्थियों को इस प्रकार शिक्षित करें जिससे वह भावी जीवन में अर्जित ज्ञान का सरलता पूर्वक उपयोग कर सकें।

स्वमूल्यांकन **(Self Evaluation)**

1. अधिगम स्थानांतरण के विभिन्न सिद्धांतों का सोदाहरण वर्णन कीजिए|
2. स्थानांतरण के प्रकारों का वर्णन कीजिए | कक्षा में शिक्षण के दौरान सकारात्मक
3. स्थानांतरण में वृद्धि हेतु शिक्षक को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
4. अधिगम स्थानांतरण में विभिन्न कारकों की भूमिका की व्याख्या कीजिए|

14.8.0 संदर्भ (References)

1. Gross,R.F.& Birney,R.C.:transfer of Learning.Van Nostrand
2. Skinner,C.E.(1960):Essentials of Educational Psychology,Bombay:Asia Publishing House,
3. Hilgard & Atkinson: Introduction to Psychology.
4. Crow, L.D.and Crow: Educational Psychology, New York: American Book co.
5. Encyclopedia of Educational research (4th Ed.)
6. Galloy,C.(1976):Psychology for Learning and Teaching New York: McGraw Hill Bookm Co.

इकाई-15

गेने द्वारा प्रतिपादित अधिगम-अनुक्रम (Gayne's theory of Hierarchical Learning)

इकाई की रूपरेखा

15.0 लक्ष्य तथा उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 अधिगम का अर्थ

15.3 मानव योग्यताएं

शाब्दिक ज्ञान

बौद्धिक कौशल

संज्ञानात्मक व्यूह-रचना

अभिवृत्तियां

चालक कौशल

15.4 अधिगम के प्रारूप

संकेतक अधिगम

उद्दीपक अनुक्रिया

शाब्दिक साहचर्य

श्रृंखला अधिगम

विवेक/विभेदक अधिगम

सम्प्रत्यय अधिगम

विधान (नियम) अधिगम

समस्या समाधान

15.5 अधिगम क्रिया के पक्ष

अभिप्रेरणा

बोध

संग्रहण

अवधारणा

अनुस्मरण

व्यापकीकरण

निष्पाद

प्रति पुष्टि

15.6 **शिक्षण क्या है**

15.6.1 **गेने की शिक्षण की अवधारणा**

15.7 **संदर्भ**

15.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अन्त तक आप निम्नलिखित उद्देश्य प्राप्त करने में सक्षम हो जाएंगे।

- गेने के शब्दों में शैक्षिक मनोविज्ञान का उद्देश्य बता सकेंगे तथा अधिगम के अर्थ को व्यवहार योग्यता परिवर्तन के रूप में परिभाषित कर सकेंगे।
- अधिगम-अनुक्रम का अर्थ उदाहरण दे कर बता सकेंगे।
- विभिन्न अधिगम योग्यताओं (क्षमताओं) के अर्थ को सोदाहरण स्पष्ट कर सकेंगे।
- गेने द्वारा आठों प्रकार के अधिगम प्रारूपों के नाम लिख सकेंगे।
- प्रत्येक प्रकार के अधिगम प्रारूप के लिए अपेक्षित अधिगम परिस्थितियों (बाहय तथा अन्त:) को बता सकेंगे।
- सोदाहरण स्पष्ट कर सकेंगे कि किस प्रकार किसी भी उच्चतम अधिगम प्रारूप के लिए निम्नतर अधिगम प्रारूप पूर्ववत् हो सकते है।
- अधिगम क्रिया के आठों पक्षों को उचित अनुक्रम में लिख सकेंगे।
- प्रति पुष्टि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए अधिगम में इसके महत्व को बता सकेंगे।
- शिक्षण के अर्थ को लिख सकेंगे तथा अधिगम अवस्थाओं तथा शिक्षण के सहसम्बन्ध की व्याख्या कर सकेंगे।
- गेने के अनुसार एक प्रभावी अध्यापक में अधिगम अवस्थाओं के उपभोग की समीक्षा कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

गेने महोदय एक प्रमुख शिक्षा मनोवैज्ञानिक है। जिन्होंने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को एक व्यवहारगत परन्तु उदार स्वरूप प्रदान किया। गेने द्वारा प्रतिपादित मनोविज्ञान को व्यवहार परिवर्तन अथवा निष्पादन योग्यता आधारित शिक्षा के साथ जोड़ा। उन के अनुसार शिक्षण मनोविज्ञान का उद्देश्य उन अवस्थाओं को ढूँढना है जिनके अन्तर्गत अधिगम घटित होता है।

गेने महोदय कोई प्रथम विशेष अधिगम सिद्धांत प्रस्तुत नही करते हैं। इनका उद्देश्य मात्र उन प्रेक्षणीय अवस्थाओं को स्पष्ट करना है जिनकी व्यवस्था करने पर अधिगम को सुगम व प्रभावी बनाया जा सकता है। यद्यपि इन की यह दार्शनिक उदारवादिता (eclecticism) मुख्य रूप से व्यवहारवाद पर आधारित है, परन्तु इस के अन्तर्गत अधिगम के गेस्टाल्ट तथा क्षेत्र मनोविज्ञान (field psychology) की झलक भी मिलती है। उनका अधिगम का प्रत्ययात्मक प्रतिमान (Conceptual Modal) एक ज्ञान संसाधन प्रक्रिया है (Information Processing) जिसके अन्तर्गत मानव अधिगम प्रक्रियाएं कम्प्यूटर की संक्रियाओं के समान समझी जाती है। यद्यपि गेने इस बात से भलीभांति अभिज्ञ (conscious) है कि शिक्षा के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष, जैसे अध्यापक अभिप्रेरणा, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का विकास, सौन्दर्यानुभूति आदि, मात्र कौशल ग्रहण से प्राप्त नही हो पाते, परन्तु वह विवेक अथवा अंतदृष्टि जैसे सम्प्रत्ययों को अधिक महत्व प्रदान नहीं करते है। अत: शैक्षिक उद्देश्यों के कथन में ऐसी क्रियाओं जैसे जानना, समझना, सौन्दर्यानुभूति, विकास आदि का उपयोग नहीं करते है। उनके अनुसार उद्देश्य कथन ऐसे हो जो व्यवहारगत अर्थ में (जिन का प्रेक्षण प्रदर्शन अथवा जांच हो सकें) लिखे जा सकें।

15.2 अधिगम का अर्थ (Meaning of learning)

गेने के अनुसार अधिगम मानव प्रवृत्तियों, योग्यताओं में लाया गया वह परिवर्तन है जो अपेक्षाकृत स्थाई है तथा जिसका श्रेय मात्र विकास प्रक्रिया को नहीं जाता है। अधिगम इन्द्रिय गोचर व्यवहार के रूप में प्रदर्शित होता है तथा वे परिस्थितियां, जिनके अन्तर्गत यह घटित होता है, भी दृश्य अथवा प्रेक्षणीय होती है। इस बात का पता कि अधिगम हुआ है अथवा नही इस बात से लगता है कि किसी व्यक्ति विशेष का व्यवहार किसी अधिगम अवस्थिति में आने से पूर्व कैसा था और अधिगम (learning treatment) अभिक्रिया देने के पश्चात् वह कैसा व्यवहार प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त गेने का मानना है कि अधिगम का अनुभाग व्यक्ति की परिवर्तित प्रवृति जिसे सामान्यत: अभिवृति रूचि अथवा मूल्य कहते है से भी लगाया जाता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अधिगम व्यक्ति के निष्पादन में परिवर्तन सम्बन्धी क्षमता अथवा योग्यता का विकास है।

परन्तु इतना ही पर्याप्त नही है निष्पादन में हुआ परिवर्तन भी अधिगम ही है गेने द्वारा लिखित पुस्तक ("The Conditions of Learning) में आठ प्रकार के विशेषणीय अधिमग अथवा निष्पादन परिवर्तन का विवेचन है, तथा इन आठों प्रकारों के अधिगम के अनुरूप अधिगम अवस्थायें बताई गई है। गेने अधिगम प्रक्रिया में नैमित्तिक करणात्मक अनुबन्ध (Instrumental Conditioning) की भूमिका को अधिक महत्व देते है, तथा क्लासिकल पुरातन अनुबन्धन को कम। जैसा कि ऊपर कहा गया है- अधिगम एक ज्ञानसंसाधन प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत यह प्रक्रिया उद्दीपक अवस्थिति (stimulus silnation) के बोध की अवस्था से (Stage of apprehending) आरम्भ होती है, फिर यह उपलब्धि अधिग्रहण की अवस्था मैं पहुंचती है, उसके पश्चात् संग्रहण/संचयन (Storage) होता है, और अन्त में पुन: प्राप्ति (retrieval) हो जाती है।

किसी नहीं योग्यता को प्राप्त करने के लिए उन अधीनस्थ अथवा आश्रित योग्यताओं को पहले से ग्रहण करते की आवश्यकता होती है, जो इस योग्यता से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए उच्चतम श्रेणी के नियमों को सीखने के लिए उनसे सम्बद्ध सरल नियमों का संग्रहण आवश्यक है। अत: अधिगम में एक श्रेणी बद्धता अथवा अनुक्रम निहित है जिसे अधिगम अनुक्रम की संज्ञा दी जाती है।

15.3 मानव योग्यताएं - अधिगम के उत्पादकों के रूप में (Human Abilities: As a Products of Learning)

अधिगम के संदर्भ में गेने महोदय मानव योग्यताओं को पांच मुख्य वर्गों में विभाजित करते है, जो अधिगम के उत्पाद हैं। ये योग्यताएं इस प्रकार है: शाब्दिक ज्ञान, बौद्धिक कौशल, संज्ञानात्मक व्यूह रचना, अभिवृत्तियाँ, तथा मन: चालित चालक कौशल।

- शाब्दिक ज्ञान के अन्तर्गत मात्र इतना ही आता है कि विद्यार्थी अपेक्षित अथवा प्राप्त ज्ञान को कथनबद्ध कर सकें, दूसरे को कह कर अथवा लिख कर बता सकें जो भी उस ने सीखा है। मूर (1982) इस प्रकार के ज्ञान को (Knowing that) प्रकार के कथनी ज्ञान की संज्ञा
- देते है। इसे हम यहाँ पर कथनात्मक अज्ञान भी कह सकते। अत: शब्दिक ज्ञान वह है जो कथन रूप में व्यक्त किया जा सकें।

- इसके विपरीत एक ऐसा ज्ञान भी होता है जो हम प्राप्त तो करते है परन्तु उसे कथनो में अभिव्यक्त नही किया जा सकता। मूर महोदय ऐसे ज्ञान को "Know how" की संज्ञा देते है| परन्तु गेने महोदय इस ज्ञान को भी एक मानव योग्यता का नाम देते है जो अधिगम का ही उत्पाद है। ऐसे ज्ञान को गेने बौद्धिक कौशल की संज्ञा देते है। उदाहरण के लिए हम बच्चे को कहें कि वह 2,5,9,6 अंकों को किसी भी रूप में मिलाकर अधिक संख्याएं बनाएं। जिस बच्चे में इस प्रकार बौद्धिक कौशल विकसित हो चुका है वह एक क्रमबद्धता का सहारा लेकर अधिकाधिक संख्याएं बना सकेगा दूसरे बच्चे (hit) और (trial) के आधार पर कुछ संख्याएँ बना सकेंगे। यह वह बौद्धिक योग्यता है जिसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता परन्तु इसकी सहायता से कठिन समस्याओं का समाधान सम्भव है।
- तीसरी मानव योग्यता है संज्ञानात्मक व्यूह रचना (Cognitive Strategies) वास्तव में यह एक प्रकार का उच्च कोटि का बौद्धिक कौशल ही है जो भी अनुभव परक अथवा बौद्धिक समस्याओं के हल करने में सहायक होती है। संज्ञानात्मक योग्यता का सम्बन्ध बच्चे के व्यवहार से होता है न कि विषय वस्तु से जो वह सीख रहा है वास्तव में यह वह रचनाऐं होती है जिनका उपयोग कोई विद्यार्थी अपना ध्यान देने, सीखने, स्मरण करने अथवा चिन्तन करने सम्बन्धी प्रक्रियाओं को निर्देशित करते समय करता है।
- अभिवृत्ति (attitudes):ये वे अर्जित अवस्थाएं है जो व्यक्ति द्वारा की जा रही किसी क्रिया को किन्हीं वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा घटनाओं के प्रति प्रभावित करती है। यह एक प्रकार का किसी भी चीज के प्रति अथवा उसके विरूद्ध झुकाव है जिसमें व्यक्तित्व के तीनों क्षेत्र-संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मन: चालित-आवेष्टित अथवा सम्मिलित है।
- चालक कौशल (Motion Skills) मूर द्वारा दिए गए सम्प्रत्यय (Knowing how) का एक पक्ष जहां बौद्धिक कौशल है तो दूसरा पक्ष चालक कौशल। उसी भाँति इस कौशल का भी उपयोग होता है कथनाभिव्यक्ति में नहीं। इस प्रकार कौशल तैरने में ,कार चलाने, अथवा पियानो बजाने आदि में देखा जा सकता है।

15.4 अधिगम के प्रारूप (The Conditions or Types of Learning)

किसी भी शिक्षक कार्य को आरम्भ करने से पूर्व अध्यापक को इस बात के लिए आश्वस्त हो जाना चाहिए कि विद्यार्थियों के पास किसी अधिगम कार्य-कलाप को सीखने के लिए पूर्वापेक्षित योग्यताएं है। उसके पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वह प्रभावी अधिगम के लिए इन योग्यताओं के उपयोग को प्रोत्साहित करें। तीसरे, वह उपयुक्त बाह्य परिस्थितियों की व्यवस्था करे। गेने महोदय एक अधिगम अनुक्रम के रूप में आठ अधिगम अवस्थाओं की व्याख्या करते है जिन्हें अधिगम के प्रारूप की संज्ञा दी गई है। अधिगम में ये प्रारूप निम्न लिखित है:

(1) संकेतक अधिगम - Signal Learning

(2) उद्दीपक-अनुक्रिया अधिगम - Stimulus & Response Learning

(3) शाब्दिक संयोजन - Verbal association

(4) श्रृंखला अधिगम - Chain Learning

(5) विभेदन अथवा विवेकी अधिगम - Discrimination Learning

(6) सम्प्रत्यय अधिगम Concept Learning

(7) नियम अधिगम - Rule Learning

(8) समस्या समाधान - Problem Solving

उपर्युक्त में से प्रत्येक प्रकार का अधिगम व्यक्ति की एक भिन्न अवस्था से आरम्भ होता है तथा निष्पादन की एक अन्य योग्यता की प्राप्ति में परिणत हो जाती है। जैसा कि पहले परिभाषित किया जा चुका है अधिगम मानव योग्यता में आया वह परिवर्तन है जिसका श्रेय मात्र विकास प्रक्रिया परिपक्व को नहीं जाता है।

गेने महोदय अधिगम के इन प्रारूपों को अधिगम अवस्थाओं की संज्ञा भी देते हैं। इसका कारण है कि किसी भी उच्चतर अधिगम की प्राप्ति के लिए निम्नतर अधिगम एक पूर्वापेक्षा का कार्य करता है। उदाहरण के लिए अधिगम प्रारूप संख्या 3 व 4 के लिए प्रारूप संख्या 2 पूर्वापेक्षित है। तथा प्रारूप 5 के लिए 4,3 व 2 पूर्वापेक्षाएं होती है। प्रारूप यथोचित रूप में स्वयं में महत्वपूर्ण है और यह अन्य सात प्रारूपों से किसी के लिए पूर्वापेक्षा नही बनता है। इस प्रकार अति सरल अधिगम से लेकर सर्वाधिक जटिल अधिमग की यह प्रक्रिया एक अनुक्रम में पाई जाती है जिसे गेने ने अधिगम-अनुक्रम कहा । अधिगम-अनुक्रम सम्प्रत्यय का अर्थ है कि सभी आठों प्रकार के अधिगम अनुबन्धन प्रक्रिया के S-R साहचर्य मॉडल में परिवर्त्य (changeable) होते है। अधिगम प्रारूप 1 व 2 सम्पूर्ण अधिगम निकाय के लिए वह कार्य करते हैं जो भवन निर्माण में शिलाखण्ड।

संकेतक अधिगम (प्रारूप-1) वास्तव में पावलॉव तथा वाट्सन की के क्लासिकल पुरातन अनुबन्ध अनुक्रिया का दूसरा नाम है। यह एक प्रकार का उद्दीपक-प्रतिस्थापन है। ऐसे अनुबन्धन कोई जीव किसी नए उद्दीपक के प्रति उसी प्रकार की अनुक्रिया करने लगता है जैसी कि वह प्राकृतिक पुराने अप्रतिबन्धित उद्दीपक के साथ करता था यह नया उद्दीपक 'अनुबन्धित-उद्दीपक' बन जाता है, तथा वह अनुक्रिया कहलाती है। जो दोनों प्रकार के उद्दीपकों के साथ की जाती है दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि वह अनुक्रिया जो नए अनुबन्धित अनुक्रिया कहलाती है पावलॉव के प्रयोग में घण्टी की ध्वनि से पुरानी अप्रतिबन्धित अनुक्रिया लार उत्पन्न होने लगती है। अत: लारास्त्र (Salivation) प्रतिबन्धित अनुक्रिया बन जाती है।

उद्दीपक-अनुक्रिया अधिगम (प्रारूप-2) : यह अधिगम थार्नडाइक का तृतीया अथवा नैमित्तक अनुबन्धन (Instrumental Conditioning) है। इसे अनुक्रिया-परिष्करण संशोधन प्रक्रिया भी कहते है। इसके द्वारा विद्यार्थी किसी पृथक विभेदकारी उद्दीपक के प्रति एक सही यथातथ्य अनुक्रिया करने लगता है। वास्तव में यह अधिगम सही और गलत उद्दीपकों को पहचानने या विभेदीकरण का मामला है, उन उद्दीपकों के विभेदीकरण का जिनके फलस्वरूप पुरस्कार की प्राप्ति होती है और उनका जिनके फलस्वरूप ऐसा नही होता इस प्रकार के अनुसन्धान में जीव पहले कोई अनुक्रिया करता है। उद्दीपकों के प्रति की गयी यह अनुक्रिया स्वयं के प्रबलन में भी सहायक होती है। अनुक्रिया के पश्चात् आए प्रबलनकारी उद्दीपन से अनुक्रिया की प्रतिपुष्टि (Feed back) होती है। उदाहरण के लिए एक कुत्ते को उस समय भोजन दिया जाएगा जब वह विशेष प्रकार से बोलेगा। इस प्रकार दिए गए पुनर्बलन से कुत्ते के भविष्य में वैसा ही बोलने की सम्भावना बढ़ जाती है।

व्यवहारात्मक श्रृंखला दो प्रकार की होती है - चालक श्रृंखला प्रारूप 4 अथवा शाब्दिक साहचर्य प्रारूप-3 श्रृंखला से अभिप्राय: है किसी अनुक्रिया में S-R अलग संयोजन यह संयोजक

शाब्दिक भी हो सकता है। तथा चालक भी शाब्दिक साहचर्य, शाब्दिक श्रृंखलाओं का अधिगम है। इस की परिस्थितियां श्रृंखला से मिलती जुलती है। कोई श्रृंखला जब तक नहीं सीखी जा सकती जब तक व्यक्ति अलग-अलग Ss-Rs साहचर्यों को पूरा करने की क्षमता का विकास नहीं कर लेता है। इस संदर्भ में गेने महोदय का कहना है कि किसी अनुक्रम की पुनरावृति-साहचर्य संयोजन को सुदृढ़ बनाने में सहायक होती है। उनका यह भी कहना है कि अन्तिम संतुष्टि का होना श्रृंखला को स्थिर करने के लिए अनिवार्य है।

विवेकी अथवा विभेदीकरण अधिगम (प्रारूप-5) वह अधिगम प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति भिन्न-भिन्न उद्दीपकों के प्रति उन के अनुकूल अलग-अलग अनुक्रिया करना सीख जाता है ऐसे उद्दीपकों के प्रति जो भौतिक रूप से एक जैसे प्रतीत होते हो परन्तु उनमें सूक्ष्म भेद हो। विवेकी अधिगम गुप्त होने पर पृथक-पृथक उद्दीपक तथा अनुक्रियाएं एक दूसरे से सहज ही गोचर अथवा विशेषणीय पाए जाते हैं और उन विभिन्न उद्दीपकों के प्रति जो देखने में एक जैसे लगते हों व्यक्ति भिन्न-भिन्न मनुक्रियाएं करने में सक्षम हो जाता है। उदाहरण के लिए एक बच्चा शिशुवर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के लिए सुस्पष्ट व विशिष्ट उत्तर अनुक्रिया देने लग जाता है।

गेने के अनुसार विद्यालयों में अधिकांश शिक्षण कार्य सम्प्रत्ययों के उपयोग प्रारूप'6 विधान या नियम प्रारूप-7 तथा समस्या समाधान प्रारूप-8 से सम्बन्धित होता है। सम्प्रत्यय अधिगम में व्यक्ति उद्दीपकों के किसी वर्ग के प्रति समान अनुक्रिया करने लगता है, चाहे ऐसे उद्दीपक भौतिक रंग रूप की दृष्टि से एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्न भी क्यों न हो। सम्प्रत्यय अधिगम विभेदन अधिगम पर आश्रित होता है।

विधान (नियम) अधिगम (प्रारूप-7) दो या अधिक सम्प्रत्ययों में संयोग या सम्बन्ध स्थापित करने से होता है। यह व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था है जो उसके व्यवहार को दिशा देती है। विधान अधिगम को महा सम्प्रत्यय (Super Concept) भी कहा जाता है। विधान अधिगम के अन्तर्गत बच्चों द्वारा ऐसे विचारों का संयोजन किया जाता है जो आम तौर पर संयोजित नहीं होते। यह कहना कि गोल वस्तुएं लुढ़कती है" एक विधान अधिगम का उदाहरण है। विधान अधिगम वास्तव में एक अभ्यागत अथवा अनुमानित (Inferred) योग्यता है।

समस्या समाधान यह अधिगम विधान अधिगम की एक प्राकृतिक व्याप्ति (natural extension) है। इसमें खोज विधि का उपयोग सम्मिलित होता है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति किसी समस्या का समाधान स्वयं ढूँढता है। समस्या समाधान में व्यक्ति पहले सीखे गए नियमों का संयोग ढूँढता है जिस का उपयोग वह दी गई नूतन समस्या अवस्थिति के समाधान के लिए उपयोग में लाता है पहले सीखे गये दो या अधिक नियमों का संयोजन सीखकर एक नई योग्यता प्राप्त कर लेता है। जो एक उच्चतर कोटि का नियम बन जाता है। अत्यधिक उच्चतर कोटि के ऐसे नियम को अधिगम व्यूह रचना (learning strategy) भी कहते है। इस प्रकार विधान अधिगम, अधिगम व्यूह रचना के लिए कारण (instrumental) बन जाता है। यह चिन्तन के लिए सामग्री का कार्य करता है! जब हम कहते है कि अमुक व्यक्ति में चिन्तन करने की क्षमता है, उस का अर्थ है कि मूल रूप से वह पहले सीखे गए नियमों का संयोजन प्रभावी ढंग से उच्चतर कोटि के नियमों के निर्माण में कर सकता है। इस प्रकार पुराने विधानों के संयोग से नए विधानों का निर्माण कर के वह उन समस्याओं का समाधान करता है जो उसके लिए नूतन थीं इस प्रकार वह नई-नई योग्यता प्राप्त करता रहता है।

15.5 अधिगम क्रिया के पक्ष (Aspects of Learning Process)

किसी अधिगम क्रिया के पक्ष से अभिप्राय है आन्तरिक और बाहय घटनाओं की वे विशिष्ट श्रृंखलाएं जो उस अधिगम क्रिया का निर्माण करती है। घटित होने क्रम की दृष्टि से ये पक्ष निम्नलिखित है: अभिप्रेरणा (motivation) बोध होना (apprehending) संग्रहण (acquisition) अवधारणा (retention) अनुस्मरण (recall), व्यापकीकरण generating) निष्पादन (performance), और प्रतिपुष्टि (feed back) अधिगम के प्रति अभिप्रेरणा मुख्यत: उद्दीपक अभिप्रेरणा (incentive motivation) के रूप में होती है। व्यक्ति किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चेष्टा करता है तथा लक्ष्य प्राप्त होने पर उसका पुरस्कार अथवा प्रतिफल मिल जाता है। यह लक्ष्य व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार का लाभ पहुँचाता है। अत: लक्ष्य प्राप्ति द्वारा प्राप्त लाभ ही उस की अभिप्रेरणा का स्रोत होता है। यहाँ पर उद्दीपक पुरस्कार की प्राप्ति या दण्ड से बचाव होता है। पुरस्कार को यहाँ पर व्यापक रूप में समझना चाहिए। यह मात्र भौतिक न हो कर मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है। यदि किसी कार्य के करने से किसी व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है अथवा उस की पहचान बनती है तो मनोवैज्ञानिक पुरस्कार होगा इस प्रकार की उद्दीपक अभिप्रेरणा मानव की नैसर्गिक मनोवृत्ति को दर्शाती है। इस मनोवृत्ति के कारण व्यक्ति अपने वातावरण का उपयोग करता व उपभोग करता है उसे नियन्त्रित करता है। हम जब बच्चों में प्रत्याशाएं उत्पन्न करते है कि ऐसा कार्य पूरा करोगे तो तुम्हें यह फल मिलेगा यह उद्दीपन अभिप्रेरणा उत्पन्न करने का ही तरीका है।

अधिगम का बोध पक्ष विद्यार्थी द्वारा किसी उद्दीपक वस्तु पर ध्यान देने तथा उसका प्रत्यक्षीकरण करने में निहित है। प्रत्यक्षीकरण का अर्थ है उस वस्तु उद्दीपक को अन्य वस्तुओं में से पहचानना। यह बोध व्यक्ति का विभेदीकरण की योग्यता पर आधारित है।

संग्रहण का अर्थ है मन में ज्ञान को इस प्रकार कूटबद्ध (Coding) करना ताकि वह केन्द्रीय तान्त्रिक तन्त्र (CNS) संचारित किया जा सकें। कूट बद्ध करने का कार्य अल्प कालीन अथवा दीर्घ कालीन स्मृति द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया में कोई व्यक्ति किसी बात को एक ऐसे सरलीकृत रूप में स्मृति में डालता है ताकि उसका उपयोग तुरन्त किया जा सकें। जब किसी व्यक्ति को किसी सीखी हुई सामग्री का प्रदर्शन करने अथवा उसके उपयोग की आवश्यकता पड़ती है तो उसे पुन: प्राप्त करना चाहता है और संग्रहित सामग्री को स्मृति पटल पर लाने का प्रयत्न करता है। इस प्रक्रिया को 'अनुस्मरण' कहा जाता है।

व्यापकीकरण को अधिगम का अन्तरण भी कहा जाता है। इससे अभिप्राय: है कि किसी विचार को जिसे सीख कर उस का संग्रहण किया गया हो, अनुस्मृत किया जाए तथा किसी नई अवस्थिति में प्रयोग में लाया जाए । व्यापकीकरण दो प्रकार का हो सकता है। पार्शवीय (Lateral) अथवा अनुलम्ब(vertical) पार्शवीय अन्तरण व्यापकीकरण का वह रूप है जिसका विस्तार लगभग एक जैसी जटिल स्तरों के व्यापक समूह पर हो जाता है जैसे मनोविज्ञान के कुछ सिद्धांतों का उपयोग कुछ शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। अथवा भौतिकी के कुछ सिद्धांतों का प्रयोग रसायन विज्ञान जीवन विज्ञान अथवा सामाजिक विज्ञान की कुछ समस्याओं के समाधान के लिए किया जाए।

अनुलम्ब अन्तरण का अर्थ है जटिलता के एक स्तर पर सीखी गई योग्यताओं का उपयोग अन्य उच्चतर स्तर पर सीखी जाने वाली योग्यताओं के अधिगम के लिए करना। जैसे

छोटे बालक अंकगणित में गुणा करने की योग्यता को पहले सीखी गई जमा करने की योग्यता के आधार पर ही प्राप्त कर सकते है।

गेने के शब्दों में निष्पादन का अर्थ है दृश्य व्यवहार। व्यक्ति द्वारा प्राप्त किसी अधिगम योग्यता का उपयोग किसी समस्या समाधान में अन्तरित हो जाता है तो अन्य व्यक्ति भी इस व्यवहार परिवर्तन को देख सकते है अथवा उस की जाँच हो सकती है या प्रदर्शन। यह इन्द्रियगोचर व्यवहार परिवर्तन निष्पादन कहलाएगा।

प्रतिपुष्टि जो अधिगम का अन्तिम पक्ष है प्रबलन की प्रक्रिया द्वारा घटित होता है। प्रतिपुष्टि स्वचालित (automatic) व प्रबन्धित (Contrived) दो प्रकार की हो सकती है। प्रतिपुष्टि स्वचालित कहलाएगी यदि यह स्वयं निष्पादन से ही प्राप्य हो यह प्रबन्धित कहलाएगी। उचित उत्तर बाहर प्रदर्शन की अवस्था में अध्यापक बच्चे से कहे ' 'बिल्कुल ठीक' ' "हां ' बहुत अच्छे इत्यादि।

स्वमूल्यांकन **(Self Evaluation)**

1. अधिगम क्रिया के कौन-कौन से पक्ष होते हैं? केवल नाम लिखें|
2. उद्दीपक-अभिप्रेरणा से क्या अभिप्राय है? उदाहरण दे कर स्पष्ट करें|
3. अभिप्रेरणा का स्रोत भौतिक लाभ.....भी होता है|
4. ज्ञान को "कूटबद्ध" करने से क्या अभिप्राय है|

15.6 अध्यापन (शिक्षण) क्या है? (What is Teaching?)

यद्यपि हम सब बहुत वर्षो तक विद्यार्थी रहे है तथापि हम अध्यापन की कोई सुनिश्चित धारणा विकसित नही कर पाए। कारण यह है कि हम यह मानते रहे है कि अध्यापन वह कार्य है जो अध्यापक करता है। हमने इस बात की ओर ध्यान ही नहीं दिया कि शिक्षण की कुछ अवस्थाएं होती है और इसके कुछ प्रभाव भी। ज्ञानार्जन अथवा अधिगम के बहुत सारे स्रोतों में से शिक्षण एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके अन्य स्रोत है परम्परा तथा अनुभव इस के अतिरिक्त हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षण कोई एकमात्र परिभाषा नही होती गेज (1963) के अनुसार शिक्षक को समझने के लिए हमें तीन मूल प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए : (1) अध्यापक कैसे पेश आते है? (2) जैसे भी वे पेश आते है ऐसा वे किन कारणों से आते है? (3) उनके इस व्यवहार के क्या प्रभाव पड़ते है? शिक्षण की धारणा को समझने के लिए हमें इसमें सम्मिलित व्यापक कार्य व्यापार समझने चाहिए। प्रथम बात यह है कि शिक्षण एक ऐसा सामान्य व्यापक सम्प्रत्यय होना चाहिए जो सभी अध्यापकों पर सभी विद्यार्थियों पर और सभी स्थितियों विद्यालय के अन्दर और बाहर जहां भी शिक्षण सम्भव हो, लागू हो सकें। दूसरे किसी भी शिक्षण सिद्धांत में अध्यापकों का व्यवहार (जो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में कारण रूप है) तथा विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अधिगम जो कार्य रूप है विचार का विषय है। तीसरे शिक्षण उन साधनों अथवा परिस्थितियों को स्पष्ट करे, उन्हें बताए तथा उन्हें संचालित करे जिनके द्वारा शिक्षकों का व्यवहार विद्यार्थियों के अधिगम को निर्दिष्ट तथा प्रभावित करता है।

शिक्षण सम्प्रत्यय सम्बन्धी इन आयामों के अन्तर्गत हम यह बात भली भाँति समझ सकते है, कि शिक्षण सम्प्रत्यय किसी एकाकी सिद्धांत की व्याख्या नहीं करता। क्योंकि इसके अन्तर्गत बहुत सारी प्रक्रियाएँ बहुत प्रकार के व्यवहार तथा बहुत प्रकार के कार्यकलाप आते है।

15.6.1 गेने की अध्यापन अवधारणा :

गेने महोदय शिक्षण को अनुदेशन का अभिकल्पक व प्रबन्धक तथा विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अधिगम का मूल्यांकनकर्त्ता मानते है। (A teacher is the Designer and manager of instructions and evaluation of students learning) गेने का मत है कि अनुदेशनात्मक प्रक्रियाओं का अभिकल्पन सुव्यवस्थित ढंग से हो जिसमें अधिगम उत्पादों को मूल योग्यताओं के रूप में समझा जाए। इन मूल योग्यताओं में ज्ञान, बौद्धिक कौशल संज्ञानात्मक व्यूह-रचनाएं अभिवृत्तियों तथा चालक कौशल सम्मिलित होते है। इस के साथ शिक्षण को चाहिए कि वह उन विभिन्न अधिगम प्रारूपों तथा अधिगम अवस्थाओं को ध्यान में रखें जिन की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है।

अधिगम उत्पादक तथा अधिगम परिस्थितियों अथवा अवस्थाएं सुनिश्चित करने के उपरान्त व्यवहारगत उद्देश्यों का निर्माण किया जाएं। वास्तव में ये उद्देश्य ही अनुदेशन के लिए पथप्रर्दशक का कार्य करेंगे। इसके पश्चात अपेक्षित अधिगम अवस्थाओं के अनुरूप शिक्षण दिया जाए। अन्य में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त योग्यता अथवा उपलब्धि की जांच की जाए। यह जांच वास्तव में उन सूचीबद्ध उद्देश्यों की है जो पूर्व निर्धारित करके चले है।

इस प्रकार शिक्षण का अर्थ है उन उपयुक्त अधिगम अवस्थाओं की व्यवस्था करना जो भौतिक अथवा इन्द्रियगोचर हो। अनुदेशन के प्रबंधक के रूप में यह अध्यापक का कार्य है कि 'वह विषय सामग्री के अनुदेशन की योजना बनाए अधिगम अवस्थाओं की व्यवस्था करें चयन करें तथा उनकी देख रेख करें और इस प्रकार अपेक्षित अधिगम प्रक्रियाओं को सक्रिय बनाए तथा प्रेरित करे। ये अधिगम प्रक्रियाएँ अधिगम-अनुक्रम (Learning hierarchies) है, जिन्हे गेने महोदय अधिगम की आन्तरिक अवस्थाओं का नाम भी देते है। और चूँकि ये आन्तरिक प्रक्रियाएं वातावरणीय उद्दीपकों के रूप में बाहय विषयों से प्रभावित हो सकती है, अत: अध्यापक को चाहिए कि वह इन बाहय विषयों को योजनाबद्ध करें तथा उनका ठीक प्रकार से संचालन करता रहे। वास्तव में अध्यापक का कार्य विद्यार्थी के चिन्तन को उत्प्रेरित करना व दिशा देना है न कि उनकी ओर से स्वयं चिन्तन करना या समस्या को स्वयं हल करना।

इस विषय में गेने महोदय अनुदेशन सम्बन्धी चार महत्वपूर्ण घटकों का विवेचन करते हैं जो अध्यापक के पास उपलब्ध है और जो विद्यार्थियों में अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। ये चार घटक हैं-

(1) पहले प्राप्त की जा चुकी अधिगम योग्यताओं का अनुसारण तथा उत्प्रेरणा।

(2) उपयुक्त विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण।

(3) अपेक्षित मनोभावों का सक्रियण।

(4) प्रतिपुष्टि का प्रावधान।

(1) पहले प्राप्त की जा चुकी अधिगम योग्यताओं का अनुस्मरण व उत्प्रेरण

उच्चतर कोटि के कौशल को आरम्भ करने से पूर्व अध्यापक को इस बात के लिए आश्वस्त हो जाना चाहिए कि अधीनस्थ कौशल जो इस संदर्भ विशेष के लिए उपयुक्त है, प्राप्त किए जा चुके है। अत: पहले मालूम करें कि बच्चा पूर्व ज्ञान के रूप में इस विषय में क्या जानता है। परम्परागत शिक्षण में इसे पूर्व-ज्ञान परीक्षण भी कहा जाता है। कुछ अन्य विचारक इस पक्ष को शिक्षण का पूर्व क्रियात्मक (Practicing) पक्ष भी कहते है। यह जानने के पश्चात् कि बच्चे का

ज्ञान इस विषय पर कितना है, उपयुक्त बिन्दु से अनुदेशन आरम्भ करें। स्मरण रहे कि बच्चा पहले सरल चीजें सीखता है और तदनन्तर अधिक जटिल। यही क्रम हमें अपने अनुदेशन में भी प्रयुक्त करना चाहिए।

बच्चे के पूर्व ज्ञान की जांच के लिए अध्यापक उसे कोई ऐसी सरल समस्या दे सकता है जिसके समाधान के लिए पूर्वापेक्षित ज्ञान अथवा अधिगम योग्यता के अनुप्रयोग की आवश्यकता पड़ती हो। अथवा एक साधारण अनुस्मारक भी दे सकता है, जैसे कहें कि आप पहले सीख चुके है कि साधारण ब्याज क्या होता है और इसे किरन सूत्र द्वारा निकाला जाता है, जानते हो न?

(2) उपयुक्त विषय सामग्री का प्रस्तुतीकरण

पूर्व प्राप्त कौशलों का अनुस्मरण कराने के पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वह उपयुक्त वातावरणीय उद्दीपकों का उपयोग करें ताकि अधिगम प्रक्रिया के विभिन्न पक्ष सक्रिय हो जाएं। ये उद्दीपकों (विषय वस्तु इसी अवस्था में अपना उपयुक्त प्रभाव दिखा सकते है जबकि इनके साथ-साथ विद्यार्थियों में अभिप्रेरणा सम्बन्धी अनुकूल मनोदशा अथवा तत्परता हो।

(3) मनोदशा सक्रियण

व्यक्ति की मनोदशा अथवा अधिगम तत्परता उसी अवस्था में सम्भव होती है जबकि अधिगम सम्बन्धी पूर्वापेक्षाएं विद्यमान हों। पूर्वापेक्षाओं में ध्यान अभिप्रेरणा अथवा विकासात्मक क्षमता सम्मिलित होती है। ध्यानाकर्षण अथवा मनोयोग के लिए अध्यापक प्रबलनात्मक (reinforcing) परिस्थितियों का संचालन कर सकता है।

परन्तु इसके लिए विद्यार्थियों को विद्यालय में उपस्थिति रहने के लिए सीखने के लिए और अधिगम-अध्यापन प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए अभिप्रेरित करने की आवश्यकता है। हम जानते है कि अभिप्रेरक दो प्रकार के होते है जिनकी अधिगम के लिए विशेष प्रासंगिकता 1. सामाजिक अभिप्रेरक (social motives) जिसमें व्यक्ति की समाज से सम्बद्धता सामाजिक समर्थन तथा आत्म प्रतिष्ठा सम्मिलित है 2. वैयक्तिक अभिप्रेरक (Personal motives), जिसमें कार्य कुशलता की आवश्यकता और उपलब्धि सम्मिलित है। वैयक्तिक अभिप्रेरकों की वृद्धि उन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति पर निर्भर करती है जो दिए गए कार्य के लिए निश्चित किए थे।

विकासात्मक क्षमता (development readiness) उस अवस्था में पूर्ण हुई कही जा सकती है

जब विद्यार्थी उन अधीनस्थ कौशलों अथवा अधिगम प्रारूपों में निपुणता प्राप्त कर चुका होता है जो इस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है। सरल रूप में हम कह सकते हैं कि विकासात्मक क्षमता (तत्परता) इस बात से निश्चित की जाती है कि वह (विद्यार्थी) किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पहले से क्या जानता है तथा कितना और कैसा सीखना है।

(4) प्रतिपुष्टि

यदि किसी अधिगम कार्य को पूरा करना है तो उसके लिए प्रतिपुष्टि का प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है । प्राप्त पुष्टि वह कोई भी साधन चीज हो सकता है जो प्रक्रिया के दौरान हुए अधिगम को प्रभावित करता हो । इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक, जहां तक सम्भव हो उन को निष्पादित सम्बन्धी सही सूचना दे और उचित प्रोत्साहन भी ।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. गेने महोदय शिक्षक को किसी परिभाषित करते है?
2. शिक्षक की आंतरिक अवस्थाओं से क्या अभिप्राय है?
3. अनुदेशन के चार महत्वपूर्ण घटकों के नाम लिखे?
4. मनोदशा सक्रियण के लिए क्या चीज़ अनिवार्य है?
6. सामाजिक अभिप्रेरक और वैयक्तिक अभिप्रेरक के कम से कम एक एक उदाहरण दें|
7. बौद्धिक कौशल को समझने के लिए कोई उदाहरण दें|

15.7 संदर्भ (References)

1. De Cecco, John p.and Crawford,William:The Psychology of Learning and Instruction, New Delhi: Prentric Hall of India.(1977)
2. Gagne, Robert.Conditions of Learning, New York: Holt, Rinehart & Wington Inc . (1965)
3. शुक्ल आर.ए. डागर, बी. एस. तथा शुक्ला अनिल : शिक्षण तथा अधिगम के आधार भूत तत्व|कोटा,शिक्षक प्रकाशन,(1992)
4. Ausubel,David p. :Educational Psychology :A Cognitive view, New York :Holt, Rinehart & Winston, (1968)
5. De Cecco,Jhon p. :and Craw ford, William (1977) : The Psychology of Learning and Instruction, New Delhi : Prentice Hall of India, (1997)
6. Fitts,Paul M.:Factors in complex Skill Learning :in Train Research an education ed.A-W.Melton,New York:Academic Press Inc.,(1964)
7. Largne,Robert M. :Conditions of Learning New York:Holt Rinehart & Winston,Inc.,1966
8. Underwood, Benton J.:"Verbal Learning in the Educational Process “Harvard Educational Review (1959).

इकाई-16

स्मरण व :विस्मरण : प्रभावित करने वाले कारक (Remembering and Forgetting : Influencing Factors)

इकाई की संरचना

16.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य
16.2.0 स्मरण
16.2.1 स्मरण की परिभाषाएँ
16.2.2 अच्छी स्मृति के लक्षण
16.2.3 स्मृति के प्रकार
16.3.0 विस्मरण
16.3.1 विस्मरण के प्रकार
16.3.2 धारण वक्र
16.3.3 विस्मरण की प्रकृति
16.4.0 विस्मरण तथा विस्मरण को प्रभावित करने वाले कारक
16.5.0 सारांश
16.6.0 संदर्भ

16.1.0 उद्देश्य एवं लक्ष्य (Aims and Objectives)

मानव के समायोजनात्मक व्यवहार का अध्ययन मनोविज्ञान की मुख्य विषय वस्तु है। समाज के साथ समायोजन करने के लिए न केवल स्मृति की ही प्रक्रिया आवश्यक है, बल्कि विस्मरण की प्रक्रिया भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि विस्मरण न हो तो शायद मस्तिष्क थक कर काम करना बन्द कर दे। इस इकाई का गठन स्मरण एवं विस्मरण को विश्लेषित करने के लिए किया गया है। आशा है कि इसके अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य होंगे कि -

- स्मरण व स्मृति को परिभाषित कर सकेंगे।
- अच्छी स्मृति के लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे।
- स्मृति के प्रकार बता सकेंगे।
- विस्मरण की व्याख्या कर सकेंगे।
- विस्मरण व स्मरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को बता सकेंगे।

16.2.0 स्मरण (Remembering)

स्मरण समायोजन करने के लिए एक आधारभूत क्रिया है। समायोजन करने के लिए आवश्यक है कि पूर्व अनुभवों का लाभ उठाना। पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने के लिए उनका स्मरित किया जाना आवश्यक है। यह स्मरित करने की शक्ति न केवल मानव में होती है, अपितु पशुओं में भी होती है, पर अन्तर इतना है कि मानव पशुओं की तुलना में अपने पूर्व अनुभवों का अधिक

लाभ उठाता है। स्मृति मानव की संचय शक्ति है। जैसे छात्र संसार के मानचित्र तथा विभिन्न देशों के मानचित्र को अपने मस्तिष्क में कैसे रखता है, मानचित्र के बराबर देखने से विभिन्न देशों की सीमाओं के चिन्ह उसके मस्तिष्क में संचित हो जाते है। इसका परिणाम यह होता है कि जब वह किसी देश मानचित्र को पहचानना चाहता है तो उसकी सीमाओं के स्मृति चिन्ह मस्तिष्क में उभरते हैं तथा इन चिन्हों की सहायता से वह उस मानचित्र को पहचान लेता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से पता चलता है कि स्मृति कोई मानसिक शक्ति नहीं है, अपितु यह एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें अभिरूचि, प्रेरणा आदि का भी योगदान रहता है। वास्तविकता यह है कि स्मृति एक मनोदैहिक क्रिया है जिसको सम्पन्न करने में मस्तिष्क तथा शरीर दोनों का योगदान रहता है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से पता चलता है कि स्मृति कोई मानसिक शक्ति नहीं है, अपितु यह एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें अभिरूचि, प्रेरणा आदि का भी योगदान रहता है। वास्तविकता यह है कि स्मृति एक मनोदैहिक क्रिया है जिसको सम्पन्न करने में मस्तिष्क तथा शरीर दोनों का योगदान रहता है।

16.2.1 स्मरण की परिभाषा

बुडवर्थ 'पहले सीखी गई बातों को याद रखना स्मृति है।

मैक्डूगल : 'स्मृति का अर्थ भूतकालीन घटनाओं के अनुभवों की कल्पना करना है तथा यह पहचान कर लेना कि यह अपने ही भूतकालीन अनुभव हैं।

रास: स्मृति एक नवीन अनुभव है जो पूर्व घटनाओं के संस्कारों द्वारा निर्धारित होता है तथा दोनों के मध्य का सम्बन्ध स्पष्ट समझा जा सकता है।

स्काउट : स्मृति एक आदर्श पुनरावृत्ति है जिसमें अतीत काल के अनुभव उसी क्रम तथा ढंग से जागृत होते है जैसा वे पहले हुए थे।

रायबर्न. अपने अनुभवों को संग्रहीत करने तथा अनुभवों के घटित होने के कुछ समय बाद उन्हें चेतना के क्षेत्र में लाने की हमारी शक्ति स्मृति है।

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ शक्तियाँ निहित होती हैं जिनके माध्यम से वह अपने व्यवहार को अनुभव के आधार पर परिष्कृत करता है। इस परिष्करण में स्मृति का योगदान निश्चित रूप से अत्यधिक होता है। स्मृति के अन्तर्गत सीखने की, धारणा करने की, पुर्नस्मरण करने तथा पहचानने की शक्ति होती है। इसीलिए मैक्डूगल ने भी कहा है कि स्मृति का संदर्भ सभी मानसिक क्रियाओं में निहित है। कुछ लोगों का मानना है कि स्मृति का स्वतंत्र रूप से कोई अस्तित्व नहीं होता है, उसका आधार सीखने की क्रियाएँ है, इन क्रियाओं के पश्चात् सीखने का अस्तित्व होता है।

16.2.2 अच्छी स्मृति के लक्षण (Characteristics of Good Memory)

अच्छी स्मृति के प्रमुख लक्षण निम्न है। -

(अ) अच्छा धारण (Good Retention)

सीखी गई अनुक्रिया को मस्तिष्क में संचित करना धारण है। हम अनेक अनुक्रियायें करना सीखते हैं । परन्तु वे सीखने के बाद मस्तिष्क में निष्क्रिय पड़ी रहती है। मस्तिष्क की संरचना के रूपान्तरण के रूप में संभवतः पूर्व अनुभवों की कोई छाप बची रहती है। यह स्मृति

चिन्ह कहलाती है। ये चिन्ह मस्तिष्क के अचेतन क्षेत्र में रहते है तथा संबन्धित विशिष्ट उद्दीपन के पुन: प्रकट होने पर वे पुन: चेतन क्षेत्र में आ जाते है। यदि कोई विद्यार्थी किसी पाठ से सम्बन्धित ज्ञान को अपने मस्तिष्क में काफी समय तक संचित रख सकें तो उसी धारण शक्ति को अच्छा माना जाएगा।

(ब) शीघ्र प्रत्यास्मरण (Early Recall)

प्रत्यास्मरण से तात्पर्य है पहले सीखी गयी किसी बात की मानसिक पुन: स्थापना या पुन: प्रस्तुति । इसमें व्यक्ति अपने संवेदी अंगों का प्रयोग नहीं करता। वह केवल कल्पना करता है। जब स्मरण कुछ कठिन होता है तब व्यक्ति प्राय: बिम्बों (images) का प्रयोग करता है। स्मरण के आसान होने की दशा में प्राय: बिम्बों की सहायता नहीं ली जाती है।

मायर्स ने स्मृति को स्मृति बिम्ब ही माना है। ये बिम्ब संवेदी अंगों रमे स्वतंत्र होते है। ये प्राथमिक यार द्वितीयक हो सकते हैं। किसी वस्तु को दृष्टि के क्षेत्र से तुरन्त हटा लेने पर प्राथमिक स्मृति बिम्ब बनते हैं तथा प्रत्यक्ष अनुभव के काफी समय बाद द्वितीय स्मृति बिम्ब बनते है। प्रत्यास्मरण स्वत: स्फूर्त या विमर्शित हो सकता है। प्रथम प्रकार के प्रत्यास्मरण हेतु व्यक्ति को कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है जबकि दूसरे प्रकार के प्रत्यास्मरण हेतु सचेत प्रयास जरूरी होते हैं।

(स) शीघ्र प्रत्याभिज्ञान (Early Recognition)

प्रत्याभिज्ञान प्रत्यास्मरण से भिन्न है। प्रत्याभिज्ञान से तात्पर्य है-अधिगम सामग्री की पुन: स्थापना जब उसे या उसके प्रतिरूप को पुन: संवेदी अंगों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये। उदाहरणार्थ - गुलमोहर का फूल पढ़ने के बाद जब कभी हमें गुलमोहर का फूल दिखाई पड़ता है तब हमें ऐसा लगता है मानों हमने उसके बारे में पढ़ा हो इस प्रकार जब वस्तु मूर्त रूप से हमारे सामने होती है तब हम प्रत्याभिज्ञान करते हैं परन्तु सामग्री की अनुपस्थिति में हम प्रत्यारमरण करते है। सीखी हुई बातों को शीघ्र पहचानना अच्छी स्मृति का परिचायक है।

(द) स्पष्ट प्रत्याभिज्ञान (Clear Recognition)

प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक व उचित बातों को याद रखता है। अच्छी स्मृति के लिए शीघ्र व स्पष्ट प्रत्याभिज्ञान अत्यंत आवश्यक है।

16.2.3 स्मरण के प्रकार (Type of Remembering)

मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से स्मृति के प्रकार बताए हैं। जैसे वर्गसन ने स्मृति के दो प्रकार बताये - 1. वास्तविक स्मृति 2. आदत जन्य स्मृति। स्मरण रखने को आधार मानकर एक विद्वान ने स्मृति को तात्कालिक. स्थायी यांत्रिक, रटन्त, तार्किक, सक्रिय, निष्क्रिय स्मृति आदि भागों में बाँटा। जबकि एक अन्य मनोवैज्ञानिक ने स्मृति के प्रमाण के आधार पर स्मृति को पुनर्गठन, प्रत्यास्मरण, प्रत्याभिज्ञान तथा पुन: अधिगम स्मरण आदि भागों में बाँटा है। इनमें से प्रत्येक में स्मरण का एक भिन्न पक्ष निहित है - जैसे पुनर्गठनात्मक स्मृति समय तथा स्थानगत परिप्रेक्ष्य सहित भूतकालीन घटनाओं को पुन: संरचित या स्थापित करने से सम्बन्धित है, यथा-वयस्क होने पर बाल्यकाल के संस्मरण। प्रत्यास्मरण स्मृति स्मृति चिन्हों के स्मरण अर्थात भूतकालिक अधिगम के पुनस्थापना से सम्बन्धित है। यथा-लय युक्त ध्वनि में किसी पद्य को कहना। प्रत्याभिज्ञान स्मृति वर्तमान समय में मौजूद किसी वस्तु को पूर्व में प्रत्यक्षीकृत किसी वस्तु के रूप में पहचानने से सम्बन्धित है। जब हम पहले सीखी गयी किसी बात को पुन: सीखते

हैं तो वह अपरिचित बातों को सीखने की अपेक्षा शीघ्रता से सीख ली जाती है । इस प्रकार पुन: अधिगम में समय व प्रयासों की बचत होती है। यह शून्य से शत प्रतिशत तक हो सकती बिना समझे अनुभवों की यंत्रवत पुनरावृत्ति रटना स्मृति है यथा-पहाड़े रटना। तार्किक स्मृति मात्र पुनरावृत्ति के बजाय अनेक अवसरों पर विषयवस्तु के उपयोग पर आश्रित होती है। स्मरण सक्रिय/निष्क्रिय, स्थायी/तात्कालिक, वैयक्तिक, अवैयक्तिक या आदतन भी हो सकता है।

16.3.0 विस्मरण (Forgetting)

हमारी स्मृतियाँ पूर्ण नहीं होती हैं। हम बचपन में याद किये गये अनेक गीत वयस्क होने तक भूल जाते है। अनेक सहपाठियों के नाम विस्मृत हो जाते हैं। हमारे अनेक कौशल समाप्त हो जाते है। परीक्षा देने के कुछ समय बाद हम अनेक बातें भूल जाते हैं जबकि कुछ बातों की धुँधली स्मृतियाँ शेष रह जाती हैं।

ड्रेबर के अनुसार विस्मरण का अर्थ है - किसी समय प्रयास करने पर भी पूर्व अनुभव का प्रत्यास्मरण करने अथवा पहले सीखी गयी किसी क्रिया को करने में असफलता।

मार्गन तथा किंग के अनुसार विस्मरण को पहले सीखी गयी सामग्री के धारण की आशिक या पूर्ण समाप्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

यदि सरल शब्दों में कहा जाए तो अतीत काल में प्राप्त की गई अनुभूतियों का पुन: स्मरण, या प्रत्याह्मान की प्रक्रिया स्मृति है, परन्तु अब व्यक्ति इन अनुभूतियों का पुन: स्मरण या प्रत्याह्मान नहीं कर पाता है तो यह विस्मरण की अवस्था कहलाती है।

16.3.1 विस्मृति के प्रकार : मोटे तौर पर विस्मृति को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(अ) **निष्क्रिय विस्मृति:** इस प्रकार के विस्मरण में भूलने का प्रयास नहीं करना पड़ता है, बल्कि व्यक्ति स्वयं भूल जाता है।

(ब) **सक्रिय विस्मृति:** इस प्रकार के विस्मरण में व्यक्ति कुछ तथ्यों यादों को स्वयं जान-बूझकर भूलने का प्रयास करता है।

16.3.2 धारक वक्र (Curves of Retention)

विस्मरण की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने प्राय: धारण के वक्रों (Curves of Retention) का अध्ययन किया है। ये वक्र यह दर्शाते हैं कि शुरू में विस्मरण की गति तेज होती है तथा बाद में हानि क्रमश: कम होती जाती है। भिन्न प्रकार की अधिगम सामग्री के लिए वक्रों की प्रकृति प्राय: एक जैसी रहती है परन्तु समय अक्ष में परिवर्तन हो जाता है। इन धारण वक्रों में किसी सामग्री को सीखने के बाद के अभ्यास विहीन समय अन्तराल के प्रभावों को प्रदर्शित किया जाता है। इन प्रभावों को जानने के लिए निश्चित समय अन्तराल से परीक्षण प्रशासित किये जाते है।

एविंघास ने धारण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने सर्वप्रथम विस्मरण का अध्ययन करने के लिए वक्र बनाये। उन्होंने स्मरण हेतु तुल्य सामग्री में वृद्धि के लिए अनेक निरर्थक शब्दों (Nonsense syllables) की खोज की उन्होंने धारण का मापन करने हेतु पुर्न अधिगम विधि (Retearing Method) का प्रयोग किया तथा बचत फलांक ज्ञात करने हेतु निम्न सूत्र (Saving score) की गणना की|

बचत फलांक = 100 मूल अभ्यासों की संख्या-पुर्नधिगम अभ्यासों की संख्या एविंघास ने बचत फलांक व समय में सम्बन्ध बताने के लिए एक वक्र खींचा देखें चित्र 1 इस आरेख से स्पष्ट है कि पहले 24, घन्टे में व्यक्ति याद की गयी बातों का लगभग 2/3 भाग भूल जाता है|

लूह ने प्रत्याभिज्ञान, प्रत्यास्मरण तथा पुर्नधिगम के लिए धारण वक्रों का अध्ययन किया देखें चित्र 2 उसने प्रत्याभिज्ञान के लिए सर्वाधिक धारण प्रतिशत पाया, इससे कम प्रतिशत पुर्नधिगम के लिए तथा प्रत्यास्मरण हेतु धारण प्रतिशत सबसे कम था। पुर्नधिगम हेतु वक्र में समतलीकरण से पता चलता है कि अन्ततोगत्वा पुर्नधिगम फलांक प्रत्याभिज्ञान फलांक से अधिक हो सकते है। यह इस अध्ययन में धारण समय अन्तराल की कमी को दर्शाता है|

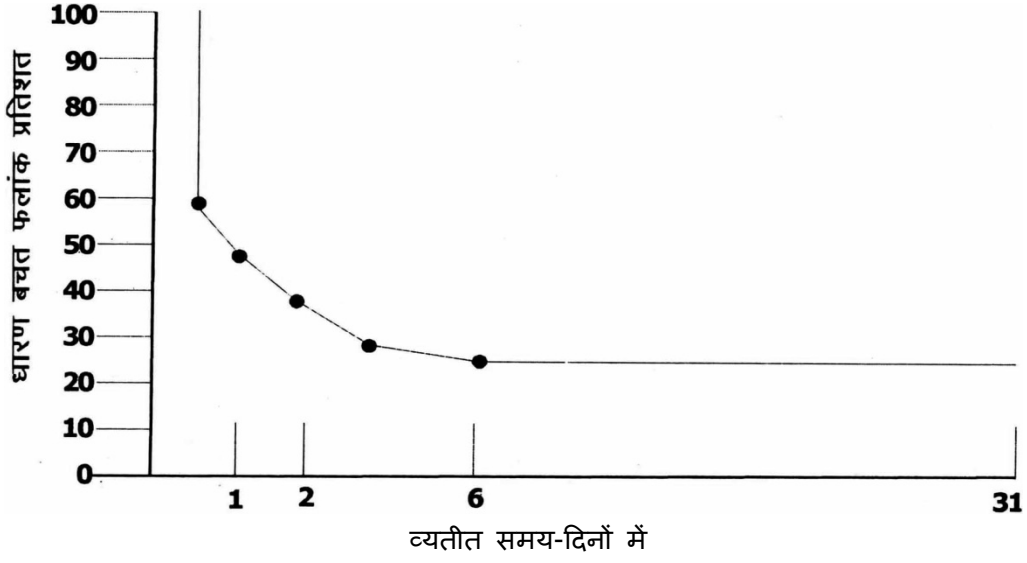

चित्र 1: निरर्थक शब्दों की सूचियों के लिए धारण वक्र

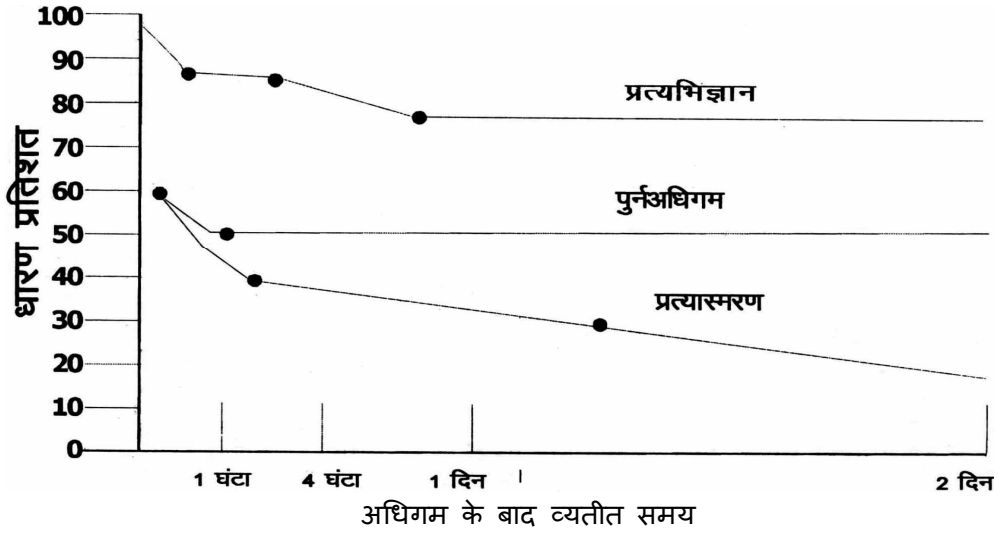

चित्र : 2 मापन की तीन विधियों के लिए निरर्थक शब्दों के धारक वक्र

16.3.3 विस्मरण की प्रकृति (Nature of Forgetting)

विस्मरण की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने निम्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की है-

1. अनुपयोग द्वारा निस्क्रिय क्षय (Passive decay through disuse)
2. स्मृति चिन्हों की क्रमबद्ध विकृति (Systematic distortion of memory trace)
3. व्यक्तिकरण प्रभाव (Interference Effect)
4. अभिप्रेरित विस्मरण (Motivated forgetting)
5. डुप्लैक्स सिद्धान्त (Duplex theory)

16.3.3.1 अनुप्रयोग द्वारा निष्क्रिय क्षय

यह विस्मरण की प्राचीनतम व्याख्या है तथा आज भी आम आदमी इसे स्वीकार करता है। परीक्षा के दिनों में विद्यार्थी रात-दिन परिश्रम कर अपने पाठ्यक्रम का काफी भाग याद कर लेते हैं परन्तु परीक्षा समाप्त होने के कुछ समय बाद वे याद की गयी अधिकांश बातें भूल जाते हैं। जिन बातों को हम बार-बार पढ़ते या प्रयोग करते रहते है उन्हें हम विलम्ब से भूलते है। अनुप्रयोग द्वारा निष्क्रिय क्षय व्याख्या के अनुसार समय बीतने के साथ-साथ व्यक्ति भूलता जाता है। इस व्याख्या को मान्यता यह है कि अधिगम के परिणामस्वरूप मस्तिष्क या तंत्रिका तंत्र में एक चिन्ह उत्पन्न होता है। इस स्मृति चिन्ह के निर्माण में भौतिक परिवर्तन निहित है जो सीखने से पहले अस्तित्वहीन था। समय व्यतीत होने के साथ-साथ मस्तिष्क की सामान्य उपापचयी प्रक्रियाओं के कारण स्मृति चिन्ह धुंधला हो जाता है या उसका क्षय हो जाता है। इससे सीखी गयी बातों में क्रमश: विघटन होता रहता है तथा अन्त में वे अदृश्य हो जाती हैं।

हम बचपन में अनेक कहानियाँ पढ़ते रहते है परन्तु समय बीतने के साथ-साथ हम उनमें से कई कहानियों को भूलते जाते है। विज्ञान, इतिहास, पुस्तक कला, गृह विज्ञान, रेखा गणित, आदि विषय सीखते समय हम अनेक चित्रों / आरेखों को बनाना व उनकी व्याख्या करना सीखते हैं। सीखने के बाद कुछ समय तक हमें काफी चित्र / आरेख याद रहते हैं। जैसे-जैसे समय गुजरता जाता है हम चित्रों / आरेखों की विशेषतायें भूलते जाते हैं तथा काफी समय बाद हमें केवल रूपरेखा ही याद रहती है|

विस्मरण के इस सिद्धांत के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विद्वान लोग इसे एक अपूर्ण या सन्देहास्पद व्याख्या मानते हैं। हमें अभ्यास न करने पर भी अनेक बातें / चित्र, आदि दीर्घकाल तक याद रहती है। अनेक गामक कौशलों की शीघ्र विस्मृति नहीं होती है। अनेक वर्षो तक वर्गमूल न निकालने के बावजूद वर्गमूल निकालने की विधि काफी समय तक याद रहती है। स्पष्ट है कि इस सिद्धांत से विस्मरण के बारे में सभी तथ्यों की व्याख्या नहीं की जा सकती है। अनेक बार भूलने के बाद भी हमें कुछ बातें याद आ जाती है । इसकी व्याख्या भी इस सिद्धांत के आधार पर संभव नहीं है।

16.3.3.2 स्मृति चिन्हों की क्रमबद्ध विकृति :-

अनुपयोग द्वारा निष्क्रिय क्षय, सिद्धांत की भाँति यह सिद्धांत भी प्रत्यास्मरण में परिवर्तनों के लिए मस्तिष्क उत्तकों (Brain Tissues) में परिवर्तनों को उत्तरदायी (Responsible) मानता है। ये गुणात्मक परिवर्तन स्मृति-चिन्हों में होने वाले स्वत: स्फूर्त व (Spontaneous) परिवर्तनों के कारण होते है । इन परिवर्तनों के लिए प्रमाण प्राय: दृश्य

प्रत्यक्षीकृत प्रतिरूपों के लिए स्मृति पर किये गये प्रयोगों से मिले है । बुल्फ ने यह पाया कि जब प्रयोज्यों को सफल ज्यामितीय (Geometrical) आकृतियों के रेखाचित्र दिये गये तथा कुछ समय बाद उनसे आकृतियों का प्रत्यास्मरण करने को कहा गया तब वे मूल आकृतियों से कुछ विकृत स्वरूप में ही आकृतियाँ बना सकें। ये विकृतियाँ निम्न मे से एक दिशा में हुई

1. आकृतियों में मौजूद अनियमितता में वृद्धि हो गयी
2. आकृतियाँ अधिक सीमित हो गयी।
3. यदि आकृति किसी साधारण वस्तु के समान थी तो पुनरूत्पादन (reproduction) के दौरान वह उसी वस्तु जैसी दिखाई देने लगी।

ये परिवर्तन स्मृति चिन्ह में क्रमिक रूपान्तरण के कारण उत्पन्न माने गये। बुनर, बुसीक व मिन्टर्न को ऐसे प्रमाण मिले है, जिनसे यह पता चलता है कि अधिकांश विकृतियाँ समय बीतने के साथ-साथ घटित होने के बजाय घटना के प्रथम प्रत्यक्षीकरण के समय ही घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण करते है, वह रूप हमारे प्रत्यास्मरण को प्रभावित करता है।

इस सिद्धांत के समर्थन में सकारात्मक मान्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है परन्तु समय बीतने के साथ-साथ स्मृति चिन्हों में परिवर्तनों की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता है।

16.3.3.3 व्यक्तिकरण प्रभाव :-

इस व्याख्या के अनुसार विस्मरण के लिए किसी कार्य को सीखने के बाद गुजरा समय इतना उत्तरदायी नहीं है जितना कि अधिगम प्रत्यास्मर२ण के बीच के समय में व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य उत्तरदायी है। नया अधिगम भी पूर्व में सीखी गयी सामग्री से व्यक्तिकरण कर सकता है। प्रतिगामी अवरोधन सिद्धांत (Retroactive Inhibition) के अनुसार नया अधिगम पूर्व कालीन अधिगम के प्रत्यास्मरण में व्यवधान उत्पन्न कर सकता है। यह व्यवधान प्रतिगामी अवरोधन कहलाता है। उदाहरणार्थ एक समूह के विद्यार्थियों को दो सूचियाँ 'अ' तथा 'ब' तथा 'ब' याद करते है फिर कुछ समय बाद वह 'अ' सूची का प्रत्यास्मरण करते हैं। नियंत्रित समूह के विद्यार्थी केवल अ सूची याद करते है तथा यह पता चलता है कि नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों ने 'अ' सूची का प्रत्यास्मरण प्रयोगिक समूह के विद्यार्थियों से अधिक अच्छी तरह क्रिया। स्पष्ट है कि प्रयोगिक समूह के सदस्यों द्वारा 'ब' सूची के अधिगम ने 'अ' सूची के प्रत्यास्मरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला ।

पूर्वगामी अवरोधन सिद्धांत (Proactive Inhibition) विस्मरण में प्रतियोगी अनुक्रियाओं की भूमिका पर बल देता हैं पहले सीखी गयी बातें नयी सामग्री के अधिगम व प्रत्यास्मरण में व्यवधान उत्पन्न करती है। यहीं पूर्वगामी अवरोधन है जब कोई व्यक्ति साधिकार अधिगम की सीमा से अधिक अधिगम कर लेता है तब पूर्वगामी अवरोधन तथा प्रतिगामी अवरोधन की संभावनाएं कम हो जाती है।

पोस्टमैन, अंडरबुड आदि द्वारा किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि दैनिक जीवन में होने वाला अधिकांश विस्मरण पूर्व गामी अवरोधन जैसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप होता हैं।

16.3.3.4 अभिप्रेरित विस्मरण

अभी तक प्रस्तुत व्याख्यायें स्मृति चिन्हों में शरीर क्रियात्मक (Physiological) परिवर्तनों या पूर्व व नये अधिगम में व्यक्तिकरण पर बल देती है। कोई सिद्धांत स्मरण तथा

विस्मरण में व्यक्ति के अभिप्रेरकों (Motives) की भूमिका पर अधिक ध्यान नहीं देता है। परन्तु कोई भी सिद्धांत इस बात की अनदेखी नहीं कर सकता कि स्मरण तथा विस्मरण के दौरान व्यक्ति की कुछ क्रियाएँ करने की इच्छा स्मरण व विस्मरण को प्रभावित कर सकती है। दमन (repression) के नियम के अनुसार हम अनेक बातों को इसलिए पुन:स्मृत नहीं कर पाते क्योंकि वे हमारी व्यक्तिगत समस्याओं से जुड़ी होती है। इस सिद्धांत के अनुसार स्मृतियों का प्रत्यास्मरण इसलिए नहीं होता है क्योंकि प्रत्यास्मरण किसी प्रकार व्यक्ति को अस्वीकार्य हो सकता है। अस्वीकार्य के लिए प्रत्यास्मरण के परिणामस्वरूप चिन्ता या अपराध भावना की वृद्धि उत्तरदायी हो सकती है।

जायगार्निक के अध्ययन के परिणामों से ज्ञात हुआ है कि किसी कार्य को तल्लीन होकर करने से कार्य पूरा करने के लिए अभिप्रेरणा उत्पन्न होती है। कार्य पूरा करने के अभिप्रेरक की असंतुष्टि अपूर्ण कार्य के स्मरण को बढ़ाती है।

मैरो के अध्ययन से पता चला कि उच्च निष्पति अभिप्रेरणा होने की दशा में कम अभिप्रेरणा (achievement motivation) की दशा की अपेक्षा अपूर्ण स्मरण अधिक होता है।

16.3.3.5 डुप्लैक्स सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का विकास हाल के वर्षो में किया गया है। इसके अनुसार हाल ही में प्रत्यक्षीकृत घटनाओं को याद करने में एक प्रकार की संग्रहण क्रिया विधि (storing mechanism) निहित होती है तथा अनेक प्रयासों मे बार-बार अभ्यास करने के बाद सुस्थापित सूचनाओं के प्रत्यास्मरण में एक दूसरी भिन्न प्रकार की क्रियाविधि निहित होती है। इन दोनों क्रियाविधियों को आरेख-उ में दर्शाया गया है। ये दो संग्रहण क्रियाविधियाँ लघु अवधि स्मृति (Short Term Memory) तथा दीर्घ अवधि स्मृति है।

इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति सीखी जाने वाली बातों का तात्कालिक प्रत्यास्मरण इसलिए नहीं कर पाता क्योंकि सूचनाएँ लघु अवधि स्मृति के परे चली जाती है। दीर्घ अवधि प्रत्यास्मरण में असफलता इस कारण हो सकती है क्योंकि सूचना कभी भी दीर्घ अवधि स्मृति में स्थानान्तरित नहीं हो पाती है या प्रत्यास्मरण के समय पर्याप्त मात्रा में संकेत उपलब्ध नहीं हो पाते व इस कारण दीर्घ अवधि स्मृति में सूचनाएँ पता नहीं चल पाती है स्थानान्तरण की प्रक्रिया में एक कूटबद्धीकरण (coding) प्रक्रिया निहित होती है। लघु अवधि स्मृति में अस्थायी रूप में संग्रहीत सूचना दोहराई जाती रहती है तथा वह सूक्ष्म सूचना समूहों में अनुदित (translate) होती रहती है जिन्हे दीर्घ अवधि स्मृति (LTM) में संग्रही किया जाता है|

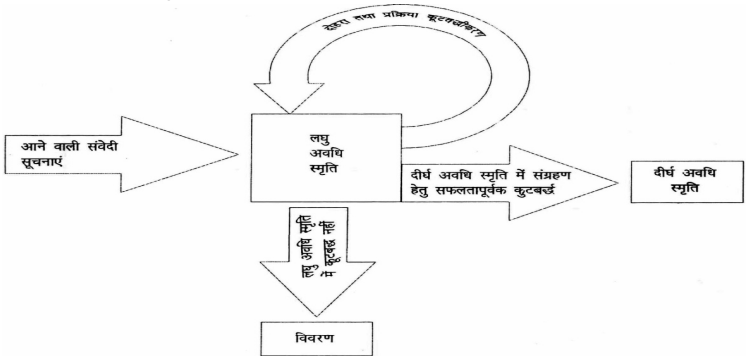

स्मृति का डुप्लेक्स सिद्धान्त : चित्र 3

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. स्मरण क्या है?
2. विस्मरण क्या है?
3. अच्छी स्मृति के तीन प्रमुख लक्षण बताइये।
4. स्मरण के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
5. विस्मरण के चार कारण लिखिए।

16.4.0 स्मरण तथा विस्मरण को प्रभावित करने वाली दशाएँ (Conditions Influencing Remembering and Forgetting)

स्मरण में देखने में व्यक्ति की मानसिक स्थिति विषय में उसकी रूचि, प्रेरणा, वातावरण विषय वस्तु का रूप आदि बातों का काफी प्रभाव पड़ता है, जबकि किसी तथ्य या वस्तु के विस्मरण के लिए मुख्यत: निम्न कारक उत्तरदायी होते है।

- विषय का निरर्थक होना
- समय का प्रभाव
- नवीन अनुभवों की अधिकता
- दुःखद अनुभवों का दमन
- अभ्यास की न्यूनता
- संवेगों की उत्तेजना
- मानसिक द्वन्द,-आघात
- मादक द्रव्यों का सेवन
- सीखने की अमनोवैज्ञानिक विधियाँ
- उत्तेजक स्थिति में अचानक परिवर्तन
- विषय की क्रमहीनता आदि

यदि हम ध्यान से स्मरण व विस्मरण के लिए उत्तरदायी कारकों का विश्लेषण करें तो पाते है कि जो कारक स्मरण के लिए सकारात्मक है वह विस्मरण के लिए नकारात्मक तथा जो कारण विस्मरण के लिए सकारात्मक है वही स्मरण के लिए नकारात्मक है।

इसके अलावा अन्य बहुत से कारक सीखने वाले व्यक्ति के द्वारा सीखी जाने वाली सामग्री के प्रत्यक्षात्मक संगठन को प्रभावित कर स्मरण व विस्मरण की गति को नियंत्रित करते हैं। ये कारण अधिगम सामग्री या परिस्थिति से सम्बन्धित हो सकते है। कुछ कारक सीखने वालों की क्रियाओं व अधिप्रेरणा से सम्बन्धित भी हो सकते है, आइये कुछ कारकों पर विचार करें।

16.4.1 अर्थपूर्ण बनाम निरर्थक अधिगम सामग्री

(Meaningful versus Meaningless learning Material)

अर्थपूर्ण सामग्री का प्रयोग कर किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि निरर्थक शब्दों की अपेक्षा अर्थपूर्ण सामग्री का धारण अधिक अच्छा होता है। अधिगम सामग्री की विषयवस्तु में

व्यक्ति की रूचि सामग्री के धारण में ओर भी अधिक वृद्धि करती है। कतोना ने रट कर याद करने तथा समझ कर याद करने की तुलना की। उसने यह पाया -

1. समझ कर सीखने से न केवल धारण में सुधार होता है वरन् सीखने वाला नये अधिगम हेतु अधिक तत्पर हो जाता है।
2. रट कर सीखने से सुलझाई जा सकने वाली समस्याओं का क्षेत्र संकुचित हो जाता है।
3. जब किसी समस्या का समाधान एक सामान्य नियम खोजकर किया जाता है तब उन
4. समाधानों में क्षय नहीं होता है। इनका धारण दीर्घ काल तक सम्भव होता है।

16.4.2 संवेगात्मक भाव (Emotional Tone)

सुखद संवेग प्रधान अधिगम सामग्री का प्रत्यास्मरण दुखद सामग्री के प्रत्यास्मरण से अधिक उत्तम होता है। शैक्षिक भ्रमण के दौरान प्रसन्नता अर्क देखे गये प्राणी व्यवहार हमें काफी समय तक याद रहते है।

अपनी व्यक्तिगत समस्याओं व कष्टों से जुड़ी बातें हम शीघ्र' भूल जाते है। ऐसा दमन (repression) के कारण सम्भव होता है इससे कुछ स्मृतियों की प्रत्यास्मरण हेतु उपलब्धता समाप्त हो जाती है। इससे कुछ स्मृतियों की प्रत्यास्मरण हेतु उपलब्धता समाप्त हो जाती है। प्रतिगमन सिद्धांत की मान्यता है कि जिन स्मृतियों का प्रत्यास्मरण किसी प्रकार से अस्वीकार्य हो सकता है उनका प्रत्यास्मरण नहीं होता है क्योंकि इससे अत्यधिक चिन्ता हो २२कती है या अपराध भाव सक्रिय हो सकते है।

16.4.3 पूर्ण तथा खण्ड अधिगम (Whole and Part Learning)

सामान्यत: पूर्ण रूप में स्मरण खण्डों में स्मरण से श्रेष्ठ होता है। पूर्ण विधि से सीखते समय व्यक्ति अधिगम सामग्री को प्राकृतिक संगठित रूप में याद करता है। जब किसी सामग्री को पूर्ण रूप में समझा जाता है तब उसका अर्थ पता चलता है। इससे हम उस स्वरूप से भी परिचित हो जाते है जिससे प्राय: हमें सीखी बातों को पुन: प्रस्तुत करना होता है जब हम पूर्ण विधि से याद करते है तब अधिगम सामग्री का धारण दीर्घकाल तक संभव हो पाता है। जब सीखने के लिए कम समय उपलब्ध होता है तथा कुछ ठोस परिणामों की जरूरत होती है तब खण्ड विधि से स्मरण श्रेष्ठ होता है।

16.4.4 अति - अधिगम (Over learning)

अति-अधिगम के कारण विस्मरण की दर मन्द हो जाती है। जब हम केवल उतना ही अभ्यास करते है जितना तात्कालिक पुन: प्रस्तुतीकरण हेतु जरूरी होता है तब विस्मरण तेज गति से तथा व्यापक स्तर पर होता है। इस न्यूनतम अपेक्षित मात्रा से अधिक अभ्यास करने पर विस्मरण की दर कम हो जाती है। तथा सीखी गयी बातों का धारण अपेक्षाकृत अधिक समय तक होता है।

16.4.5 व्यतिकरण (Interference)

किसी बात को सीखने के पहले सीखी बातें या उसके बाद में सीखी बातें उस बात के स्मरण-विस्मरण को प्रभावित कर सकती है। व्यतिकरण प्रभाव दो प्रकार के होते है 1. पूर्वगामी

अवरोधन (Proactive inhibition) तथा 2. प्रतिगामी अवरोधन। जब हम किसी बात को सीखने के बाद दूसरा कार्य करने लगते है तथा उसे करते समय हमारा मस्तिष्क क्रियाशील रहता है तब सीखने में रूकावट उत्पन्न हो जाती है। दोनो कार्यो में जितनी अधिक समानता होती है। उतनी ही कार्य सीखने में अधिक बाधा उत्पन्न होती है यह बाधा पूर्व-गामी अवरोधन कहलाती है। अनेक बार किसी बात को सीखने के बाद हम शीघ्र दूसरा काम करने लगते हैं इसके कारण स्मृति चिन्हों का निर्माण नहीं हो पाता है तथा बाद में सीखे जाने वाले कार्य के स्मृति चिन्ह पूर्व में सीखे गये कार्य के स्मृति चिन्हों को दूषित या आच्छादित करने लगते हैं। यह प्रतिगामी अवरोधन है। इसके कारण पहले सीखी गयी बात के विस्मरण की गति बढ़ जाती है।

16.4.6 अधिगम परिस्थिति (Learning Situation)

अधिगम सामग्री में व्यक्ति की रूचि, सीखने हेतु अभिप्रेरणा, अनुबंधन हेतु अवसर, सीखने हेतु उचित विधियों का प्रयोग, मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य, सीखने के समय वातावरण का शान्तिमय व तनाव रहित होना, आदि परिस्थितियों स्मरण में सहायक होती है। सीखी जाने वाली बातों में रूचि की कमी, सीखने हेतु न्यून अभिप्रेरणा, रोग, दबावोन्मुख व शोर युक्त वातावरण स्मरण कम करते है। अब दो प्रत्यय बहुधा सम्बन्धित रहते है तब एक का स्मरण दूसरे प्रत्यय का स्मरण कराता है। जब हम दो समान बातें एक साथ सीखते है तब एक को देखने पर हमें दूसरे का स्मरण हो जाता है। साथ-साथ या कम समय-अन्तराल से प्राप्त किये गये अनुभवों में से एक का ध्यान करने पर हमें दूसरे अनुभव का स्मरण होता है। हाल ही में प्राप्त अनुभवों का प्रत्यास्मरण शीघ्र किया जा सकता है।

16.4.7 वितरित बनाम एकत्रित अभ्यास (Distributed versus Massed Practice)

एक साथ या कुछ बार में समस्त सामग्री को याद करने में दीर्घकाल तक अन्तराल युक्त

अभ्यास द्वारा स्मरण से कम समय लगता है। अन्तराल-युक्त अर्थात् वितरित अभ्यास से धारण में वृद्धि होती है।

16.4.8 सीखने वाले की अभिवृत्ति (Attitude of Learner)

व्यक्ति जितना अधिक निकट अपने कार्य को अपने लक्ष्य के पाता है उतनी ही अधिक उसकी सीखने की इच्छा होती है। जब हमें सीखी गयी बात के उपयोग के अवसरों की जानकारी होती है तब उसका सारण उत्तम होता है। अधिगम सामग्री के प्रति व्यक्ति की अभिवृतिस्मरण को प्रभावित करती है। अनुकूल अभिवृति स्मरण को बढ़ाती है तथा विस्मरण को कम करती है।

16.5.0 सारांश (Summary)

स्मृति पूर्व प्राप्त अनुभवों को कुछ समय बाद पुन: याद करने की प्रक्रिया है, जबकि विस्मृति में व्यक्ति पूर्वानुभवों को पुन: याद करने में अपने को असमर्थ पाता है। अच्छी स्मृति उस व्यक्ति की मानी जाती है जो सीखी गई अनुक्रिया को अच्छी तरह से मस्तिष्क में धारित कर लेता है तथा उसका शीघ्र व स्पष्ट प्रत्यास्मरण तथा प्रत्याभिज्ञान कर लेता है। स्मृति मुख्यत: दो प्रकार की होती है। (1) तात्कालिक (2) स्थायी स्मृति। परन्तु अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने अपने अनुसार इसके प्रकार बताए है। विस्मरण भी मुख्यत: दो प्रकार का होता है (1) निष्क्रिय विस्मृति (2) सक्रिय विस्मृति। विस्मृति की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने कई

व्याख्याएँ दी है जिनमें अनुपयोगी द्वारा निष्क्रिय क्षय, स्मृति चिन्हों कीं क्रमबद्ध विकृति व्यक्तिकरण प्रभाव, अभिप्रेरित विस्मरण तथा डुपलैक्स सिद्धांत प्रमुख है। स्मृति तथा विस्मृति का प्रभावित करने वाले कारक एक दूसरे पर नकारात्मक प्रभाव डालते है जैसे थकान का कारक स्मरण के लिए हानिकारक है तो विस्मरण को बढ़ावा देता है। इनका विस्तृत विवरण अध्याय में दिया जा चुका है। स्मृति तथा विस्मृति दोनों का जीवन में अत्यधिक महत्व है यदि स्मृति समायोजन में सहायता पहुंचाती है तो विस्मृति के कारण व्यक्ति के मस्तिष्क का भार कम होता है। नवीन अनुभवों को संचित होने का स्थान मिलता है तथा व्यक्ति को दुखद अनुभूतियों से छुटकारा मिल जाता है|

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. स्मरण क्या है ? अच्छी स्मृति वाले बालकों को आप कैसे पहचानेंगे?
2. स्मरण को बढ़ाने वाली दशाओं की व्याख्या कीजिए|
3. विस्मरण से आप क्या समझते है?किन दशाओं को नियंत्रित कर विस्मरण का क्रम किया जा सकता है|

16.6.0 संदर्भ (References)

1. भटनागर,सुरेश (1989) : शिक्षा मनोविज्ञान इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस,मेरठ
2. Dosajh,N.L.(1989) : Advanced Educational psychology Bombay: Allied Publishers
3. Hilgard & Atkinson : Introduction to psychology.
4. Morgan, C.T. & King, R.A. (1975) : Introduction to psychology. New Delhi: Tata McGraw-Hill publishing Company.
5. श्रीवास्तव,जी.एल. (1972) : शिक्षा मनोविज्ञान,प्रकाशन केंद्र न्यूबिल्डिंग अमीनाबाद लखनऊ
6. एस.एस.माथुर (1981) : शिक्षा मनोविज्ञान आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर
7. Uday Shankar (1984): Advanced Educational psychology, New Delhi: Oxonian Press

इकाई-17

व्यक्तित्व के लक्षण और प्रभावक तत्व Personality - Traits and Influencing Factors

17.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

17.2.0 प्रस्तावना

17.3.0 व्यक्तित्व में लक्षणों का महत्व

17.4.0 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक

17.4.1 वंशानुक्रम कारक

अन्त: स्रावी ग्रंथियां

थाईराइड ग्रन्थि

स्र्वकीवी ग्रन्थि

एड्निल ग्रन्थि

पिट्यूटरी ग्रन्थि

जनन ग्रन्थियां

शरीर रचना

अन्य कारक

17.4.2 व्यक्तित्व पर पर्यावरण का प्रभाव

(अ) प्राकृतिक कारक

(ब) सांस्कृतिक कारक

(स) सामाजिक कारक

(1) परिवार

– परिवार के सदस्यों का प्रभाव।

– परिवार के बालक का जन्म क्रम।

– परिवार का आकार।

– परिवार का आर्थिक स्तर।

(i) विद्यालय का प्रभाव

– शिक्षक और उसके व्यवहार का प्रभाव

– विद्यालय का वातावरण तथा अन्य प्रभाव

(ii) पास पड़ौस और साथियों का प्रभाव

(iii) समाज का प्रभाव

17.5.0 संदर्भ

17.1.0 उद्देश्य एवं लक्ष्य (Aims and Objectives)

व्यक्तित्व मनुष्य की जन्मजात तथा अर्जित विलक्षणताओं तथा उसके आन्तरिक एवं बाह्य पक्षी का गत्यात्मक संगठन है। इस इकाई में व्यक्तित्व के लक्षणों को स्पष्ट करने के साथ मनुष्य के व्यक्तित्व को वंशानुक्रम (जन्मजात) तथा वातावरण (अर्जित) किस प्रकार प्रभावित करते हैं, इसे विवेचित करने का प्रयास किया गया है। आशा है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

- व्यक्तित्व के सही अर्थ को समझ सकें तथा उसको स्पष्ट कर सकें।
- व्यक्तित्व के अध्ययन के उपागमों और व्यक्तित्व के लक्षण सिद्धान्त को समझ सकें|
- व्यक्तित्व के वंशानुक्रम कारकों को समझ कर अपने जीवन में उपयोगी बना सकें।
- व्यक्तित्व के पर्यावरण संबंधी कारकों को समझ कर अपने बालकों के व्यक्तित्व के विकास में योगदान दे सकें।
- व्यक्तित्व के वंशानुक्रम तथा पर्यावरण के सापेक्षिक महत्व को बता सकें।

17.2.0 प्रस्तावना (Introduction)

समाज में अनेक ऐसे व्यक्ति है जिन पर ध्यान ही नहीं जाता और ऐसे भी व्यक्ति हैं जो स्वयं दूसरों को आकर्षित कर लेते हैं। वाद-विवाद के समय, भाषणों के समय तथा अभिनय करते समय ऐसे व्यक्ति दूसरों पर प्रभाव अपने व्यक्तित्व के कारण ही डाल पाते है। अत: अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर व्यक्तित्व है क्या? यदि व्यक्तित्व की सभी परिभाषाओं का विश्लेषण करे तो यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व में व्यक्ति के लक्षण रुचियां, योग्यताएं, अभिवृत्तियां, मूल्य प्रेरक तथा समायोजन के स्वाभाविक एवं अनोखे ढंग आदि शामिल किये जाते हैं, जो विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के प्रतिक्रियाओं में अभिव्यक्त होते रहते हैं । इसके अतिरिक्त इसमें व्यक्ति के स्वभाव, भाव दशायें, आचरण, नैतिक विचार, गुण तथा मानवीय विचार को भी शामिल किया जाता है जो इसके विशिष्ट व्यवहार को प्रकट करने में मदद करते है। इन्हीं वैयक्तिकताओं और विभिन्नता के कारण कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से भिन्न दिखाई देता है और इसी वैयक्तिकता के कारण ही उसे विचार करने सोचने और निर्णय करने की क्षमता मे दूसरों से अंतर होता है।

17.3.0 व्यक्तित्व के लक्षणों का महत्व (Importance of Traits of Personality)

व्यक्तित्व का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर तीन उपागमो के अन्तर्गत किया है। गार्डनर मर्फी के अनुसार ये तीन आगम है:- 1. संरचनात्मक उपागम 2. समायोजन उपागम तथा 3. लक्षण अथवा विशेषक उपागम।

संरचनात्मक उपागम व्यक्तित्व की समग्रता पर बल देता है। व्यक्तित्व के अध्ययन के समय समग्रता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। समायोजन उपागम के अन्तर्गत कुर्ट लेविन के अनुसार, जीवन, देश व्यक्ति तथा पर्यावरण आदि का निरूपण किया जाता है। जीवन, देश में लेविन के अनुसार, वे सभी तत्व निहित हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रेरित तथा प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में जीवन-देश अपने मूल रूप में मनोवैज्ञानिक पर्यावरण का ही परिचायक है।

व्यक्तित्व की व्याख्या करते समय जब कोई मनोवैज्ञानिक लक्षणों अथवा विशेषकों की और ध्यान देता है तो उसे लक्षण अथवा विशेषक उपागम कहते है। यहाँ लक्षण का अर्थ व्यक्तित्व के उस पक्ष से है जिसके कारण दूसरों से भिन्न दिखाई देता है। लक्षण के उदाहरण हम नम्रता, समाजप्रियता स्पष्टवादिता तथा सत्यता, संवेगात्मक स्थिरता, उदासी तथा प्रफुता तथा प्रसक्ति आदि अनेक गुण आते हैं।

लक्षण अथवा विशेषक को गार्डन डब्ल्यू ऑलपोर्ट ने विशेष महत्व दिया है। उसके अनुसार लक्षण या विशेषक एक प्रकार की प्रधान निर्णायक प्रवृत्ति है और वह बहुत कुछ आदत और अभिवृत्ति के समान है। इसमें यह क्षमता हो तो है कि वह विभिन्न उद्दीपनों से संबंधित कार्यो में समानता बनाये रखे

और अनुकूलन तथा अभिव्यक्ति संबंधी व्यवहारों का आरंभ, निरन्तरता एवं समरूपता के अनुरूप निर्देशन कर सकें। यह मुख्य प्रवृत्ति से झलकती है और उस प्रवृत्ति की वजह से वह व्यक्ति आगे विख्यात हो जाता है। विशेषक का अनुमान हम व्यक्ति के व्यवहार के आधार पर लगाते हैं, जब कोई व्यक्ति बार-बार एक ही प्रकार का व्यवहार करता है और उसमें निरन्तरता पायी जाती है तथा उस व्यक्ति के विशेषक का अनुमान लगा पाते हैं। ऑलपोर्ट ने अंग्रेजी भाषा में 18,000 के लगभग विशेषकों का पता लगाया है। चिकित्सा विज्ञान, साहित्य आदि में भी ऐसे अनेक शब्द पाये जाते हैं जो व्यक्ति के विशेषकों तक है। इस तरह ऑलपोर्ट ने अपनी पुस्तक में व्यक्तित्व के विशेषकों की लम्बी सूची को मनोवैज्ञानिक कैटल तथा गिलफोर्ड आदि ने घटाने का पूरा प्रयास किया हैं और इसके महत्व को दर्शाया है|

कैटिल मनोवैज्ञानिक ने इन लक्षणों को स्त्रोत लक्षण तथा सतह लक्षण में विभाजित किया है। स्त्रोत लक्षण एक प्रकार का प्रमाणित प्रभाव है जो व्यवहार की व्याख्या में और निर्धारण में सहायक है। सतह लक्षण कैटिल के अनुसार, कम महत्वपूर्ण है जिनका केवल वर्णन किया जा सकता है। ये व्यवहारिक घटनाओं के निरीक्षण योग्य पुंज है जो कम स्थायी होते हैं। कैटिल के अनुसार जिन व्यवहार एवं व्यवहार संबंधी घटनाओं का संबंध परिस्थिति विशेष से होता है उसे सतह लक्षण कहना चाहिये। स्त्रोत लक्षण ही सतह लक्षण के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। कैटिल महोदय ने सांख्यिकीय प्रविधियों के माध्यम से व्यक्तित्व के 171 फिर 35 तथा अंत में 12 लक्षण ज्ञात किये है।

कैटिल ने व्यक्तित्व के जो 12 गुण बताए वह है चक्र विक्षिप्त, सामान्य मानसिक, शक्ति प्रशासक, प्रसन्न मुख, धनात्मक चरित्र, संवेगात्मक परिपक्वता,, साहसी; परिपक्व सामाजिक-सांस्कृतिक, विश्वास अपारम्परिक, विनीत आदि। कैटल ने आगे स्पष्ट ' किया है सभी गत्यात्मक लक्षणों या विशेषकों, सतह अथवा स्त्रोत के अन्तर्सबंध अत्यन्त ही जटिल होते है और उसमें ध्यान देने की बात यह है कि व्यक्ति के कतिपय गौण लक्ष्यों से संबंधित विशेषक या लक्षण उसके मुख्य और अन्तिम उद्देश्य से संबंधित विशेषकों के अधीन होते हैं।

17.4.0 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Personality)

व्यक्तित्व को समझने के बाद अब प्रश्न यह उठता है कि व्यक्तित्व पर किन-किन कारकों का प्रभाव पड़ता है। जिसके कारण हमारे समाज में मित्र- भिन्न प्रकार के व्यक्तित्व विकसित हुये हैं। व्यक्तित्व के निर्धारक तत्व का अध्ययन करते समय यह स्पष्ट होता है कि आनुवंशिकता और पर्यावरण ही ऐसे कारक है जो व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में बालक जन्म के समय जो क्षमतायें लेकर आता है उसे यथा संभव विकसित होने के लिए पर्यावरण के घटकों का पूर्ण योगदान होता है। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति पर इन घटकों के एक समान प्रभाव नहीं पड़ते। अत: वह भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तित्व को विकसित करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि समान प्रभाव भी पड़ता है तो उनकी मात्रा एक समान नहीं होती। इसलिये होलजिगर ने जुड़वे बच्चों के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि व्यक्तित्व पर पर्यावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। जैविक निर्धारक केवल विकास की संभावनायें उपस्थित करते है और इन संभावनाओं की पूर्ति पर्यावरण संबंधी निर्धारक करते हैं। आइए व्यक्तित्व के निर्धारण में प्रमुख भूमिका निभाने वंशानुक्रम और पर्यावरण के सम्बन्ध में विस्तार से बात करें।

17.4.1 वंशानुक्रम कारक

17.4.2 बालक की आनुवंशिकता का आधा भाग

उसके माता-पिता से, एक चौथाई भाग दादा-दादी, नाना-नानी से, आठवां भाग परदादा-परदादी तथा शेष भाग अन्य पुरखों से प्राप्त होता है । इन पितृ सूत्रों मे: जो जीन पाये जाते हैं उनके आधार पर नवजात शिशु शारीरिक और मानसिक गुणों. को अपने माता-पिता तथा अन्य पूर्वजों से प्राप्त करता है। अत: आनुवांशिकता तथा जैविक निर्धारकों का प्रभाव शरीर की बनावट, स्वभाव तथा प्रकृति पर पड़ता है जिसे हम निम्न बिन्दुओं में अध्ययन करेंगे।

(अ) अन्त: स्रावी ग्रन्थियां

व्यक्तित्व के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव शरीर के अन्दर दो प्रकार की ग्रन्थियों का पड़ता है- (1) नलिका विहीन ग्रन्थियां (2) नलिका युक्त ग्रन्थियां। नलिकायुक्त ग्रन्थियां जिस रस का निर्माण करती है उस रस को शरीर से बाहर आंसू या पसीना के रूप में निकाल देती हैं। नलिका विहीन ग्रन्थियां वे है जिनका ' स्राव सीधे रक्त. में बिना किसी नलिका ' के आता है। इन ग्रन्थियों से जो प्रभाव निकालता है उसे हार्मोन कहते हैं। कुछ प्रमुख ग्रन्थियों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से दिया जा जिससे स्पष्ट होता है कि ये ग्रन्थियां किस प्रकार व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।

(1) थाइराइड ग्रन्थि:- यह ग्रन्थि गले में श्वास नली के आस-पास स्थित होती है। इसी कारण इसे गल ग्रन्थि भी कहते हैं। इस ग्रन्थि से जो स्त्राव निकलता है, उसे थाइराक्सीन द्रव करते हैं। जिनमें लगभग 65 प्रतिशत आयोडीन होती है। यदि किसी बालक में इस ग्रन्थि का स्त्राव पर्याप्त मात्रा में' नहीं हो तो वह बालक बौना रह जाता है और उसके विकास मे बाधा आ जाती है| थाइराक्सीन की कमी से स्मृति और चिन्तन में कमी आती है, भावों की अभिव्यक्ति में तथा उसके ध्यान का विस्तार भी कम हो जाता है। जब इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता बढ़ जाती है

तो बालक की शारीरिक लम्बाई तेजी से बढ़ती है। प्राय: ऐसे व्यक्ति चिन्तित, अशान्त, चिड़चिड़े और अस्थिर भी रहते है। यदि प्रा२ंभ में यह ज्ञात हो जाये कि थाइराक्सीन पर्याप्त मात्रा में स्राव नहीं हो रहा तो इसका इलाज चिकित्सक सरलता से कर सकते है।

(2) पैराथाइड ग्रंथि:- यह ग्रन्थि थाइरायड ग्रन्थि के अन्दर ही स्थित होती है। इस ग्रन्थि का प्रमुख कार्य कैल्सियम की मात्रा को शरीर में नियन्त्रित करना हैं जिससे शरीर को संतुलित रखने में मदद मिलती है। इस ग्रन्थि का संवेगात्मक व्यवहार तथा दांतो तथा हड्डियों के विकास पर भी प्रभाव है। इसके अलावा इस ग्रन्थि से स्राव ठीक ढंग से यदि नहीं होता तो मांसपेशियों में ऐंठन हो जाती है। ऐसी हालत में व्यक्ति का कैसा व्यक्तित्व होगा, आप इसका अनुमान लगा सकते है।

(3) सर्वाकिवी ग्रन्थि:- यह ग्रन्थि स्वस्थ शरीर के लिए आवश्यक है क्योंकि इसी ग्रन्थि से पाचक रस और इन्सुलिन नामक महत्वपूर्ण द्रव का स्राव होता है। पाचक रस पाचन शक्ति के लिये अनिवार्य है और इन्सुलिन का उपयोग रक्त शर्करा को नियंत्रित करती है। यदि यह ग्रन्थि उपयुक्त मात्रा में इन्सुलिन का स्राव नहीं करती है तो व्यक्ति को डाइबिटीज रोग हो जाता है। इसका व्यक्ति के व्यवहार पर तथा उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है उसे आप ऐसे रोगी को देखकर महसूस कर सकते है। रक्त में शर्करा की कमी के कारण उसमें शारीरिक कमजोरी, मानसिक शिथिलता, भय और चिडचिडेपन के लक्षण दिखाई देते है।

(1) ऐडीनल ग्रन्थि:- इस ग्रन्थि से एडीनल नामक द्रव का स्राव होता है जिसका व्यक्तित्व पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। एडीनल द्रव का यदि अधिक स्राव होता है तो स्त्रियों में पुरूषोचित गुणों की अधिकता दिखाई देती है। स्त्रियों की आवाज भारी हो जाना तथा उसके स्तनों व कई अंगों की गोलाई में कमी आना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है। इसके अधिक स्राव के कारण रक्त संचार तेज हो जाता है। (ऊर्जा रक्त चाप) तथा यकृत के लीवर ग्लाइकोजिन नामक पदार्थ को रक्त में अधिक छोड़ते है जिससे शरीर की थकान कम होती है और शरीर के दूषित पदार्थ बाहर निकलते हैं, तथा आंखों की पुतलियां फेल जाती है आदि। यदि इस ग्रन्थि के स्राव में कमी आती है तो एडीसन रोग हो जाता है जिससे शरीर में शिथिलता तथा निर्बलता आ जाती है। इसके अलावा इसके अभाव में शरीर में रोग के प्रतिरोध करने की शक्ति भी कम हो जाती है तथा स्वभाव में चिड़चिड़ापन उत्पन्न हो जाता है।

(2) पिट्यूटरी ग्रन्थि :- यह ग्रन्थि भी मस्तिष्क मे स्थित है। इस ग्रन्थि के स्त्राव (हारमोन) विभिन्न अन्त: स्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले स्राव को नियंत्रण करती है तथा ग्रंथियों की क्रियाओं को उत्तेजना मिलती है। अत: इस कारण इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि भी कहते हैं। इसके अलावा इस ग्रन्थि के स्राव से माँसपेशियों और हृदय पर भी प्रभाव पड़ता है। शोध अध्ययनों से पता चला है कि इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता व्यक्ति के विकास काल के बाद यदि बढ़ जाती है तो उस व्यक्ति के हाथ, पैर, जबडा तथा नाक आदि लम्बे हो जाते हैं। इसके विपरीत इस ग्रन्थि की क्रिया शीलता में बहुत कमी आती है तो व्यक्ति के विकास में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

(3) जनन ग्रन्थियां- पुरुष और महिला जनन ग्रन्थियों से हारमोन्स उत्पन्न होते हैं उनका भी प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। इन ग्रन्थियों से स्राव से ही पुरुष और महिला के यौन अंगों का विकास होता है। इन संबंधित हारमोन्स के कारण ही पुरुष में पुरुषत्व का विकास जैसे दाढ़ी व मूँछ का उगना संभव होता है। इसी प्रकार महिलाओं में स्त्राव का विकास होता है।

(ब) शरीर रचना - शरीर रचना में व्यक्ति की बनावट, आकार और शरीर के विभिन्न अंगों का.' अनुपात तथा शरीर का रंग आदि आता है। दैनिक अनुभव की बात है कि आम व्यक्ति किसी व्यक्ति की शरीर रचना, पौशाक और उसके रंग के आधार पर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि शरीर रचना ही सम्पूर्ण व्यक्तित्व नहीं है। फिर भी शरीर रचना में व्यक्ति के प्रति दूसरों के व्यवहार में अन्तर अवश्य आ जाता है। इसके अलावा दोषपूर्ण शरीर रचना के कारण व्यक्ति में हीन भावना और अनेक विकास उत्पन्न हो जाते हैं जिसका सीधा प्रभाव व्यक्ति के समाज में समायोजन पर पड़ता है। शरीर रचना के आधार पर मनोवैज्ञानिक शैल्डन तथा क्रेशमर ने व्यक्तित्व के. प्रकारों का वर्णन किया है।

(स) शरीर रसायन - प्राचीन काल से ही यह निष्कर्ष निकाला गया है कि व्यक्ति का स्वभाव कैसा होगा, वह शरीर की रसायन क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। आज भी चिड़चिड़े व्यक्ति में पित्त की, शांत व्यक्ति मे कफ तथा उदास रहने वाले व्यक्ति में स्नायविक द्रव्य की अधिकता पायी जाती है। यह रसायनिक तत्व कभी-कभी खराब आदतों के कारण बाहर से भी हमारे शरीर में पहुँच जाते हैं और इनका प्रभाव व्यक्तित्व पर छाया रहता है। उदाहरणतः शराब, तम्बाकू अफीम, गांजा आदि का सेवन करने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर इन तत्त्वों का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। इसी प्रकार विटामिनों की कमी तथा शर्करा की मात्रा कम या अधिक रूधिर मे होने से व्यक्ति में अनेक परिवर्तन हो जाते हैं, जिसके (कारण) उसके व्यवहार में परिवर्तन दिखाई देने लगता है।

(द) अल्स कारक - इसके अन्तर्गत बुद्धि, लिंग ,प्रतिभा स्नायुमण्डल तथा स्वभाव इत्यादि कारक आते हैं जिसका सीधा प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। श्रेष्ठ बुद्धि तथा विशिष्ट प्रतिभा वाले व्यक्ति (जैसे संगीतज्ञ, नृत्यकार, वैज्ञानिक आदि) की सभी लोग इन गुणों के कारण प्रशंसा करते है। एक प्रतिभाशाली बालक अपने माता-पिता एवं शिक्षक से अपने कार्यो से पुरस्कार प्राप्त करता है और प्रशंसा का पात्र बनता है। इसी प्रकार अनेक बालक अपनी रूचि और विशिष्ट योग्यता को बढ़ाकर प्रतिष्ठित कार्य करते हैं और उसमें विशेष कौशल प्राप्त करके सबके बीच मान्यता प्राप्त करते हैं। बुद्धि और विशिष्ट योग्यता वाले बालक को अपनी क्षमता को विकसित करने में मदद मिलती है और उसमें आत्मविश्वास तथा सम्मान की भावना विकसित होती है। यहां पर यह कहना उचित होगा कि बुद्धि जन्मजात अवश्य है लेकिन अच्छे परिवेश में उसे एक सीमा तक विकसित किया जा सकता है। स्नायुमण्डल भी शरीर की गतिविधियों तथा मानसिक दशा पर काफी प्रभाव डालता है। महिलाओं एवं पुरुषों की कार्य प्रणाली एवं मनोदशाओं में अन्तर का एक प्रमुख यौन भिन्नता भी है। कई समाजों में लिंग भेद के आधार पर महिलाओं और पुरुषों की सामाजिक स्थिति एक जैसी नहीं है। स्वभाव भी व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग है। जो उसके भावनात्मक व्यवहार को प्रभावित करता है। आपने देखा होगा कि सहानुभूति पूर्ण, सहायता पूर्ण तथा हंसमुख स्वभाव से सभी व्यक्ति अपने लिए असम्मान तथा नफरत के बीच बो लेते हैं।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. नलिका विहीन तथा नलिका युक्त ग्रंथियों में अंतर कीजिए?
2. पेराथाइराइड ग्रंथि व्यक्तित्व का किस प्रकार प्रभावित करती है?
3. सर्वकीवी ग्रंथि का व्यक्ति के स्वभाव पर क्या प्रभाव पड़ता है?

17.4.3 पर्यावरण संबंधी कारक-

(अ) प्राकृतिक

(ब) सांस्कृतिक

(स) सामाजिक

(अ) प्राकृतिक कारक- भारत ही नहीं बल्कि विश्व के अनेक देशों में विभिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा जलवायु पाई जाती है। यहां कहीं अधिक वर्षा तो कही सूखा, कही रेगिस्तान है तो कहीं खेती का सर्वश्रेष्ठ मैदान, कहीं अत्यधिक गर्मी का प्रकोप है तो कहीं शीत का प्रभाव। इस प्राकृतिक विभिन्नता का प्रभाव व्यक्तियों के रहन-सहन, भाषा तथा स्वास्थ्य पर पड़ता है। इस कारण इन व्यक्तियों का विकास भी अलग-अलग प्रकार से होता है। अत: क्षेत्रीयता तथा प्राकृतिक विभिन्नता का व्यक्तित्व पर प्रभाव स्पष्ट रूप से हम अपने शहरों में देख सकते हैं। गांवों में किसान और मजदूर का स्वास्थ्य भी शहर के व्यक्तियों से ज्यादा अच्छा होता है और वहां की खुली प्राकृतिक व्यवस्था के' कारण ही उनके विचार मूल्य तथा निर्णय शक्ति में अन्तर अन्य व्यक्तियों की तुलना में दिखाई देता है|

(ब) सांस्कृतिक कारक:- व्यक्तित्व पर संस्कृति का प्रभाव सबसे अधिक होता है। संस्कृति हमारे रहन-सहन में, सोचने के ढंग में, दैनिक कार्यकलापों में, मनोरंजन, कला, साहित्य तथा धर्म के कार्यो में झलकती है। इस तरह संस्कृति सम्बन्धों से जुड़ी हुई है। संस्कृति ही यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति में किस प्रकार के अनुभव विकसित होगा और वह उसके मूल्यों एवं आदर्शो को अपना लेगा अथवा नहीं। प्राचीन भारत में प्राय: व्यवसाय का चयन भी संस्कृति से प्रभावित था। बालक अपने मां-बाप के व्यवसाय में शुरूआत में मदद करता है तथा उसे सीख लेता था और बाद में उसी व्यवसाय का चयन जीवन यापन के लिए कर लेता था। आज भी बालक प्राय: वहीं कार्य करता है, जो उसके माता-पिता चाहते हैं। नित्य कर्म आदि वह इसी प्रकार सीखता है। उसकी आदत पड़ जाती है और रोजाना उन कार्यो को करता रहता है। यदि व्यक्ति के आदत और व्यवसाय का अध्ययन किया जाये तो हमें संस्कृति और व्यक्तित्व के संबंध का सरलता से ज्ञान हो जायेगा। संस्कृति में ही व्यक्ति व्यवहार और आपसे सीखता है। यह व्यवहार और आदतें संस्कृति और व्यक्तित्व के बीच की कड़ी होती है। इन व्यवहार और आदतों की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत है और सामाजिक स्तर पर संस्कृति। बालक का व्यक्तित्व उस सांस्कृतिक वातावरण से जुड़ा है जिसमें उसका विकास हुआ है। लेकिन किसी राष्ट्र में यदि उप संस्कृतियां हैं तो बालक उनसे भी अवश्य प्रभावित होगा। चीनी संस्कृति में पला बालक का व्यक्तित्व चीनी संस्कृति जैसा होगा न कि जापान संस्कृति जैसा। ब्रोनफेन ब्रीवर (1970) ने अमेरिका और रूस के बच्चों के पालन-पोषण कार्य प्रणाली का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि यदि माता-पितर अपने बच्चों को प्यास एक अनुशासित विधि के रूप में करते है तो बच्चों में आज्ञा पालन, आन्तरिक. नियंत्रण और श्रम करने का गुण अधिक मात्रा ' में पाया जाता है। लेकिन ऐसे बालकों में सृजनात्मकता, नवीन प्रवर्तन तथा प्रवर्तक व्यवहार अधिक मात्रा में नहीं पाया जाता। मार्गन मनोवैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि प्रशिक्षण और अनुभव में अन्तर, व्यक्तित्व में भेद पैदा कर देता है। उदाहरणार्थ- धनवान और गरीबों के बच्चों के पालन-पोषण में बहुत अन्तर होता है। धनवान के बच्चे कड़ी निगरानी में रहते है और धूल या रेत में नही खेलने देते। यदि वे धूल या रेत में खेलते हैं तो प्राय: उन्हें दण्ड दिया जाता है जबकि गरीबों के बच्चों मे ऐसा नहीं किया

जाता । अतः' गरीबों के बच्चे. में प्रारंभ से ही आक्रमणकारी प्रवृत्तियाँ विकसित हो जाती है । ऐसे बच्चे मामूली तकलीफों की परवाह नहीं करते और उनको काम अनुभव धनवान बच्चों की अपेक्षा शीघ्र होने लगता है ।

(स) सामाजिक कारक:- बालक का मन एक स्वच्छ श्यामपट्ट के समान है जिस पर बिना लिखे कोई भी संस्कार अंकित नहीं होता। लॉक महोदय के इस कथन से अधिकांश मनोवैज्ञानिक सहमत है। आइए, देखे कि सामाजिक कारक व्यक्तित्व को किस प्रकार प्रभावित करता है।

(1) परिवार का प्रभाव:- परिवार का सबसे अधिक प्रभाव बालकों पर पड़ता है क्योंकि परिवार ही बच्चों के प्रारंभिक वर्षो का वातावरण होता है। इस पारिवारिक वातावरण में बच्चे का विकास होता हैं और उसके व्यवहार में परिवर्तन अनायास शुरू हो जाता है जो माता-पिता की अभिवृत्ति और सहयोग अथवा उनके असहयोग द्वारा दण्ड अथवा पुरस्कार पर निर्भर करता है। आइए देखे कि परिवार का बालक के व्यक्तित्व पर कैसे प्रभाव पड़ता है-

परिवार के सदस्य का प्रभाव:- सर्वप्रथम परिवार के अन्तर्गत माता-पिता का बच्चों के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी चर्चा करेंगे। यह स्पष्ट है कि माता-पिता बच्चों के लिए सर्वश्रेष्ठ शिक्षक माने गये है। जिस प्रकार की शिक्षा बालक को परिवार में मिलती है, वैसा ही उनके व्यक्तित्व का विकास होता है। जैसे यदि माता-पिता की अभिवृत्तियां चाल-चलन, आदतें और बच्चों के प्रति भावात्मक संबंध अच्छे होंगे, तथा वे बच्चे के साथ प्रेम व मानवता का व्यवहार करेंगे और अपने परिवार में समायोजन से रहेंगे तो, उनके बच्चे शुरू से ही आत्म विश्वास विकसित कर अन्त में सुनागरिक बनते हैं। परिवार में मां का महत्व बच्चे के प्रारंभिक काल में अधिक है। महापुरुषों की जीवनी से ज्ञात होता है कि जिनकी मां एवं पिता ने वीरता और चरित्र के पाठ बालकों को बचपन में पढ़ाये थे। वही बालक बाद में महान पुरुष बने। नेपोलियन और शिवाजी का उदाहरण इसी तथ्य को सिद्ध करता है। येरो महोदय के अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला कि बच्चों का संवेगात्मक और बौद्धिक विकास का प्रत्यक्ष संबंध बालक की मां के साथ अन्त: क्रियाओं की मात्रा और उसके अच्छे गुणों से प्रत्यक्ष रूप से संबन्धित हैं। इसके विपरीत यह भी देखा गया है कि पिता की अनुपस्थिति का सर्वाधिक प्रभाव बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। मिसचेल के अध्ययन मे यही पाया गया कि पिता की अनुपस्थिति का प्रभाव बच्चों के समाजीकरण और उनके विकास पर पड़ता है।

परिवार के सभी सदस्यों- दादा, दादी, चाचा, ताऊ, भाई बहन इत्यादि का भी बालक के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है वे अनुकरण से बहुत कुछ सीखते है। इसी कारण संयुक्त परिवार और एकल परिवार में पले बालक के व्यक्तित्व में अन्तर स्पष्ट नजर आता है। भारतीय परिवार की संस्कृति में बालक को सम्मान देना उचित बताया गया है, लेकिन एकल परिवार में ऐसा नहीं करते है। बालक के प्रति प्रेम की अवहेलना का प्राय: सभी बालकों पर एक जैसा प्रभाव नहीं पड़ता। शोध अध्ययन और अनुभव से यह स्पष्ट हुआ है कि एक बालक प्रेम की अवहेलना और प्रताड़ना से दब्बू और डरपोक बन सकता है जबकि दूसरा बालक उदंड और दबंग भी बन सकता है। अत: एक स्थिति भिन्न-भिन्न प्रभाव डालती है और यह उसी प्रकार है जिस प्रकार आग मक्खन को पिघला देता है और वहीं आग अण्डे को सख्त बना देती है। दूसरी और यदि माता-पिता, बालक को अधिक प्यार करते हैं तो बालक बहिर्मुखी और उन पर अधिक निर्भर रहने वाला बन जायेगा तथा उसमें स्वतंत्र रूप से निर्णय करने की योग्यता का समुचित विकास नहीं हो पायेगा।

हीली और ब्रोनर ने अपने अध्ययन मे बालक के अपराधी होने में परिवार की परिस्थिति का प्रभाव अर्थात संवेगात्मक अनुभूति का अभाव महत्वपूर्ण बताया है और स्पष्ट किया है कि बालक में अपराधी प्रवृत्तियों के विकास के मुख्य तीन कारण हैं (1) पिता से उसके दुव्यर्वहारों का बदला लेना अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करने की चेष्टा तथा दुःखद परिस्थिति से छुटकारा पाने का प्रयास। इसके अतिरिक्त माता-पिता के आपसी संबंध, भग्न गृह परिवार के सदस्यों की अनैतिकता, जुआ व शराब की लत पड़ना तथा यौन जिज्ञासा का सही उत्तर न देना आदि भी अन्य कारण हैं। जो किशोर अपरोध को बढ़ावा देते हैं।

परिवार के बालक का जन्मक्रम:- किसी भी जाति तथा वर्ग के जन्मक्रम से पारिवारिक स्थिति- तय होती है और उसके अनुसार ही वह अपने परिवार का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लेता है। हिन्दुओं के परिवार की सम्पूर्ण जिम्मेदारी बडे पुत्र पर होने रो उसका व्यक्तित्व भी उसी प्रकार विकसित होता है। इसलिए एडलर महोदय ने ठीक कहा है कि व्यक्ति की जीवन शैली का प्रारंभ उसके बचपन से ही निश्चित हो जाती है। लेकिन आजकल यह सत्य नहीं है क्योंकि अन्य कारकों का भी उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है और उसकी जीवन शैली जो पूर्व में अपरिवर्तित रहती है उसमें परिवर्तन इन्हीं कारकों से आता है।

परिवार का आकार:- प्राय: आजकल परिवार का आकार ही परिवार की सुविधाओं को निश्चित करता है, बशर्ते के बड़े परिवार की आय ज्यादा न हो। जिस परिवार में बालकों के रहन-सहन, खान-पान तथा शिक्षा प्रदान करने की सुविधाओं का अभाव है वहाँ पर बच्चों के ऋणात्मक प्रभाव पड़ेगा। इसी उद्देश्य से सरकार ने परिवार नियोजन का कार्यक्रम शुरू किया है ताकि परिवार की संख्या "हम दो हमारे दो" से अधिक न हो। इसमें मां-बाप का पूरा ध्यान उन दो बच्चों पर ही केन्द्रित रहेगा और उनका हर दृष्टि से विकास करने के लिए दोनों प्रयत्नशील रहेंगे।

परिवार का आर्थिक स्तर:- परिवार के मुखिया की आर्थिक स्थिति का उसके परिवार के पालन-पोषण पर काफी प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक कमजोर आय के परिवार के बच्चों में असुरक्षा, तथा हीन भावना पनप जाती है। पौष्टिक भोजन और अन्य आवश्यक सुविधाओं के न मिलने से उनका शारीरिक विकास भी नहीं हो पाता। इस प्रकार के बालकों का व्यक्तित्व किस प्रकार होगा, उसका अनुमान लगाया जा सकता है। शोध अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि परिवार की आर्थिक स्थिति का भी व्यक्तित्व पर एक सीमा तक प्रभाव पड़ता है। प्राय: यह देखा गया है कि जब बालक की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो उस पर मनोवैज्ञानिक दबाव पड़ता है कि वह अपने श्रम से उस आवश्यकता पूर्ति करें अथवा गलत ढंग से (चोरी आदि करके) अपनी भूख को शान्त करें।

(2) विद्यालय और उसके व्यवहार का प्रभाव- बालक के व्यक्तित्व की भावी विकास की रूपरेखा परिवार के बाद विद्यालयों में निश्चित होती है। इसीलिए आजकल बालक की प्राथमिक शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया जाता है। अध्ययनों के आधार पर ज्ञात हुआ है कि पिछड़े एवं निम्न वर्गों के परिवार के बालकों को प्रेरणा तथा अनुभव कम प्राप्त होते जो विद्यालय जीवन के लिये आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चूम महोदय स्पष्ट करते है वयस्क की बुद्धि लब्धि का आधा भाग 4 वर्ष की आयु तक विकसित हो जाती है। अत: 80 प्रतिशत बालकों के लिए पूर्व प्राथमिक विद्यालयों में होने वाले अनुभव बहुत जरूरी है। अच्छे व्यक्तित्व निर्माण के लिये विद्यालय में स्नेह पूर्ण वातावरण होना चाहिए तथा वहाँ रचनात्मक योजनाओं की व्यवस्था होनी चाहिए। यहाँ पर बालक अपने शिक्षक के व्यवहार बातचीत करने के ढंग और उसके शिक्षण आदि से प्रभावित

होता है। वह शिक्षक को पिता या माता का स्थानापन्न मान लेता है और उसकी सभी बातों का अनुकरण करता है। अध्ययन के आधार पर पता चला है कि बालक की कक्षा में जो स्थिति और स्थान होता है उसका प्रभाव भी उसके व्यक्तित्व पर अवश्य पड़ता है। उदाहरणतः वह बालक चाहे वह बुद्धिमान ही क्यों न हो, कक्षा के अध्ययन में पिछड़ जाते हैं, यदि उसकी कक्षा में स्थिति और स्थान उसको मालूम न हो। ऐसे बालकों की परीक्षा में अंक कम मिलते हैं और वे अपने आपको असुरक्षित महसूस करते हैं। इसके अलावा उनमें असहनशीलता, एकांगीपन तथा सुस्त रहने जैसे गुण विकसित हो जाते हैं।

ग्लासर डेविडसन और लैंग महोदय के शैक्षिक उपलब्धि और बालक के व्यवहार के आपसी संबंध के शोध अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि शिक्षक की दृष्टि से जो अच्छे बालक हैं उनका व्यवहार अधिक उपयुक्त होता है। और उनकी शैक्षिक उपलब्धि भी दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ होती है। दूसरे शब्दों में विद्यालय से ऐसे बालक ज्यादा लाभान्वित होते हैं जिनका विद्यालय में कार्य निष्पादन अच्छा हो। इन मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बालक की सफलता विद्यालयों में केवल शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर निश्चित की जाती है और उसमें बालक के अन्य प्रकार से सीखने के अनुभव शामिल नही किये जाते। यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि यदि अध्यापकों का व्यवहार विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायित्व पूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण, सकारात्मक तथा प्रेरणायुक्त होता है तो उनके विद्यार्थी भी सजगता, रचनात्मकता, आत्मनियंत्रण आदि गुणों से पूर्ण हो जाता है। डेविडसन तथा लैंग शोध अध्ययनों के अनुसार अध्यापक की स्वीकृति-अस्वीकृति का प्रभाव भी बालक के स्व-सम्प्रत्यय पर पड़ता है और दोनों में 0.82 का सह संबंध होता है। अतः इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिक्षकों की भूमिका, बालक के व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण होती है। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली है तो बच्चे उसके साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

विद्यालय के वातावरण व अन्य कारकों का प्रभाव:- शिक्षक के अलावा विद्यालय का वातावरण उसमें उपलब्ध सुविधायें तथा छात्रों का आर्थिक स्तर तथा अनुशासन आदि भी बालक के व्यवहार को प्रभावित करते है। यहां उसका अनेक साथियों से सम्पर्क होता है जिसके द्वारा अनेक गुणों या दुर्गुणों का उसमें विकास होता है। समान अनुशासन में रहने-पढ़ने, लिखने तथा खेलने पर उनका सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास भी होता है। विद्यालयों मे अनेक तरह के बालकों के साथ समायोजन करने की प्रवृत्ति और अनुभव उसे भावी जीवन में सफल और उसके व्यक्तित्व को अच्छा बनाते है।

(3) पास पड़ौस तथा साथियों का प्रभाव:- बालक के व्यक्तित्व पर पास पड़ोस तथा साथियों का भी प्रभाव पड़ता है। वह अपने साथियों के साथ खेलता है, पढ़ता है, विद्यालय जाता है और वहां से आता है तो उनसे वह अछूता कैसे रह सकता है? विद्यालय के संगी और साथियों के समायोजन संबंधी तथा शैक्षिक सफलता और असफलता और प्रतियोगिता का अनुभव भी उसे प्राप्त होता हैं। इस प्रकार बालक के व्यक्तित्व पर उसके साथियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसी तरह पड़ौस का हमारे बालकों के व्यक्तित्व पर जो प्रभाव पड़ता है, वह सर्वविदित है। यह प्रमाणित मान्यता है कि अच्छा पड़ोस होने से हमारे बालकों का अच्छा व्यक्तित्व बनेगा। खराब पड़ौस होने पर इसी कारण कई व्यक्ति अपना मकान बदल लेते हैं ताकि कुसंगति उनके बच्चे को बिगाड़ न दे। इसके अलावा हमारा व्यक्तित्व भी समन्वित नहीं रह सकता यदि हमारा पड़ोसियों से समायोजन नहीं है।

(4) समाज का प्रभाव:- बालक जन्म से न सामाजिक है और न असामाजिक। वह आस-पास के सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता है। वह समाज के व्यक्तियों से सम्पर्क करता है और उनके साथ अन्योन्य क्रिया करता है। अत: इससे व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। हमारी सामाजिक प्रथाएं तथा परम्पराएं उसे नियंत्रण में रखती हैं। व्यक्ति की स्थिति अनुसार समाज उसके कार्य निश्चित करता है अत: वह स्वेच्छाचारी कार्य नहीं कर सकता। समाज के विरूद्ध कार्य निंदनीय और दंडित माने जाते हैं। अत: ऐसा सामाजिक नियंत्रण हमारे बालकों के व्यवहार को अवश्य प्रभावित करेगा। विभिन्न समाजों में विभिन्न संस्कृतियां होती है, उनके अनुसार ही उनके व्यक्तित्व का निर्माण होता है क्योंकि वे बालकों को ऐसी आदतें, नियम व प्रथाएं सिखाते हैं तो उनके समाज तथा संस्कृति के लिये आवश्यक है। व्यक्ति के कार्य ही नहीं बल्कि उसके सोचने, विचारने तथा विभिन्न प्रवृत्तियों के अभिव्यक्त करने के ढंग भी उस समाज की संस्कृति और नियमों से निश्चित होती है। व्यक्ति समाज के मान्य व्यवहार व प्रतिमानों के अपनाने में गर्व महसूस करता है। इसी कारण एक भारतीय और एक अंग्रेज के व्यवहार में अन्तर देखा जा सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि व्यक्ति समाज का विरोध नहीं करता और एक समाज के व्यक्तियों में अन्तर नहीं होता। वास्तव में प्रत्येक समाज में ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं जो सामाजिक नियमों का विरोध करते हैं। उदाहरणतः आजकल का भारतीय प्राचीन भारतीय की तरह न उतना धार्मिक है और न उतना आध्यात्मिक। यह पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है। लेकिन पाश्चात्य सभ्यता की तुलना में उसके आज भी भौतिक तथा मानसिक मूल्य श्रेष्ठ है।

17.4.4 : वंशानुक्रम तथा वातावरण का सापेक्ष महत्व -

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया है कि दोनों पक्षों के विचारों में सत्यता है कि बाल विकास और व्यक्तित्व पूर्ण रूप से न तो वातावरण पर निर्भर करता है और न केवल वंशानुक्रम पर। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि वातावरण और वंशानुक्रम दोनों ही बालक के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह दोनों एक दूसरे के सहयोगी और पूरक है। बुडवर्थ ने इस तथ्य को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा कि अच्छी पैदावार के लिए अच्छे बीज और अच्छी भूमि का होना आवश्यक है। यदि भूमि उपजाऊ नहीं है और बीज अच्छा है तो पैदावार अच्छी नहीं होगी। इसी प्रकार यदि भूमि उपजाऊ है और बीज खराब है तो भी पैदावार अच्छी नहीं होगी। अब यह स्वीकार्य है कि भूमि और बीज में जो संबंध पैदावार के लिये है वैसा ही संबंध व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम और वातावरण का है। लेकिन यहां दोनों का यह अन्तर मात्रा में अवश्य हो सकता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते है कि बाल के व्यक्तित्व का विकास वातावरण द्वारा होता है लेकिन इस विकास की सीमा वंशानुक्रम निर्धारित करता है। बालक की जन्मजात योग्यताओं में जो अन्तर है उसे शिक्षा द्वारा पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता। अत: थामसन के इस विचार से मनोवैज्ञानिक सहमत हैं कि शिक्षा द्वारा हम बालक की ऊंचाई एक या दो इंच बढ़ा लें परन्तु एक हाथ भर ऊँचाई नहीं बढ़ा सकते।

व्यक्तित्व के सिद्धान्त-

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के संबंध में अपने सिद्धान्त दिये है, जिनमें से मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार है।

1. **व्यक्तित्व का प्रकार सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार लोगों को उनके शारीरिक गुणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इसमें मालेन क्रेश्मर, शैल्डन एवं स्प्रेन्जर के वर्गीकरण आते हैं:-

द्रव्य	स्वभाग	व्यक्तित्व
रक्त	प्रसन्नचित	क्रियाशील, आशावादी
पीलक्ति	क्रोधी	शीघ्र उत्तेजित होने वाले
कफ	आलसी	सुस्त
काला पित्त	विवादग्रस्त	निराशावादी

क्रेशमर-

प्रकार	विशेषता
लम्बकाय	लम्बे दुबले पतले शरीर वाले, क्रोध सीधे न व्यक्त कर पाने वाले ।
सुडोलकाय	हष्ट पुष्ट शरीर वाले
गैलकाय	छोटा कद एवं मोटे

शैल्डन का वर्गीकरण

शरीर का प्रकार	व्यक्तित्व का प्रकार	विशेषताएँ
गोलाकार	अभयं तरांगानुरूपता	भोजर के शौकीन, असुरक्षित, अच्छी तरह सोने वाले, दूसरो पर आश्रित रहने वाले
सुडौलकाय	शरीरानुपता	साहसी, औपचारिक, वेशभूषा एवं कठोर व्यायाम पसन्द करने वाले
लम्बकाय	मनस्वी	असामाजिक, अप्रिय, व्यायाम की इच्छा का अभाव, डरपोक

स्पेन्सर का वर्गीकरण-

स्पेन्सर ने मूल्यों के आधार पर व्यक्तियों को छः प्रकार से वर्गीकृत किया है-

1. सैद्धान्तिक
2. आर्थिक
3. सौंदर्यानुभवी
4. सामाजिक
5. राजनीतिक
6. धार्मिक

2. **व्यक्तित्व का विशेषक सिद्धान्त-**

विशेषक सिद्धान्त के अन्तर्गत ऑलपोर्ट कैटल और आइजक के सिद्धान्त आते है-

ऑलपोर्ट का सिद्धान्त-

ऑलपोर्ट के अनुसार विशेषक व्यक्तित्व की बुनियादी इकाइयाँ हैं। वे समान्यीकृत व्यक्तित्व वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि व्यक्ति की स्थितियों एवं समय के कार्यो में

नियमितता के लिए उत्तरदायी है। विशेषकों के तीन मुख्य गुण है- आवृत्ति, तीव्रता एवं स्थितियों की पहुँच

विशेषकों के प्रकार-

ऑलपोर्ट ने तीन प्रकार के विशेषक बताए है-

1. मूलभूत विशेषक-

मूलभूत विशेषक उस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति करता है जो किसी व्यक्ति के जीवन में इतना व्यापक एवं उत्कृष्ट हो जिससे व्यक्ति के प्रत्येक कार्य की पहचान इसके प्रभाव से हो सकें। जैसे गांधीजी को अहिंसा और सरदार पटेल को उनकी दृढ़ता के लिए जाना जाता है।

2. केन्द्रीय विशेषक-

व्यक्ति की प्रमुख प्रवृत्तियाँ जिनके मध्य उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है, केन्द्रीय विशेषक कहलाते हैं, जैसे ईमानदारी,सृजनात्मकता,सामाजिकता,आत्म विश्वास, दयालुता आदि।

3. द्वितीय विशेषक-

द्वितीयक विशेषक ऐसी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि न्यूनतम स्पष्ट, सामान्यीकृत और संगत हों। इसमें व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताएँ शामिल होती है-जैसे किसी विशिष्ट भोजन या वेशभूषा को पसन्द करना।

कैटल का सिद्धान्त-

कैटल ने विशेषक को व्यक्तित्व का मूल आधार माना। कैटल के अनुसार विशेषक मानसिक संरचना है। निरीक्षत व्यवहार से इस व्यवहार की नियमितता एवं संगतता के लेखा के लिए अनुमान लगाया जाता है।

कैटल ने विशेषकों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया-

1. सामान्य विशेषक- विशेषक जो सभी समूहों के व्यक्तियों में व्यापक रूप से पाये जाते हैं, सामान्य विशेषक कहलाते है- जैसे- ईमानदारी, सहयोग आदि
2. विशिष्ट विशेषक- ऐसे विशेषक जो किसी व्यक्ति विशेष की पहचान होते है- जैसे- सांवेगिक क्रियाएँ
3. सतही विशेषक- यह व्यक्ति के व्यवहार के रूप में परिलक्षित होते है- जैसे जिज्ञासा, निर्भरता आदि।
4. स्त्रोत विशेषक- यह व्यवहार को प्रभावित करने वाली आधारभूत संरचनाएँ है। जैसे- सांवेगिक स्थिरता।
3. **व्यक्तित्व का प्रकार-** विशेषक सिद्धान्त- आइजक का सिद्धान्त इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है। आइजक ने द्वितीय श्रेणी विशेषकों को सामूहिक रूप से विशिष्ट व्यक्तित्व प्रकारों में प्रस्तुत किया। आइजक ने व्यवहार संगठन के चार स्तर बताये है-

1. सबसे निम्न स्तर विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का स्तर कहलाता है। यह किसी विशेष कार्य मे विशेष प्रतिक्रिया को दर्शाता है जैसे- शर्म से लाल होना।
2. दूसरा स्तर आदतन प्रतिक्रियाओं का होता है, जिसमें समान परिस्थितियों में किये जाने वाले समान व्यवहार आते है। जैसे - अजनबी व्यक्ति से बात करने में झिझकना।

3. तीसरा स्तर विशेषकों का होता है जिसमें आदतजन्य प्रतिक्रियाएँ सामूहिक रूप से विशेषकों का निर्माण करती है। वह सभी व्यवहार जिनमें समानताएँ होती है, विशिष्ट विशेषक समूह से संबंध रखते है- जैसे शर्माना।
4. चौथा स्तर इन विशेषकों को एक विशेष प्रकार के व्यक्तित्व में संगठन को प्रदर्शित करता है। व्यक्तित्व का प्रकार आपस में सहसम्बन्धित विशेषकों का समूह होता है। जैसे- अन्तर्मुखी होना। आइजक ने अपने अध्ययन द्वारा सहसंबधित विशेषकों के निम्न समूह बनाये-.
   1. अन्तर्मुखी- बर्हिमुखी
   2. न्यूरोरिसिज्य (सांवेगिक अस्थिरता- सांवेगिक स्थिरता)

   उसके आधार पर आइजक ने व्यक्तित्व के चार प्रमुख प्रकार बताए- अन्तर्मुखी, बर्हिमुखी,

4. मनोविश्लेषणवादी उपागम

इस उपागम का प्रतिपादन सिगमंड फ्रायड (1856-1939) ने किया। उनके अनुसार व्यक्ति सदैव अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्षरत रहता है। उन्होंने मस्तिष्क के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। उन्होंने लोगों के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए और मानसिक बीमारियों का इलाज करने के लिए मनोविश्लेषण की विधि का प्रयोग किया।

फ्रायड का व्यक्तित्व का मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त-

फ्रायड का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि मनुष्य का मस्तिष्क गतिशील है और उसका वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। मस्तिष्क के विभिन्न भाग आपस में अचेतन और अर्द्धचेतन। इन सभी की निरन्तर होने वाली प्रतिक्रियाएँ ही व्यवहार की विशेषताओं को जन्म देती है। उनके अनुसार हमारा व्यक्तित्व तीन प्रमुख व्यवस्थाओं की अन्तर्निभरता से निर्मित होता है, यह है

1. इड
2. ईगो
3. सुपरईगो

इड व्यक्ति का छुपा हुआ वह अनैतिक पक्ष है जो अचेतन मन में होता है। यह केवल आनन्द प्राप्ति के सिद्धान्त का काम करता है किन्तु इसके कोई मूल्य और नियम नहीं है।

ईगो दूसरी व्यवस्था है जो इसको संचालित करती है अर्थात् इसकी अनैतिक और अवैधानिक गतिविधियों पर अंकुश लगाती है। यह यथार्थ के सिद्धान्त पर कार्य करता है और बुद्धि के आधार पर यह निर्णय करता है किन आवश्यकताओं और इच्छाओं की तुष्टि होनी चाहिए और किस प्रकार होनी चाहिए।

तीसरी व्यवस्था सुपर ईगो कहलाती है जो कि व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है। यह आदर्शवादी होता है और यथार्थ की चिन्ता नहीं करता है। इसका उद्देश्य आनन्द प्राप्त न होकर पूर्णता की प्राप्ति करना है । यह निर्णय से संबंधित व्यवस्था है जो यह निर्णय करती है कि क्या सामाजिक नियमों के अनुरूप और ग्राह्य है।

फ्रायड के अनुसार सेक्स व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण भाग है। उनके अनुसार यह व्यक्ति को जीवन ऊर्जा प्रदान करता है।

एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

एडलर ने फ्रायड के सिद्धान्त का विरोध किया। उनके अनुसार सेक्स मानव गतिविधियों का केन्द्र नहीं है। उनके अनुसार शक्ति प्राप्त करना मानव की मूलभूत आवश्यकता है वह इसी से प्रेरित होकर अपने कार्य करता है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने तरीके से सर्वोच्चता को प्राप्त करना चाहता है। इसलिए व्यक्तित्व के प्रकार को व्यक्ति के जीवन जीने के तरीके के रूप में समझा जा सकता है। इस प्रकार उन्होंने व्यक्तित्व अध्ययन के वैयक्तिक उपागम का प्रारम्भ किया उनके अनुसार व्यक्तित्व को निश्चित श्रेणियों में बाँटा नहीं जा सकता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न है।

4. मानवतावादी उपागम-

इस उपागम के अन्तर्गत व्यक्ति के अच्छाई और सकारात्मक प्रकृति पर जोर डाला जाता है। मनोविश्लेषणवाद के विपरीत इनका मानना है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके चेतन मन पर आधारित होता है। इनके अनुसार व्यक्तित्व जैविक प्रयासों पर आधारित नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति में यह क्षमता है वह अपनी तत्परता, और व्यक्तिगत विकास से स्व प्राप्त कर सकें।

अब्राहम मैसलों का सहानुभूति सिद्धान्त-

मैसलो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति या तो अच्छा होता है या उदासीन बुरा नहीं होता है। प्रत्येक के अन्दर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता होती है। प्रत्येक व्यक्तित्व का अंतिम लक्ष्य स्वानुभूति है जिसे वह ज्ञान सौन्दर्य की प्रशंसा, आत्म निर्भरता रचनात्मक और सृजनात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार व्यक्ति द्वारा अपने लक्ष्य प्राप्ति की प्रक्रिया उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करती है।

कार्ल रोजर का स्व सिद्धान्त-

कार्ल रोजर ने अपने पूर्ववर्ती सिद्धान्तों से अलग स्व सिद्धान्त दिया। उनके अनुसार समायोजन वृद्धि एक व्यक्ति का स्व निर्धारित करता है। उनका सिद्धान्त दो प्रमुख धारणाओं पर आधारित है- जीव और स्व। जीव व्यक्ति के चेतन अचेतन सम्पूर्ण अनुभवों को प्रदर्शित करता है और रच व्यक्ति के प्रक्रियात्मक क्षेत्र को प्रदर्शित करता है अर्थात् इसे 'में' के संदर्भ में समझा जा सकता है। किसी भी व्यक्ति का समायोजन प्रसन्नता, वृद्धि और विकास उनके जीव और स्वयं के सामंजस्य पर निर्भर करता है।

व्यक्तित्व का अधिगम सिद्धान्त -

अधिगम सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व को समझने के लिए अधिगम और वस्तु निष्ठता पर बल दिया है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से मिलर और डोलार्ड तथा बान्डुरा और वास्टर के सिद्धान्त आते है।

मिलर और डोलार्ड का व्यक्तित्व का अधिगम सिद्धान्त -

अधिगम मनोविज्ञान और मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त को जोड़कर मिलर और डोलार्ड ने अपना व्यक्तित्व का सिद्धान्त दिया। इस सिद्धान्त मे फ्रायड के आनन्द प्राप्ति के सिद्धान्त को पुर्नबलन सिद्धान्त से ईगो के प्रत्यय को अधिगम कौशलों के प्रत्यय द्वारा तथा संघर्ष के प्रत्यय को प्रतिस्पर्धात्मक पुर्नबलन द्वारा ।बदल दिया गया। इनके अनुसार व्यक्तित्व को सीखा जा सकता है। इनके अनुसार व्यक्तित्व कोई स्थिर संप्रत्यय नहीं है बल्कि आदतों का निर्माण व्यक्तित्व विकास का मूल कारण है।

बंडूरा और वाल्टर का सामाजिक अधिगम सिद्धान्त -

व्यक्ति द्वारा सामाजिक अधिगम से प्राप्त अनुभवों की संरचना और पुर्नसंरचना से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सामाजिक अधिगम यथार्थ और प्रतीक दोनों मॉडलो से हो सकता है। किसी मॉडल के व्यवहार का अनुपालन यदि पुर्नबलित किया जाता है तो वह व्यक्तित्व को अंग बन जाता है। इस प्रकार एक व्यक्ति विभिन्न स्त्रोतों से व्यवहारजन्य विशेषताएँ सीखता है जो उसके विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. मनोवैज्ञानिक कैटिल के लक्षण या विशेषक संबंधी विचारों को दस पंक्तियों में स्पष्ट करें|
2. थाइराइड ग्रंथ का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है?
3. "संस्कृतिकता" हमारे बालक के व्यक्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है" क्यों?

17.5.0 संदर्भ (References)

1. औलपोर्ट, जी. डब्ल्यू (1937) : पर्स्नालिटी - ए साइकोलोजिकल इंटरप्रिटेश्न,न्यूयार्क: होलटे|
2. कैटल, आर.बी. (1957) : ए सिस्टेमैटिक थ्योरिटिकल एण्ड फैक्यूअल स्टडी, मैक्ग्राहिल, न्यूयार्क।
3. चौहान, एस.एस. (1991) एडवान्स एजूकेशनस साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।
4. हरलॉक (1956) : "चाइल्ड डेवलपमेन्ट, टोकियो कोगाकुशा ।
5. हिल गार्ड, ईआर (1957) "इंटरोडकश्न दू साइकोलोजी" हरकोर्ट|
6. कुप्पुस्वामी :एडवांसेस एज्यूकेशनल साइकोलोजी, स्थर्लिग पब्लिशिंग लिमिटेड, नई दिल्ली।
7. माथुर, एस. व्यास (1990) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

इकाई-18

व्यक्तित्व मूल्यांकन की प्रक्षेपी एवं अप्रक्षेपी विधियाँ
Projective and Non Projective Techniques of Personality

इकाई की संरचना

18.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य
18.2.0 प्रस्तावना
18.3.0 व्यक्तित्व मापने की विधियों के प्रकार
18.3.1 अप्रक्षेपी विधियां
18.3.1.1 व्यक्तिनिष्ठ प्रविधियां
18.3.1.2 वस्तुनिष्ठ प्रविधियां
18.3.2 प्रक्षेपी विधियां
18.3.2.1 प्रक्षेपण से तात्पर्य
18.3.2.2 प्रक्षेपी विधियों का वर्गीकरण
18.3.2.2 प्रमुख प्रक्षेपी विधियां
18.4.0 सारांश
18.5.0 संदर्भ

18.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

संसार में दो व्यक्ति बिल्कुल एक समान नहीं होते हैं अर्थात दो व्यक्तियों के व्यक्तित्व में अंतर होना स्वाभाविक है। परन्तु सब व्यक्तियों के व्यक्तित्व में इतना प्रखर अंतर नहीं होता है कि उसे देखते ही पहचान लिया जाए। इस समस्या के समाधान हेतु प्राचीन काल में मनोवैज्ञानिक जाने-अनजाने में कुछ विधियों का प्रयोग करते रहे है। इस इकाई में प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक के व्यक्तित्व परीक्षण की विधियों का वर्णन निम्न उद्देश्यों के साथ किया गया है ताकि शिक्षार्थी:-

- व्यक्तित्व मापक की आवश्यकता समझ सकें।
- व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी और अप्रक्षेपी विधियों के अंतर कर सकें।
- व्यक्तित्व मापन की विभिन्न अप्रक्षेपी विधियों की प्रणाली से परिचित हो सकें।
- व्यक्तित्व मापन की अप्रक्षेपी विधियों को समझ कर उनका प्रयोग कर सकें।
- विभिन्न व्यक्तित्व मापन विधियों को कार्यप्रणाली से परिचित हो सकें।

18.2.0 प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्तित्व का विशद अर्थ इससे पूर्व के अध्ययन में बताया जा चुका है। जहां तक व्यक्तित्व के मापन का प्रश्न है तो इसके मापने के प्रयास मनुष्य ने तभी से शुरू कर दिए थे,

जबसे मानव का इस पृथ्वी पर प्रार्दुभाव हुआ था, तथा यह प्रयास आज तक जारी है। हां इन मापने के प्रयासों व प्रकारों में समय के अनुसार अवश्य परिवर्तन होते रहे है। आदिम काल में मनुष्य कुश्तियां आदि लड़कर शारीरिक क्षमता के आधार पर व्यक्तित्व को नापता था। तत्पश्चात् ज्योतिष व शारीरिक बनावट के आधार पर व्यक्तित्व को मापने का प्रयास किया गया। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को मापने के लिए अनेक विधियों का विकास किया। इनमें से कुछ प्रमुख विधियों का वर्णन इस अध्याय के अन्तर्गत किया जा रहा है।

18.3.0 व्यक्तित्व मापने की विधियों के प्रकार (Techniques of Personality Measurement)

इन विधियों को मुख्यत: अप्रक्षेपी तथा प्रक्षेपी विधियों के नाम से दो वर्गों में बांटा जाता है। निम्न चार्ट में से इन विधियों को अधिक स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है।

व्यक्तित्व मापन की विधियां

अप्रक्षेपी विधियाँ		प्रक्षेपी विधियाँ
व्यक्तिनिष्ठ प्रविधियां	वस्तुनिष्ठ प्रविधियां	रोशाइंग ब्लाट टेस्ट
साक्षात्कार	नियंत्रित परीक्षण	टी.ए.टी
व्यक्तिगत इतिहास	रेटिंग स्केल	सी.ए.टी
आत्म कथा	शारीरिक परीक्षण	स्वतंत्र साहचर्य
आटो बायोग्राफी	व्यावहारिक परीक्षण	शब्द साहचर्य
व्यक्तित्व परिसूची	परिस्थिति परीक्षण	वाक्य पूर्ति परीक्षण
अवलोकन आदि	स्वतंत्र सम्पर्क विधि	स्वप्न विश्लेषण
	सेसियोग्राम आदि	साइको डामा
		चित्र विधि- जोडा टेस्ट
		रोजिडवेग टेस्ट
		चित्रकला तथा रेखा
		चित्र विधि
		अन्य- बी.जी. टेस्ट
		मोसाइक टेस्ट
		क्ले माडलिंग
		ग्राफोलाजी

इन समस्त विधियों का वर्णन एक अध्याय में करना सम्भव नहीं है। अत: प्रमुख विधियों का वर्णन यहाँ पर किया जा रहा है।

18.3.1 अप्रक्षेपी निष्ठ विधियां:- यह दो भागों में विभाजित की जा सकती है।

18.3.1.1 व्यक्तित्व निष्ठ विधियां:- इस वर्ग की प्रमुख विधियां निम्न है:-

(अ) साक्षात्कार:- साक्षात्कार एक जटिल प्रक्रिया है, जिसके द्वारा साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के बारे में सभी जानकारी हासिल कर किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है। वस्तुत: साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार लेने वाले की सहायता करता है ताकि वह स्वयं को व्यक्त कर सकें, अत: व्यक्तित्व के मूल्यांकन में इस विधि की काफी महत्ता है।

साक्षात्कार के प्रसार:- उद्देश्य के अनुसार साक्षात्कार कई प्रकार के हो सकते है जैसे:

स्वतंत्र साक्षात्कार:- इसमें साक्षात्कार लेने के समय क्षेत्र तथा विषय की कोई सीमा नहीं है।

परिचयात्मक साक्षात्कार:- इस साक्षात्कार का उद्देश्य साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति से परिचय प्राप्त कर उसमें आत्मीयता स्थापित करना है ताकि भावी योजना के बारे में उचित सूचना मिल सकें। **तथ्य निरूपणात्मक साक्षात्कार:-** इसके द्वारा उन तथ्यों का पता लगाया जा सकता है जिन्हें सामान्य व्यक्ति लिखकर बताना पसंद नहीं करता जैसे किसी के प्रति साक्षात्कारकर्ता का दृष्टिकोण।

व्यक्तिगत या सामूहिक साक्षात्कार:- व्यक्तिगत साक्षात्कार में एक समय में एक ही व्यक्ति से सूचना प्राप्त की जाती है जबकि सामूहिक साक्षात्कार में एक समय में दो या दो से अधिक व्यक्तियों से सूचना प्राप्त की जाती है।

उपचारात्मक साक्षात्कार:- इसमें साक्षात्कारकर्ता विषयों को इस प्रकार प्रेरित करता है कि वह अपने विचारों व भावों को निष्पक्षता के साथ व्यक्त कर सकें जिससे उसे स्वयं बहुत सारी चिंताओं से मुक्ति मिल जाती है । इस विधि में क्या सूचना प्राप्त होती है, यह तो महत्वपूर्ण है ही, इसके अलावा कैसे सूचना प्राप्त होती है, इसका भी अपना महत्व है। सामान्यत: यह साक्षात्कार तीन प्रकार का होता है।

(1) निर्देशित साक्षात्कार:- यह समस्या केन्द्रित विधि है। इसमें साक्षात्कारकर्ता की भूमिका अधिक महत्व पूर्ण होती है।

(2) अनिर्देशित साक्षात्कार:- यह परामर्शी केन्द्रित विधि है इसमें परामर्शी से उन्मुक्त व्यक्ति के पश्चात स्वयं अन्तर्दृष्टि का विकास होता है। इस विधि में बौद्धिक पक्ष की अपेक्षा संवेगात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है।

(3) सार संग्रहक साक्षात्कार- इस प्रकार के साक्षात्कार में निर्देशित तथा अनिर्देशित दोनों विधियों का प्रयोग करके दोनों की अच्छी बातों का समावेश कर किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं।

(ब) व्यक्ति इतिहास विधि:- इस विधि का प्रयोग उन व्यक्तियों पर किया जाता है जो अधिकतर समाज विरोधी कार्य करते है परन्तु उन व्यक्तियों के अध्ययन में भी यह विधि काफी उपयोगी है- जो अपने जीवन में काफी सफल है। इस विधि में विषयी या प्रयोज्या के अभिभावकों, भाई **बन्ध** मित्रों तथा पड़ोसियों से प्रयोज्य के शैशव काल से लेकर अब तक के जीवन से सम्बन्धित प्रश्न पूछकर यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति ने किन कारणों से अमुक व्यवहार किया। एडवर्ड व ज्यूक्स परिवारों का अध्ययन इस विधि के प्रमुख उदाहरण हैं।

सामान्यत: इस विधि में शोधकर्ता प्रयोज्य से निम्न सम्बन्धित तथ्यों के विषय में जानकारी हासिल करता है।

- परिचयात्मक तथ्य (नाम, पता, कक्षा, विद्यालय, तथा अन्य तथ्य)
- वर्तमान समस्या
- स्वास्थ्य
- शैक्षिक प्रगति
- परिवार की प्रकृति (एकीकृत या विखण्डित परिवार) आपसी सम्बन्ध
- सामाजिक सम्बन्ध
- व्यवसाय (सेवा की अवधि, कार्य से संतोष आदि)
- यौन संबंधी आदतें
- परिपक्वता
- व्यक्तित्व के शील गुण

व्यक्ति इतिहास स्वयं में किसी रोग का निदान नहीं हैं परन्तु अन्य विधियों के साथ इसका प्रयोग कर व्यक्तित्व की कई बुराइयों को दूर किया जा सकता है।

(स) आत्मकथा विधि:- इस विधि में परीक्षणकर्त्ता बालक के व्यक्तित्व की माप करने के लिए किसी उपयुक्त शीर्षक का चुनाव करता है तथा परीक्षार्थी से उस शीर्षक को ध्यान में रखकर अपने जीवन से सम्बन्धित लेख लिखने के लिए कहता है। जब ये लेख पूर्ण हो जाता है तो परीक्षणकर्ता उसका अच्छी तरह से विश्लेषण कर बालक या प्रयोज्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करता है। यह विधि प्रयोज्य की इच्छाओं को जानने तथा अपराधी बालकों को समझने में काफी सहायक है।

(द) व्यक्तित्व परिसूची:- व्यक्तित्व परिसूची का सर्वप्रथम विकास आर.एस. बुडवर्थ ने किया, जिसे उन्होंने " पर्सनल डाटा शीट" नाम दिया तथा उन्होंने अपनी इस परिसूची में 116 प्रश्न रखे जिनके उत्तर हां या न में देने होते थे।

वास्तव में व्यक्तित्व परिसूची में व्यक्तित्व के अनेक पक्षों से सम्बन्धि कई परीक्षण मद दिए रहते है, जिसमें प्रयोज्य को हां या ना में उत्तर देने होते है। अत: यदि इसे स्वयं आख्या विधि भी कहा जाए तो अनुपयुक्त नहीं होगा। इस पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसका प्रयोग सामूहिक रूप से कुशलता पूर्वक किया जा सकता है, इसके प्रशासन में किसी कुशल मनोवैज्ञानिक की विशेष आवश्यकता नहीं होती है तथा यह विधि खर्चीली भी कम है। परन्तु इसमें कभी-कभी प्रयोज्य अंदाजे से भी उत्तर दे देते हैं तब इसकी विश्वसनीयता कम हो जाती है।

कुछ प्रमुख व्यक्तित्व परिसूचियाँ:- बुडवर्थ के पश्चात बरर्न्यूटर की व्यक्तिगत परिसूची विशेष उल्लेखनीय रही जो अर्न्तमुखी व्यक्तित्व के विवेचन में विशेष सहायक रही। एम.एम.पी.आई. 1943 में प्रकाशित हुई इसमें 550 पद थे तथा प्रयोज्य को सही गलत अथवा अनिश्चित के रूप में उत्तर देना होता था। इस परिसूची की विश्वसनीयता सम विषय विधि सं से 0.90 तथा पुनर्परीक्षण विधि से .52 से .89 तक मापी गई। एएस. रिएक्शन परिसूची का विकास जी. ड्व्ल्यु आल्पोर्ट तथा एफ.एच. आलपोर्ट द्वारा 1928 में किया गया जिसकी विश्वसनीयता .74 मापी गई। आर.बी कैटल ने भी 15 पी.एफ. व्यक्तिगत परिसूची (प्रश्नावली) का विकास किया जो कि व्यक्तित्व के मापन मे काफी सहायक है। इस परिसूची के दो भाग हैं तथा प्रत्येक भाग में 187 मद हैं।

(य) अवलोकन:- अवलोकन एक प्रमुख व्यक्तिनिष्ठ व्यक्तित्व परीक्षण की विधि है, जिसमें हम विभिन्न तथ्यों, घटनाओं एवं अनुभवों को ज्ञानेन्द्रियों से ग्रहण करते है। अवलोकन वास्तव में प्राचीन समय से, एक ऐसा मापन है जिसमें यंत्रों का प्रयोग नहीं होता है और यदि यंत्र प्रयुक्त हो भी तो वे मापन -करने वाले परस लागू हों, न कि किए जाने वाले तथ्य पर। इसमें मापन करने वासलास ज्ञानेन्द्रियों के प्रत्यक्ष उपयोग के व्यवहार का करता है न कि व्यवहार से निर्देशित किसी फलांक का। अत: प्रतिबोधन की त्रुटियों का इस पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

अवलोकन के आवश्यक तत्व:- कुशल अवलोकन के लिए निम्न तत्व आवश्यक है:-

- कार्यकुशल ज्ञानेन्द्रियां
- सावधानी
- तात्कालिक एवं यथार्थ लेखो
- यथार्थ प्रतिबोधन की योग्यता
- तुलना या विभेद करने की क्षमता
- पूर्व धारण से मुक्ति

अवलोकन के प्रकार:- ध्येय के अनुसार अवलोकन कार्य प्रकार बदलता रहता है परन्तु मुख्यत: अवलोकन निम्न प्रकार के होते हैं

- निर्देशित अवलोकन
- अनिर्देशित अवलोकन
- मिश्रित अवलोकन
- स्वयं प्रेरित अवलोकन
- अतीत प्रभावी अवलोकन

अवलोकन की सीमाएं:-

- अवलोकन निरीक्षण करते समय कुछ पक्षों पर अधिक ध्यान देता है कुछ पर कम।
- -अवलोकन व्यवहार के किसी एक पक्ष की ओर अधिक संवेदनशील होता है और किसी अन्य के प्रति कम।
- अवलोकन स्वयं के भाव, मनोवृत्तियों का अवलोकन पर प्रभाव डालता है।
- मनुष्य का व्यवहार अत्यन्त परिवर्तनशील है, अत: कुछ समय के अवलोकन के आधार पर सामान्य मूल्यांकन किया जाना उचित नहीं है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. साक्षात्कार विधि व्यक्तित्व मापन में किस प्रकार उपयोगी है|
2. व्यक्ति इतिहास विधि तथा आत्म कथा में मुख्य अंतर क्या है|
3. कुछ प्रमुख व्यक्तित्व परिसूचियों के नाम लिखिए|
4. अवलोकन प्रविधि की क्या सीमाएं है?

18.3.1.2 व्यक्तित्व मापन की वस्तुनिष्ठ प्रविधियां:-

यह विधियां व्यक्ति के बाह्य व्यवहार पर आश्रित होती हैं। तथा व्यक्ति के स्वयं के वर्णन पर मुख्य रूप से आधारित नहीं होती है। यह विधियां वैज्ञानिक होती है तथा इनमें वस्तुनिष्ठता होती है। इस वर्ग की प्रमुख विधियाँ निम्न है:-

(अ) अनियंत्रित परीक्षण:- अवलोकन तथा नियंत्रित परीक्षण मे मुख्य अंतर यह है कि अवलोकन में मुख्यत: ज्ञानेन्द्रियो का ही प्रयोग होता है, तथा इसके लिए किसी विशिष्ट प्रयोगशाला की भी आवश्यकता नहीं होती है। जबकि नियंत्रित परीक्षण विधि का सफल प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में ही होता है तथा इस विधि में प्रयोगशाला की नियंत्रित परिस्थितियों के मध्य एक कुशल मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करता है।

(ब) रेटिंग स्केल:- इस विधि में बालक के व्यक्तित्व के लक्षणों को जानने के लिए उसके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों से बालक के व्यक्तित्व के किसी लक्षण पर अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा जाता है। उदाहरण के लिये यदि आप किसी बालक के सत्य बोलने की गुण की परीक्षा करना चाहते हैं तो उसका मापदण्ड निम्न प्रकार से बन सकता है। आप है -

पूर्ण सत्य बोलने वाले	साधारण सत्य बोलने वाले	औसतन कभी-कभी सत्य बोलने वाले	कभी न सत्य बोलने वाले	सत्य बोलने वाले

इन विभागों में जिस विभाग पर अधिक लोग निशान लगाते है । बालक को उसी वर्ग का माना जाता है।

वास्तव में इस विधि का सूत्रपात पैकनर ने किया तथापि प्रथम रेटिंग स्केल साल्टन ने 1983 में प्रकाशित किया। रेटिग स्केल का प्रथम व्यवस्थित प्रयोग बायस महोदय ने 1915 में किया था। परन्तु इसके रूप का वास्तविक विकास सर्वप्रथम "स्काट कम्पनी लेबोरेटरी" ने किया। अब तो यह मापदण्ड अत्यन्त लोकप्रिय है तथा इनका व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

1. रेटिंग स्केल के प्रकार:- यद्यपि रेटिंग स्केल कई प्रकार के होते है इनमें सें निम्न प्रकार विशेष उपयोगी है:-

संख्यात्मक मापदण्ड:- विधि में परिभाषित अंको को खण्डश: निश्चित उद्दीपकों के साथ संबंधी कर देते हैं तथा इस विधि से व्यक्ति को अपने गुणों के अनुसार अंक मिल जाते हैं जैसे "स्त्री सौन्दर्य का संख्यात्मक मापदण्ड हो सकता है।

सर्वाधिक सुंदर अत्यन्त सुंदर सामान्य कुरूप अत्यन्त कुरूप सर्वाधिक कुरूप

रेखांकित मापदण्ड:- इसमें एक लम्बी रेखा के नीचे खण्डश: गई विवरणात्मक विश्लेषण या वाक्यांश लिख दिये जाते है।

प्रमाणित मापदण्ड का वर्गक्रम:- वर्गक्रम मापक जिनमें निर्णायक के समक्ष अपने प्रमाण या मानक प्रस्तुत कर दिये जाते हैं:- जैसे हस्तलेखन मापदण्ड या मनुष्य का मनुष्य से मिलान।

संचयी अंक विधि से वर्गक्रम:- इस विधि में कई विवरण पदों का प्रयोज्य का मूल्यांकन करके अंक प्रदान किये जाते हैं तथा इन अंको के कुल योग के आधार पर प्रयोज्य के व्यक्तित्व के बारे में निर्णय लिया जाता है। पर इसमें अंक वस्तुनिष्ठ कसौटी के आधार पर न दिए जाकर केवल निर्णय के आधार पर दिए जाते है। अनुमान लगाने की विधि इसी के अन्तर्गत आती है।

बलात् विकल्प वर्गक्रम:- इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम सैन्य अफसरों का मूल्यांकन करने के लिए किया गया। इस विधि में लक्षणों के जोड़े दिए जाते हे और निर्णायक से यह बताने के लिए कहा जाता है कि निर्णय किए जाने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध मे इन दोनों लक्षणों में कौन सा सही है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति के लिए चार विकल्प दिए गये जैसे- गम्भीर, उत्साही, लापरवाह, असभ्य। इसमें निर्णायक को बताना होता है कि कौन सा लक्षण व्यक्ति के लिए सबसे

अधिक उपयुक्त हैं, और कौन सा सबसे कम। फिर एक फलांक कुंजी के आधार पर गणना कर ली जाती है।

रेटिंग स्केल की संरचना के लिए कुछ सुझाव-

- पदों की संख्या पहले से तय कर ली जानी चाहिए। साइमण्ड के अनुसार 7 वर्ग आदर्श संख्या है|
- निर्णय करने के लिए उपयुक्त गुणों का चयन होना चाहिए।
- रेटिंग स्केल के कथनों को वस्तुनिष्ठ होना चाहिए।
- कथन पूर्णतया एवं वस्तुनिष्ठ रूप से परिभाषित होने चाहिए।

(स) शारीरिक परीक्षण- शारीरिक परीक्षण विधि में अनेक यंत्रों की सहायता से व्यक्तित्व के शारीरिक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है। सामान्यत- व्यक्तित्व के शारीरिक परीक्षण हेतु निम्न यंत्रों का प्रयोग करते हैं।

प्लेन्थी सोमोग्राफ:- इस यंत्र के द्वारा रक्त का दबाव मालूम किया जाता है।

इलेक्ट्रो- काडियो ग्राफ:- इसके द्वारा हृदय की गति मापी जाती है।

स्फीग्मोग्राफ- इसके यंत्र के द्वारा प्रयोज्य की नाडी की गति मापी जाती है।

न्यूमोग्राफ:- उसके द्वारा व्यक्ति की सांस लेने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

सइको गैलविनोमीटर- सांवेगिक परिवर्तनों का अध्ययन इस यंत्र द्वारा किया जाता है।

व्यक्तित्व के मापन में अन्य शारीरिक परीक्षणों का भी प्रयोग होता है- जैसे मस्तिष्क तरंग का मापन तथा रसपाक परिवर्तन आदि।

(द) प्रश्नावली:- व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं का पता लगाने की यह एक लिखित विधि है। प्रश्नावली का प्रयोग जब हम व्यक्तित्व की विशेषताओं का पता लगाने के लिए करना चाहते हैं तो पहले व्यक्तित्व से सम्बन्धित कुछ प्रश्न तैयार कर लेते हैं। इन प्रश्नो के उत्तर प्रयोज्य को हां, नहीं या अनिश्चित में देने होते हैं। उदाहरण के लिए यदि प्रयोज्य के व्यक्तित्व के एक गुण संवेगात्मक अस्थिरता का पता लगाना है, तो प्रश्नावली में कुछ प्रश्न इस प्रकार रखे जा सकते है:-

- क्या आप को अक्सर बुरे स्वप्न दिखाई देते हैं? हां / नहीं / अनि.
- क्या आप गपशप लगाना पसंद करते हैं? हां / नहीं / अनि.
- क्या आप विपरीत योनि के व्यक्ति से बात करने में घबराते है? हां / नहीं / अनि.
- क्या आप कोई कार्य प्रारम्भ करके उसे बीच में ही छोड़ देते हैं? हां / नहीं / अनि.

प्रश्नावली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका एक साथ प्रयोग बड़े समूह पर भी किया जा सकता है। परन्तु इसके साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसका प्रयोग केवल पढ़े लिखे लोगों पर ही हो सकता है।

व्यक्तित्व प्रश्नावलियों का वास्तविक प्रारम्भ 1918 में बुडवर्थ द्वारा किया गया उसके पश्चात् वर्नरिटर बेल प्रेस, आलपोर्ट, एम.एम.पी.आई. आदि व्यक्तित्व की प्रश्नावलियाँ काफी प्रसिद्ध रहीं। कुछ व्यक्तित्व मापन की प्रमुख प्रश्नावलियाँ की सूची यहाँ पर दी जा रही है।

नाम	स्तर	प्रकाशक	विश्वसनीयता	विशेष
ब्लैक की प्रश्नावली	हाई स्कूल	स्टेनफोर्ड युनि	.94	स्कूल संगठन के छात्रों के अभियोजन का मापन

ब्राउन की बच्चों	4 से 9 वर्ष	साइक्लोजिकल कार्पोरेशन	.90	गृह स्कूल, शारीरिक लक्षण असुरक्षा आदि के आधार पर फलांक
लिंक की सूची	4से 13 वर्ष	साइक्लोजिकल कार्पोरेशन		आत्मनिर्भरता, विपरीत योनि से सामंजस्य आदि का मापन
मेलर की सदाचार	प्रौढ़ व्यक्ति	कोलम्बिया टी.टी.कालेज	93.94	शब्द देकर व्यक्ति की प्रतिक्रिया ली जाती है।
रोजर्स व्यक्तित्व आयोजन सूची	9 से 13 वर्ष	वि. एसोसिएशन प्रेस- न्यूयार्क	.70	हीनभावना, पारिवारिक सामाजिक, सामंजस्य दिवास्वप्न आदि के आधार पर फलांकन

प्रश्नावली की सीमाएँ:-

(1) प्रश्नावली में सबसे बड़ी कठिनाई भाषा की है।

(2) प्रयोज्य कुछ बातों पर लिखित रूप से अपनी राय व्यक्त करना पसंद नहीं करते हैं।

(3) प्रश्नावली के द्वारा किसी समस्या के पीछे छिपे कारण का पता नहीं चल पाता है।

(4) इन प्रश्नावलियों का निदानात्मक महत्व अधिक नहीं है।

(5) प्रयोज्य प्राय: प्रश्नों का उत्तर गम्भीरता से नहीं देते है।

(य) व्यावहारिक परीक्षण- इस प्रकार के व्यक्तित्व परीक्षणों में यह देखा जाता है कि बालक अपने दैनिक जीवन में वास्तव मे किस प्रकार का व्यवहार करते हैं उदाहरण के लिए एक मनोवैज्ञानिक कुछ बालकों को संग्रहालय में घुमाने के लिए ले जाता हैं। बालकों को स्वतंत्र रूप से बिना किसी रोक- टोक के संग्रहालय की विभिन्न वस्तुओं को देखने के लिए कहा जाता है। प्राय: यह देखने मे आता है कि कुछ बच्चे एक वस्तु को देख कर तुरन्त दूसरी और देखना शुरू कर देते हैं, जबकि कुछ बालक एक वस्तु को ध्यान पूर्वक देखने के पश्चात ही आगे दूसरी वस्तुओं को देखते हैं। यह गुण इन बालकों की अन्तर्मुखी प्रकृति को इंगित करते हैं।

(र) परिस्थिति परीक्षण- परिस्थिति परीक्षणों में किसी विशिष्ट परिस्थिति में प्रयोज्य की कोई कार्य करना होता है, तथा उसे यह पता नहीं चल पाता है कि उसकी किस क्रिया का अवलोकन किया जा रहा है यह परीक्षण मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं:-

– **दिन प्रतिदिन जीवन के परीक्षण।**

– **प्रत्याबल परीक्षण**

– **दिन प्रतिदिन जीवन के परीक्षण:-** इस श्रृंखला में हार्नशोन तथा में ने सन 1928 में अपने प्रवचन सम्बन्धी अध्ययन मे "सेवा तथा आत्म नियंत्रण संबंधी अध्ययन तथा 1930 में "चरित्र गठन सम्बन्धी अध्ययन" प्रकाशित किए। दिन प्रतिदिन जीवन के प्रशिक्षण में वार्टसन तथा में का ईमानदारी का परीक्षण करने का निम्न टेस्ट काफी प्रसिद्ध रहा है।

"हार्टशोन तथा मे न बच्चों की ईमानदारी का प्रशिक्षण करने के लिए एक कमरे मे एक सन्दूक रखा। इसके पश्चात उन्होंने बालकों से कहा कि तुम सब कमरे में रखे हुये सन्दूक मे कुछ पैसे डाल आओ क्योंकि यह पैसे गरीबों को दिये जायेंगे। जब परीक्षण आरम्भ हुआ तो मनोवैज्ञानिकों ने एक छोटे से छेद से चुपके से देखा कि कुछ बच्चे तो सड़क में पैसे डाल आते थे लेकिन कुछ बालक ऐसे थे जो पैसे डालने के बजाए सन्दूक से पैसे निकाल लिये।

इसी श्रृंखला में प्रतिलिपि विधि, दोहरा परीक्षण विधि, असम्भावित निष्पत्ति विधि आदि अन्य परीक्षण काफी प्रसिद्ध है।

प्रत्याबल परीक्षण:- इन परीक्षणों में किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों मे प्रयोज्य में चिंता या अन्य संवेगात्मक बाधाएं उत्पन्न करते है तथा फिर देखा जाता है कि इन परिस्थितियों मे प्रयोज्य का कैसा व्यवहार रहता है। मुख्यत: इनका प्रयोग सैनिकों के चुनाव के लिए द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमेरिका में किया गया। इस श्रृंखला में टूटी दीवार या घाटी को सीमित उपकरणों से पार करना अथवा अन्य कोई कठिन कार्य करवाना जिसमें साथ के लोग सहायता नहीं करते हैं तथा प्रत्याबल साक्षात्कार लेना आदि प्रमुख है।

(ल) स्वतंत्र सम्पर्क विधि:- इस विधि में मनोवैज्ञानिक पहले प्रयोज्य के साथ मिल जुल कर मित्रता का वातावरण तैयार करता है। तत्पश्चात् वह प्रयोज्य से मिलजुल कर बातचीत करता है तथा प्रयोज्य से अपने विचार स्वतंत्रतापूर्व प्रकट करने के लिए कहता है क्योंकि तब तक प्रयोज्य परीक्षक को अपना हित चिन्तक मानता है, अत: वह अपनी मन की गाँठे परीक्षक के सामने खोल देता है यदि वह किसी बात को छुपाना चाहता है तो परीक्षक प्रयोज्य के मन में विश्वास जमाकर उन्हें निकलवाने का प्रयास करता है।

(व) समाजमिती:- इस विधि का विकास सन् 1934 में मुरेनो ने किया था जिसके द्वारा बालक की सामाजिकता आँकी जाती है। इसके द्वारा समूह में नेतृत्व, गुटबन्दी आदि का पता चल सकता है। इस पद्धति में किसी समूह के सदस्यों से किसी विशेष गुण की दृष्टि से अपने साथियों का चुनाव करने को कहा जाता है। समूह के प्रत्येक सदस्य को ये बताना या लिखना होता है किसी विशेष क्षेत्र में उसकी पहली दूसरी और तीसरी पसन्द का साथी कौन होगा? इस प्रकार सही विधि द्वारा समूह का सबसे लोक प्रिय सबसे कम लोकप्रिय तथा समूह से अलग-थलग पड़े सदस्यों या बालकों का काफी आसानी से पता चल जाता है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. प्रत्याबल परीक्षण से आप क्या समझते हैं?
2. व्यावहारिक परीक्षण किन परिस्थितियों में उपयोगी रहता है?
3. प्रश्नावली का उपयोग व्यक्तित्व परीक्षण में क्यों किया जाता है| इस विधि के गुण तथा
4. सीमाओं का उल्लेख कीजिए|
5. परिस्थिति परीक्षण तथा व्यवहारिक परीक्षण में अंतर करते हुए परिस्थिति परीक्षण को उदाहरण सहित समझाइए|

18.3.2 प्रक्षेपी विधियां-

व्यक्तित्व मापन को वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ परीक्षणों की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन नहीं करती है। एक मनोवैज्ञानिक के अनुसार व्यक्ति 'के मन ' की तुलना पानी पर तैरते बर्फ के टुकड़े से की जा सकती है जिसका 1/10 भाग तो

पानी के ऊपर रहता है जबकि 9/10 भाग पानी के नीचे रहता है। मन और पानी में तैरते बर्फ के टुकड़े की यदि चेतन और अचेतन मन से तुलना की जाए तो हमारे 9/10 विचार, रुचियाँ, इच्छायें, संवेग आदि अचेतन. मन' मे रहते हैं. जो हमें दिखाई नही देते है जबकि केवल 1/10 भाग ही चेतन मन में रहते हैं जिससे हम परिचित रहते हैं। इन प्रक्षेपी विधियों के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व के चेतन तथा अचेतन दोनों पक्षों का अध्ययन किया जा सकता है।

18.3.2.1 प्रक्षेपण से तात्पर्य:-

प्रक्षेपण विधि वास्तव में एक रक्षा युक्ति है जिसमें व्यक्ति अपनी दबी हुई इच्छाओं जो किसी परिस्थिति का सामना करने में असफलता के कारण अचेतन मन में संकलित हो जाती है। उन्हें किसी नई वस्तु की और परिवर्तित करके प्रकट करता है। उदाहरण के लिए लगातार मैच हारती हुई टीम के कप्तान द्वारा अपने खेल को सुधारने के बजाए अम्पायर, दर्शकों या दूसरी जगह के वातावरण को दोष देना। फ्रीमैन ने इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रक्षेपण परीक्षण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "इस परीक्षण में परीक्षार्थी के सम्मुख इस प्रकार की उत्तेजित परिस्थिति उपस्थित की जाती है जिसमें वह अपने वैयक्तिक आवश्यकताओं विशिष्ट प्रत्यक्षीकरण तथा व्याख्याओं को आरोपित करने का अवसर प्राप्त करें।"

होली, ब्रानर तथा वार्क्स के अनुसार "प्रक्षेपण सुखवाद के सिद्धांत के अन्तर्गत एक सुरक्षात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अहं बाह्य जगत में अचेतन इच्छाओं एवं विचारों को फेंकता हैं जिन्हें यदि चेतन में प्रवेश करने दिया जाए तो वह अहं के लिए दुखदायी होंगे।'

प्रक्षेपणी विधि के जनक फ्रायड ने प्रक्षेपण में निम्न बाते मुख्य बताई है:-

- अशुद्ध बोध, प्रयोज्य दूसरे व्यक्ति के बारे में ऐसी बातों का विश्वास कर लेता है जो वास्तव में सत्य नहीं है।
- प्रयोज्या प्रक्षेपित वस्तु में ऐसी प्रवृत्ति आरोपित करता है जो या तो स्वयं अपने प्रति हो या किसी अन्य वस्तु के प्रति।
- वह आरोपित प्रवृति अर्थात प्रयोज्य के स्वयं के व्यक्तित्व का कोई पक्ष होती है।
- आरोपित बात प्रक्षेपक को स्वीकार योग्य नहीं होती है।
- प्रक्षेपी प्रक्रिया का अर्थ अपराध की भावना से मुक्ति पाना या आत्म सम्मान बनाए रखना होता इस प्रकार फ्रायड ने प्रक्षेपण को प्रवृत्तियों के दमन तक सीमित रखा है। परन्तु अब स्वीकार योग्य दमन न की हुई एवं चेतन प्रवृत्तियों को भी इसके अन्तर्गत माना जाता है|

18.3.2.2 प्रक्षेपी विधियों का वर्गीकरण:-

फेंक ने 1948 में सभी प्रक्षेपण विधियों को निम्न मोटे वर्गों में विभाजित किया:

इसके अन्तर्गत वह परीक्षण आते हैं जिसमें प्रयोज्य अपनी भावनाओं को असंरचित वस्तुओं के माध्यम से व्यक्त करता है जैसे रोर्शा इंक ब्लाक परीक्षण में।

इन परीक्षणों में विभिन्न सामग्रियों से काई प्रारूप तैयार करना होता है जैसे मोसाइक परीक्षण।

इसमें प्रयोज्य को दी हुई परिस्थिति की व्याख्या करनी हो है जैसे टी.ए.टी तथा सी.ए.टी।

इन परीक्षणों के माध्यम से प्रयोज्य की संवेगात्मक भावनाओं का पता लगाया जाता है जैसे डाल प्लेइंग विधि आदि।

इन परीक्षणों में संचार या अपनी बात कहने के परम्परागत साधनों का प्रयोग किया जाता है।

तथा प्रयोज्य की आदतों या क्रियाकलापों को व्यक्तित्व में विश्लेषण का आधार बनाया जाता है जैसे हैण्डराइटिंग, स्पीच या डा-ए-मैन टेस्ट।

18.3.2.3 प्रमुख प्रक्षेपी विधियां:-

यद्यपि प्रक्षेपी विधियों के अन्तर्गत बहुत सारे परीक्षण है। इनमें से कुछ मुख्य परीक्षणों का वर्णन यहां पर किया जा रहा है।

1. **रोर्शा इंक ब्लाट टेस्ट-**

इस परीक्षण विधि का विकास सन् 1921 में स्विट्जरलैण्ड के हरमन रोर्शा ने किया। इस परीक्षण से 11.9 इंच के दस अलग-अलग कार्डो पर विभिन्न आकार के स्याही के धब्बे अत्यन्त सावधानी व मनोवैज्ञानिक तरीके से बनाए जाते हैं। इन 10 कार्डों पर रंग बिरंगे होते है। इन स्याही के धब्बों के माध्यम से व्यक्ति अपने अचेतन को अर्थपूर्ण शब्दों में व्यक्त करता है। इसमें वह मनोवैज्ञानिक तत्व के प्रति समन्वय, प्रक्षेपण व अभिव्यक्ति करता है जिससे इस परीक्षण के द्वारा व्यक्ति के संज्ञात्मक, क्रियात्मक और भावनात्मक तीनों पहलुओं का अध्ययन किया जा सकता है। बर्नने ने इस परीक्षण की उपादेयता बताते हुए लिखा है कि " बुद्धि समेत व्यक्तित्व के सम्बन्ध में इतनी अधिक सूचना, इतने कम समय में कोई और परीक्षण प्रदान नहीं करता है।

परीक्षण का प्रशासन:-

मूलत: रोर्शा परीक्षण व्यक्तिगत परीक्षण है पर आजकल इसका सामूहिक रूप से भी प्रयोग किया जाने लगा है। परीक्षण प्रशासन के पूर्व परीक्षणकर्त्ता प्रयोज्य के साथ एकात्मक भाव स्थापित करता है तथा उसे परीक्षण का उद्देश्य नहीं बताता है। इसके पश्चात् परीक्षार्थी को एक-एक कार्ड दिखाए जाते है तथा कार्ड के धब्बों के समुदाय को हम प्रयोज्य को इस प्रकार दिखाते हैं कि उसके सामने एक समय मे एक ही चित्र रहता है। फिर प्रयोज्य से पूछा जाता है कि चित्र देखकर बताओ कि वह किस वस्तु के समान प्रतीत हो रही है? यह क्या चीज हो सकती है? स्याही के धब्बों से विभिन्न चीजों का बोध होता है जैसे पुरुष, लिंग, बिगुल बजाती बालिकाएं, चिड़िया जानवर, राक्षस आदि। इस परीक्षा में समय का कोई बंधन नहीं होता है। हां, परीक्षक प्रत्येक कार्ड के उत्तरों,उनके उत्तर देने के समय, परीक्षार्थी किस प्रकार कार्ड को घुमाता है आदि को नोट करता है। इसके साथ-साथ परीक्षण देते समय प्रयोज्य हे भावों व्यवहारों उत्तर देने की क्रिया ढंग व्यवहार आदि प्रतिक्रियाओं को भी परीक्षक ध्यान पूर्वक देखता है तथा उसे भी नोट करता है। अंत मे प्रयोज्य द्वारा दिए गये उत्तरों के सम्बन्ध में पूछताछ भी की जाती है।

फलांकन विधि:- इस परीक्षण के फलांकन के लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है। फलांकन के लिए प्रयोज्य की समस्त प्रतिक्रियाओं को निम्न भागों में बांटकर उनका विश्लेषण किया जाता है।

(अ) क्षेत्र:- इसमें यह देखा जाता है कि प्रयोज्य ने परीक्षण के समय धब्बे को सम्पूर्ण रूप में अवलोकित किया या उसके किसी अंग ने उसे प्रतिक्रिया करने के लिए प्रोत्साहित किया। फलांकन में इनको निम्न प्रकार से इंगित किया जाता है:-

(ब) निर्धारित:- इसमें देखा जाता है कि परीक्षार्थी पर प्रतिक्रिया किस कारण से हुई धब्बों की बनावट, धमे के रंग या धब्बे की गति के कारण। इसके फलांकन कोड निम्न प्रकार से है।

(स) विषयवस्तु:- इसमें देखा जाता है कि परीक्षार्थी को धब्बे में क्या चीज दिखाई दी, मनुष्य पौधे, पशु आदि। इसमें मुख्यत: निम्न चीजें देखी जाती है।

(द) वास्तविकता:- इसमें देखा जाता है कि प्रयोज्य की कल्पनाओं में कितनी वास्तविकता है या अस्वभाविकता । इसमें फलांकन निम्न प्रकार से किया जाता है।

फलांकन के उपरांत उसकी व्याख्या की जाती है जिसमें परीक्षार्थी की पारिवारिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखा जाता है

- **विश्वसनीयता एवं वैधता:-** परीक्षण पुर्नपरीक्षण विधि से इसकी वैधता 0.87 तथा अन्य परीक्षणों से तुलना करके इस परीक्षण की वैधता .85 तक आँकी गई हैं| जो काफी उच्च है|
- **उपयोग:-** इस परीक्षण के द्वारा प्रयोज्य की सामाजिकता संवेगात्मकता अहं की दृढ़ता पर्यवेक्षण शक्ति, मन की भावना एवं बौद्धिक स्तर आदि का पता चलता हैं । मानसिक रोगों के निदान के लिए चिकित्सा क्षेत्र में भी इस परीक्षण का व्यापक प्रयोग होता है।

(II) प्रसंगात्मक बोध परीक्षा-

इस परीक्षण का विकास 1935 में मार्गन और मुरे ने किया तथा इसका प्रकाशन सर्वप्रथम 1939 में हुआ। अंग्रेजी के थेमैटिक शब्द का अर्थ "धीमा या प्रसंग" से सम्बन्धित है। इस परीक्षण में कुल,31 कार्ड होते हैं जिनमें 30 कार्डों पर विभिन्न चित्र बने होते हैं तथा एक कार्ड खाली होता है। इन कार्डों को इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाता है कि 20-20 कार्डों के परिस्थिति के अनुसार चार वर्ग बनाए जा सकें| इसमें से एक वर्ग के 20 कार्ड बालकों के लिए, दूसरे वर्ग के 20 कार्ड बालिकाओं के लिए, तीसरे वर्ग के 20 कार्ड 14 वर्ष से बड़ी लडकियों के लिए तथा चौथे वर्ग मे 20 कार्ड 14 वर्ष से बड़े आदमियों के लिए होते हैं। वास्तव में यह एक कल्पना का परीक्षण है जिसमे परीक्षार्थी के सम्मुख चित्र दिखाकर कुछ प्रश्न प्रस्तुत किए जाते हैं जिनका निर्माण मुरे ने मनुष्य को विभिन्न मानसिक अवस्थाओं, भावों, प्रवृत्तियों एवं अनुभूतियों को मालूम करने हेतु किया।

परीक्षण का प्रशासन:- सर्वप्रथम प्रयोज्य के साथ परीक्षक को एकात्मकता बनानी होती है। जब किसी प्रयोज्य का इस विधि द्वारा परीक्षण दिया जाना होता है तो उद्देश्य के अनुसार 20 चित्रों का चयन कर लिया जाता है। पर प्राय: 20 चित्रों की जगह 10 चित्रों का ही प्रयोग किया जाता है, जिनमें एक खाली कार्ड भी रहता हैं। यह चित्र जीवन की साधारण घटनाओं से ही सम्बन्धित होते हैं। इन चित्रों पर निम्न कोड भी इंगित होते हैं जिसमें उद्देश्य के अनुसार चित्रों को छांटने मे सुविधा रहती है।

यद्यपि इस परीक्षण के लिए कोई समय सीमा नहीं है तथापि पूरे परीक्षण को लगभग एक- घन्टा प्रयुक्त करके दो बार में पूरा करते हैं। परीक्षण के समय प्रयोज्य को चित्र दिखाने के साथ निम्न निर्देश देते हैं।

"मैं तुम्हें कुछ चित्र दिखाऊंगा। इनके आधार पर तुम्हें प्रत्येक चित्र पर अलग-अलग कथानक बनाना है। चित्र देखकर तुम्हें यह बताना है कि चित्र की घटना का कारण क्या है? चित्र में इस समय क्या हो रहा है? चित्र में जो व्यक्ति है उनमें कौन से विचार उत्पन्न हो रहे हैं तथा इसका परिणाम क्या होगा?

प्रत्येक कथानक के लिए परीक्षार्थी को सामान्यत: 5 मिनट का समय दिया जाता है। इससे अधिक समय लगने पर प्रयोज्य से कथानक का निष्कर्ष पूछ लिया जाता है। अत में परीक्षार्थी से यह भी पूछा जाता है कि इनमें से सबसे अच्छा और सबसे बुरा कथानक कौन सा है। परीक्षण से चार-पाँच दिन पश्चात परीक्षार्थी प्रयोज्य से पुन: मिलकर कथानकों के सम्बन्ध में अन्य सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त कर ली जाती है। परीक्षण के समय परीक्षार्थी का व्यवहार, उसका प्रतिक्रिया करने का ढंग, सतर्कता, संदेहास्पद होना, उसके हाव भाव, भंगिमा, मुखवृत्तियों आदि पर ध्यान देकर उनका भी लेखा रखा जाता है।

विश्लेषण एवं निर्वचन:- इस परीक्षण की विश्लेषण करने की अनेक विधियां है। मरे, टामकिंस की विश्लेषण की विधियाँ गुणात्मक है। सोडमैन की फलांकन की विधियां स्वभाव से - परिणात्मक है। सामान्यत: सभी विधियों में कथानक की कुछ विशिष्ट बालो के आधार पर, सामान्यीकरण किया जाता है। इस परीक्षण मे कथानकों का विश्लेषण निम्न आधारों पर किया जाता है।

इन कथानकों के विश्लेषण एवं निर्वचन के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे अंतिम नहीं होते हैं। इनकी अन्य आधारों पर निष्कर्ष निकालकर तुलना की जा सकती है या कई निर्वाचकों द्वारा की गई व्याख्याओं से तुलना की जा सकती है।

विश्वसीनयता एवं वैधता:- चिकित्सीय मनोवैज्ञानिक इस परीक्षण की विश्वसनीयता काफी उच्च आँकते हैं जबकि साइको मैटीसियन्स इस परीक्षण की विश्वसनीयता काफी कम मानते है। इस परीक्षण का सहसंबंध गुणांक 2 माह के पश्चात् .8, छ: माह के पश्चात .6 तथा दस माह के पश्चात् .5 पाया गया। टायकिंस ने 400 कहानियों के आधार पर इस परीक्षण की विश्वसनीयता .91 बताई। इसकी वैधता विविध माध्यम से .78 तक आँकी गई है।

उपयोगिता:- इस परीक्षण से व्यक्ति की निराशा, आवश्यकता, काम सम्बन्धी समस्या और कुसमायोजन आदि का पता आसानी से चल सकता है। आक्रमणात्मक प्रवृत्ति, दमन, अवसाद, आदि मनोदशाओं का भी इस परीक्षण से संकेत मिलता है। इस परीक्षण से मानसिक रूप से अस्वस्थ रोगियों के इलाज में काफी सहायता मिलती है।

(III) बालकों का प्रसंग बोध परीक्षण:-

टी.ए.टी. परीक्षण क्योंकि बालकों के लिए अधिक उपयोगी नहीं था अत: डॉ अनेस्ट क्रिस ने सी.एटी. परीक्षण का प्रतिपादन किया। बाद में सन् 1948 में ल्योपोल्ड बैलक तथा सोरेल बैलेक ने इसका विकास कर इसको क्रियात्मक स्वरूप प्रदान किया। क्योंकि छोटे बच्चे पशुओं की कहानी सुनने तथा उनके साथ खेलने में अधिक रूचि रखते हैं अत: बैलक ने इस परीक्षण में जानवरों के चित्र तथा बच्चों के जीवन सम्बन्धित विभिन्न परिस्थितियों को दिखाया है।

परीक्षण का प्रशासन:- इस परीक्षण की कार्य प्रणाली टी.ए.टी.. से मेल खाती है परन्तु इसमें केवल 10 चित्रों को ही प्रयोग में लाया जाता है। परीक्षण से पूर्व परीक्षक विषयों के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करता है तत्पश्चात् उसे एक-एक करके चित्र दिखाता है। जिसमें विभिन्न जानवर मानवीय व्यवहार करते हुए दिखाई देते हैं। इन चित्रों के आधार पर बच्चों को

कहानी बनाने के लिए परीक्षक प्रोत्साहित करता है। कहानी पूरी होने के पश्चात बालक से कहानी के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे जाते हैं।

विश्लेषण - इन परीक्षण की कहानियों का विश्लेषण करते समय निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है-

– कहानी का आधार किसे माना गया है?
– कहानी मेंमुख्य पात्र कौन है?
– कहानी में बालक ने किस पशु के साथ स्वयं को सम्बन्धित किया है?
– कहानी में कौन सी वस्तुएं छोड़ दी गई हैं और कौन सी नवीन जोड़ी गई है?

उपयोगिता:- इस परीक्षण के माध्यम से बालक की दमित इच्छाओं का पता चल जाता है तथा उसके संवेगात्मक व्यवहार का भी विश्लेषण किया जा सकता है। सी.ए.टी. के द्वारा बालकों की अनेक समस्याएं जैसे पारस्परिक या भाई बहन की प्रतियोगिता, संघर्ष आदि के बारे में भी जानकारी मिल जाती है।

स्वतंत्र साहचर्य:- इस परीक्षण में प्रयोज्य से तारतम्य स्थापित करने के पश्चात् उसे आराम से किसी कुर्सी पर लेटने को कहा जाता है। तत्पश्चात् उससे कहा जाता है कि उसके मन में जो कुछ अच्छा बुरा आए उसे वह बेझिझक कहता जाए। मनोविश्लेषक इन बातों का अपनी डायरी में विस्तृत लेखा रखता है। इस प्रकार से साहचर्य स्थापित होने के पश्चात् प्रयोज्य अपनी दबी हुई इच्छाओं एवं भावनाओं को व्यक्त करने लगता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रयोज्य जिन बातों को कहे वह क्रमबद्ध हो तथा उसकी बातों में बौद्धिकता के बजाय संवेगात्मक की भी अधिकता हो सकती है। परन्तु इन्ही तथ्यों के आधार पर मनोविश्लेषक प्रयोज्य के व्यक्तित्व की वास्तविक मनोवृत्तियों एवं कठिनाइयों को जानने का प्रयास करता है तथा तदनुसार उपचार भी करता है।

शब्द साहचर्य:- इस विधि का प्रथम वैज्ञानिक प्रयोग गाल्टन ने सन् 1879 में किया था। गाल्टन ने 75 शब्दों की एक सूची बनाई। उन्होंने परीक्षण के दौरान पाया कि साहचर्य शब्दों के स्मरण से कुछ मानसिक चित्र एवं प्रतिमाएं मस्तिष्क में अंकित हो जाती है, जिनकी संख्या तथा स्पष्टता तथा साहचर्य की शक्ति पर निर्भर करती थी तथा साहचर्य भी कभी शीघ्र एवं कभी देर से स्थापित होता है। उन्होंने साहचर्य काल मापने हेतु क्रोनोमीटर का प्रयोग किया। इसके पश्चात युग ने भी व्यक्तित्व का पता लगाने के लिए 100शब्दों की साहचर्य सूची तैयार की। युग के अतिरिक्त कंटरोजनाफ रेफपोर्ट, ओस्वीसन आदि ने भी इस क्षेत्र में काफी काम किया।

शब्द साहचर्य का स्वरूप एवं विश्लेषण:- इस परीक्षण में परीक्षक प्रयोज्य के समझ उद्दीपक शब्दों को एक-एक बोलता है और प्रयोज्य इन शब्दों को सुनकर उसके मन में तुरंत जो शब्द आते हैं, उन्हें बोलता है। साहचर्य की इस विधि को मुक्त साहचर्य कहते हैं। साहचर्य का दूसरा स्वरूप नियंत्रित साहचर्य है, जिसमें प्रयोज्य की प्रतिक्रिया का स्वरूप पहले से निश्चित होता है। उदाहरण के लिए प्रयोज्य को निर्देश दे सकते है कि वह प्रतिक्रिया में उद्दीपक शब्द का कोई अंश कहे जैसे प्यार कहने पर माँ या पिताजी आदि। परीक्षक प्रयोज्य द्वारा उच्चारित शब्दों तथा प्रत्येक के प्रतिक्रिया काल को नोट करता है। इस विधि द्वारा प्रयोज्य के व्यक्तित्व के बारे में तीन आधार पर संकेत मिलते है। (1) उद्दीपक शब्द के प्रति प्रयोज्य का रूख जैसे शब्द का सुन न पाना (2) प्रयोज्य की उन प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण जिनमें प्रयोज्य संवेगात्मक क्षोभ प्रकट

करता है (3) सामान्य मानकों की तुलना में असाधारण शब्दों का प्रयोग। अत में प्रयोज्य द्वारा उच्चारित किए गये उत्तरों की व्याख्या कर उनके व्यक्तित्व का पता लगाया जाता है।

उपयोग:- इस विधि का प्रयोग व्यक्तित्व की ग्रंथियों, सांवेगिक उद्वेगों एवं अपराध का पता लगाने के लिए किया जाता है। कभी-कभी अपराधियों का पता लगाने के लिए इस विधि के साथ सम्मोहन विधि का भी प्रयोग किया जाता है।

वाक्य पूर्ति परीक्षण:- इस विधि का सर्व प्रथम प्रयोग पाइन तथा टेण्डलर ने सन 1930 मे किया। इसमें 20 पद थे जैसे "मैं असत्य बोलता हूँ...../ आदि। इसका उद्देश्य प्रयोज्य की प्रवृत्ति, उसकी अभिवृत्तियां, इच्छाओं के संघर्ष, संतोष एवं असंतोष का पता लगाना था। इसके पश्चात् व्हीलर, कैमरोन, लार्ज, थार्नडाइक, सेनफोउ हवेन आदि के वाक्य पूर्ति परीक्षण काफी प्रसिद्ध है। इसी श्रृंखला में रायटर ने एक अपूर्ण वाक्य अनुसूची भी तैयार की।

वाक्य पूर्ति परीक्षण की प्रकृति:- इस परीक्षण में प्रयोज्य की कुछ उद्दीपक शब्द दिए जाते हैं और उसके आगे की खाली वाक्य को प्रयोज्य को शीघ्रातिशीघ्र पूरा करा करना होता है। इस वाक्य की पूर्ति में प्रयोज्य अपनी इच्छाओं डर, एवं अभिवृत्तियों आदि को व्यक्त कर जाता है। पर इस विधि तथा अन्य प्रक्षेपी विधियों में मुख्य अंतर यह है कि इसमें प्रयोज्य की अभिव्यक्ति प्रमाणित उद्दीपक के निर्वचन पर निर्भर नहीं करती। इस विधि का प्रयोग सरलता से समूह पर किया जा सकता है किन्तु यह विधि अनपढ़ तथा संवेगात्मक रूप से क्षोभग्रस्त व्यक्तियों के लिए उपयुक्त नहीं है। इन विधि का सफलता पूर्वक प्रयोग उन व्यक्तियों पर अधिक आसानी से हो सकता है, जिसके पास पर्याप्त एवं उचित शब्द भण्डार है।

विश्वसनीयता:- स्वप्न परीक्षण की विश्वसनीयता करीब .83 तक पाई गई है। विभेदकारी शक्ति भी इस परीक्षण में पर्याप्त है। अत: निर्देशन में इस विधि का काफी प्रयोग किया जाता है।

स्वप्न विश्लेषण व्यक्तित्व के मापन की एक मनोचिकित्सक विधि है। स्तर ने इस विधि का प्रयोग सबसे पहले किया था ।फ्रायड ने स्वप्न विश्लेषण पर काफी बल दिया क्योंकि वह सोचता था कि स्वप्न अचेतन मन की गहराई में उसकी विषय वस्तु के बारे में काफी संकेत देते हैं। इसमें परीक्षक विषयी से अपने स्वप्न कोस स्मरण करने के लिए कहता है। मुक्त साहचर्य का अभ्यास होने पर स्वप्न स्मरण में सुविधा रहती है। स्वप्नों की विषय वस्तु एवं इसमें छिपी समस्याओं को फिर. भावी मुक्त साहचर्य का आधार बनाया जाता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न में प्रकट, एवं अप्रकट दोनों प्रकार के तत्व होते है। स्वप्न की प्रतिमाएँ एवं उनका अर्थ प्रकट तत्व हैं जबकि अचेतन संघर्षशील विषयवस्तु जिनके लिए स्वप्न प्रतिमाएं प्रतीक है अप्रकट तत्व है। प्रकट तत्व का निर्धारण वातावरण एवं जीवन की समीपस्थ एवं दूरस्थ घटनाओं के आधार पर होता है जबकि अप्रकट तत्व के प्रतीक स्थानीय और सार्वभौमिक दोनों होते हैं। सार्वभौमिक प्रतीकों का एक ही अर्थ होता है, पर स्थानीय प्रतीकों का अर्थ व्यक्ति के अनुभव एवं घटना पर निर्भर करता है।

स्वप्न विश्लेषण के लिए उपयुक्त विशेषक मनोवैज्ञानिक की आवश्यकता होती है। इसकी व्याख्या दो प्रकार से हो सकती है:-

- व्यक्ति का ध्यान उन संवेगों में केन्द्रित करना जिन्हें उसने व्यक्त किया है।
- अप्रिय भावों के दमन में व्यक्ति ने जिन सुरक्षा यंत्रिकाओं का प्रयोग किया उसकी पहचान करना।

इन दोनों विधियों का परिस्थिति के अनुसार विश्लेषण में प्रयोग करना चाहिए, तभी उपयुक्त निदान सम्भव है।

साइकोडरामा:-

इस विधि का विकास मोरनो ने किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में प्रयोग वियना में किए। यह व्यक्तित्व मापन की एक अच्छी विधि है क्योंकि इसमें प्रयोज्य अपनी भावनाओं का स्वतंत्र प्रदर्शन कर सकता है। परन्तु इस विधि की सफलता प्रयोज्य की भावना प्रदर्शन की कला और विशेषज्ञ की पर्यवेक्षण दक्षता पर निर्भर करती है।

इस परीक्षण में रोगग्रस्त व्यक्ति को प्रमुख नायक की भूमिका दी जाती है। निर्देशक तथा प्रयोज्य दोनों नाटक के दृश्यों के सम्बन्ध में सुझाव देते हैं। यह सुझाव प्रयोज्य की भावनाओं एवं संवेगों को प्रदर्शित करते हैं। नाटक में नायक की सहायता के लिए दूसरे व्यक्ति भी भूमिका अदा करते हैं पर नाटक में इनकी भूमिका गौण होती है। प्रयोज्य नाटक के दौरान जब अपनी भूमिका अदा करता है, तो उसमें वह अपनी भावनाओं को प्रदर्शित कर जाता है तथा अपनी समस्याओं को भी दिखा जाता है, जिससे उसके रोग के समाधान में सहायता मिलती है।

इस विधि की विश्वसनीयता एवं वैधता बहुत अधिक नहीं है। इसके अलावा यह विधि काफी

श्रम पूर्ण, समय साध्य एवं खर्चीली भी है पर मानसिक रोगों के इलाज में यह विधि काफी प्रभावी है।

चित्रविधि:- इसके अन्तर्गत रोजिन्नबेग का चित्र कुंठा परीक्षण, जोडी टेस्ट आदि प्रमुख है। इनमें से चित्र कुंठा परीक्षण का यहाँ पर विस्तृत ब्यौरा दिया जा रहा है।

रोजिन्नबेग का चित्र कुंठा परीक्षण:- इस विधि का विकास रोजिन्नबेग ने 1944-48 किया। यह परीक्षण शब्द साहचर्य विधि एवं टी.ए.टी. के मध्य का एक नियंत्रित प्रक्षेपण विधि का परीक्षण है। बालकों की कुंठा का पता लगाने के लिए इस परीक्षण का विकास किया गया था। इस परीक्षण में कार्टून की शक्लों में 24 चित्र बने होते हैं। जिसमें किसी न किसी कुंठा या नैराश्य की स्थिति का चित्रण होता था। इन चित्रों के बारे में प्रयोज्य को अपने विचार करने होते है।

इस परीक्षण का प्रशासन व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों रूपों में किया जा सकता है। डा० उदय पारीख ने इस परीक्षण को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाने हेतु इसमें कुछ सुधार किया पर इस परीक्षण की मूल परिस्थितियों को ज्यों का त्यों रखा। इसमें भी 24 चित्र है। इस परीक्षण के प्रशासन में लगभग 20 मिनट का समय लगता है। 9 वर्ष से कम बच्चों के लिए इस परीक्षण का व्यक्तिगत रूप से तथा 9 वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों पर सामूहिक रूप से इस परीक्षण का प्रयोग किया जाना उपयुक्त रहता है।

रेखाचित्र तथा चित्रकला विधियाँ -

इसमें अधूरे चित्रों, चित्र पूर्ति तथा चित्र निर्माण आदि के द्वारा व्यक्तित्व को मापने को प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत आने वाली परीक्षणों में "डा ए मैन टेस्ट, हाउस टी परसन टेस्ट" " फिंगर पेन्टिंग" आदि विधियों का प्रयोग अधिक किया जाता है।

18.4.0 सारांश (Summary)

व्यक्तित्व मापन के लिए मुख्यत प्रक्षेपी तथा अप्रक्षेपी विधियों का प्रयोग किया जाता है। अप्रक्षेपी विधियां सामान्यत: व्यक्ति के चेतन व्यक्तित्व का मापन करती है जबकि प्रक्षेपी विधियों

द्वारा व्यक्ति के चेतन तथा अचेतन दोनों प्रकार की व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। प्रक्षेपी परीक्षणों में टीएटी. सी.ए.टी. रोर्शा इंक ब्लाट परीक्षण अधिक प्रसिद्ध है। अध्यापक का यह दायित्व है कि वह इन परीक्षणों के माध्यम से बालक के व्यक्तित्व को समझकर उन्हें कुसमायोजन से बचाए तथा उनको प्रस्फुलित होने का पूरा अवसर दें।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. प्रक्षेपण विधि से आप क्या समझते है?
2. 'समाजमिती' को उदाहरण देकर समझाइये?
3. किसी एक 'कुंठा परीक्षण' का संक्षेप में वर्णन करें?
4. रोर्शा इंक ब्लाट टेस्ट का प्रशासन तथा निर्वचन कैसे किया जाता है?
5. सी.ए.टी. की उपयोगिता बताते हुए इसके फलांकन कैसे करते है, इसे स्पष्ट करें?

18.5.0 संदर्भ (References)

1. चौहान, एस.एस. (1991) एडवान्स एजूकेशनस साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. हरलॉक (1956) "चाइल्ड डेवलपमेन्ट, टोकियो कोगाकुशा।
3. हिल गार्ड, ईआर- (1957)" इंटरोड़क्शन टू साइकोलोजी" हरकोर्ट।

इकाई-19

व्यक्तिगत विभिन्नतायें, संकल्पना, स्वभाव तथा मापन की विधियाँ (Individual Differences: Concepts, Nature and Techniques for its measurements)

इकाई की संरचना

19.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

19.2 व्यक्तिगत भिन्नताओं की अवधारणा

19.3 व्यक्तिगत भिन्नताओं के अध्ययन का महत्व

19.4 व्यक्तिगत भिन्नताओं का स्वभाव

19.5 शिक्षक के लिए आवश्यक संकेत

19.8 व्यक्तिगत भिन्नताओं की मापन विधियाँ

19.7 कक्षा शिक्षण में व्यक्तिगत भिन्नताओं का ध्यान

19.8 सारांश

19.9 संदर्भ

19.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

जैविक दृष्टि से सभी व्यक्ति समान तरह के होते हैं। सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से कुछ व्यक्तियों के समान होते हैं, परन्तु व्यक्तिगत दृष्टि से वह किसी अन्य व्यक्ति के समान नहीं होता। व्यक्ति का अपना अनूठा व्यक्तित्व ही व्यक्तिगत भिन्नता की अध्ययन वस्तु है। आशा है कि शिक्षार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् इस योग्य हो जाएंगे कि वे-

- व्यक्तिगत भिन्नता की अवधारणा को स्पष्ट कर सकें।
- व्यक्तिगत भिन्नताओं के अध्ययन के महत्व को बता सकें।
- व्यक्तिगत भिन्नताओं की विशेषताओं के आधार पर शिक्षकों के छात्रों के प्रति अपेक्षित व्यवहार को स्पष्ट कर सकें।
- व्यक्तिगत भिन्नताओं की मापन करने वाली विधियों का वर्गीकरण कर सकें।
- व्यक्तिगत भिन्नताओं की मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की अच्छाइयों एवं कमियों को सूचीबद्ध कर सकें।
- कक्षा शिक्षण में व्यक्तिगत भिन्नताओं पर ध्यान देने वाली विधियों एवं योजनाओं को बता सकें।

19.2 व्यक्तिगत भिन्नताओं की अवधारणा (Concept of Individual Difference)

कई दृष्टि से सभी व्यक्ति समान होते हैं। कुछ जन्मजात विशेषताओं तथा उस भौतिक वातावरण जिसमे वे रहते हैं, में कुछ समान तत्व होते है, जैसे सभी के लिए जन्म तथा मृत्यु निश्चित है। इसी प्रकार अपनी आधारभूत आवश्यकताओं जैसे भूख, प्यास, काम वासना इत्यादि की पूर्ति के लिए सभी को अपने-अपने वातावरण में जाकर घूम फिरकर उन विधियों तथा साधनों का पता लगाना (सीखना) होता है जो इन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो सकें।

इसी प्रकार कई दृष्टि से प्रत्येक प्राणी किसी समूह के व्यक्तियों के समान होता है। उदाहरण के लिए सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से व्यक्ति उस समूह की समान भावनाओं से जुड़ा होता है, जिसका वह एक सदस्य है। परन्तु यह समानता केवल सामाजिक संस्थाओं (इकाइयों) जैसे राष्ट्र कुनबा, जाति धर्म इत्यादि तक ही सीमित नहीं है। सभी वकीलों, व्यापारियों, समुद्री नाविकों, खिलाड़ियों अमीरों, गरीबों इत्यादि चाहे वह किसी जाति या धर्म के हो में कुछ समानता होती है।

परन्तु यह भी इतना ही सत्य है कि बहुत से अर्थों में व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति के समान नहीं होता, वह अनन्य होता है। उसकी अपनी निजी विशेषतायें होती हैं, जो उसे अन्य व्यक्तियों से अलग करती है। प्रत्येक व्यक्ति के देखने, अनुभव करने आवश्यकताओं को समझने तथा पूरा करने और व्यवहार करने के तरीके की अपनी अनूठी विशेषता होती है जो अन्य किसी भी व्यक्ति के साथ एक समान नहीं होती। यद्यपि व्यक्तियों में सामान्य लक्षण एक जैसे होते है, परन्तु वे इतने विभिन्न स्तरों तथा सम्मिश्रणों में पाये जाते है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक अनूठा व्यवहार करने का तरीका प्रदान करते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत भिन्नता एक स्थापित सत्य है।

19.3 अध्ययन का महत्व (Importance of studying Individual Differences)

अब यह काफी सीमा तथा स्पष्ट हो चुका है कि हमें व्यक्तियों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक क्षेत्रों में व्यक्तिगत भिन्नताओं के बारे में जितना अधिक ज्ञान होगा उतना ही हम उन्हें उनके जीवन के समायोजन मे उनकी शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं का अधिक उत्तम प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित एवम् निर्देशित कर सकेंगे। इस दृष्टि से, व्यक्तिगत भिन्नताओं की अवधारण ने नैदानिक मनोविज्ञान औद्योगिक मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी प्रगति का सूत्रपात किया है।

नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तिगत भिन्नताओं की अवधारणा ने भूत-प्रेतवाद के प्रभाव को काफी कम किया है तथा उसे अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इसी प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे इस मूलभूत तथ्य को स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति सभी प्रकार के काम करने के लिए योग्य नहीं होता, ना ही किसी प्रशिक्षण से प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से लाभ पाने की क्षमता होती है। इस अवधारणा में उद्योगपतियों को अपने श्रमिकों के चुनाव तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों मे महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने पर बाध्य किया है।

इसी प्रकार एक शिक्षक भी अब अपने छात्रों में पाये जाने वाली अनेकानेक विभिन्नताओं के प्रति अच्छी तरह जागरूक है। वह यह जानता है कि छात्र एक दूसरे से भिन्न होते है, कोई भी

छात्र अन्य छात्र से हर तरह से समान नहीं होता। प्रत्येक की अपनी अनूठी विशेषतायें होती है जो उसकी अन्य छात्रों में अपनी अलग पहचान बनाती है। परन्तु शिक्षक, के लिए केवल इस प्रकार की जागरूकता ही नहीं है। अपने शिक्षण में सफल होने के लिए उसे व्यक्तिगत भिन्नताओं के निम्नलिखित पक्षों (आयामों) के बारे मे भी जानना आवश्यक है।

- इन विभिन्नताओं की सीमा और स्वरूप।
- ये भिन्नतायें शिक्षण और अभिगम को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।
- इन भिन्नताओं को उत्पन्न करने वाले कारण।
- इन भिन्नताओं का शिक्षण अधिगम परिस्थिति में किस प्रकार सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाए। व्यक्तिगत भिन्नताओं के उपरोक्त पक्षों का ज्ञान शिक्षक को अपने वैयक्तिक शिक्षण में असाधारण छात्रों का पता लगाने में, तथा जिन छात्रों को विशेष शिक्षण की आवश्यकता है उनके अनुरूप उन्हें अपने व्यक्तित्व का अधिकतम विकास करने में सहायक हो सकता है। जो शिक्षक अधिगम के बारे में तो काफी

अच्छा ज्ञान रखता है, परन्तु अधिगमकर्त्ता (छात्र) के बारे में बहुत कम ज्ञान रखता है, वे अपने अध्यापन कार्य के लिए पर्याप्त रूप से तैयार नहीं है केवल आशिक रूप से ही तैयार है। यदि शिक्षक छात्रों को व्यक्तिगत रूप मे शिक्षा देना अपना दायित्व समझता है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्तिगत भिन्नताओं के उपरोक्त पक्षों को भली- भांति समझे तथा अपने विद्यालयी कार्यो को छात्रों की विशेषताओं के अनुसार ढाले।

देखने मे यह कार्य बहुत कठिन तथा जटिल लगता है, क्योंकि जब हमारी यह मान्यता है कि प्रत्येक छात्र हर दृष्टि से पूर्णतः अनूठा (अनन्य) है तो एक शिक्षक के लिए जिसे प्रतिदिन 5-6 कक्षायें पढ़ानी पड़ती है तथा जिनमें प्रत्येक में काफी संख्या में छात्र होते हैं और वैयक्तिक शिक्षण के दायित्व कार्य निर्वाह करना अत्यन्त दुष्कर है। परन्तु ऐसी स्थिति के कुछ उत्साहवर्धक पहलू भी है जैसे-

- एक समुदाय या संस्कृति से आने वाले व्यक्ति, भिन्न संस्कृति और समुदाय से आने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक समान होते हैं।
- एक बड़ी अचयनित जनसंख्या में भी व्यवहार के किसी गुण में सबसे कम से सबसे अधिक के प्रदर्शन में सतत् विचरण होता है। किसी भी व्यक्तित्व के गुण में व्यक्तियों में औसत से चाहे जितना अधिक विचलन हो ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति होंगे जिनमें इसका प्रदर्शन चरम सीमा में हो। या दूसरे शब्दों में यूँ कहिये कि चरम सीमा वाली व्यक्तिगत मित्रता बहुत ही कम मिलती है। अधिकांशतः व्यक्तित्व भिन्नतायें अधिक विषम नहीं होती।

अपने शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए एक शिक्षक को व्यक्तिगत भिन्नताओं के इन पहलुओं को जानना अत्यन्त आवश्यक है -

1. इनकी सीमा तथा स्वरूप क्या है।
2. ये शिक्षण अधिगम को किस प्रकार प्रभावित करती है।
3. इनको उत्पन्न करने वाले कारक क्या है।
4. इनका शिक्षण अधिगम में किस प्रकार सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

इनका ध्यान रखते हुए एक व्यस्त तथा बड़ी आकार की कक्षायें पढ़ाने वाले शिक्षक के लिए पढ़ाना बहुत कठिन लगता, परन्तु स्थिति निराशापूर्ण नहीं हैं, क्योंकि-

1. समान संस्कृति तथा समुदाय से आने वाले छात्र अधिक भिन्न नहीं होते।
    1. समान संस्कृति तथा समुदाय से आने वाले छात्र अधिक भिन्न नहीं होते
    2. व्यक्तिगत भिन्नतायें अधिकांशतः बहुत विषम नहीं होती । केवल गिनें चुने छात्र अत्यधिक असाधारण होते हैं।

19.4 व्यक्तिगत भिन्नताओं की प्रकृति (Nature of Individual Differences)

व्यक्तिगत भिन्नतायें काफी व्यापक होती है, इसलिए इनकी प्रमुख विशेषताओं को जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है, जानना बहुत आवश्यक है।

19.4.1 वह भिन्नतायें अन्तर भिन्नताओं तथा अन्त: भिन्नताओं के साथ में होती है।

विभिन्न व्यक्तियों मे अनेक क्रियाओं की अभिवृद्धि और विकास की गति और सीमा अलग-अलग होती है इसके कारण व्यक्ति कई प्रकार से अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है। इस प्रकार की अन्तर भिन्नताओं का परास आयु के साथ बढ़ता जाता हैं उदाहरण के लिए 'ऑलसन' के एक अध्ययन में यह देखा गया कि पहली कक्षा के छात्रों मे पुस्तक पढ़ने और प्रयोग करने की क्षमता मे पाँच कक्षाओं तक भिन्नता है । कुछ छात्रों में केवल नर्सरी कक्षाओं मे पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों को पढ़ने एवं प्रयोग की क्षमता थी, जबकि कुछ में यह क्षमता तीसरी कक्षा के समकक्ष थी। परन्तु जब यह बालक तीसरी कक्ष में पहुँचे तो इनमें व्यक्तिगत भिन्नतायें इतनी अधिक बढ़ गई की कुछ तो अब भी नर्सरी स्थिति पर थे, तो कुछ में सातवीं कक्षा के पुस्तकों को प्रयोग करने की योग्यता थी। इस प्रकार इनकी व्यक्तिगत भिन्नताओं का परास बढकर 9 कक्षाओं का हो गया था। विभिन्न क्रियाओं के साथ-साथ सम्पूर्ण अभिवृद्धि और विकास के स्वभाव में भी अन्तर भिन्नतायें होती है। कुछ बालक जो आरम्भिक कक्षाओं में बहुत धीमी प्रगति का प्रदर्शन करते हैं अक्सर बाद मे काफी प्रतिभाशाली छात्र के रूप मे सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार की अन्तर- भिन्नताओं के अलावा प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं के गुणों तथा कुशलताओं के बीच अन्त, भिन्नतायें होती है । यह भिन्नतायें किस सीमा तक होती है। इसका अनुमान इस टिप्पणी से लगाया जा सकता है -

किसी विशिष्ट व्यक्ति के गुणों में विभिन्नता उसके अपने आयु के लोगों में भिन्नता से 60 प्रतिशत अधिक होती है। गुणों में भिन्नता का वितरण सामान्य सम्भवत: वक्र के अनुरूप होता है। कुछ व्यक्तियों में यह अन्त: भिन्नता औरों की अपेक्षा कहीं अधिक हो सकती है, परन्तु गुणों में भिन्नता तथा सामान्य भिन्नताओं में कोई सम्बन्ध नहीं होता। " अर्थात् अन्तर भिन्नताओं तथा अन्त: भिन्नताओं में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं होता।

इस प्रकार एक बालक की योग्यताओं या कुशलताओं के किसी क्षेत्र में सीखने की गति धीमी हो सकती, किसी में सामान्य हास हो सकती तथा अन्य किसी में बहुत अच्छी हो सकती है। तथा कथित प्राथमिक मानसिक योग्यताओं में भी स्पष्ट रूप से अन्त: व्यक्तिगत भिन्नतायें हो सकती हैं। एक अध्ययन में एक बालक का जिसकी प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षा पर परीक्षण किया गया, बुद्धि लब्धि 103 थी, परन्तु एक उपपरीक्षण में उसकी मानसिक आयु 4 वर्ष 8 मास पाई गई, जबकि एक अन्य उपपरीक्षण में उसकी आयु 7 वर्ष 8 मास पाई गई।

19.4.2 व्यक्तिगत भिन्नताओं मे सामान्यतया तथा विविधता विचलन दोनों होते हैं :-

यदि हम किसी समूह के व्यक्तियों को किसी गुण या योग्यता पर मापन करें तो हमें केवल यह देखने को नहीं मिलेगा कि उस गुण या योग्यता में समूह के व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न है, बल्कि ये भी देखने को मिलेगा कि अधिकांश व्यक्ति उस गुण या योग्यता में सामान्य के आस-पास है, केवल कुछ व्यक्तियों में यह योग्यता या गुण या तो बहुत कम है या बहुत अधिक।

19.4.3 व्यक्तिगत भिन्नतायें सामान्यत:गुणात्मक होने की अपेक्षा मात्रात्मक होती है।

किसी गुण या विशेषता की भिन्नताओं में स्तर होते है, परन्तु यहाँ वर्गीकरण ही या ना में नहीं होता । ऐसा नही होता कि कोई गुण किसी व्यक्ति में है और किसी में बिलकुल नहीं है। किसी में यह कम होता है किसी में अधिक। कोई व्यक्ति कम बुद्धिमान होता तो कोई अधिक। परन्तु हमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसमें कोई बुद्धि हो ही नहीं। इसी प्रकार हमें ऐसा कोई बालक नहीं मिलेगा जिसे आपने संवेगों पर पूर्ण नियंत्रण हो या जिसमें अपने संवेगो पर कोई भी नियंत्रण नहीं हो। यही नहीं, व्यक्ति पर प्रभाव डालने वाले बाहय कारकों जैसे परिवार का प्रभाव, पाठ्यक्रम सुविधायें एवं शिक्षण न पूरी तरह अच्छे होते है ना ही पूरी तरह बुरे। व्यवहार का कोई भी पक्ष हो या प्रभाव का कोई कारक हो, सीखने वाले बालकों में इस सम्बन्ध में भिन्नता के स्तर मिलते है। ऐसा नहीं होता कि कोई कुछ भी नहीं सीख पाता और कुछ सब कुछ सीख जाते हैं। कुछ लोग मोटे होते है, कुछ पतले, कुछ लोग अन्तर्मुखी होते कुछ बहिर्मुखी। परन्तु यह अवधारणा वैज्ञानिक अध्ययनों से बार-बार गलत साबित हुई है कि भिन्नताओं के यह चरम सीमान्त स्थितियाँ स्पष्टतः सीमांकित हैं। किसी कक्षा में केवल दो या तीन प्रकार के बालक हैं, ऐसा कहना कठिन है।

19.4.4 व्यक्तिगत भिन्नतायें वंशानुक्रम और वातावरण के पारस्परिक क्रियाओं के कारण उत्पन्न होती हैं:- यद्यपि वंशानुक्रम तथा वातावरण स्पष्ट रूप से दो बिल्कुल भिन्न अवधारणायें हैं, परन्तु ये स्वतंत्र नहीं है । यह इतनी घनिष्ठता पूर्वक सम्बन्धित है कि यह कहना सम्भव नहीं है कि व्यक्तिगत भिन्नता का कौन सा भाग केवल वंशानुक्रम के कारण है और कौन सा केवल वातावरण के कारण है। यह अवश्य है कि कुछ स्थिति में वंशानुक्रम का प्रभाव अधिक लगता है, कुछ में वातावरण का। उदाहरण के लिए शारीरिक बनावट में, जातीय विभिन्नताओं में, लैंगिक भिन्नताओं में तथा व्यक्तित्व के कुछ गुणों में वंशानुक्रम का प्रभाव अधिक होता है। इसी प्रकार अनुभवों की भिन्नताओं तथा सामाजिक आर्थिक तत्त्वों में वातावरण का अधिक प्रभाव लगता है ।

19.4.5 व्यक्तिगत भिन्नतायें बहुमुखी होती हैं-

बल के हर पक्ष में व्यक्तिगत भिन्नतायें देखी जा सकती हैं परन्तु इनका एक वर्गीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है:-

(अ) शारीरिक भिन्नतायें- जैसे किसी एक कक्षा मे विभिन्न आयु शारीरिक गठन, चालक योग्यता वाले और परिपक्वता स्तर वाले बालक होते हैं।

(ब) मानसिक भिन्नतायें- इसी प्रकार बालकों की मानसिक योग्यताओं जैसे बुद्धि अभिरूचि एवं प्रेरणा इत्यादि में भी काफी भिन्नता होती है।

(स) सामाजिक भिन्नतायें- कुछ बच्चे और से अपेक्षा अधिक सामाजिक होते हैं। कुछ लोकप्रिय होते हैं तो कुछ ऐसे होते है जिन पर कोई ध्यान नहीं देता या जिन्हें अन्य बालक नहीं चाहते। इसी प्रकार कुछ भिन्नतायें जातीय या राष्ट्रीय होती है।

(द) संवेगात्मक भिन्नतायें- बालकों में संवेगो में स्थायित्व स्वभाव, चरित्र, रुचियों तथा दृष्टिकोणों की दृष्टि से भी व्यक्तिगत भिन्नतायें हो सकती है।

व्यक्तिगत भिन्नताओं के उपरोक्त दिशाओं के अतिरिक्त लैंगिक भिन्नताएँ भी होती है जिनका कारण मुख्यत: जैविक और सांस्कृतिक कारण होते है। जैसे विद्यालय उपलब्धि में विशेष कर प्राथमिक विद्यालयों में लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती हैं। पढ़ने या उच्चारण में उनके पिछड़े होने की सम्भावना कम होती है, इनमें हकलाने वालों या तुतलाने वालों की संख्या भी बहुत कम होती है। बालिकाये बालकों की अपेक्षा लैंगिक तथा सामाजिक परिपक्वता कम आयु में प्राप्त कर लेती है। परन्तु गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान में बालक बालिकाओं की अपेक्षा कुछ अधिक अच्छे होते हैं। बालिकाओं की अपेक्षा बालक अधिक उग्र तथा अधिक समायोजित होते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों अधिक संख्या में मनोस्तापी और कुसमायोजित होती है।

परन्तु योग्यता, उपलब्धि, तत्परता और अन्य व्यक्तित्व के गुणों में यह व्यक्तिगत भिन्नतायें इतनी अधिक नही होती कि लिंग के आधार पर बालक और बालिकाओं को अलग-अलग कक्षाएं बनाई जाये या शिक्षण में उनके साथ पूर्णत: भिन्न व्यवहार किया जाय। इन गुणों में बालक, बालिकाओं में पूर्ण परस्पर -व्यापकता मिलता है। सबसे अधिक लैंगिक भिन्नतायें व्यक्ति के उन गुणों तथा जीवन मूल्यों में देखने को मिलता है जो अधिकांश सांस्कृतिक कारणों से निर्धारित होते है। इसलिए स्त्रियों को उन क्रियाओं कार्यो से वंचित रखना जिन्हें पहले केवल पुरुषों के लिए ही माना जाता था, उचित नहीं होगा समाज में उनकी भूमिका पर पुन: विचार करना आवश्यक है)

19.4.6 अभिवृद्धि और विकास की गति में भी व्यक्तिगत भिन्नता होती है:-

शारीरिक मानसिक तथा व्यक्तित्व के गुणों में बालक तथा किशोर विभिन्न गति से बढ़ते हैं। अभिवृद्धि और विकास की यह गति केवल विभिन्न व्यक्तियों में ही भिन्न नहीं होती बल्कि एक ही व्यक्ति

में विभिन्न क्रियाकलाप विभिन्न गति से विकसित होते हैं । वास्तव में प्रत्येक बालक में अभिवृद्धि और विकास अनूठे **<ax** का होता है ।

व्यक्तिगत भिन्नताओं में निम्नलिखित विशेषतायें होती है:-

1. यह भिन्नतायें अन्तर तथा अन्त: भिन्नताओं के रूप में होती है?
2. इसमें सामान्यता तथा विविधता दोनों होती है।
3. मात्रात्मक होने की अपेक्षा यह गुणात्मक होती है।
4. यह वंशानुक्रम तथा वातावरण की अन्तरक्रियाओं के कारण होती है।
5. यह बहुमुखी (बहु आयामी) होती हैं। इसमें लैंगिक आयाम भी शामिल है।
6. अभिवृद्धि और विकास की गति में भी व्यक्तिगत भिन्नतायें होती हैं, परन्तु प्रत्येक विकास प्रणाली एक-दूसरे से लगभग स्वतंत्र होती है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. व्यक्तित्व भिन्नता से आप क्या समझते है?
2. ओद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तिगत भिन्नता की संकल्पना का क्या प्रभाव पड़ा?
3. लैंगिक भिन्नता व्यक्तित्व भिन्नता को किस प्रकार प्रभावित करती है।

19.5 शिक्षक के लिए आवश्यक संकेत (Key points for Teachers)

व्यक्तिगत भिन्नताओं के स्वभाव से सम्बन्धित उपरोक्त विवेचन से शिक्षण से सम्बन्धित कुछ धारणाये स्पष्ट होने लगती हैं, जैसे

- प्रत्येक बालक के विभिन्न गुणों मे अन्त: भिन्नतायें होती है, इसलिए किसी एक गुण के आधार पर शिक्षक को उसके अन्य गुणों के बारे में अनुमान नहीं लगाना चाहिये या पूर्वधारणा नहीं बनानी चाहिये।
- प्रत्येक बालक अनन्य है, इसलिए उसकी तुलना अन्य बालकों से नहीं करनी चाहिये। अपनी क्षमताओं एवम् योग्यताओं के आधार पर ही उससे शैक्षिक उपलब्धि की अपेक्षा करनी चाहिये तथा उसके साथ व्यवहार करना चाहिये।
- विकास की गति मे भी व्यक्तिगत अन्तर एवं अन्त: भिन्नतायें होती है, आयु सम्बन्धी भिन्नतायें होती है, इसलिए पहले के विकास के आधार पर अंतिम विकास के स्वरूप के बारे में आकलन करना कदापि सम्भव नहीं होगा । इसलिए बालक के विद्यालयी व्यवहार और अधिगम में उतार चढ़ाव के प्रति अधिक आतंकित नहीं होना चाहिये, जब तक की कोई व्यवहार काफी समय तक न चलता रहे।
- हमें व्यक्तिगत भिन्नताओं का आदर करना चाहिये। आजकल के अत्यन्त जटिल एवं एकीकृत समाज में विशिष्टीकरण एक अनुठापन सतत् जीवन का आधार है । व्यक्ति तरह-तरह से जैसे वैज्ञानिक के रूप दार्शनिक के रूप में या अन्य विशिष्टीकृत निजी रूप में समाज की प्रगति एवं कल्याण में अपना योगदान दे सकता है।

किसी विशिष्ट आयु के बालकों की विशेष रुचियों, या किसी मानसिक आयु के बालकों की क्षमताओं का ज्ञान शिक्षक को अपने शिक्षण को इस समूहों के सामान्य बालकों के अनुरूप ढालने में सहायक हो सकता है। परन्तु उसका अधिकांश शिक्षण व्यर्थ हो जायेगा यदि वह इस बात पर ध्यान नहीं देता कि कुछ शिक्षार्थी सामान्य से काफी ऊपर या नीचे है। इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि यदि कोई बालक किसी गुण से सामान्य स्तर का है तो वह अन्य गुणों में भी सामान्य स्तर का होगा, ऐसा आवश्यक नहीं हैं। कुछ गुणों मे वह बहुत नीचे तथा कुछ में सामान्य से काफी अच्छा भी हो सकता है। उदाहरण के लिए सामान्यत: ऐसा देखा जाता है कि समाज के निम्न वर्ग से आने वाले वे बालक जिनका मानसिक स्तर काफी ऊँचा है उनकी शैक्षिक उपलब्धि उन्हीं के समकक्ष मानसिक स्तर वाले मध्यम वर्ग से आने वाले बालकों की उपलब्धि की अपेक्षा कम होती है। निम्न वर्ग के लोगों में शिक्षा के प्रति वह जागरूकता नहीं होती जो मध्यम वर्ग के लोगों में होती है, फिर भी बहुधा शिक्षक समान बुद्धिलब्धि वाले विभिन्न

सामाजिक वर्ग में आने वाले बालकों को उसी प्रकार लेता है मानों उनमें शिक्षा प्राप्त करने के प्रति समान प्रेरणा है।

व्यक्तिगत भिन्नताओं के स्वरूप से परिचित होने के बाद शिक्षक को इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:-

1. गुणों मे अन्त: भिन्नतायें होती है, इसलिए बालक के गुण के आधार पर उसके अन्य गुणों के बारे में पूर्वधारणा नहीं बनाना चाहिये।
2. किसी बालक की किसी अन्य बालक से तुलना नहीं करनी चाहिये।
3. विद्यालयी व्यवहार तथा अधिगम में उतार चढ़ाव के प्रति अधिक आतंकित नहीं होना चाहिये ।
4. व्यक्तिगत भिन्नताओं का आदर करना चाहिये।
5. बालक की पृष्ठभूमि को ज्ञात करना चाहिये।

19.6 व्यक्तिगत भिन्नताओं की मापन विधियां (Techniques of Measurement Individual Differences)

व्यक्तिगत भिन्नताओं का ध्यान रखते हुए छात्र केन्द्रित शिक्षण प्रदान करने के लिए शिक्षक को अपने छात्रों की क्षमताओं, योग्यताओं तथा विशेषताओं का अधिक से अधिक ज्ञान होना आवश्यक है। बालकों की क्षमताओं, योग्यताओं तथा विशेषताओं का मापन करने की बहुत सी विधियाँ है। जिनमें कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के समान प्रमाणित है तथा कुछ अप्रमाणित होते हुए भी काफी लाभदायक एवम् आवश्यक है। इस प्रकार इन विधियों कार्यो से संक्षिप्त एक वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। उपरोक्त विधियों का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

19.6 मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रामाणिक विधियाँ

मानसिक क्षमताओं, योग्यताओं एवं अभिरूचियों का मापन करने के लिए बहुत सी परीक्षायें निर्माण की गई हैं। इनमें काफी भिन्नता भी है, परन्तु सिद्धान्त कुछ अर्थों में यह एक समान है। इन परीक्षाओं की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं:-

(अ) यह वह उपकरण हैं जिनका इस प्रकार निर्माण किया जाता है, जिससे व्यक्तियों के व्यवहार के चयनित पक्ष का वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक माप मिल सकें।

(ब) यह ऐसा मानक प्रदान करते हैं जिसके आधार पर किसी व्यक्ति के चयनित व्यवहार का आकलन किया जा सकें।

19.6.1.1 मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के लाभ:-

(अ) इनसे वस्तुनिष्ठ तथा प्रामाणिक माप एवं मानक मिलते हैं।

(ब) यह परीक्षायें किफायती हैं।

(स) यह व्यक्तिगत पूर्वग्रहों से मुक्त हैं।

19.6.1.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के प्रकार:-

(अ) निष्पति एवं कागज पैंसिल वाली परीक्षाएं

(ब) शाब्दिक एवं अशाब्दिक परीक्षाएं

(स) सामूहिक एवं व्यक्तिगत परीक्षाएं।

(द) बुद्धि, अभिरूचि, रूचि, अभिवृत्ति, व्यक्तित्व सम्बन्धी परीक्षायें।

शिक्षा में इनका प्रयोग बालकों का चयन के लिए, उनका वर्गीकरण करने में, उनकी समस्याओं का पता लगाने, तथा उनकी प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का चुनाव करते समय यह देखना आवश्यक है कि चुनी हुई परीक्षा वस्तुनिष्ठ तथा प्रमाणीकृत है, आसानी से बालकों पर प्रयोग की जा सकती है, शिक्षक उसको भली- भाँति प्रयोग कर सकता है, अपेक्षित सभी पक्षों का आंकलन करती है तथा विश्वसनीय एवं वैध है।

19.6.1.3 सीमाएँ:-

(अ) यह परीक्षाएं भौतिक विज्ञानों की परीक्षाओं के समान यथार्थ नहीं है।

(ब) व्यक्ति जीवन में भी उतना सफल होगा जितना परीक्षा पर हुआ है, यह आवश्यक नहीं है।

(स) यह समस्या का स्वरूप या कारण बता सकती है पर उसे हल नहीं कर सकती है।

(द) परीक्षा परिणाम अन्य बाहय कारणों जैसे थकान, प्रेरणा इत्यादि से भी प्रभावित हो सकते हैं।

(य) यह परीक्षाएं सभी व्यक्तित्व के गुणों का मापन नहीं कर सकती।

19.6.2 अप्रमाणित विधियाँ:-

19.6.2.1 अवलोकन विधियाँ:-

इस वर्ग की प्रमुख विधियों के बारे में आइए जानकारी हासिल करें-

(अ) प्रत्यक्ष अवलोकन-

मनोविज्ञान में प्रेरणा की सबसे प्राचीन प्रणाली कहा जा सकता है। इस प्रणाली में मनोवैज्ञानिक को चुपचाप बैठक कर घटना के घटने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है और तब वह घटनाओं के घटने का विवरण लिखता रहता है। इस प्रकार की प्रणाली में समय नष्ट होता है और साथ ही यह पूर्णतया वैज्ञानिकों के नियंत्रण में भी नहीं रहती है। प्रारम्भिक मनोवैज्ञानिकों में से अधिकांश ने अपने ही बालकों के प्रेक्षण से कार्य प्रारम्भ किया और प्राप्त परिणामों को मानव व्यवहारों पर प्रयुक्त किया। आमतौर पर ये विवरण सामान्य लिपि में लिखे जाते थे और जहां तक संभव होता था मनोवैज्ञानिक उन्हें अधिकाधिक व्यापक बनाने का प्रयास करते थे। किन्तु शीघ्र ही सामने अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई।

मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए जब इन प्रेक्षणों का वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में प्रयोग किया गया तब मनोवैज्ञानिकों के सामने अनेक कठिनाइयां आयी। सबसे बड़ी कठिनाई विचार और व्यवहार की गति के साथ सामंजस्य रखने की थी। जिस गति से विचार और शाब्दिक अनुक्रियाएं उत्पन्न होती है उसी गति से उनका पूर्ण विवरण रखना मनोवैज्ञानिकों के लिए असंभव था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए ही अब अवलोकन से टेप रिकार्ड वीडियों एवं अन्य यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा है।

दूसरी कठिनाई बालक के व्यवहार के ऊपर प्रेक्षक का प्रभाव है। यह अनुभव किया गया कि उसी कमरे में मनोवैज्ञानिक की उपस्थिति बालक के व्यवहार को प्रभावित करेगी। इस कारण प्रेक्षण स्वाभाविक व्यवहार का विवरण नहीं होगा। परन्तु इस पक्ष पर प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि यदि बालकों को पर्याप्त समय दिया जाए एवं उनकी निश्चित प्रतिक्रियाओं का अनुकरण किया जाए तो मनोवैज्ञानिक की उपस्थिति से विद्यार्थी को उतनी ही परेशानी होगी जितनी कि कमरे में रखी मेज कुर्सियों से। अवलोकन में प्रेक्षण कक्षों का प्रयोग इसी कारण हुआ जिसमें कि अपरिचितों की उपस्थिति का विद्यार्थी के व्यवहार पर प्रभाव न पड़े।

प्रेक्षण की विषय निष्ठता एक अन्य कठिनाई है। मनुष्य होने के नाते प्रेक्षण अपनी व्यक्तिगत अभिवृत्तियों एवं अभिनति के अनुसार वस्तुओं का प्रेक्षण करेगा। परिणामस्वरूप दो प्रेक्षकों के एक ही घटना के भिन्न- भिन्न प्रेक्षण होंगे। और जब घटना की व्याख्या की जाती है तब और भी अधिक अंतर आएंगे। प्रेक्षक अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं विश्वासों के अनुसार ही किसी घटना की व्याख्या करेंगे। इन सब कारणों के कारण प्रेक्षण में असंगति होती है इस त्रुटि को दूर करने के लिए काल-प्रतिचयन की सलाह दी गयी।

काल-प्रतिचयन के लिए प्रेक्षक एक प्रपत्र पर कार्य करता है जो प्रेक्षित घटना के स्पष्ट विवरण के पश्चात् बनाया जाता है। जिस काल के लिए प्रेक्षण को अभिलिखित किया जाता है उसे छोटे-छोटे एककों में विभक्त कर दिया जाता है जो कि आमतौर पर एक मिनट के होते हैं। प्रेक्षक स्टाप वाच की सहायता से यथार्थ काल का अंकन करता है और पहले मिनट और दूसरे मिनट में घटने वाली घटना को क्रमश: चिन्हित कर देता है। निश्चित परिभाषाओं के सामने होने से उक्त घटना का विवरण संतोषजनक होने पर उसे उक्त घटना को चिन्हित करने में सहायता मिलती है। इस प्रविधि से किए गए प्रयोगों तथा विभिन्न प्रेक्षकों द्वारा किये गये प्रेक्षणों में उच्च सह-सम्बन्ध प्राप्त हुआ है। प्रेक्षक को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए काल्प्रतिचयन अब तक श्रेष्ठतम प्रविधि रही है ।

(ब) निर्धारण मापनी (क्रम निर्धारण मान) (Rating scales)

प्राय: विभिन्न विशेषताओं के आधार पर ही अध्यापक अपने विद्यार्थियों का वर्गीकरण करते है। विभिन्न विद्यार्थियों की तुलना करके वे एक को दूसरे से अधिक चतुर एक को दूसरे से अधिक सामाजिक और एक को दूसरे से अधिक परिश्रमी बतलाते हैं।

उस अंतर को अधिक तर्कसंगत ढंग से प्रदर्शित करने के लिए निश्चित निर्धारित अंशों वाली मापनी का जन्म हुआ। अपनी रूचि के अनुसार कोई भी मापनी को सूक्ष्माति सूक्ष्म भेद बोधक बना सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने पंचसूत्री मापनी से लेकर पन्द्रह सूत्री मापनी का विवरण दिया है। यद्यपि मापनी में जितनी ही अधिक संख्या में सूत्र होंगे निर्धारण उतना ही भेद बोधक होगा। फिर भी निर्धारण के लिए अधिक सूक्ष्य भेद बोधक कठिन है और इस कारण से संदेहास्पद भी है। अभी सबसे लोकप्रिय पांच-सूत्री मापनी मानी जाती है।

(स) उपसंख्यानक वृत (घटनावृत आलेख) (Anecdotal records)

व्यक्ति के जीवन के छोटे-छोटे उपसंख्यान बहुधा किसी महत्वपूर्ण विशेषताओं का व्यवहार प्रतिदर्शो का संकेत देते हैं । छोटे-छोटे उपख्यानको का यत्र-तत्र वृत व्यक्ति के व्यवहार को समझने में सहायता दे सकते है और इस प्रकार से अध्यापक को कक्षा में पढ़ाने में सहायता मिलती है। किन्तु इन वृतों का व्यावहारिक मूल्य तभी हो सकता है जबकि वे अनुतांत्रिक और वस्तुनिष्ठ हो। उदाहरण के लिए- एक बालक अपने बड़े भाईयों को गणित की एक समस्या पर

बात करते सुनता है, और हस्तक्षेप करते हुए वह उसका सही हल प्रस्तुत कर देता है यद्यपि स्वयं वह कभी भी विद्यालय नहीं गया (अभिलेख) वृन्त उसकी शैक्षिक योजना बनाने में और उसकी प्रगति में बहुत सहायक होगा। यह वृत स्पष्ट संकेत देता है कि वह बालक अपनी आयु और अनुभव के अन्य बालकों से भिन्न है।

19.6.2.2 स्वमूल्यांकन विधियाँ :-

इसके अन्तर्गत प्रमुखत: निम्न विधियाँ आती है-

(अ) प्रश्नावली -

बड़े पैमाने पर व्यक्तियों से सम्बद्ध सूचना एकत्र करने के लिए प्रश्नावली संभवतः: सरलतम प्रविधि है। प्रश्नावली के लिए व्यक्तिगत संपर्क आवश्यक नहीं है। इन्हें डाक द्वारा खोजकर्ता द्वारा चुने गये प्रतिदर्शी को भेजा जा सकता है। इस प्रकार से यह सरलतम किन्तु बहुत अपव्ययी प्रविधि है। बहुत

ही अल्प संख्या में प्रश्नावलियों को भर कर वापिस भेजा जाता है। विशेषकर भारतवर्ष में। अमेरिका में किए गए कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि वहां पर प्रश्नावलियों की वापसी की संख्या 80 से 90 प्रतिशत है पर भारत में इसकी कल्पना करना भी कठिन ह। प्रश्नावलियों में एक और त्रुटि है। इसमें भ्रांतियां एवं गलतफहमियां का निराकरण नहीं किया जा सकता और न ही पूरक प्रश्न पूछे जा सकते है। इस कारण यह आवश्यक है कि प्रश्नावली की भाषा स्पष्ट व सुनिश्चित हो। प्रश्नावली में एक और कठिनाई है व्यक्तिगत संपर्क न होने के कारण मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की मुद्राओं एवं संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं से वंचित ही रहता है। इन सब कमियों को ध्यान में रखते हुए मानवीय व्यवहार एवं व्यक्तिगत भेदों के आकलन के लिए प्रश्नावली को एकमात्र प्रविधि के रूप में प्रयुक्त करना अधिक उपयुक्त होगा।

(ब) साक्षात्कार:-

साक्षात्कार में अन्यतम व्यक्तिगत संपर्क संभव है। इसमें साक्षात्कार कर्ता और विद्यार्थी आमने-सामने रहते है। इस कारण साक्षात्कारकर्ता विद्यार्थी की चेष्ठाओं, गति, संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं, एवं मुखमुद्राओं का अध्ययन कर सकते हैं। अपने उद्देश्यों के अनुसार साक्षात्कारों में भी अंतर होता है। मालिक योग्य कर्मचारियों का चयन करने के लिए प्रत्याक्षालाप करता है। विद्यालय और महाविद्यालयों में विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए विद्यार्थी का चयन करने के लिए भी साक्षात्कार का आयोजन होता है जिसमें अध्यापक एवं मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों को समझने के लिए उनसे साक्षात्कार करते है । इनमें से प्रत्येक साक्षात्कार की प्रकृति भिन्न होती है। साक्षात्कार के लिस प्रारूप की परिचर्चा हम यहाँ कर रहे है उसका उद्देश्य बालक से सम्बद्ध सूचनाओं को एकत्रित करना है। क्योंकि हम बालक को समझना चाहते है, और उस पर कार्यरत तथा उसके व्यवहार को प्रभावित करने वाली शक्ति को भी जानना चाहते है।

यद्यपि साक्षात्कार करने का हमारा उद्देश्य सूचनाएं एकत्रित करना है फिर भी हमें इस जानकारी को एकत्रित करने के लिए किस सीमा तक जाना है इस विषय में सावधान रहना चाहिए। एक अनुभवहीन साक्षात्कारकर्ता कौतूहली और जिज्ञासु कहलाता है। मनुष्य और विशेष रूप से विद्यार्थी दूसरे से अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों एवं समस्याओं की चर्चा करना नहीं चाहते। विद्यार्थी नहीं चाहते कि अध्यापक उनके व्यक्तिगत जीवन को जान जायें इसका प्रमुख कारण यह है कि अध्यापक परीक्षक भी होते है। वे विद्यार्थियों को श्रेणियों में बांटते है और इस

कारण विद्यार्थी अपना भेद देकर अपने प्रभाव को बिगाड़ना नहीं चाहते। इस बात को ध्यान में रखकर साक्षात्कार करते हुए साक्षात्कारकर्ता को सावधान रहना चाहिए। उसे सूचना एकत्रित करने के लिए बालक पर इतना जोर नहीं डालना चाहिए कि वह यह सोचने लगे कि साक्षात्कारकर्ता उससे सूचना निकाल रहा है। अनुभवहीन मनोवैज्ञानिक प्रथम साक्षात्कार में ही जितना उस स्थिति में सम्भव होता है अधिकाधिक सूचना निकालने की महत्वाकांक्षा के कारण बहुधा अपने प्रयोज्य को खो देते है। यह स्मृतव्य है कि व्यक्ति यदि मनोवैज्ञानिक के पास आता रहे तो सूचना एकत्रित करने के अनेक अवसर होंगे। दूसरी और साक्षात्कारकर्ता यदि यह प्रभाव छोड़ता है कि वह सूचना एकत्र करना चाहता है तब भावी भेंट की सम्भावना ही समाप्त हो जाती है, जो एक सफल साक्षात्कार के लिए आवश्यक है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक साक्षात्कार का प्रशिक्षण देने के लिए टेप रिकार्डरों का प्रयोग करते है । परामर्शदाता के प्रशिक्षण कार्यक्रम में इनका विशेष महत्व है जब टेप रिकार्डर में भरे हुए साक्षात्कार को परामर्शदाता को सुनाया जाता है जब उससे वह यह जान सकता है कि किस प्रकार से स्वराघात में तनिक परिवर्तन से या एक ही अधिक शब्द के प्रयोग से प्रश्न का भाव ही परिवर्तित हो जाता है और इस प्रकार से अनुक्रिया भी परिवर्तित हो जाती है। प्रशिक्षण के दूसरे भाग में, साक्षात्कार में अपने प्रश्नों को गढना पड़ता है और अपने विषय की अनुक्रियाओं की कल्पना करनी पड़ती है। इच्छित अनुक्रियाओं के ज्ञान के पश्चात वह भाषा में थोड़ा सा परिवर्तन कर सकता है । जिससे इच्छित अनुक्रियाएं ही प्राप्त हो और उनका कोई दूसरा सम्भावित रूप प्राप्त न हो। विषयी के मन में यह भाव न आये कि उससे प्रश्नोत्तर किये जा रहे है। मनोवैज्ञानिकों ने यह सुझाव दिया है कि प्रत्यक्ष प्रश्न कम से कम किये जाएं, ताकि प्रयोज्य निश्चित होकर उत्तर दे सकें।

साक्षात्कारकर्ता ने अपने और विषयी के बीच में कैसे सम्बन्ध स्थापित किये है इसी पर साक्षात्कार की सफलता निर्भर करती है । एक अध्यापक एक सफल साक्षात्कारकर्ता बन सकता है। अपने अध्यापन काल में बालक के साथ तादात्म्य स्थापित करने का और बात की प्रतिभूति करने का पर्याप्त अवसर मिलता है कि वह उसका भला चाहता है।

(I) आत्मकथा

इसमें बालक अपने जीवन की विगत मुख्य घटनाओं का स्वयं उल्लेख करता है। बालक से उसके विगत जीवन की मुख्य घटनाओं अनुभवों तथा संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं जैसे आन्तरिक विचारों और भावनाओं उसके सुख-दुख के क्षण तथा उसके भय प्रसन्नता इत्यादि का वर्णन करने को कहा जाता है।

यदि शिक्षक बालक से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने और उसका विश्वास प्राप्त करने में सफल होता है तो आत्मकथा में ऐसी महत्वपूर्ण सूचनायें मिल सकती है जो अन्य किसी स्रोत से नहीं मिल सकती। परन्तु जब बालक आत्मकथा में अपने बारे में सही सूचनायें नहीं बताता है तो भी आत्मकथा का महत्व समाप्त नहीं हो जाता। क्योंकि दूसरे से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनके उन गलत तथ्यों का पता लगाया जा सकता है तथा इस प्रकार वह अपनी कमियों तथा कमजोरियों की क्षतिपूर्ति कैसे करता है इसका पता चल जाता है। उसके आगे खोज बीन करके उसकी कुंठित आवश्यकताओं का पता लगा कर उसके प्रत्यक्ष व्यवहार तथा दृष्टिकोण का कारण समझा जा सकता है।

परन्तु आत्मकथा में अपने बारे में बताने के लिए उपयुक्त भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। इसलिए सामान्यत: इस विधि का प्रयोग 13 वर्ष से कम आयु के बालकों पर नहीं किया जाता। यदि फिर भी आवश्यक हो तो इसे प्रश्नावली का रूप देकर बालक से प्रश्नोत्तर के रूप में उसके विगत जीवन के बारे में जानना चाहिये।

(द) व्यक्तिगत विषयों पर लेख-

ऐसे लेख बालक के मानसिक द्वन्दों, चिन्ताओं, दृष्टिकोणों, जीवन मूल्यों और जीवन दर्शन के बारे में अनुमान लगाने में काQÉ सहायक पाये जाते हैं, विशेषकर यदि उन्हें आत्मकथा के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाये । इस प्रकार के लेखों के कुछ उपयोगी शीर्षक इस प्रकार हो सकते हैं:-

(1) अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद आप क्या करना चाहेंगे?

(2) (कौन सी चीज तुम्हारे लिए सबसे अधिक चिन्ता का विषय है?

(3) जब तुम्हारे सामने कोई कठिन समस्या आती है तो तुम क्या करते हो?

(4) बड़े होकर तुम किस प्रकार का व्यक्ति होना पसंद करोगे?

19.6.2.3 समाजमितिक विधियाँ-

ब्रॉनफेनब्रेनर (Bronfenbrenner,1961) के अनुसार समाजमितिक समूह के सदस्यों के बीच आपसी प्रतिग्रहण एवं अस्वीकरण (acceptance and rejection)) की सीमा का मापन करके सामाजिक' स्तर संरचना और विकास का पता लगाने, उल्लेख करने तथा मूल्यांकन करने की एक विधि है इस प्रकार की विधि के द्वारा दो प्रकार की सूचनायें प्राप्त की जा सकती है।

I. किसी समूह के संगठन की संरचना कैसी है अर्थात इस संरचना में कौन से लोग प्रभावशाली है, इसमें कौन से गुट हैं तथा इसमें आपसी आकर्षण तथा विकर्षण का कैसे प्रतिरूप है।

II. किसी बालक का उस समूह में क्या स्थान है?

यह विधि बहुत आसान है। समूह के सदस्यों को कागज का एक सादा टुकड़ा दिया जाता है। जिसमें उन्हें प्राथमिकता के क्रम में उस समूह के तीन ऐसे व्यक्तियों के नाम लिखना होता है, जिन्हें (उदाहरण के लिए) बालक अपने खेल में साथी बनाना चाहेगा। सामान्यत यह भी निर्देश दिया जाता है कि समूह के उस बालक का भी नाम लिखिये जिसे आप सबसे कम पसंद करते हैं। समूह के सभी सदस्यों की पसंद को इकट्ठा करके समूह की संरचना का पता लगाया जाता है।

समाजमितिक विधि की सीमायें-

I. इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष के फल केवल उसी समूह के लिए लागू होते हैं। जो बालक एक समूह में किसी एक सामूहिक कार्य के लिए लोकप्रिय है वह आवश्यक नहीं कि किसी अन्य समूह में या इसी समूह के अन्य कार्य में उतना ही लोकप्रिय हो।

II. समाजमितिक विधि से केवल वर्तमान स्थिति का पता चलता है। पहले इस समूह की संरचना कैसी थी और आगे कैसी होगी इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

इन सीमाओं के कारण इस विधि से प्राप्त प्रदत्तों का समान्यीकरण नहीं किया जा सकता ।

स्वमूल्यांकन(Self Evaluation)

1. रेटिंग स्केल' का व्यक्तिगत भिन्नताओं का पता लगाने में किस प्रकार प्रयोग किया जाता है
2. समाजमितिक विधि द्वारा व्यक्तिगत भिन्नता का पता कैसे लगाया जा सकता है।

19.7 कक्षा शिक्षण में व्यक्तित्व भिन्नताओं पर ध्यान (Attention towards Individual Difference in Classroom Teaching)

कक्षा शिक्षण में व्यक्तित्व भिन्नताओं पर ध्यान देने के लिए कई प्रकार की नीतियां अपनाई जा सकती है, जैसे

- वैयक्तिक अनुदेशन
- योग्यता के अनुसार समूहों का निर्माण
- छात्र केन्द्रित विधियां
- कक्षा आकार को सीमित करना

आइए इन नीतियों पर एक-एक करके हम विचार करें:-

19.7.1 वैयक्तिक अनुदेशन-

(अ) इस प्रकार की विधि के कई लाभ हो सकते है जैसे- इसके प्रयोग से कक्षा के सामान्य कार्य पर ध्यान देने के स्थान पर व्यक्तिगत छात्रों पर ध्यान केन्द्रित करने में सहायता मिलती है। इससे शिक्षक को प्रत्येक छात्र की रुचियों एवं व्यावसायिक प्रवृत्तियों के बारे में काफी नजदीकी ज्ञान हो जाता है।

(ब) धीमी गति से सीखने वाले बालकों को अपनी गति से कार्य करने का अवसर मिलता है। जिससे वह अधिक संतोषप्रद परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रतिभाशाली बालक को अपने. इच्छानुसार उच्चस्तरीय दत्तकार्य लेकर आगे बढ़ने का अवसर मिलता है

(स) शिक्षकों को भी अपने में ऐसी कुशलताओं का विकास करने का अवसर मिलता है जिससे वह पता लगा सकें कि किसी कार्य या समस्या के प्रति विभिन्न प्रकार के बालक किस प्रकार सम्बोधित होते है।

विनटेक योजना, डाल्टन योजना, कार्य योजना, मारीसन योजना, प्रोजेक्ट तथा क्रिया आधारित कार्यक्रम आदि कुछ ऐसी शिक्षण योजनाएं हैं, जिनमें व्यक्ति अनुदेशन पर काफी ध्यान दिया जाता है

19.7.2 योग्यता के अनुसार छात्रों का वर्गीकरण (समूहों का निर्माण)

इसका उद्देश्य समरूप समूहों का निर्माण करना है क्योंकि इससे बालकों का शिक्षण अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

इन समूहों का निर्माण बुद्धिलब्धि के आधार पर किया जाता है परन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण वांछनीय नहीं है इससे अच्छा है कि वर्गीकरण का आधार विषय समूह ही रखा जाय।

19.7.3 छात्र केन्द्रित विधियाँ:-

1. छात्र केन्द्रित विधियों के रूप में निम्न विधियों का प्रयोग अधिक होता है।
2. .उपचारित शिक्षण
3. विशेष अनुदेशन
4. ट्यूटोरियल प्रथा
5. प्रोग्राम अनुदेशन शिक्षण विधि
6. प्रतिभाशाली बालकों के लिए पूछताछ उपागम, विचारगोष्ठी, समृद्धि पाठ्यक्रम तथा ऐसी विधियां जिससे उन्हें नेतृत्व के अवसर प्राप्त हों।

19.7.4 सीमित कथा आकार

व्यक्तिगत भिन्नताओं पर ध्यान रखते हुए कक्षा कार्य तथा गृह कार्य में विविधता रखनी चाहिए। शिक्षक को कक्षा का आकार छोटा रखना चाहिए जिससे व्यक्तित्व भिन्नता पर और अधिक ध्यान दिया जा सकें।

19.8 सारांश (Summary

हर बालक दूसरे बालक से भिन्न होता है बालक की क्षमताओं का पूरा उपयोग करने के लिए आवश्यक है कि उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का ध्यान रखते हुए तथा उसे पूरा विकसित होने का अवसर दिया जाए। एक बालक की व्यक्तिगत भिन्नताओं का पता मनोवैज्ञानिक परीक्षण का प्रयोग कर लगाया जा सकता है। इसके पश्चात् शिक्षक का यह दायित्व होता है कि वह कक्षा में ऐसी विधियाँ प्रयोग करे तथा ऐसा वातावरण बनाए जिससे कक्षा के प्रत्येक बालक की और ध्यान देकर शिक्षण की व्यवस्था की जा सकें।

19.9 संदर्भ (References)

1. Ausubel,David p,.Educational Psychology : A cognitive View, New York:Holt, Rinehart & Winston,1968
2. De Cecco,Johan P.,and Craw ford,Willian (1977) The Psychology of Learning and Instruction, New Delhi : Prenticle Hall of India,1997
3. Fitts,Paul M.,Factors in complex Skill Learning :in Train Research and education ed. A-W.Melton,New York: Academic Press inc.,1964
4. Argne,Robert M.,Conditions of Learnings New York: Holt Rineheart & Winston,Inc,1965

इकाई-20

बुद्धि : अवधारणा तथा सिद्धान्त (INTELLIGENCE: CONCEPT AND THEORIES)

इकाई की संरचना

20.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य (Aims and Objectives)

20.2 अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप (Meaning, Definition and Nature)

20.3 बुद्धि के प्रकार (Kinds of Intelligence)

20.4 बुद्धि की अभिवृद्धि (Growth of Intelligence)

20.5 बुद्धि तथा ज्ञान में अन्तर (Difference between intelligence and knowledge)

20.6 बुद्धि के सिद्धान्त

20.7 सारांश (Summary)

20.8 संदर्भ (References)

20.1 उद्देश्य तथा लक्ष्य

बुद्धि व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह वातावरण के साथ समायोजन करने के लिए अनुक्रिया करता है। यदि व्यक्ति में बुद्धि न हो तो यह कल्पना करना कठिन है कि जीवन कितना दुष्कर होगा। आइए, इस इकाई में बुद्धि की संकल्पना को समझने का प्रयास करें आशा है इसके अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

- बुद्धि का अर्थ जानकर उसके स्वरूप को समझ सकेंगें।
- बुद्धि के विभिन्न प्रकारों को उनकी विशेषताओं सहित जान सकेंगें।
- बुद्धि की अभिवृद्धि का आयु से सम्बन्ध समझ सकेंगें
- बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों को समझकर निष्कर्ष निकाल सकेंगें।

20.2 अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप (Meaning, Definition and Nature)

व्यक्ति की बुद्धि के विषय मे जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा आदिकाल से की जाती रही है वेदों और पुराणों में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते है जिनसे इस बात का आभास होता है कि उस समय भी बुद्धि को ज्ञात करने की चेष्टा की जाती थी। प्रारंभ में बुद्धि सम्बन्धी परीक्षण में शरीर की माप की जाती थी। उस समय लोग समझते थे कि शारीरिक रचना बुद्धि की बाहय अभिव्यक्ति। 1772 में लैवेटर (Lavator) ने आकृति सामुद्रिक (Physiognomy)की सहायता से यह बताया कि बुद्धि का अनुमान चेहरे की बनावट से लगाया जा सकता है। 1807 में फ्रांस मे गाल (Gall) ने मस्तिष्क विज्ञान (Phrenology) का प्रतिपादन किया। 1876 में लांब्रास (Lombros) ने यह बताया कि शरीर तथा सिर की भद्दी आकृति वाले लोग प्राय: मानसिक दोषी

तथा अपराधी होते है। 1885 में गाल्टन (Galton) ने इसका खण्डन किया कि शारीरिक अवयवों के अध्ययन से बुद्धि का पता चल सकता है।

वस्तुत: बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही बुद्धि के क्षेत्र में जो परीक्षण किये गये उनके कारण पूर्व प्रचलित मिथ्या धारणाओं का खंडन हुआ तथा देश व विदेश, दोनों में बुद्धि परीक्षा के उपयोगी प्रयास किए जाने लगे। इन प्रयासों में बिने (Binet) साइमन (Simon), टरमन (Terman), राइस (Rice), भाटिया (Bhatia), जलोटा (Jalota) आदि ने उल्लेखनीय योगदान किया है।

बुद्धि का साधारणतया अर्थ होता है मानसिक योग्यता अथवा क्षमता मनोविज्ञान के क्षेत्र में यद्यपि बुद्धि को परिभाषित करने के तमाम प्रयास समय-समय पर किए गए किन्तु आज भी इसका स्पष्ट अर्थ एवं इसकी सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी है। वस्तुत: मनोवैज्ञानिकों ने अपने ढंग से बुद्धि के स्वरूप को परिभाषित करने की चेष्टा की है और इन परिभाषाओं के अध्ययन से इसके अनेक अर्थ उभर का सामने आते है यथा- सीखने की क्षमता समझने की शक्ति, सम्बन्धों की खोज, तर्कसंगत व्यवहार, अमूर्त चिन्तन, वातावरण के साथ अभियोजन की योग्यता आदि। यहाँ पर कुछ जाने माने मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाओं को उद्धत करना उपयुक्त होगा।

स्टर्न के अनुसार 'विकट परिस्थिति में अपने को सुव्यवस्थित करने की क्षमता ही बुद्धि है टरमन के अनुसार 'अमूर्त वस्तुओं के विषय में सोचने की शक्ति ही बुद्धि है'। **बुडवर्थ** ने 'इसे कार्य करने की एक विधि माना है। बकिंघम ने सीखने की शक्ति को बुद्धि माना है। "**रायबर्न** ने कहा कि" बुद्धि वह शक्ति है जो हमको समस्याओं को समाधान करने, और उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता देती है।" **बिने** ने चार शब्दों के माध्यम से बुद्धि को परिभाषित करना चाहा-समझने, आविष्कार, निर्देश तथा युक्तियुक्त तर्क की योग्यता। **थार्नडाइक** ने तथ्य या सत्यता के परिप्रेक्ष्य में उत्तम अनुक्रियाओं की शक्ति को बुद्धि माना है। **बेश्लर के अनुसार** " बुद्धि एक व्यक्ति की प्रयोजन पूर्वक कार्य करने, विवेकपूर्ण तर्क करने, तथा अपने पर्यावरण से भली भांति व्यवहार करने की समुच्चय या ध्रुवीय योग्यता है।

बुद्धि परीक्षण मे प्रयुक्त कार्य की दृष्टि से गेट्स आदि ने बुद्धि को परिभाषित करने का प्रयास अपनी शिक्षा मनोविज्ञान नामक पुस्तक में किया है। उनके अनुसार 'बुद्धि सीखने की योग्यताओं का एक संगठन है, जिसके माध्यम से विस्तृत तथा सूक्ष्म तथ्य, विशेषत: अमूर्त तथ्य सावधानीपूर्वक तथा सही प्रकार से ग्राह्य हो जाते हैं तथा मानसिक नियंत्रण प्राप्त हो जाता है एवं समस्याओं के हल प्राप्त करने में नमनीयता तथा मौलिकता भी देखने को मिलती है।

स्टर्न के अनुसार, नई परिस्थितयों में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता ही बुद्धि है। **Stern** “Intelligence is the capacity to adopt to relatively new situations”

टर्मन के अनुसार, " बुद्धि अमूर्त चिन्तन करने की योग्यता है । **Terman** “Intelligence is the ability to carry out abstract thinking.”

बुडवर्थ के अनुसार. " बुद्धि कार्य करने का ढंग है। **Woodworth** “Intelligency is the way of acting.”

बकिंघम के अनुसार, " बुद्धि सीखने की क्षमता है। **Bulkingam** “Intelligece is the ability to learn

रायबर्न के अनुसार. " बुद्धि वह शक्ति है जो हमें हमारी समस्याओं के सुलझाने और लक्ष्य प्राप्त करने के योग्य बनाती है । **Rayburn** "intelligence is the power which enable us to solve problems and to achieve our purposes."

थार्नडाइक के अनुसार, " सत्य और तथ्यों के दृष्टिकोण से अच्छी प्रतिक्रिया करने की शक्ति ही बुद्धि है ।" **Thorndike** "Intelligence is the power of good responses from the point of view of truth or fact."

बैस्लर के अनुसार, " बुद्धि व्यक्ति की सार्वभौम योग्यता है जिसके द्वारा वह उद्देश्य कार्य करता

है, तर्कपूर्ण ढंग से सोचता है तथा प्रभावपूर्ण ढंग से वातावरण के साथ सम्पर्क स्थापित करता है । **Weeshler** "intelligence of the aggregate or global capacity to act purposefully to think rationally and deal effectively with his environment."

Gates and Others "Intelligence is composite Organisation of ability to learn, to grasp broad and sublet facts with alertness and accuracy, to exercise mental control and to display flexibility and ingenuity in seeking the solution of problems."

स्टोडार्ड के अनुसार, " बुद्धि वह मानसिक योग्यता है जिसके द्वारा इस प्रकार की प्रक्रियाओं ने क्रियान्वित किया जाता है जिसमे कठिनाई, जटिलता, अमूर्तता, मितव्ययता, सोद्देश्यता, सामाजिक महत्ता एवं मौलिकता होती है। Stoddard "Intelligence is the ability to undertake activities that are characterize by difficulty,completely,adaptiveness to a good social value and the emergence of original and to maintain such activities under conditions that demand a concentration of energy and a resistance of emotional forces."

स्टाडर्ड के अनुसार, ' उन सभी कार्यो को करने की योग्यता, जिनमें कठिनता, जटिलता तथा उत्तम सामाजिक मूल्य की अपेक्षा होती है तथा मौलिकता का प्रादुर्भाव निहित होती है एवं विशिष्ट परिस्थितियों में ऐसे कार्य करने की क्षमता जिनमें संवेगात्मक स्थिरता एवं शक्ति के केन्द्रीकरण की आवश्यकता होती है, 'बुद्धि' कहलाती हैं।

उपरोक्त सभी परिभाषाएं 'बुद्धि' स्वरूप की व्याख्या करती है । उन सभी की अपनी उपयोगिता है चूंकि वह विभिन्न दृष्टिकोण पर प्रकाश डालती हैं.। वस्तुतः इन परिभाषाओं में पारस्परिक विरोध नहीं है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इन परिभाषाओं में विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है परन्तु वास्तव में इनमें विभिन्नता के बजाय समानता अधिक है। वैसे तो विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने 'बुद्धि' की एक छोटी, पैनी तथा सही परिभाषा देने का प्रयास समय-समय पर किया है किन्तु सच तो यह है कि कोई एक परिभाषा आज तक सभी को मान्य नहीं हो पाई। मनोवैज्ञानिकों में इस संदर्भ में मतैक्य नहीं हो पाया है। फिर भी अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बुद्धि व्यक्ति की वह जन्मजात शक्ति हैं जो उसकी सभी मानसिक योग्यताओं का योग एवं अभिन्न अंग होती है।

20.3 बुद्धि के प्रकार (Kinds of intelligence)

थार्नडाइक ने बुद्धि को कई प्रकार की शक्तियों का योग माना है। उसके अनुसार मोटे तौर पर बुद्धि के तीन प्रकार होते है:

- **आकांक्षा स्तर (Level of Aspiration)** - आकांक्षा स्तर के मापन से व्यक्ति की अमूर्त बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। जिसमें आकांक्षा स्तर जितना ऊंचा होगा, अमूर्त बुद्धि भी उतनी ही प्रखर होगी।
- **विभिन्न प्रकार के कार्य करना (To do various types of work**) - जो व्यक्ति जितने विभिन्न प्रकार के कार्य करने की क्षमता रखता है वह उतना ही अधिक बुद्धि का द्योतक माना जाता है । - कार्य करने की गति (Speed of work) जो व्यक्ति अमूर्त कार्य को जितनी गति के साथ सम्पन्न करता है उसकी अमूर्त बुद्धि उसी के अनुरूप कम या अधिक होती है ।

20.3.2 मूर्त बुद्धि

मूर्त बुद्धि द्वारा व्यक्ति वस्तुओं का समझने तथा उसके अनुरूप क्रिया करने का प्रयास करता है। इसे यांत्रिक (Mechanical) अथवा गामक (Motor) बुद्धि भी कहा जाता है। इस प्रकार की बुद्धि यंत्रों तथा मशीनों के साथ अनुकूलन में सहायक सिद्ध होती है। इस प्रकार की बुद्धि '

धारण करने वाला व्यक्ति कुशल कारीगर, चालक या इंजीनियर हो सकता है। इस प्रकार की बुद्धि वाला छात्र अपने यान्त्रिक उपकरणों के माध्यम से स्कूटर, घड़ी साइकिल आदि को कुशलतापूर्वक बनाने की क्षमता रखता है। विभिन्न. व्यक्तियों में इस प्रकार की बुद्धि के स्तर में अन्तर देखने को मिलता है। कुछ व्यक्तियों में यांत्रिक या गामक बुद्धि कम तथा कुछ अन्य व्यक्तियों में अधिक पाई जाती है

मूर्त बुद्धि को मापने के लिए कई परीक्षण बनाए गए है। मूत बुद्धि का प्रयोग नृत्य, खेलकूद तथा अन्य- इसी प्रकार के शारीरिक कार्यो में देखने को मिलता है। जिनमें इस प्रकार की बुद्धि का विकास कम होता है। वह खेलकूद आदि क्रियाओं से जी चुराते है तथा हीन भावना से ग्रसित हो जाते ह।

20.3.3 सामाजिक बुद्धि :-

सामाजिक बुद्धि वाला व्यक्ति समाज में कुशलतापूर्वक अभियोजना प्राप्त कर लेता है वह दूसरे व्यक्तियों के साथ. जिनके संपर्क में वह आता है प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की क्षमता रखता है। संक्षेप में इस प्रकार की बुद्धि में व्यक्ति की व्यवहार कुशलता निहित होती है। व्यक्तित्व के विभिन्न तत्व एवं शीलगुण तथा. मनोवृत्ति, ईमानदारी, निर्णय लेने की क्षमता, परिहास प्रियता आदि सामाजिक बुद्धि ' की ओर संकेत करते हैं। व्यक्ति सामाजिक बुद्धि के कारण ही जीवन में सफलता की सीढी पर चढता जाता है किन्तु जिन व्यक्तियों में सामाजिक बुद्धि का स्तर न्यून होता ह। उन्हें असफलता का मुँह भी देखना पड़ता हैं। कुछ लोग ऐसे भी समाज में देखने को मिलते हैं जिनमें अमूर्त बुद्धि तो उच्च श्रेणी की पाई जाती है किन्तु सामाजिक बुद्धि के अभाव के कारण जीवन की विभिन्न ' परिस्थितियों में वह उलझ जाते हैं तथा असफलता एवं निराशा ही. उन्हें हाथ लगती है.।

वैसे तो अमूर्त बुद्धि तथा सामाजिक बुद्धि का विकास साथ-साथ होता है किन्तु सामाजिक बुद्धि के' वांछित विकास में कमी होने के कारण व्यक्ति सामाजिक कार्यों में अरूचि प्रदर्शित करने लगता है। सामाजिक बुद्धि के सहारे ही नेतागण आदि जन जीवन में लोकप्रियता हासिल करके राजनीति में मंत्री अथवा सांसद बन जाते है।

20.4 बुद्धि की अभिवृद्धि (Growth of intelligence)

बुद्धि परीक्षण से यह सिद्ध हो चुका है की आयु के साथ व्यक्ति की बुद्धि में अभिवृद्धि होती रहती है, किन्तु अभिवृद्धि सदैव नहीं बनी रहती। बुद्धि की अभिवृद्धि किस आयु पर जाकर रूक जाती हैं, यह सुनिश्चित करना कठिन सा है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों का भिन्न-भिन्न मत है। बर्ट का मत है कि बुद्धि 14 वर्ष की आयु तक ही बढ़ती है। टरमन के अनुसार 16 वर्ष के बाद बुद्धि की अभिवृद्धि नहीं होती है, जो अभिवृद्धि प्रतीत होती है वह अनुभव के क्षेत्र में होती है। स्पीयरमैन ने इसकी 'पूर्ण अभिवृद्धि की. आयु व 4 से 16 वर्ष मानी है । जोन्स का' मत है कि बुद्धि की अभिवृद्धि 16 तक होती रहती है, माइल्स के अनुसार 18 वर्ष तक बुद्धि की अभिवृद्धि होती रहती है । थार्नडाइक भी मानता है कि बुद्धि का विकास व 8 वर्ष तक होता रहता है किन्तु उन्नीसवें वर्ष में भी यह विकास कुछ न कुछ होता रहता है। पिन्टर का मत है कि 14 से 22 वर्ष के मध्य बुद्धि का विकास कभी भी रूक जाता है।

बुद्धि की अभिवृद्धि के चरम बिन्दु तक पहुंचने का तात्पर्य यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि इसके उपरान्त व्यक्ति में किसी प्रकार का ज्ञानात्मक विकास नहीं होगा। वस्तुतः यह 30 वर्ष या उसके पहले तक चालू रह सकता है। किन्तु अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति का ज्ञानात्मक विकास चाहे लगातार होता भी रहे किन्तु बुद्धि की अभिवृद्धि किशोरावस्था में ही पूर्ण हो जाती है। वस्तुतः बाद में बुद्धि नहीं बढ़ती है ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान अर्जित की गई शक्ति है जबकि बुद्धि प्रायः जन्मजात शक्ति के रूप में मानी गई है।

20.5 बुद्धि तथा ज्ञान में अन्तर (Difference between intelligence and knowledge)

- बुद्धि जन्मजात होती है - जबकि ज्ञान पर्यावरण द्वारा प्राप्त किया जाता है।
- बुद्धि की प्रकृति स्थिर होती है, अर्थात उसमें परिवर्तन बहुत कम होता है जबकि ज्ञान में प्रयास कर वृद्धि की जा सकती है।
- केवल जानकारी प्राप्त करना ज्ञान है, जबकि उसे व्यावहारिक जीवन में उपयोग करना बुद्धि है।
- बुद्धि के द्वारा ज्ञान का विकास किया जा सकता है, किन्तु जान द्वारा बुद्धि का विकास नहीं किया जा सकता है।

स्वमूल्यांकन(self-evaluation)

1. बुद्धि की एक सबसे उपयुक्त परिभाषा दो तथा बताओ की इस परिभाषा की विशेषता क्या है?
2. बढ़ती अवस्था तथा बुद्धि के विकास का क्या सम्बन्ध है?
3. बुद्धि तथा ज्ञान की प्रमुख विशेषताओं को लिखिए।

4.	बुद्धि के प्रकारों का वर्णन करते हुए बताइए कि सामाजिक बुद्धि का जीवन में क्या महत्व है।

20.6 बुद्धि के सिद्धान्त (Theories of Intelligence)

बुद्धि के स्वरूप को ठीक से समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं । इन सिद्धान्तों का वर्गीकरण बुद्धि के स्वीकृति आधारभूत तत्त्वों की संख्या को आधार बनाकर किया गया है। जिन चार सिद्धान्तों को प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकारा है वह निम्न है-

20.6.1 एक खण्ड सिद्धान्त (Unifactor Theories) -

सिद्धान्त के समर्थक बुद्धि को एक केन्द्रीय शक्ति के रूप में मानते हैं जो समस्त मानसिक क्रियाओं का संचालन करती है। इस सिद्धान्त को बिने, टरमन, स्टर्न आदि मानते हैं, बिने का मत है कि बुद्धि अपने में एक अविभाज्य एवं पूर्ण इकाई है, टरमन भी उसे पूर्ण इकाई मानते हैं। इस विचारधारा के अनुयायियों का स्पष्ट मत है कि विविध स्वतंत्र प्रभावों को एक पूर्ण इकाई के रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता ही बुद्धि है अथवा विभिन्न भागों को पूर्ण बनाने की योग्यता ही बुद्धि है।

इस सिद्धान्त का सीधा अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति एक काम को अच्छी तरह से कर सकता है वह किसी अन्य काम को भी उतने ही अच्छे ढंग से कर सकेगा। परन्तु ऐसा सत्य नहीं है । उदाहरणार्थ वह सर्व विदित है कि डार्विन की लिखावट बडी खराब थी परन्तु वह उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे। इस सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर की गई है कि योग्यता के विभिन्न परीक्षणों मे कोई भी पूर्ण सह-संबंध नहीं होता है। अत: किसी एक योग्यता खण्ड को हम बुद्धि नहीं कह सकते हैं। वस्तुत: अलग-अलग मानसिक योग्यताओं के लिए अलग-अलग प्रकार की बुद्धि परीक्षाओं ली जाती है।

20.6.2 द्वि-खण्ड सिद्धान्त (Two-Factor Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन स्पीयरमैन (Spearman) ने किया है इसके अनुसार बुद्धि के दो तत्व या खण्ड होते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति में पाए जाते है :- सामान्य ओर विशिष्ट (General and Specific)

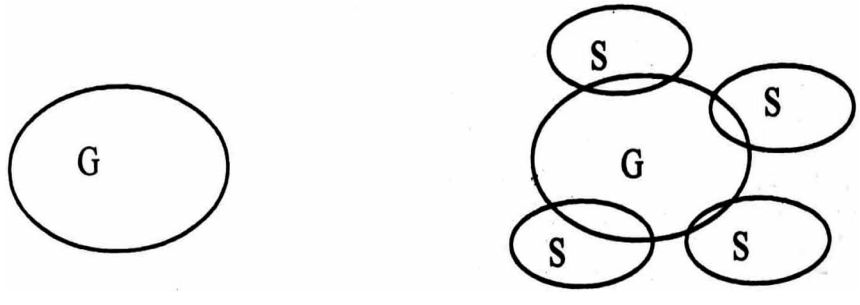

स्पियरमैन के सिद्धान्त का चित्र द्वारा प्रदर्शन

('G'और 'S' का सम्बन्ध विभिन्न क्षेत्रों मे व्यक्ति की सफलता का सूचक होता है ।)

बुद्धि की सामान्य योग्यता या तत्व (**General Ability or factor**) को प्राय: अंग्रेजी की अक्षर 'G' से सम्बोधित किया जाता है। बुद्धि का यह सामान्य तत्व मानव जीवन के समस्त क्रियाकलापों में भाग लेता है। विभिन्न व्यक्तियों में इस तत्व की मात्रा भिन्न-भिन्न पाई जाती है। इस तत्व की प्रमुख विशेषताएं यह हैं कि यह योग्यता जन्मजात होती है, यह सदैव एक ही रहती है, इसका सभी मानसिक कार्यो में प्रयोग किया जाता है, तथा भाषा, विज्ञान, दर्शन आदि के क्षेत्र में सामान्यत: सफलता प्रदान करती है।

बुद्धि की विशिष्ट योग्यताएं या तत्व (**Specific Abilities or factor**) को प्राय: अंग्रेजी के अक्ष र 'S' से सम्बोधित किये जाते है। इन योग्यताओं का संबंध व्यक्ति विशिष्ट कार्यो से होता है। यथा किसी कौशल, कला या शिल्प की निपुणता या सिद्धिहस्तता विशिष्ट बुद्धि खण्ड S द्वारा ही प्राप्त होती है। इसकी प्रमुख विशेषताएं यह है कि यह योग्यताएं अर्जित की जा सकती है, यह योग्यताएं अनेक है तथा एक दूसरे से स्वतंत्र होती है, इन विभिन्न योग्यताओं का संबंध विभिन्न प्रकार के कौशलों से होता है, इनकी मात्रा विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती है, तथा जिस व्यक्ति में जो योग्यता अधिक होती है उसी से संबंधित कौशल में वह विशेष सफलता प्राप्त करता है।

सभी प्रकार के मानसिक कार्यो में व्यक्ति को सामान्य खण्ड G की आवश्यकता पड़ती है। बहुत से ऐसे कार्य होते हैं, जिनमें G खण्ड का अधिक महत्व होता है। और बहुत से ऐसे कार्य होते है जिनमें G खण्ड की आवश्यकता S खण्ड की आवश्यकता की अपेक्षा गौण होती है। व्यक्ति द्वारा किए गए विभिन्न विशिष्ट कार्यो में 'S' खण्ड की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है। एक व्यक्ति गणित के लिए जिस S का प्रयोग करता है, आवश्यक नहीं है कि संगीत के लिए भी उसी प्रकार S का उपयोग करेगा । प्रत्येक व्यक्ति में G तथा S की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। दो छात्र गणित में बराबर अंक प्राप्त करते हैं, किन्तु आवश्यक नहीं है कि उन्हें संगीत में भी बराबर अंक मिलेंगे। चूंकि उन दोनों मे S की मात्रा भिन्न-भिन्न है। स्पीयरमैन ने एक प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि गणित एवं भाषाओं को अधिक G की आवश्यकता पड़ती है तथा संगीत, कला एवं हस्तकार्य को अधिक S तत्व की। उसने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि गणित के लिए G तथा S का सह संबंध 4:1 है तथा संगीत के लिये यह सह संबंध 1:4 है। अत: कहा जा सकता है कि गणित के लिए G की आवश्यकता है तथा संगीत के लिए अधिक S की।

स्पीयरमैन ने जिन 'G' तथा 'S' कारकों का प्रयोग बुद्धि की व्याख्या के लिए किया है - इन तत्त्वों के मुख्य लक्षण निम्न है।

सामान्य तत्व (**G Factor**) के मुख्य लक्षण -

- यह प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से प्राप्त हुआ होता है।
- यह कारक व्यक्ति में हमेशा समान रहता है अर्थात् इस कारक अथवा तत्व में बढ़त-घटत नहीं होती है।
- समस्त प्रकार के कार्यो में इस तत्व की भिन्न-भिन्न मात्रा में आवश्यकता होती है।
- प्रत्येक व्यक्ति मे इस योग्यता की मात्रा पृथक होती हैं।
- जिस व्यक्ति में यह 'G' कारक अधिक होता है,, सामान्य जीवन मे वह व्यक्ति अधिक सफल होता है ।

सामान्य तत्व (**S'Factors**) के मुख्य लक्षण :-.

- विशिष्ट तत्व वंशानुक्रम से नहीं प्राप्त होता है, इसे अर्जित किया जाता है।
- अलग-अलग प्रकार की प्रक्रियाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की विशिष्ट योग्यताएं होती है.।
- प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रकार के विशिष्ट तत्व होते है।.
- जिस व्यक्ति में जिस प्रक्रिया विशेष का विशिष्ट तत्व अधिक सबल होता है, वह उस विषय में अधिक अच्छा होता है।

स्टेफन्स (Staffens) तथा ब्रान (Brown)ए आदि मनोवैज्ञानिकों 'ने स्पिरमैन के सिद्धान्त की पुष्टि की है, किन्तु अधिकांश मनौवैज्ञानिक इस सिद्धान्त का खण्डन कर चुके हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्पियरमैन जिसे सामान्य योग्यता G कहता हो उसका अनेक योग्यताओं मे विभाजन किया जा सकता है । अत: स्पीयरमैन का सिद्धान्त भी सर्वमान्य नहीं कहा जा सकता है।

20.6.3 त्रि-खण्ड सिद्धान्त (Three - Factor Theory)

स्पीयरमैन जिन्होंने द्वि-खण्ड सिद्धांत का प्रतिपादन किया था, आगे चलकर G तथा S तत्त्वों के साथ एक समूह कारक (Group Factor) को और जोड़ दिया । यह सामान्य तथा विशिष्ट बुद्धि के मध्य एक सर्वतोमुखी योग्यता मानी जाती है । यह G तथा S के बीच दूरी को पाटने का कार्य करता है। यह तीनों G,S तथा समूह खण्ड मिलकर बुद्धि बनाते हैं तथा इन्हें त्रि-खण्ड सिद्धान्त के नाम से पुकारा जाता है

थार्नडाइक महोदय ने इस सिद्धान्त का व्यापक खंडन किया है। 'उसका मानना है कि बुद्धि को एक सामान्य तत्व G मानना तथ्यों का अत्यधिक सरलीकरण करना है। बुद्धि में केवल G तथा Sही नहीं अपितु अवधान, धारणा, स्मृति, 'पहचान, तार्किक योग्यता, अधिगम तथा ज्ञानार्जन की शक्तियां भी होनी चाहिए। उसका विचार है कि कोई भी बौद्धिक कार्य एक जटिल तंतु-संस्थान द्वारा सम्पन्न होता है, तथा जिसके विभिन्न रूप (Pattern) देखने को मिलते है। वस्तुत: इसके विभिन्न रूप अत्यन्त जटिल एवं भिन्न होते है जिन्हें एक 8 खण्ड और बहुत से D खण्डों के सम्मिश्रण अथवा, ९ पु, तथा समूल खण्ड के संयोग द्वारा स्पष्ट करना नितांत मूर्खता है।

20.6.4 बहु खण्ड सिद्धांत (Multi-factor Theory)

यह सिद्धान्त विस्तृत सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित है । थर्सटन (Thurstone)) ने अपने शिष्यों की सहायता से सांख्यिकी के आधार पर व्यक्ति के सैंकडों गुणों को पृथक करते हुए इन्हें मापने की विधि निकाली जिसे खण्ड विश्लेषण विधि (Factor Analysis Method) कहते हैं। थर्सटन के अनुसार बुद्धि 9 प्रारंभिक मानसिक योग्यताओं (Primary Mental Abilities) से मिलकर बनी है जो
निम्नलिखित हैं - '

(i) दृष्टि संबंधी योग्यता. (Visual or spatial Ability) (VORS)
(ii) प्रत्यक्षीकरण की योग्यता (Perceptual Ability) (P)
(iii) संख्यात्मक. योग्यता (Numerical Ability) (N)
(iv) शाब्दिक तार्किक योग्यता (Verbal and Reasoning Ability) (V and R)
(v) स्मृति (Memory) (M)

(vi) शब्द प्रयोग की प्रवाहिता (Fluency in dealing with words) (W)

(vii) निगमन योग्यता (Deductive Ability) (D)

(viii) आगमन योग्यता (Inductive Ability) (I)

(ix) समस्या समाधान पर नियंत्रण योग्यता (Ability to restrict the solution of a problem) (PS)

थर्सटन का मानना है किसी विशेष कार्य के सम्पादन में इन प्राथमिक मानसिक योग्यताओं मे से एक या एक से अधिक सम्मिलित रूप मे व्यक्ति को सहायक होती है। किसी लेख को समझने, कविता लिखने समस्या का समाधान निकालने आदि के कार्यो में इन प्राथमिक मानसिक योग्यताओं का, योग दो या दो से अधिक या सभी नौ मानसिक योग्यताओं का मिश्रण व्यक्ति को मदद पहुंचाता है। इनमें से कुछ प्राथमिक मानसिक योग्यताएं किसी विशिष्ट क्षेत्र में अधिक उपयोगी हो सकती है और किसी में कम। इंजीनियर बनने के लिए यदि NSI (प्राथमिक मानसिक योग्यताओं) की अधिक आवश्यकता है तो कविता लिखने के लिए (WP) की, I तथा R सामान्य बुद्धि से निकट का संबंध रखती है तथा M सभी प्राथमिक मानसिक योग्यताओं मे सबसे अधिक स्वतंत्र मानी जाती है।

थसर्टन ने प्राथमिक मानसिक योग्यताओं का एक परीक्षण निर्मित किया जिसे शिकागो टेस्ट के नाम से जाना जाता है। वस्तुत: थर्सटन का विचार है कि बुद्धि के तत्त्वों का निश्चित रूप से विभाजन करना संभव है जबकि थार्नडाइक इसे नकारता है। थर्सटन का स्पष्ट मत है कि पूर्व कथन तथा निर्देशन जो कि 9 प्राथमिक मानसिक योग्यताओं के ज्ञान पर आधारित है वह अधिक विश्वसनीय तथा सार्थक माना जाएगा अपेक्षाकृत उसके जो बुद्धि की एक परीक्षा पर आधारित होता है।.

20.6.5 गिलफर्ड द्वारा प्रतिपादित बुद्धि का सिद्धान्त (Guilford's Theory of Intelligence)

थर्सटन ने बुद्धि को समझने के लिए प्राथमिक मानसिक योग्यताओं की जो संकल्पना की, उसी को आधार बनाते हुए गिलफर्ड तथा उसके सहयोगियों ने बुद्धि संबंधी एक नवीन सिद्धान्त को प्रतिपादित किया,. उसके अनुसार बुद्धि कुछ प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं (Primary Intellectual Abilities) की संचरना (Structure) है.। उसका मत है कि प्रत्येक' बौद्धिक योग्यता का मापन अलग-अलग करना श्रेयस्कर होता है। किन्तु विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं में कुछ समानता होती है इसी कारण उसने इन्हें तीन सामान्य श्रेणियों में विभाजित किया है -

(अ) प्रक्रिया (Process or Operation)

(ब) विषयवस्तु (Material or content)

(स) परिणाम (Product)

(अ) प्रक्रिया के अन्तर्गत पाँच प्रमुख मानसिक योग्यताएं निहित है-

(i) संज्ञान **(Cognition)** इस योग्यता के आधार पर व्यक्ति किसी वस्तु को पहचान पाता है।

(ii) स्मृति **(Memory)** संज्ञान के कारण विगत अनुभवों को याद करता है।

(iii) अपसारी चिंतन (**Divergent Thinking)** विभिन्न दिशाओं में सोचने की योग्यता जो सृजनात्मकता **(Creativity)** के बहुत निकट होती है।

(iv) अभिसारी चिंतन **(Convergent Thinking)** यांत्रिक चिंतन जिसका परिणाम सही या उत्तम उत्तर होता है।

(v) मूल्यांकन **(Evaluation**) यह योग्यता जिसके द्वारा व्यक्ति जांच पड़ताल के बाद उपयुक्त निर्णय पर पहुंचता है।

(ब) विषय वस्तु के अन्तर्गत गिलफर्ड ने चार प्रभागों का उल्लेख किया है-

(i) आकृति विषय वस्तु (Figural Content) यह वह विषय वस्तु जो' ज्ञानेन्द्रियों द्वारा समझी जाती है।

(ii) प्रतीकात्मक विषय वस्तु (Symbolic Content) वह विषय वस्तु जो शब्दों, अंकों या प्रतीकों से बनी होती हैं।

(iii) भाषा संबंधी विषय वस्तु (Semantic Content) वह विषय वस्तु जो विचारों या मौखिक अर्थों का रूप से लेती है।

(iv) व्यवहार संबंधी विषय वस्तु (Behavioural Content) वह विषय वस्तु जो सामाजिक बुद्धि या ज्ञान एवं दूसरों के साथ संबंधों को समझने का संकेत देती है ।

(स) परिणाम के अन्तर्गत गिलफर्ड ने छः प्रकार की मानसिक योग्यताएं सम्मिलित की है-

(i) इकाइयां (Unit) इसके द्वारा श्रव्य-दृश्य एवं प्रतीकात्मक इकाइयों का अवबोध तथा प्रत्यक्षीकरण होता है।

(ii) श्रेणियां या प्रकार (Classes or Categories) विभिन्न विचारों को श्रेणीबद्ध करने की योग्यता।

(iii) संबंध (Relationship) विभिन्न वस्तुओं के बीच संबंधों को समझने की योग्यता अर्थों का रूप से लेती है।

(iv) व्यवस्थाएं (System) विचार अथवा समस्या को व्यवस्थित करने तथा उनके समाधान अथवा निहितार्थ को समझने की योग्यता।

(v) रूपान्तरण (Transformation) अपेक्षित रूपांतरण हेतु सुझाव देने की योग्यता अथवा प्रस्तुत दशाओं में परिवर्तन हेतु सुझाव देने की योग्यता।

(vi) निहितार्थ (Implication) निहित भावों को समझने अथवा वर्तमान सूचना को भविष्य में उपयोगी बनाने की योग्यता।

गिलफर्ड ने 5 प्रक्रियाएं, 4 विषय वस्तु एवं छ परिणाम संबंधी सभी बौद्धिक योग्यताओं को एक दूसरे से संबंधित माना है । अत: उसने 5x 4x 6x= 120 बौद्धिक आयामों **(Intellectual Dimension)** की बात कही है, जिसे एक धनात्मक प्रतिमान के रूप में नीचे दिया जा रहा है-

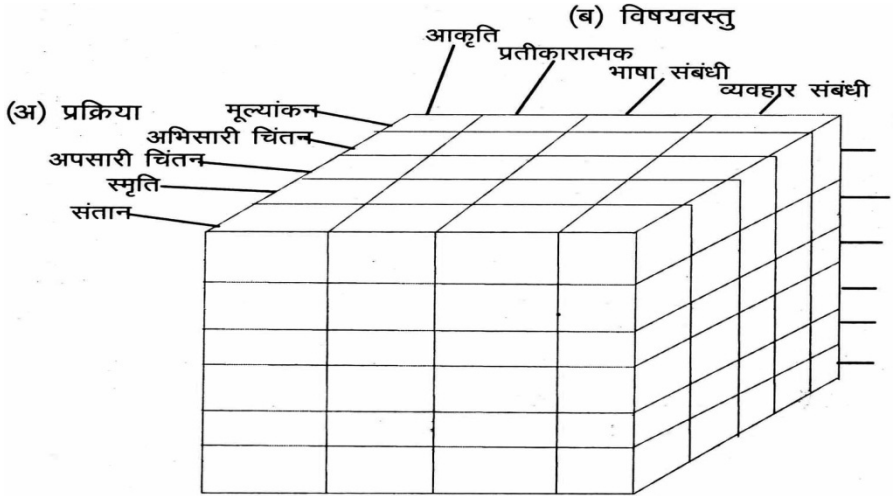

Principal Dimensions of Intelligence as propagated by Guilford

गिलफर्ड इस बात पर बल देता है कि उपरोक्त चित्र में प्रदर्शित प्रत्येक कोष्ठ (खाना) एक बौद्धिक आयाम को बताता है, क्योंकि यह तीन विभिन्नताओं (प्रक्रिया, विषयवस्तु एवं परिणाम) के योग से बनता है। कुल 120 बौद्धिक आयामों में से 98 खानों के साथ संबंधित बौद्धिक योग्यता का पता लग चुका है । 32 कोष्ठ (खाने) अभी खाली है। यद्यपि यह सिद्धान्त सबसे व्यापक माना जाता है, फिर भी गिलफर्ड इसे पूर्ण नही मानता और भविष्य में अनुसंधान की आवश्यकता पर बल देता है । उसका मानना है कि बौद्धिक आयमों का यह प्रतिमान नितांत सैद्धान्तिक है तथा इसमें परिवर्तन संभव है। वस्तुत: यह भविष्य में किए जाने वाले अनुसंधानों का मार्ग प्रशस्त करता है

20.7 सारांश (References)

बुद्धि के स्वरूप के संबंध में विद्वान एक मत नहीं हैं किन्तु सार रूप यह कहा जा सकता है। कि बुद्धि मानसिक योग्यताओं का वह समन्वित रूप है। जो व्यक्ति को उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तर्क पूर्ण ढंग से विचार करने तथा प्रभाव पूर्ण ढंग से अपने पर्यावरण के प्रति व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करता है ताकि व्यक्ति जीवन मे सफल हो सकें।

बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु जिन प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन पूर्व में किया गया है उनका विकास थोड़े समय पूर्व ही हुआ है, अत: यह सुनिश्चित करना कठिन सा है कि वह कितने सही तथा उपयोगी हैं। मेरा मानना । कि भविष्य में किए जाने वाले अनुसंधान ही इन सिद्धान्तों की विश्वसनीयता तथा सम्पन्नता सिद्ध कर सकेंगें। इस स्थल पर बुद्धि के स्वरूप की विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से व्याख्या करना मात्र उद्देश्य है ताकि इनके द्वारा शिक्षार्थियों की विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं की जानकारी प्राप्त की जा सकें तथा उसके अनुरूप समुचित शिक्षा व्यवस्था बनाई जा सकें।

स्वमूल्यांकन(Self-Evaluation)

1. बुद्धि के द्वि-तत्व सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
2. थर्सटन द्वारा प्रतिपादित बहु-खण्ड सिद्धांत की विवेचना प्रस्तुत कीजिए।
3. गिलफर्ड द्वारा प्रतिपादित प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं का वर्णन कीजिए।
4. क्या बुद्धि के स्वरूप को विभिन्न सिद्धांत पूर्णत: स्पष्ट कर पाते है? इन सिद्धांतों को
5. कितना सही तथा उपयोगी माना जा सकता है?

20.8 संदर्भ (Reference)

(1) भार्गव ऊषा (1987) “किशोर मनोविज्ञान” हिन्दी ग्रंथ अकादमी,जयपुर

(2) चौवे एस0पी0 (1990) "शिक्षा मनोविज्ञान" आगरा, विनाद पुस्तक मंदिर

(3) चौहान एस०एस0 (1987) "एडवान्स एजुकेशन साइकोलाजी विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

(4) फ्री मैन एस (1970) "थ्योरी एण्ड प्रैक्टिकल ऑफ साइकोलॉजिक टेस्टिंग' आक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली

(5) जान सीको (1977) "द साइकोलाजी ऑफ लर्निंग एण्ड इन्सट्मान", प्रेंटिस हाल प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

(6) माथुर एस०एस0 (1986) "शिक्षा मनोविज्ञान' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

(7) स्पियरमैन सी.ई (1939) "द ऐबिलिटीज आफ मैन" - देयर नेचर एण्ड मेजरमेन्ट" न्यूयार्क, मैकमिलन

(8) श्रीवास्तव जी.एल. (1939) "शिक्षा मनोविज्ञान" प्रकाशन केन्द्र, न्यूबिल्डिग अमीनाबाद, लखनऊ (9) थर्सटन एलएल. (1943) "द शिकागो टेस्ट आफ प्राइमरी मेन्टल ऐबिलिटीज मैनुअल ऑफ इन्सट्मान" शिकागो एस.आर.ए।

इकाई-21

सृजनात्मकता (Creativity)

21.0लक्ष्य तथा उद्देश्य

21.1 सृजनात्मकता की अवधारणा

21.2 सृजनात्मकता के आधार

21.3 सृजनात्मकता का विकास

21.4 सृजनात्मकता प्रतिभा की पहचान एवं विशेषताएँ

21.5 सृजनात्मकता सम्बन्धी कुछ शोध परिणाम

21.6 सृजनात्मकता के कतिपय परीक्षण

21.7 सृजनात्मकता के उन्नयन हेतु शिक्षा में निर्देशन

21.8 सृजनात्मकता शिक्षण की प्रविधि

21.9 सारांश

21.10 संदर्भ

21.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

प्रत्येक व्यक्ति अपने उद्देश्य की .पूर्ति के लिए प्रयत्न करता है। किन्तु सृजनात्मक चिन्तन वाला व्यक्ति अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राप्त सूचनाओं को विभिन्न रूप से संश्लेषित करते हुए नवीन साहचर्य स्थापित कर लेता है। यदि व्यक्ति में सृजनात्मक 'चिन्तन का अभाव होता तो इस विश्व की प्रगति की प्रक्रिया ही रूक जाती। ऐसी महत्वपूर्ण इकाई का वर्णन यहाँ पर निम्न लक्ष्यों तथा उद्देश्य को ध्यान मे रखकर किया जा रहा है।

- शिक्षार्थी सृजनात्मकता की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- शिक्षार्थी सृजनात्मकता के विकास तथा उसके आधार के तथ्यों से
- शिक्षार्थी सृजनात्मक प्रतिभा वाले बालकों की पहचान कर सकेंगें।
- शिक्षार्थी सृजनात्मकता के परीक्षणों तथा इसके संबंधों में. किये गये कुछ शोध परिणामों के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- शिक्षार्थी अपने छात्रों के सृजनात्मकता के विकास हेतु प्रयास कर सकेंगे।

21.1 सृजनात्मकता की अवधारणा (Concept of Creativity)

वस्तुतः यह निर्विवाद है कि मानव सभ्यता के इतिहास को देखते हुए किसी भी समय पर व्यक्ति के जीवन में इतने विशाल एवं तीव्र परिवर्तन देखने को नही मिलते जितने कि वर्तमान युग में। यह परिवर्तन शैक्षिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक सभी क्षेत्रों में हो रहे है। यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि परिवर्तन की गति भविष्य में और भी तेज हो जाने की संभावना है। इस तीव्र गति से परिवर्तनशील समाज में व्यक्ति को सुविधापूर्वक समुचित अभियोजन प्राप्त करना अपेक्षित होगा अन्यथा उसमें कुंठाए भग्नाशाएँ एवं अक्षमताएँ आ जाएंगी।

यदि व्यक्ति का सामान्य जीवन जीना है तो उसे विभिन्न समस्याओं को, जिनसे वह घिरा है, हल करते हुए समुचित अभियोजन प्राप्त करना होगा। इस अभियोजन की प्रक्रिया में उसे

बुद्धि, चिन्तन, मनन, तर्क, निर्णय आदि विभिन्न समस्याओं के. प्रति सृजनशील व्यक्ति का दृष्टिकोण असृजनशील व्यक्ति के दृष्टिकोण से भिन्न होता है। सृजनात्मक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति समस्याओं के प्रति रूचि रखते हुए समाधान की खोज मे जुट जाता है तथा असृजनात्मक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति समस्याओं से भागने की कोशिश करता है।

यहाँ यह भी इंगित करना उपयुक्त होगा कि सृजनात्मक चिंतन सामान्य प्रचलित चिन्तन से, जिसका प्रयोग व्यक्ति प्रतिदिन की समस्याओं के समाधान में करता है, भिन्न होता है। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि सृजनात्मक चिन्तन में व्यक्ति की वह योग्यता निहित होती है।

जिसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं का विभिन्न रूप से संश्लेषण करते हुए वह नवीन साहचर्य स्थापित कर लेता है, जो अन्य सामान्य कोटि के' व्यक्ति प्राय: नही कर पाते हैं।

यहाँ यह बताना भी न्यास संगत होगा कि कुशल अध्यापक सृजनात्मक चिन्तन की शिक्षा के प्रति सजग रहता है, सृजनात्मकता के विकास के पथ में आई बाधाओं का निराकरण करता है तथा नवाचारों के सफल क्रियान्वयन में सहायता पहुँचाने का प्रयास करता है।

21.1.1 सृजनात्मकता का शाब्दिक अर्थ:

शब्द सृजनात्मकता अंग्रेजी शब्द क्रियेटिविटी का हिन्दी रूपान्तर है। कुछ शिक्षाविद् सृजनात्मकता, विधायकता तथा उत्पादकता जैसे शब्दों का प्रयोग भी इसके लिए करते है। वस्तुत: उत्पादकता में किसी वस्तु के उत्पादन का बोध होता है तथा विधायकता में एकत्रीकरण का सृजनात्मकता 'सृजन' शब्द से बना है । सृजन शब्द द्वारा शून्य से किसी रचना का आभास होता है। अत: इन सभी शब्दों में सबसे उपर्युक्त शब्द सृजनात्मकता ही है। शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा मुद्रित परिभाषित शब्द संग्रह में भी क्रियेटिविटी का अर्थ सृजनात्मकता ही दिया गया है।

शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह कोई नवीन आविष्कृत शब्द नही है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में इसकी अवधारणा प्राय: रहस्यपूर्ण, संदिग्ध, अस्पष्ट एवं अनिर्णीत ही थी। वर्तमान शताब्दी में सृजनात्मकता को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ प्रचलित परिभाषाओं को नीचे दिया जा रहा है यद्यपि यह कार्य बहुत कठिन सा है कि सृजनात्मकता की कोई एक ऐसी परिभाषा दी जाये जो सभी की मान्य हो।

21.1.2 परिभाषा

मेडनिक के अनुसार सृजनात्मक चिन्तन साहचर्य तत्त्वों के बीच नूतन संबंध स्थापित - करने को कहते हैं जो कि किसी रूप में उपयोगी हो। जितनी ही अधिक नवीन संबंधी की दूरी होगी उतनी ही अधिक सृजनात्मकता होगी। मेडनिक ने इस परिभाषा मे सृजनात्मकता की प्रक्रिया की परिभाषा करने का प्रयास किया है

स्टेन ने कहा कि जब किसी कार्य का परिणाम नवीन हो जो किसी समूह हो लाभदायक तथा उपयोगी प्रतीत हो तो उस कार्य को किसी एक समय पर सृजनात्मक कार्य कहा जा सकता है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि उत्पादन तत्व को सृजनात्मक तभी कहे जब उसमें दोनों ही गुण नवीनता तथा उपयोगिता पाये जाते है।

1. **Mednick**-Creative Thinking consists of forming new combinations of associative elements, which are in some way useful. The more mutually

remote the element of new combinations, the more creative is the process or situation.

2. **Stein-**Creative work is that "When it result in anoval work that is accepted astenable or useful or satisfying by a group at some point in time."

जेम्स ड्रेवरा ने सृजनात्मकता को इस प्रकार परिभाषित किया है - अनिवार्य रूप से किसी रूप से किसी नूतन वस्तु का सृजन करना, रचना करना जिसमें नवीन विचार संग्रहीत हों, जिसमें -विचारों का संश्लेषण हो और जहाँ मानसिक उत्पाद केवल विचारों का योग मात्र न हो।

शताब्दियों तक लोगों की यह सामान्य धारणा रही है कि कोई बिरला व्यक्ति ही सृजनशील होता है, सृजनशील होता है, सृजनशीलता को एक दैवीगुण के रूप में माना जाता है। इधर विगत दो-तीन दशाब्दियों से ही वैयक्तिक उभर कर आयी है। अब सृजनात्मकता की चर्चा सर्वाधिक रूप में की जाती है तथा सृजनशील बच्चों की खोज करने का राष्ट्रीय प्रयास भी किया जाता है।

कार्ल रोजर्स ने सृजनात्मकता को उत्पाद के रूप में परिभाषित किया है। उसके अनुसार सृजनात्मक प्रक्रिया से अभिप्राय नवीन संबंधित उत्पादन से है जो एक ओर तो व्यक्ति की शक्ति तथा दूसरी ओर वस्तुओं. घटनाओं अथवा उसके जीवन की परिस्थितियों का परिश्रम है। गिलफार्ड ने निश्चित किया है कि सृजनात्मकता विभिन्न अपसारी चिंतन की क्षमताओं का सम्मिश्रण है।

निष्कर्ष के रूप में सृजनात्मकता की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करते हुए कुछ सामान्य बिन्दु निकाले जा सकते हैं यथा (1) सृजनात्मकता में नवीन तथा मौलिक विचार निहित होते है। (2) वही कार्य सृजनात्मक होता है जो उपयोगी हो तथा जिसे सामाजिक मान्यता मिली हो। (3) सृजनात्मकता मे नूतन साहचर्य का अनोखा प्रतिबोध होता है। (4) सृजनात्मक विचारों का प्रादुर्भाव अकस्मात अद्भुत रूप मे प्रकट होता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सृजनात्मकता जन्मजात न होकर अर्जित की जा सकती है, या दूसरे शब्दों में इसे प्राचीन अनुभवों पर आधारित नवीन संबंधों की रूपरेखा तथा नूतन साहचर्यो का सम्बंध कहा जा सकता है। निम्नलिखित कुछ अन्य बिन्दु सृजनात्मकता के स्वरूप को स्पष्ट करने में और सहायक है।

1 James Draver-Producing in Essentially new product, constructive use of imagination, where a new combination of ideas or images is constructed also of thoughts synthesis, where mental product is not more Summation

सभी व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की तथा विभिन्न श्रेणी की सृजनात्मकता पाई जाती है।

सृजनात्मकता केवल कुछ चुनें हुए व्यक्तियों तक ही सीमित नही रहती है। यह मत बड़ा प्राचीन है कि सृजनशीलता केवल कुछ व्यक्तियों में ही पाई जाती है, यह ईश्वरीय देन कुछ उत्कृष्ट व्यक्तियों को ही मिल पाती है। अब इस प्रकार की पुरानी धारणाओं को सही नहीं ठहराया जाता है और प्राय: यह निर्विवाद है कि सृजनशीलता सभी व्यक्तियों का सामान्य गुण होता है।

सृजनात्मकता एक जटिल प्रक्रिया है जिसे समय, स्थान तथा व्यक्ति से बाधा नहीं जा सकता है। इसका प्रादुर्भाव कहीं भी, किसी भी समय पर हो सकता है। बच्चों, बड़ी पुरुषों तथा स्त्रियों सभी में सृजनात्मक चिन्तन पाया जा सकता है।

सृजनात्मकता में विभिन्न शील गुण पाए जाते हैं। इसकी सर्वाधिक मान्य प्रमुख विशेषताएँ होती है। निरन्तरता, मौलिकता, समस्याओं में प्रति संवेदनशीलता, परिहास, प्रियता तथा नवीन अनुभवों के प्रति स्वतन्त्रता पूर्वक सोचने तथा निर्णय लेने की शैली आदि।

बुद्धि में निहित योग्यताओं से सृजनात्मक चिन्तन में निहित योग्यताएँ भिन्न होती है। सृजनात्मकता अपसारी चिन्तन पर आधारित है जब कि बुद्धि मे अभिसारी चिन्तन का अधिक प्रयोग होता है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई बुद्धिमान व्यक्ति सृजनात्मक भी हो।

सृजनात्मकता का प्रादुर्भाव अचानक नहीं होता है। यद्यपि सृजनात्मक विचार अचानक ही बिजली की भाँति प्रकट होते दिखाई देते है। सृजनात्मकता का उदय क्रमिक होता है, जैसे दिवस का उदय।

प्राय: यह देखा गया है कि सृजनात्मक चिन्तन वाले व्यक्ति इसकी प्रक्रिया जिसे कारण मौलिक विचारों अनुसंधानों आदि का सृजन होता है, के विषय में बहुत कम बताने की स्थिति में रहते हैं। सृजनात्मकता पर वंशानुक्रम का प्रभाव कितना पड़ता है यह एक विवादास्पद विषय है। सामान्यतया शोध परिणामों के आधार यह कहा जाता है कि सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है। सृजनात्मकता पर्यावरण की दशाओं के कारण परिवर्तन भी हो जाती है।

सृजनात्मकता चिन्तन संबंधी योग्यताओं का विकास अन्य योग्यताओं के विकास से भिन्न होता है। इसके विकास की गति एक सी नहीं रहती। शोध परिणामों के आधार पर पता चला है कि इसका विकास प्राय: 5.,912 तथा 17 वर्ष की अवस्था पर अवरूद्ध सा हो जाता है। कुछ लोगों के मत से सृजनात्मक चिन्तन की गति 30 वर्ष पर रूक जाती है।

यह पता लगाना कठिन होता है। कि किस विशेष आयु पर व्यक्ति में सृजनात्मक चिन्तन सर्वोत्कृष्ट होता हे।

सृजनात्मकता का विकास जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित है इसके लिए किसी विशेष व्यक्ति या विषय का होना आवश्यक नहीं है। संगती प्रेमी, बढ़ई, अध्यापक अथवा किसान कोई भी सृजनशील व्यक्ति हो सकता है । मानवता के विभिन्न क्रिया-कलापों में सृजनशील चिन्तन प्रतिबिम्बित होता है।

21.2 सृजनात्मकता का आधार (Basis of creativity)

सृजनात्मकता का आधार चिन्तन है, चिन्तन प्राय: दो प्रकार का होता है, अभिसारी (कनवर्जेण्ट) तथा अपसारी (डाइवरजेंट) अभिसारी चिन्तन वह चिन्तन है जिसमें व्यक्ति यांत्रिक रूप से सोचकर सरलतापूर्वक एक ही उत्तर पर पहुँच जाता है। जैसे यह प्रश्न कि, भारत का प्रधानमंत्री कौन है अथवा एक. घंटे में कितने मिनट होते है, अभिसारी चिन्तन कहा जायेगा। वस्तुत: इस प्रकार के चिन्तन में यंत्र की भांति मस्तिष्क में एक सीधा सा उत्तर आ जाता है। पर यदि प्रश्न किया जाए कि कागज का क्या उपयोग होता है? अथवा गणतंत्रात्मक व्यवस्था क्या है? इस प्रकार के प्रश्न पूछते पर मस्तिष्क में तथा व्यक्ति को सोचने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं तथा विभिन्न व्यक्तियों से उनकी व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर इस प्रकार के प्रश्न पूछने पर विभिन्न उत्तर मिलेंगे।

चिन्तन तथा सृजन के संदर्भ में पहली बार गिलफोर्ड ने विचार किया था। गिलफोर्ड **(Guilford)** ने सृजनात्मक चिन्तन की योग्यताओं को बुद्धि की योग्यताओं से भिन्न मानकर, इसे अपसारी चिन्तन का पर्याय माना है। उसने अपसारी चिन्तन के लिए अनेक परीक्षण बनाए हैं।

उसने यह भी स्पष्ट किया कि बुद्धि का परीक्षण अपसारी चिन्तन का परीक्षण नहीं माना जा सकता हैं। सृजनात्मकता की परीक्षा के लिए गिलफोर्ड ने निम्न तत्त्वों को आधार स्वरूप माना हैं।

तात्कालिक स्थिति से दूर जाने की क्षमता - जो व्यक्ति तात्कालिक परिस्थिति एवं संदर्भ से दूर हटकर चिंतन, मनन एंव अभिव्यक्ति की क्षमता रखते हैं, उनमें सृजनात्मकता की विशेषताएँ अधिक परिलक्षित होती हैं ।

समस्या या उसके किसी अंश की पुन: व्याख्या करने की क्षमता - जो व्यक्ति किसी सम्पूर्ण समस्या या उसके किसी अंश की पुन: व्याख्या करने की क्षमता रखते हैं, उन्हें सृजनशील व्यक्ति कहा जा सकता है ।

असामान्य एवं प्रासंगिक विचारों में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता - जो व्यक्ति चिन्तन, कल्पना, तर्क एवं निर्णय द्वारा असामान्य किन्तु प्रासंगिक विचारों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता रखते है, निश्चय ही सृजनशील होते हैं ऐसे व्यक्ति चुनौतियों को स्वीकार करने में हिचकते नहीं है तथा आत्मनिर्विष्ट हो क्रियाशील बन जाते है।

अन्य के विचारों में परिवर्तन लाने की क्षमता - ऐसे व्यक्ति जो अन्य लोगों के विचारों, विश्वासों एवं धारणाओं में, अपने चिन्तन, तर्क एवं प्रमाणों के माध्यम से, मौलिक एवं तर्कसंगत परिवर्तन लाने में सक्षम होते है, सृजनशील होते हैं ।

प्रसिद्ध शिक्षाविद् लूनर (**Bruner**) ने भी सृजनात्मकता के क्षेत्र में अपसारी चिन्तन की पुष्टि करते हुए, प्राप्त सूचनाओं से आगे बढ़ने को स्वीकार किया है । गार्डन (Gardon) ने भी अपसारी चिन्तन को अपरिचित से परिचित तथा परिचित का अपरिचित बनाने के रूप में बताया हैं । इस प्रकार परम्परागत अर्थो को लाँघकर ऐसे विचार जो सामान्यतया देखने में नहीं आते और ऐसे अंर्तसम्बन्ध जो मौलिक, नवीन, तथा उपयोगी हों, अपसारी, चिन्तन में समाहित रहते है ।

शिक्षकों द्वारा छात्रों को सृजनात्मक का विकास निम्न प्रकार से किया जा सकता हैं

1. उत्तर देने की स्वतंत्रता

शिक्षकों को विद्यार्थियों से रटे रटाये उत्तरों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हें स्वतंत्रता देनी चाहिए कि वे अपनी सूझ-बुझ और कल्पना शक्ति का प्रयोग करके नवीन विचारों का प्रयोग करके उत्तर दें।

2. अहम को सम्मिलित करने का अवसर प्रदान करना

यदि विद्यार्थी में किसी कृति की संरचना का उत्तरदायित्व बोध विकसित किया जाये तो उसमें अपने सभी नवीन विचारों का समावेश करने का प्रयास करेगा।

3. मौलिकता का प्रोत्साहन

विद्यार्थियों में मौलिकता को प्रोत्साहन देना चाहिए। उनमें निष्क्रियता पूर्वक तथ्यों को रहने की प्रवृति का दमन करना चाहिए।

4. संकोच और भय का निवारण

विद्यार्थियों में अपनी भावनाएँ अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास करना चाहिए। बहुत में विद्यार्थी भय संकोच के कारण अपने मौलिक और नवीन विचार व्यक्त नहीं कर पाते हैं।

5. सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए उचित अवसर एवं वातावरण प्रदान करना -

सृजनात्मक के लिए विद्यालय में उचित एवं सहयोग पूर्ण वातावरण उपलब्ध करना चाहिए। समय समय पर विभिन्न प्रतियोगिताएं प्रदर्शनियों आदि का आयोजन करना चाहिए। कक्षा कक्ष में भी विभिन्नता लाकर उसकी एकरसता को दूर करना चाहिए।

6. सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने हेतु विभिन्न तकनीकों का प्रयोग

विभिन्न तकनीकों जैसे - मस्तिष्क विप्लव विविध शिक्षण सामग्री का प्रयोग आदि के द्वारा हम विद्यार्थियों में सृजनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

21.3 सृजनात्मकता का विकास

बालकों के विकास में सृजनात्मकता एक महत्वपूर्ण तत्व है। सृजनात्मकता का विकास प्रत्येक बालक में भिन्न-भिन्न गति से हो सकता है। टोरेस (**Torance**) ने इस तथ्य का पता लगाया कि सृजनात्मकता का विकास एक ही गति से नहीं होता हैं उसकी गति में कई अवरोह देखने को मिलते है । सृजनात्मकता संबंधी परीक्षणों से ज्ञात हो चुका है कि इसके विकास में प्रथम अवरोह लगभग पांच वर्ष की आयु पर पाया जाता है। इस आयु के बाद पुन: सृजनात्मकता का विकास होने लगता है और दूसरा अवरोह लगभग 9 वर्ष की आयु पर, जब बच्चा प्राय: कक्षा 3 के अंतिम चरण पर होता हैं पाया जाता है । इसके बाद बालक में पुन: इसका विकास होने लगता है और लगभग 12 वर्ष की आयु पर, जब वह कक्ष छ या 7 में होता है, पुन: इसके विकास में स्पष्ट कमी देखने को मिलती है टारेंस ने इन अवरोधों जो 5,9 तथा व 2 वर्ष की आयु पर देखने को मिलते हैं, का कारण भी स्पष्ट किया है। उसका विचार है कि सांस्कृतिक एवं शैक्षिक वातावरण द्वारा उत्पत्र नवीन अपेक्षाएँ जा बच्चों के सम्मुख आ जाती हैं। इन अवरोहों का प्रमुख कारण होती है।

उपरोक्त विचारों के पक्ष में टारेंस ने विविध अन्त: संस्कृति का अध्ययन करते हुए प्रदत्त एकत्रित किए। प्रारंभिक अध्ययनों के आधार पर उसने यह कहा कि सृजनात्मक विकास मे निरंतरता नहीं पाई जाती है, यह शैशव से किशोरावस्था तक स्थिर रूप से नहीं बढ़ती हैं। वस्तुत: बच्चों का इसके विकास की गति में निरंतरता बनाए रखने में कठिनाई महसूस होती है। इस परिणाम की पुष्टि बाद में लम्बीय (लांगीट्यूडनल) अध्ययन से की गई। अन्य शिक्षाविदो ने भी सृजनात्मता के विकास की गति में, अवरोहों के पाए जाने की पुष्टि की है।

इन अवरोहों का कारण जैविकीय न होकर वातावरण से संबंधित होना बताया गया है । कुछ शोध परिणामों से इस प्रकार का निष्कर्ष भी निकाला गया है कि 9 वर्ष की आयु मे पाए जाने वाले सृजनात्मक अवरोहों को हटाने में पाठ्यक्रम में नियोजित ढंग से किए गये परिवर्तनों का ठोस प्रभाव पड़ता है (टारेंस तथा गुप्ता 1964) फिर भी सृजनात्मकता के विकास की गति मे विभिन्न आयु पर पाए जाने वाले अवरोहों के विषय में विभिन्न मत पाए जाते है।

स्वमूल्यांकन (Self-Evaluation)

1. सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए ।
2. सृजनात्मकता के आधारों के स्पष्ट कीजिए ।
3. विभिन्न अवस्थाओं मे सृजनात्मकता का विकास किस प्रकार होता है।
4. सृजनात्मकता मौलिक चिंतन का आधार है' क्यों '

21.4 सृजनात्मक प्रतिभा की पहचान तथा विशेषतायें (Identification of creative talent & characteristics)

प्राय: प्रतिभाशाली बालक उसे मानते हैं जो बुद्धि में उत्कृष्ट हो। ऐसे बालकों के लिए अलग कक्षायें लगाना, अधिक सुविधायें देना, समुन्नता पाठ्यक्रम तथा पाठ्य विधियों का आयोजन करना, आदि को प्राय: शिक्षाविद् उचित ठहराते है। संभवतः आशा यह की जाती है। कि इन्हीं शिक्षार्थियों मे आगे चलकर चोटी के वैज्ञानिक, प्रशासक, कलाकार तथा विचारक निकलेंगे, जो देश प्रगति के पथ पर आगे बढ़ा सकेंगे। अत: कहा जा सकता है कि प्रतिभा की खोज करना मात्र अकादमिक क्रिया नहीं होती वरन् यह सभ्यता के विकास हेतु एक आवश्यक तत्व होता है। प्रतिभा केवल अकादमिक क्षेत्र में ही नहीं होती है। अन्य क्षेत्रों जैसे नियोजन, पूर्व कथन, निर्णय, सृजनात्मकता आदि में भी प्रतिभा पायी जाती है। सृजनात्मक प्रतिभा के संबंध में प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री चूम ने अपने विचार बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किए है। उसका मत है कि मानसिक प्रक्रिया के छ: तत्व होते हैं - ज्ञान, अवबोध, अनुप्रयोग. विश्लेषण,

संश्लेषण तथा मूल्यांकन। इसका यह स्पष्ट मत है कि इनमें से प्रथम तीन तत्व ज्ञान, अवबोध तथा अनुप्रयोग (नॉलेज, अडरस्टेंडिंग तथा अप्लीकेशन) व्यक्ति की निम्न मानसिक प्रक्रिया के द्योतक हैं। उसने यह भी बताया कि शेष तीन तत्व विश्लेषण, संश्लेषण एवं मूल्यांकन व्यक्ति की उच्च मानसिक क्रिया को परिलक्षित करते है। वस्तुत: सृजनात्मक प्रतिभा का संबंध उच्च मानसिक क्रियाओं से अधिक होता है। अत: सृजनशील व्यक्तियों में विश्लेषण, संश्लेषण, एवं मूल्यांकन की अपूर्व क्षमता देखने को मिलती हैं।

विडम्बना यह रही है कि देश में प्रतिभा की खोज (टैलेंट सर्च) का प्रयास तो किया गया है किन्तु सृजनात्मक प्रतिभा की खोज, जो उच्च मानसिक क्रियाओं से अधिक संबन्धित है, न करते हुए हमने प्राय: उपलब्धि (विद्यालयी परिणाम) की खोज की है। वस्तुत: शैक्षिक है। संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि प्रतिभा केनाल पर प्राय: हम का सहारा लेकर प्रतिभाशाली कहे जाते हैं और उनकी खोज हम प्राय: नहीं कर पाते हैं जो सृजनात्मक चिंतन तथा मौलिक अभिव्यक्ति की क्षमता रखते हैं।

यह सामान्य निरीक्षण की बात है कि प्राय: शिक्षक प्रतिभा के नाम पर बालकों के प्राप्तांक तथा बौद्धिक विकास पर बल देता है। टारेंस ने ठीक कहा है कि यदि शिक्षक बुद्धि की परीक्षाओं को आधार बनाकर, प्रतिभा की खोज करते रहेंगे तो वह लगभग 70% सृजनात्मक बच्चों की अवहेलना करते रहेंगे, जिनमें विभिन्न प्रकार की प्रतिभाएं पायी जाती हैं। अत: अपेक्षित है कि प्रतिभा की पहचान करते समय केवल बुद्धि पर ही ध्यान केंद्रित न रखा जाय वरन् अन्य तत्त्वों की परख भी की जाय। यथा - सृजनात्मकता, विशिष्ट अभिरूचि, खाली समय का उपयोग, व्यक्तित्व विशेषतायें, उनके लेख, गीत, संगीत, कला, चित्रकारी, मौलिक क्रियायें, प्रयोग आदि। इसका उपयोग करते हुए यदि प्रतिभा की खोज की जाय तो परिणाम अधिक विश्वसनीय एवं श्रेयस्कर होगे।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रतिभा की खोज करना कुछ कठिन अवश्य है किन्तु यह कार्य असंभव नहीं हैं। इस कार्य में सभी का - अध्यापक, प्रशासक, नीति निर्धारक आदि का सहयोग चाहिये। समय आ गया है। जब हम अपना दृष्टिकोण बदलें तथा सृजनशील व्यक्तियों की

खोज करके, उन्हें पूर्ण विकास का भरपूर अवसर दें। हमें शैक्षिक वातावरण कुछ इस प्रकार का बनाना होगा ताकि इन प्रतिभाओं के विकास हेतु आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें।

21.4.1 सृजनात्मक व्यक्ति की विशेषताएं

सृजनात्मक व्यक्तियों में प्राय: कुछ विशेषताएं देखने को मिलती है। बहुधा सृजनात्मक चिंतन वाले व्यक्ति मनोविनोदी तथा मनोरंजन प्रिय होते हैं। सृजनात्मक प्रतिभा के धनी लोग अद्भुत और मौलिक कार्य करने में रूचि रखते है। यह लोग नवीन प्रकार के अनुभव प्राप्त करने के लिए, सामान्य लोगों नवीन प्रकार के अनुभव प्राप्त करने के लिए, सामान्य लोगों की अपेक्षा अधि उत्सुक रहते हैं। सृजनशील व्यक्ति में एक यह विशेषता देखने को मिलती है कि वह अपने कार्य या उत्पाद का अन्य लोगों द्वारा किए गये मूल्यांकन पर अधिक ध्यान नहीं देता है। उसकी अपनी आंतरिक विधि होती है मूल्यांकन की। उसका अपना मूल्यांकन स्तर होता है। तथा दूसरों द्वारा निर्धारित स्तर की परवाह नहीं करता है। प्राय: देखने में आया है कि उसे. समाज द्वारा प्रतिस्थापित एवं मान्य स्तरों से संबंधित विचारों या उत्पादों के निर्माण में रूचि भी कम होती है। उसे प्राय: उसी वस्तु या विचार के निर्माण में रूचि भी कम होती है। उसे प्राय: उसी वस्तु या विचार के निर्माण की धुन लगी रहती हैं जो उसकी सृजनात्मक उत्कण्ठा एवं पिपासा को संतोष प्रदान करती है। एक अन्य विशेषता भी सृजनशील व्यक्तियों में देखी जा सकती है वह है असामान्य व्यवसायों के प्रति रूचि। सृजनात्मक व्यक्ति उन व्यवसायों को अधिक पसंद करते हैं जिन्हें साधारण व्यक्ति कम पसंद करता है। जो - नृत्य, संगीत, पर्वतारोहण आदि। सामान्य एवं प्रचलित व्यवसाय डॉक्टरी, इन्जिनियरिंग, वकालत, अध्यापन आदि उन्हें कम रुचिकर लगते है। शिक्षक यदि सृजनात्मक बच्चों की विशेषताओं पर ध्यान रखकर कार्य करे और उन्हें विकास के अपेक्षित अवसर प्रदान करे तो उसका कार्य सराहनीय माना जायेगा।

21.5 सृजनात्मक संबंधी कुछ शोध परिणाम

पिछले 2-3 दशकों में सृजनात्मक के क्षेत्र में बहुत शोध हुआ है। वस्तुत: इन शोधों का सिलसिला 1950 में प्रारंभ हुआ था जब जे पी. गिलफोर्ड ने अमेरिकन मनोवैज्ञानिक परिषद् के सामने अपना विख्यात अध्यक्षीय भाषण दिया था। तब से लेकर आज तक हुए सृजनात्मक से संबंधित प्रमुख शोध परिणामों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

21.5.1 बुद्धि एवं सृजनात्मकता

बुद्धि और सृजनात्मक चिंतन के बीच सहसंबंध स्थापित करने की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक द्वारा कई अध्ययन किए गये है। अधिकांश अध्ययनों से ज्ञात होता है कि इन दोनों तत्त्वों के मध्य बहुत कम लगभग .21 का सह संबंध पाया जाता है।

अत: यह आवश्यक नहीं है कि जो छात्र अधिक बुद्धिलब्धि रखता हो, उसमें सृजनात्मक चिंतन की क्षमता भी अधिक होगी।

गेटजल तथा जैक्सन ने प्रचलित बुद्धि परीक्षाओं तथा सृजनात्मक की परीक्षाओं के बीच सहसंबंध ज्ञात करने का प्रयास किया। शिकागो स्थिति एक विद्यालय के छात्रों को दो समूहों में बांटा गया। एक समूह में छात्र उच्च निम्न बुद्धिलब्धि वाले तथा दूसरे में उच्च बुद्धिलब्धि तथ्य कम सृजनात्मक चिंतन वाले छात्र रखे गये। इन दोनों समूहों के छात्रों की विद्यालयी उपलब्धि

तथा व्यक्तिगत गुणशील के क्षेत्रों में परीक्षा ली गई। निष्कर्ष यह निकला है कि उच्च बुद्धिलब्धि वाले छात्रों का समूह जिन की सामान्य बुद्धिलब्धि 132 थी, विद्यालयी उपलब्धि की परीक्षा लेने पर दूसरों समूह से अधिक अच्छे नहीं पाये गये । टारेंस ने बड़ा आश्चर्यजनक परिणाम यह भी निकाला है कि खेल एवं विनोद प्रतिभाशाली व्यक्ति के आवश्यक गुण होते है। तथा संभवतः: 120 से ऊपर की बुद्धिलब्धि का विद्यालयी उपलब्धि से कोई उल्लेखनीय संबंध नहीं रह जाता है।,

गिलफोर्ड ने पद विश्लेषण की तकनीक से यह स्पष्ट किया है कि बौद्धिक चिन्तन से सृजनात्मक चिन्तन में प्रयुक्त क्षमतायें भिन्न होती है। उसके अनुसार बौद्धिक योग्यताओं से सम्पूर्ण व्यक्ति प्राप्त सूचनाओं के आधार पर एक रेखीय अभिव्यक्ति तथा अभिसारी चिन्तन करता है। सृजनशील योग्यता वाला व्यक्ति प्राप्त सूचनाओं के आधार पर मौलिक एवं नवीन अभिव्यक्ति तथा अपसारी चिंतन करता है।

21.5.2 सृजनात्मक तथा वास्तविक विश्व में उपलब्धि

यद्यपि यह निर्विवाद है कि ऐसे व्यक्ति जिन्होंने, कला, विज्ञान, कला, वाणिज्य आदि क्षेत्रों में विशेष नाम कमाया है, बहुत कुछ सृजनात्मक चिंतन के बलबूते पर ही कार्य करते है। जिस पर बहुत से लोगों की यह धारणा है कि सृजनात्मक चिंतन का वास्तविक दुनिया में उपलब्धियों से संबंध अनिश्चित या है। इस संबंध में विश्वसनीय शोध परिणामों का अभाव दृष्टिगोचर होता है। कुछ शिक्षाविदों जैसे कालिन टेलर, डोलैंड मैक्यिन तथा टारेंस आदि के अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि सृजनात्मक क्रियाओं एवं उत्प्रेरणा तथा वास्तविक विश्व में सृजनात्मक उपलब्धियों के बीच धनात्मक उल्लेखनीय सहसंबंध पाया जाता है।

21.5.3 सृजनात्मक एवं आनुवांशिकता

आज से लगभग 30 सालों पहले यह स्पष्ट हो चुका था कि जन्म के समय बालक में कुछ व्यक्तिगत भिन्नताएं एवं विशेष गुण जो सृजनात्मक चिंतन से बहुत जिज्ञासा आदि। किन्तु सत्य तो यह है कि जैसे - वातावरणीय अनुक्रिया अथवा जिज्ञासा आदि। किन्तु सत्य यह है कि इन विभिन्नताओं का अपने में इतना महत्व नहीं है। जितना उनके प्रति किए गए व्यवहार का। पेजुलों थार्सन एवं मद्रास आदि के शोध परिणामों से विदित होता है कि सृजनात्मक चिंतन की परीक्षाओं पर आनुवांशिकता के अंतर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

रंगभेद तथा सामाजिक आर्थिक अंतर का प्रभाव सृजनात्मक चिंतन पर जानने के लिए कई अध्ययन किए जा चुके है। इन्हें दृष्टि में रखते हुए सामान्य परिणाम यह निकाला जा सकता है कि रंगभेद एवं आर्थिक सामाजिक अंतर, सृजनात्मक चिंतन पर विशेष प्रभाव नहीं डालते हैं। कुछ सृजनात्मक कार्यो के सम्पादन में गोरे बच्चे, काले बच्चों से आगे तथा कुछ अन्य में काले बच्चे, गोरे बच्चों में अग्रणी पाए गए।

21.5.4 सृजनात्मक तथा परिपक्वता

सृजनात्मक एवं परिपक्वता में पर्याप्त संबंध पाया गया है। टारेंस के अनुसार सृजनात्मक चिंतन के विकास की गति शैशव काल से लेकर किशोरावस्था तक एक सी नहीं रहती। शोध परिणाम के आधार पर कहा जा सकता है कि सृजनात्मक विकास की गति में झुकाव या कमी 5,9, व 3 तथा 17 वर्ष की आयु पर होती है। टारेंस ने भी इस संबंध में अंत: सांस्कृतिक

अध्ययन किया, तथा उसने चौथी कक्षा के आरंभ में बालकों में बड़ा स्पष्ट सृजनात्मक झुकाव पाया। इस आयु पर बालक अपनी प्रतिष्ठा तथा सम्मान प्राप्त करने की आवश्यकता का अनुभव करने लगता है। कुछ लोगों का मत है कि सृजनात्मक चिंतन में झुकाव जो देखने को मिलते हैं, वह सांस्कृतिक होते हैं न कि आनुवांशिक। टारेंस ने यह भी स्पष्ट किया कि सृजनात्मक विकास रूक-रूक कर होता है और बच्चे सृजनात्मक विकास को कायम रखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। पिछले दशक में हुए अध्ययनों से पता चलता है कि सृजनात्मक के विकास में झुकाव कम हो रहा है। कुछ अन्य अध्ययनों से यह परिणाम निकला है कि नियोजित रूप से किए गये पाठ्यक्रम परिवर्तन द्वारा झुकावों को विशेषत: जो 9 वर्ष की आयु पर होता है, हटाना भी संभव है।

21.5.5 सृजनात्मक चिंतन का शिक्षण।

वर्तमान में प्राय: सभी मानने लगे हैं कि उपयुक्त चिंतन शिक्षण के माध्यम से संभव है। यह भी निश्चित हो चुका हे कि उन कौशलों का जो सृजनात्मक चिंतन में सहायक होते हैं, शिक्षा द्वारा सृजन किया जा सकता है एवं विद्यालय चिंतन में सहायक होते हैं शिक्षा द्वारा सृजन किया जा सकता है एवं विद्यालय का वातावरण इस प्रकार का बनाया जा सकता है जिससे सृजनात्मक चिंतन को बढ़ावा मिलता रहे। टारेंस ने 1973 में लगभग 142 प्रायोगिक अध्ययनों, जो विद्यालयी वातावरण में सृजनात्मकता पर आधारित थे, का विश्लेषण किया। विभिन्न शिक्षण विधियां जैसे सृजनात्मक समस्या समाधान (क्रिएटिव प्राब्लम साल्विंग), साईनेक्टिक्स तथा मस्तिष्क उद्वेलन आदि से सृजनात्मकता बढ़ाने की दिशा में बड़ी सफलता पाई जा सकती है। सृजनात्मक चिंतन के क्षेत्र में यद्यपि किसी एक रूपरेखा को अंतिम रूप में तो नहीं स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु बहुत में प्रतिमान सृजनात्मक शिक्षण के लिए उपयुक्त पाये गये हैं। सृजनात्मक शिक्षण में विभिन्न कौशलों के मिश्रण का क्रम क्या होना चाहिये, यह भी शोD का विषय है जो अभी पूरा नहीं किया जा सका है

21.5.6 सृजनात्मक एवं अनुशासन

कुछ लोगों को भय है कि सृजनात्मक शिक्षण से अनुशासनहीनता तथा रुग्णता हो जायेगी विद्यालयों में, किन्तु यह सच नहीं है। सच तो यह है कि बच्चे जो सृजनात्मक चिंतन तथा अधिगम की

क्रियाओं में व्यक्त रहेंगे, उन्हें उदण्डता एवं अनुशासनहीनता के लिए समय ही नहीं रहता। हां कभी-कभी वह अधिक उत्साहित होकर शोर शराबा कर सकते हैं, किन्तु इसे अनुशासनहीनता नहीं मानना चाहिये। वर्तमान युग की पुकार यह है कि विद्यालयी वातावरण में स्वच्छता तथा स्वतंत्रता हो जिससे बच्चे अपनी रूचि के अनुरूप, सृजनात्मक क्रियाकलापों में लग सकें। कुछ शिक्षाविदों का मत है कि विद्यालय वातावरण की सीमाएं एवं बनाई गई परिधियाँ, बालक के सृजनात्मक चिंतन में सहायक न होकर बाधक बन जाती है।

स्वमूल्यांकन(Self-evaluation)

1. सृजनात्मक बालक की सात विशेषताएँ बताइए।
2. बुद्धि तथा सृजनात्मक संबंध को स्पष्ट कीजिए।
3. आनुवंशिकता सृजनात्मकता कैसे प्रभावित करती है?

4.	क्या सृजनशील बालक अनुशासनहीन होते है? स्पष्ट कीजिए।

21.6 सृजनात्मकता के कतिपय परीक्षण

सृजनात्मकता के मापने का प्रमुख प्रयास गिलफोर्ड ने किया था। उसने अपसारी चिंतन को विश्वसनीय के साथ मापने का प्रयत्न किया तथा इस दिशा में उसने बहुत सी परीक्षाएं बनाई। इसके अतिरिक्त गेंटजल, जैक्सन तथा टारेंस ने भी सृजनात्मक के परीक्षण निर्मित किए है। मैडनिक तथा पलैनंगन आदि ने भी इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। भारत में बाकर मेहंदी तथा बी. के. पासी आदि ने सृजनात्मक के मापने का विधिवत प्रयास किया है। पाठकों की सुविधा हेतु यहाँ कुछ प्रचलित परीक्षणों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

21.6.1 सृजनात्मक परीक्षण -

टारेंस बैटरी में चार अवस्थाएं होती है। समस्या के प्रति जागरुक होना प्राप्त सूचनाओं को एकत्र करना 3 समाधान की खोज 4 परिणामों का आदान प्रदान।

टारेंस ने सृजनात्मक में चार प्रकार के तलों का सम्मिलित होना बताया है। वह, तत्व है - निरंतरता (फ़्लुएन्सी), नमनीयता (फ़्लैजिबिलिटी) मौलिकता (ओरिजिनलिटी) तथा विस्तारता (एलॉबोरेशन), टारेंस ने बैटरी का निर्माण किया जिसके द्वारा इन चारों तत्त्वों को मापा जाता है। इनमें से दो परीक्षण शाब्दिक तथा दो अशाब्दिक है। प्रत्येक परीक्षण के लिये समय अवधि 10 मिनट होती है। इन परीक्षणों का वर्णन निम्नवत् है।

(अ) चित्रपूर्ति परीक्षण

यह एक अशाब्दिक परीक्षण है इसमें 10 अपूर्ण चित्रों का उपयोग किया जाता है। अपूर्ण रेखाओं द्वारा चित्र निर्मित रहते हैं। विषयी से इन्हें पूर्ण करने को कहा जाता है। उसे निर्देश दिये जाते है कि व इस प्रकार के चित्र बनाने का प्रयास करे जो मौलिक हो, आम लोगों से भिन्न हो। इन चित्रों को इस प्रकार पूरा करने को कहा जाता है ताकि चित्र कोई नवीन, मौलिक कहानी बता सकें। चित्रों के शीर्षक लिखने के लिए भी निर्देश दिए जाते हैं। इस परीक्षण के प्राप्ताकों का निर्धारण निरंतरता, नमीनीयता मौलिकता तथा विस्तारता के आधार पर किया जाता है। इस परीक्षण में निरंतरता की माप कुल संबंधित अनुक्रियाओं की संख्या से किया जाता है। निरंतरता के प्रप्तांक कुल पूर्ण बनाए चित्रों की संख्या मानी जाती है। नमनीयता के प्राप्तांक निर्भर करते है। क्रिया से संबंधित विचारों की भिन्नता पर। उदाहरण के लिये मान लीजिए कि विषयी ने किसी चित्र का निर्माण करते हुए एक चिड़िया बना दी है। अन्य चित्रों की संख्या में भी उसने अन्य जानवर बनाए हैं किन्तु इन सभी के लिए उसका प्राप्तांक 1 ही माना जायेगा

चूंकि सभी बने हुए चित्र में ही आते है। टारेंस ने मैनुअल में इस प्रकार के 70 श्रेणियों के आधार पर बना दी गई है। यदि विषयी की अनुक्रिया इन श्रेणियों से संबंधित होती है तो उसे 1 अंक मिल जाता है। यदि उसकी अनुक्रिया इन श्रेणियों के अलावा होती है, जिसे सामान्य अनुक्रियाओं से भिन्न माना जायेगा, तो उसको 2 अंक प्रदान किए जाते है। विस्तारता की माप इस बात से की दिए गये अपूर्ण चित्र में विषयी ने कौन से आयाम अथवा वितरण जोड़े है। प्रत्येक नवीन आयाम का विवरण के लिए 1 अंक प्रदान किया जाता है।

(व) वृत्त प्रत्यक (सर्किल टास्क)

यह परीक्षण भी अशाब्दिक है। पहले वाले परीक्षण की भाँति विषयी को वृत्तों की सहायता से वस्तुएं या चित्र बनाने को कहा जाता है। विषयी को यह छूट रहती है कि वह वृत्त के अन्दर या बाहर का भाग अथवा दोनों का उपयोग चित्र बनाने में कर सकता है। उसे निर्देश दिया जाता है कि व 10 मिनट के समय में वह अधिकतम चित्र बनाने का प्रयास करे। इससे निरंतरता मापी जाती ह। चित्रों की विभिन्नता से नमनीयता का अनुमान लगाया जाता है। चित्रों के वह विचार, जो अन्य ने अंकित न किए हों, मौलिकता के द्योतक माने जाते हैं। वृत्त में विविध विचारों का निहित होना विस्तारता का सूचक माना जाता है।

(स) उत्पाद उन्नयन प्रत्यक (प्राडक्ट इम्प्रूवमेंटमेंट टास्क)

विषयी के सम्मुख एक कुत्ते के खिलौने का चित्र प्रस्तुत किया जाता ह। कि वह होशियारी से अनोखे, ढंग से, तथा सुरुचिपूर्ण तरीके से दिए गये चित्र में परिवर्तन लिखे ताकि बच्चों को कुत्ते के साथ खेलने में आनंद मिले। उन्हें इस प्रकार के परिवर्तन हेतु खर्च की चिंता नहीं करनी होती है।

प्रत्येक अनुक्रियाओं को अंक प्रदान किए जाते हैं। निरंतरता के लिए उत्पाद उन्नयन की संख्या का आधार मानते हैं तथा नमनीयता के लिए उन्नयन में प्रयुक्त विभिन्न श्रेणियों, जिनके अंतर्गत परिवर्तन आता है के अनुरूप अंक प्रदान करते हैं। यदि विषयी ने कुत्ते की टोपी, घंटी या कुर्ता पहनाने की बात सोची है ताकि बच्चे और मजा ले सकें तो यह सभी एक ही श्रेणी ' 'नई वस्तु जोड़ना' ' से संबंधित माना जायेगा। अन्य श्रेणियां यथा रंग भरना, रंग बदलना, कुत्ते को चलाने की विधि आदि हो सकती है। दुम हिलाना, भौंकना, कान फड़फड़ाना आदि मौलिकता की सूचक नहीं मानी जानी चाहिए, चूंकि इस प्रकार के सुझाव कुत्ते को समुन्नत बनाने में सामान्यता दिए जाते है। किन्तु प्रत्येक असामान्य सुझाव कुत्ते को समुन्नत बनाने में सामान्यता दिए जाते है। किन्तु प्रत्येक असामान्य सुझाव के लिए जो मौलिक हों, अंक प्रदान किए जाते हैं। यह परीक्षा शाब्दिक होती है।

(द) टिन के डिब्बों का असामान्य उपयोग -

विषयी को टीन के खाली डिब्बों, जिन्हें प्राय: कूड़े कचरे में फेंक दिया जाता है, विभिन्न उपयोगों का सुझाव देने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है। यह परीक्षण गिलफोर्ड द्वारा बनाए गए परीक्षण 'ईटों के उपयोग' ' से मिलता जुलता है।

21.6.2 बॉकर मेहंदी परीक्षण

प्रो. बॉकर मेहदी, जो एन.सी.ई.आर.टी. में कार्यरत थे, उनके द्वारा निर्मित हिन्दी में सृजनात्मक परीक्षण का प्रयोग सभी स्तर के शिक्षार्थियों पर किया जा सकता है, केवल पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक स्तर को छोडकर। इस परीक्षण का निर्माण पंजाब तथा उत्तरप्रदेश के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में एकत्रित प्रदत्त के आधार पर किया गया है। परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस बँटनी में दोनों शाब्दिक अशाब्दिक परीक्षणों की बीच आंतरिक समानता पाई जाती है तथा इनके माध्यम से सृजनात्मकता का सरलतापूर्वक मापन किया जा सकता है।

इनके परीक्षण का बुद्धि के साथ सहसंबंध 18 है। इसकी विश्वसनीयता 95 तथा वैद्यता

अध्यापकीय मानों के साथ स्थापित की जा चुकी है। इस परीक्षण के मानक कक्षा छ तथा 9 के लिये भी उपलब्ध हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस परीक्षण का उपयोग शोध

छात्रों तथा अन्य शिक्षा प्रेमियों द्वारा सफलतापूर्वक किया जाता है। यह हिन्दी में सबसे अधिक प्रचलित परीक्षण है।

इन परीक्षणों के अतिरिक्त अन्य बहुत से परीक्षणों का उपयोग भी सृजनात्मकता के मापन में किया जाता रहा है जैसे - असंभावना प्रत्येक (इम्पोसिबिलेटी टास्क) परिणाम प्रत्येक (कान्स्पीक्वेंस टास्क)। असंभावना प्रत्येक में' विषयों से निश्चित समय के अन्दर अधिक से अधिक असंभावनाओं की सूची बनाने के लिये कहा जाता है। परिणाम प्रत्येक परीक्षण में परिकल्पनात्मक प्रश्न पूछे जाते है जैसे - यदि पृथ्वी में आरपार एक छेद बना दिया जावे तो क्या होगा? यदि मनुष्य उड़ने लगें तो क्या होगा? आदि।

मेडनिक ने एक दूरस्थ साहचर्य परीक्षण (रिमोट असोसिएशन टेस्ट) का निर्माण किया है। इसमें 3 शब्द देते हुए विषयों से चौथा शब्द पूछा जाता है, जिसका साहचर्य पहले के तीनों शब्दों से हो । जैसे - पहिये, बिजली, चलायमान. ..... (कुर्सी चौथा शब्द)। इस परीक्षण मे 30 प्रश्न होते हैं तथा सही उत्तरों की संख्या, विषयी का प्राप्तांक माना जाता है । इसके अलावा जान सी. फलैनेगन का पटुता परीक्षण (इब्जिनुटी टेस्ट) भी सृजनात्मक परीक्षण के क्षेत्र मे काफी प्रसिद्धि पा चुका है।

21.7 सृजनात्मकता उन्नयन हेतु शिक्षा एवं निर्देशन

समुचित शैक्षिक वातावरण तथा साधनों का भरपूर उपयोग किया जाए। यह निर्विवाद है कि प्रतिभा वह वस्तु है जिसका विकास संभव है। प्रतिभाशाली शिक्षार्थियों के लिये निम्न शैक्षिक प्रावधान सार्थक सिद्ध होंगे।

(i) इस प्रकार की परिस्थितियां उपलब्ध कराई जाये जो पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रमातिरिक्त क्रियाओं के समुचित परिवर्तन द्वारा जोखिम उठाने की प्रवृति में सहायक हो। यह आवश्यक है कि कक्षा का वातावरण अधिकार तथा दबाव से मुक्त हो, तभी शिक्षार्थियों में मौलिकता, नमनीयता तथा स्वप्रेरित अधिगम के विकास की संभावना भी अधिक होगी। अध्यापक को चाहिये कि वह ऐसी पाठ्य-सामग्री का निर्माण करे जो बालकों में आत्मविश्वास पैदा कर सकें, अध्यापन विधि ऐसी हो, जो खोज तथा अनुसंधान को बढ़ावा देती हो। सौंदर्यानुभूति संबंधी मान्यताओं पर बल दिया जाना चाहिए तथा समस्या समाधान हेतु उपयुक्त श्रव्य दृश्य साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए।

(ii) अध्यापन के समय छात्रों को प्रोत्साहित करना ताकि वे नवीन साहचर्य निर्मित कर सकें। उनमें समस्या के विभिन्न स्तरों को पहचानने की क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए। सृजनात्मक शिक्षण के लिए आवश्यक है कि समस्या समाधान के संदर्भ में तथ्यों को अधिगम कराया जाये। उनमें नवीन कल्पना एवं मौलिकता आदि को विकसित करने का पूरा प्रयास करना चाहिए। छात्रों में सही प्रकार के चिंतन तथा मूल्यांकन की प्रवृति सृजनात्मकता का विकास करती है।

(iii) छात्रों में बहुधा पायी जाने वाली असफलता एवं भग्नाशा के निराकरण हेतु अध्यापक को उनकी प्रत्येक प्रकार से सहायता करनी चाहिए ताकि वह सांवेगिक अपराधों को दूर कर सकें, जिनके कारण सृजनात्मक प्रक्रिया में बाधा पहुंचती है।

(iv) अध्यापक को चाहिए कि वह जिस विषय को पढ़ा रहा है उसके माध्यम से ज्ञात नहीं है, उसके प्रति जागरूकता पैदा करे और जो ज्ञात है वह कैसे प्राप्त हुआ है उसकी भी जानकारी दे।

इससे उनकी उत्सुकता को प्रोत्साहन मिलता है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार के मौलिक एवं नूतन विचारों का सृजन होता है।

(v) सृजनात्मक उन्नयन में छात्रों द्वारा निर्मित सृजनात्मक उत्पाद का समय पर परखना व प्रशंसा करते हुए उसका प्रचार करना अध्यापक के लिए आवश्यक सा होता है।

(vi) शिक्षार्थियों में प्रयोगात्मक अभिरूचि का सृजन तथा प्रोत्साहन दोनो ही इस लिए आवश्यक होते है ताकि वह विविध प्रकार की पाठ्य वस्तु को समझकर ग्रहण करने में समर्थ हो सकें।

(vii) वस्तुतः शिक्षार्थियों मे जो विभिन्न प्रकार की प्रतिमायें होती हैं उन सभी के विकास हेतु कोई एक ही सुनिश्चित पथ नही होता। प्रत्येक प्रतिभा के विकास के लिए तौर तरीके तथा योजनायें अपने में अनोखी होती हैं। अध्यापक को विद्यालयी वातावरण ' की सीमाओं को देखते हुये बालकों की प्रतिभा के विकास के लिए अधिकाधिक प्रयास करने चाहिए।

(viii) विद्यालय जीवन में पाठ्यक्रम के अतिरिक्त जो क्रिया-कलाप आयोजित किए जाते हैं उनका सहारा लेते हुए अध्यापक शिक्षार्थियों को विभिन्न प्रतिभाओं के विकास हेतु ढेर सारे अवसर उपलब्ध करा सकता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम, विभिन्न खेलकूद प्रतियोगितायें आदि इन प्रतिभाओं के विकास में सहायक सिद्ध हो सकती है।

21.8 सृजनात्मक शिक्षण की प्रविधि (Technique of Creative Teaching)

पिछले दशक में सृजनात्मकता के क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि सृजनात्मकता का शिक्षण संभव है। जहां तक कि छात्रों में. सृजनात्मक अनुक्रिया के प्रतिपादन का प्रश्न उठता है यह भी स्पष्ट हो चुका है कि कुछ शिक्षण प्रविधियां अन्य की तुलना में अधिक उपयुक्त होती हैं। अतः अध्यापक के लिए श्रेयस्कर होगा कि इन प्रविधियों का उपयोग शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया में करें। देखने में आया है कि सृजनात्मक चिंतन के विकास में कुछ तत्व बाधा डालते है। अध्यापक का कर्तव्य होता है कि वह इन बाधक तत्त्वों में बचाव हेतु सफल प्रयास करें।

सृजनात्मक चिंतन में बहुत सी बाधायें भी उपस्थित हो जाती हैं। प्रथम बाधा है अनुरूपता के लिए दबाव। अध्यापक द्वारा चुने हुए पाठ के उद्देश्य, क्रियायें, प्रयोग मानक, सुनिश्चित औपचारिक विधियां, अनमनीय पाठ्य वस्तु आदि सभी कुछ छात्रों में अनुरूपता के लिए दबाव डालता है। वस्तुतः छात्रों की मौलिकता तथा सृजनशीलता के चिंतन पर इस प्रकार का दबाव कुठाराघात करता है। दूसरा बाध्यक तत्व अध्यापक का अधिकारपूर्ण दृष्टिकोण होता है जो छात्रों की सृजनात्मकता दबा देता है। इस प्रकार का दृष्टिकोण स्वतंत्र आत्मप्रेरित शिक्षा तथा अधिगम का विकास नहीं होने देता। प्रायः अध्यापक चाहता है कि अन्य लोगों द्वारा किए गए अनुसंधानात्मक कार्य, उनके परिणाम आदि अक्षरशः छात्र सीख लें। कहना अनुपयुक्त न होगा कि अध्यापकों की ऐसी धारणा अनुचित ही नहीं वरन् अमनोवैज्ञानिक भी होती है। आदेश देने, कहे गए कार्य को संपादित करने, निश्चित की गयी समस्याओं का समाधान प्राप्त करने, पूर्व निश्चित उत्तरों को देने में जिन क्षमताओं की आवश्यकता छात्र को होती है उनसे सार्वजनिक चिंतन की धारा निश्चित रूप से ऊपर होकर बहती है। तीसरा अवरोध, छात्रों में असफलता का भय किन्हीं कारणों से पैदा हो जाने पर सृजनात्मक चिंतन के विकास को अवरूद्ध कर देता है। कभी-कभी सही

उत्तर को खोज पाने का भय भी उनके आत्मविश्वास को झकझोर देता है। चौथा बाधक तत्व वह शीलगुण होते है जो शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व को कठोर या अनमनीय बनाकर सृजनशील चिंतन में रूकावट डालते है। यह शीलगुण मनोवैज्ञानिक दशाओं अथवा अचेतन मन द्वारा सीखी गयी आदतों के कारण व्यक्तित्व में आ जाते है। जब व्यक्ति किसी अनमनीय विधि द्वारा मानसिक तनाव कम करने का प्रयास करता है तो उस स्थिति में उसके बचाव के लिए बनाए गए घेरे वस्तुतः सृजनात्मकता की विशेषताओं पर आघात पहुंचाते हैं। उससे जोखिम उठाने की, मौलिक खोज करने की प्रवृति का हनन होने लगता है। पांचवा तत्व बाह्य-मूल्यांकन है। अर्थात दूसरों द्वारा किए गए मूल्यांकन, यथा उत्कृष्ट श्रेणी या अंक प्रदान करना छात्रों की मौलिक प्रतिभा के विकास में बाधा उत्पन्न करती है बाह्य-मूल्यांकन से अनावश्यक प्रतियोगिता या होड़ का वातावरण पैदा कर दिया जाता है । सृजनशील बालक अपने कार्य या उत्पाद का आंतरिक मूल्यांकन करता है और बाह्य-मूल्यांकन का परिहार करता है।

छठा तत्व वह कठोर दृष्टिकोण है जो छात्रों के स्वच्छंद खेल तथा मनोरंजन को रोकने की दृष्टि से अपनाया जाता है। यह निर्विवाद है कि नवाचार के लिए स्वतंत्रता चाहिए ताकि नवीन वस्तुओं की जांच पड़ताल छात्र स्वयं कर सकें। उन्हें इस बात की भी स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे स्वयं आवश्यकताओं के साथ निपटे, अभिकल्पना में गोते लगायें और निर्णय ले। इस प्रकार का स्वतंत्र दृष्टिकोण यदि अपनाया जाता है तो निश्चय ही इसके द्वारा वस्तुओं या विचारों में नमनीय गुणों का प्रादुर्भाव होगा तथा उनके पुनर्गठन, संशोधन या समीक्षा का अवसर व्यक्ति को मिल सकेगा जिससे सृजनात्मकता के विकास में सहायता पहुंचेगी।

सातवाँ बाधक तत्व सफलता पर अत्यधिक बल देना होता हैं, जिसके कारण सृजनात्मक प्रक्रिया से व्यक्ति दूर हटकर केवल अंतिम लक्ष्य या उत्पादन को प्राप्त करने की चेष्टा यांत्रिक रूप से करने में लग जाता है इस प्रकार सफलता पर अधिक ध्यान देने के कारण सृजनात्मक चिंतन में बाधा आ जाना स्वाभाविक है चूंकि व्यक्ति का अवधान निरंतर वृद्धि तथा विकास से अलग-थलग हो जाता है।

आठवीं बाधा अपसारी व्यक्तित्व के प्रति प्रतिरोध की भावना होती है । बालक के सभी साथी अथवा अध्यापक इस भावना से ग्रसित होकर एक सांस्कृतिक बाधा उपस्थित कर देते हैं सृजनात्मकता के विकास में। वस्तुतः प्रत्येक सृजनात्मक कार्य, नूतन, अद्भुत तथा अपने में अनोखा होता है । इसी कारण सृजनात्मक प्रतिभा वाले व्यक्तियों में अपना व्यक्तिगत अनुरूपता विरोधी दृष्टिकोण प्रायः देखा जाता है। जिसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि प्रत्येक असामान्य व्यक्तित्व सृजनात्मक होता है। अध्यापकों को चाहिए कि वह ऐसी सृजनात्मक प्रतिभाओं की सही प्रकार से खोज करने का यत्न करें।

पार्नस तथा मीडो (**Parnes and Meadow**) ने सार्वजनिक चिंतन के अवरोधों का विश्लेषण किया है। इनके अनुसार यह बाधायें तीन प्रकार की होती हैं - प्रत्यक्षिक, सांवेगिक तथा सांस्कृतिक। प्रत्यक्षिक अवरोधों मे निरीक्षण की कम क्षमता, समस्या निरूपण में अनमनीय दृष्टिकोण, समस्या के विभिन्न पहलुओं को परिमार्जित न कर पाना, आदि समस्यायें आ जाती हैं। सांवेगिक अवरोध में गलती करने का भय, असफलता का भय, मूर्ख दिखायी देने का संशय अथवा निषेधात्मक दृष्टिकोण आदि आते हैं। 'सांस्कृतिक बाधाओं' का स्वरूप प्रायः अनुरूपता के प्रति झुकाव, अधिकारी पर विश्वास अथवा विद्वानों की सभी बातों का मान लेना आदि होता है।

21.9 सारांश (Summary)

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है की सृजनात्मक के द्वारा किसी नयी वस्तु या कार्य का सृजन होता है। सृजनात्मकता व्यक्ति में लाकर थोपी नहीं जाती है अपितु यह मानव प्रकृति में विद्यमान सार्वभौम प्रवृति है जिसका विकास किया जा सकता है। इसके विकास के लिए उचित अवसर न मिलने के कारण लाखों प्रतिभायें अविकसित रह जाती है। अत: शिक्षक का दायित्व है कि वह सृजनात्मक बालकों को पहचानकर, उनकी सृजनात्मक प्रतिभा को विकसित होने का पूरा अवसर दें ताकि बालक विकसित होकर न केवल स्वयं के प्रति अपितु पूरे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को अधिक सफलतापूर्वक निभा सकें

स्वमूल्यांकन(Self-Evaluation)

1. अभिसारी तथा अपसारी चिंतन में भेद कीजिए।
2. सृजनात्मकता मापन हेतु किसी एक परीक्षण का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. सृजनात्मकता के क्षेत्र में किए गए शोध परिणामों की विवेचना कीजिए।
4. सृजनात्मकता के उन्नयन हेतु समुचित शिक्षा एवं निर्देशन का प्रावधान आप किस प्रकार करेंगे?
5. सृजनात्मक चिंतन के क्षेत्र में आने वाली बाधाओं का उल्लेख करते हुए, सृजनात्मक
6. शिक्षण की प्रविधि पर प्रकाश डालिए।

21.10 संदर्भ सूची (References)

1. चौहान एस.एस. (1987) “एडवांस एजुकेशनल साइकोलोजी”, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. ह्यघ लिटन (1971) "क्रिएटिविटी एंड एजुकेशन, रोलेज तथा कीगनपाल, लंदन
3. माथुर एस. एस. (986) "शिक्षा मनोविज्ञान " विनोद प्रकाशन, आगरा
4. मेंहदी बाकर (1977) "क्रिएटिविटी इन टिचिंग एण्ड लर्निग' ' रीजनल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, मैसूर।
5. पासी बी. के. (1982) "क्रिएटिविटी इन एजुकेशन " नेशनल साइकोलाजिक कार्पोरेशन आगरा
6. रैना एम. के. (1981) ' 'क्रिएटिविटी रिसर्च " एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली ।
7. रैना टी' एन. (1973) "द एजुकेशनल ट्रे एंड -क्रिएटिविटी' ' रीजनल कॉलेज ऑफ एजूकेशन अजमेर
8. त्रिपाठी एस. एन. (1970) "क्रिएटिवीटी एण्ड एजुकेशन " रीजनल कालेज ऑफ एजूकेशन, भोपाल

इकाई-22

अभिरूचि : अवधारणा एवं मापन

इकाई का संरचना

22.1 उद्देश्य एवं लक्ष्य

22.2 छात्रों की अभिरूचि जानने का महत्व

22.3 अभिरूचि की अवधारणा

22.4 अभिरूचि का स्वभाव

22.5 शिक्षकों के लिए आवश्यक संकेत

22.6 अभिरूचियों का मापन

22.7 सारांश

22.8 संदर्भ

22.1 उद्देश्य एवं लक्ष्य

क्षेत्र में एक दूसरे से भिन्न होते है तथा स्वयं में एक प्रकार की कुशलता में अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होते हैं। इसलिए बालक के लिए किसी शैक्षिक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते समय उसकी सामान्य योग्यता के साथ-साथ उसकी उस योग्यता का भी पता लगाना चाहिये जो उसमें विशिष्ट है या जिसके लिए उसे विशेष प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। इस इकाई का गठन इसी महत्व को ध्यान मे रखते हुए निम्न उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है -

- शिक्षार्थी अभिरूचि की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगें।
- बालकों की अभिरूचि का क्यों पता लगाया जाय, शिक्षार्थी इसके कारणों को जान सकेंगें।
- अभिरूचि के संदर्भ में शिक्षक क्या सावधानियां बरते, छात्र इसे समझ सकेंगें।
- अभिरूचि मापन की विभिन्न विधियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करे सकेंगें।

22.2 छात्रों की अभिरूचियों को जानने का महल

क्षेत्र विशेष में वह अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ भी हो सकता है। इसलिए शिक्षा की दृष्टि से यह जानना परम आवश्यक है, कि इन अन्तर एवं अन्त: भिन्नताओं का आधार क्या है, यह किस सीमा तक जन्मजात होती है या किस सीमा तक अनुभव एवं प्रशिक्षण के परिणाम स्वरूप होती है तथा सतत शिक्षण में उनका किस अवस्था पर पता लगाया जाए। किसी बालक के लिए किसी शैक्षिक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते समय केवल उसकी सीखने की सामान्य योग्यता को ही ध्यान नही रखना चाहिए, साथ ही जो उसमें है, तथा जिसके लिए उसे विशेष प्रशिक्षण देने की आवश्यक है।

22.3 अभिरूचियों की अवधारणा

अभिरुचियों को उन गुणों के रूप में लिया जाता है जो सभी व्यक्तियों में कम या ज्यादा पाये जाते है। अभिरूचि को निष्पत्ति किसी सीमित क्षेत्र जैसे संगीत, गणित, यांत्रिकी इत्यादि में विशेष श्रेष्ठता के रूप में भी लिया जा सकता है।

थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि तीन प्रकार की होती है अमूर्त, यांत्रिक, तथा सामाजिक बुद्धि। इस प्रकार स्पीयरमैन के बुद्धि के सिद्धांत में G तथा S कारकों का उल्लेख आता है। यह धारणायें इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि ये यह दर्शाती है कि मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों में विशेष योग्यताओं या अभिरूचियों की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं। व्यक्तियों में बहुत सी जटिल योग्यताओं या गुण **(Traits)** होते हैं। इसलिए यह पता लगाना आवश्यक है कि विशेष योग्यताएँ या अभिरूचियाँ किस सीमा तक एक व्यक्ति को किसी एक व्यावसायिक क्षेत्र की अपेक्षा दूसरे व्यावसायिक क्षेत्र के लिए अधिक उपयुक्त घोषित करने का कार्य करती हैं। मनोवैज्ञानिक इन विशेष योग्यताओं को स्वीकार करते हैं इसलिए यह जानने पर बल देते हैं कि इस अवधारणा में क्या-क्या शामिल किया जाए और किसी व्यक्ति में उनकी उपस्थिति को उसकी शैक्षिक आवश्यकताओं तथा व्यावसायिक मांगों की पूर्ति में सहायता देने के लिए कैसे प्रयोग किया जाय

अभिरूचि के सम्बन्ध में विंघम का मानना है कि यह "किसी व्यक्ति की अपेक्षाकृत श्रेष्ठ योग्यता का लक्षण दर्शाने वाली स्थिति है, जिसका एक आवश्यक पक्ष उसकी प्रवीणता प्राप्त करने की तत्परता है और उसकी सामर्थ्य है - तथा दूसरा पक्ष उसकी उस योग्यता के प्रयोग में रूचि का विकास करने की तत्परता"

('A condition symptomatic of which one essential aspect is his readiness to acquire proficiency -his potential ability -and another is his readiness to developed interest in exercising that ability ').-Bingham

वह आगे भी कहता है कि, " किसी व्यक्ति की क्षमताऐं समान रूप से शक्तिशाली नहीं होती। व्यक्ति दूसरे से क्षमताओं में भिन्न होते हैं ....इनमें से बहुत सी भिन्नतायें अपेक्षाकृत स्थाई होती है" परन्तु " अभिरूचियाँ परीक्षण उसकी निष्पत्ति की उपलब्धि का सीधे तौर से मापन नहीं करते है। वे वर्तमान निष्पत्ति का मापन करते हैं। इसलिए जिस सीमा तक वर्तमान तथा विगत व्यवहार भविष्य की क्षमताओं के लक्षण बता सकते हैं, परीक्षण प्रदत्त उसी सीमा तक इन क्षमताओं के अनुमान का साधन हैं।

ट्रेक्सलर के अनुसार अभिरूचि " किसी व्यक्ति की वह स्थिति गुण या गुणों का समूह है जो इस ओर संकेत करता है कि उपयुक्त प्रशिक्षण के अन्तर्गत वह किस सीमा तक किसी ज्ञान कुशलता या ज्ञान समझ और कुशलता के सम्मिश्रण (जैसे कला, संगीत, यांत्रिक योग्यता, गणित सम्बन्धी योग्यता, विदेशी भाषा को बोलने पढ्ने की योग्यता) को प्राप्त करने के योग्य होगा,।

मनौवैज्ञानिकों के बीच इस मत पर मतभेद है कि किसी व्यक्ति को वर्तमान व्यवहार में प्रदर्शित आभासी सामर्थ्य तथा उसके भविष्य की उपलब्धियों में क्या संबंध है और वर्तमान सामर्थ्य के आधार पर इनकी किस सीमा तक भविष्यवाणी की जा सकती है। बहुत से कारक यह निर्धारित करने के लिए सम्मिलित होते है कि व्यक्ति से भविष्य में क्या करने की, विशेषकर शैक्षिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में अपेक्षा की जा सकती है। फिर भी, एक अभिरूचि को यदि वह सामान्य हो या विशिष्ट, को उस तत्परता के वर्तमान के रूप में लिया जा सकता है, जिसका यदि उपयुक्त विधि से मापन किया जाए तो, वह उस कार्यक्षेत्र में जिसके परीक्षण के समय व्यक्ति ने सफलता प्राप्त करने की योग्यता का संकेत दिया था, भविष्य के प्रशिक्षण या उस क्षेत्र में जाने का आधार बन सकती है।

बिंघम के अनुसार अभिरूचि किसी व्यक्ति की अपेक्षाकृत योग्यता की वह स्थिति है जो (1) उसने उसकी प्रवीणता प्राप्त करने का सामर्थ्य तथा (11) उसके प्रयोग में रूचि का विकास करने की तत्परता दर्शाता है।

ट्रेलर के अनुसार अभिरूचि उन गुणों का समूह है जो इस ओर संकेत करता है कि उपयुक्त प्रशिक्षण के अन्तर्गत व्यक्ति किस सीमा तक किसी ज्ञान कुशलता या दोनों के सम्मिश्रण की योग्यता प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार के वर्तमान सामर्थ्य का भविष्य की उपलब्धियों से क्या सम्बन्ध है इस पर मतभेद है। परन्तु अभिरूचि को तत्परता के उस वर्तमान रूप मे लिया जा सकता है जो भविष्य के प्रशिक्षण या उस क्षेत्र में जाने का आधार बन सकती है जिसमें उसने परीक्षा के समय सफलता प्राप्त करने का संकेत दिया था।

22.4 अभिरूचि का स्वभाव

अभिरूचि के स्वभाव को समझने के लिए निम्न तथ्यों की जानकारी आवश्यक हों।

24.4.1 अभिरूचि जन्मजात है या अर्जित-

बहुत ' सी अभिरूचियों के कुछ पक्ष जन्मजात होते हैं जैसे कुछ व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा अधिक लम्बे तथा हस्तकुलश हाथों वाले होते हैं। जब टाईपराईटिंग सीखने, घड़ी की मरम्मत करने, पियानों बजाने, या कोई शल्यक्रिया करने का प्रश्न आता है, तो ऐसे व्यक्ति उन व्यक्तियों की अपेक्षा जिसके हाथों की उंगलियां छोटी ओर ठंठदार या जिनके हाथ भद्दे है, अधिक कुशल हो सकते है। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति अपनी शारीरिक गठन के कारण दूसरो की अपेक्षा अधिक चुस्त (किसी घटना के प्रति शीघ्र प्रतिक्रिया करने वाले) होते है। इसलिए कुछ कामों में उनको उन व्यक्तियों की अपेक्षा सफल होने की सम्भावना है, जो ढीले-ढाले और देर में प्रतिक्रिया करने वाले है।

परन्तु जन्मजात विशेषतायें (गुण) ही सब कुछ नहीं है। किसी कार्य में पूर्व अभ्यास तथा रूचि भी बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है। किसी व्यक्ति कि उंगलियां तो हस्तकुशलता वाली हो सकती है परन्तु हो सकता है कि उसको घड़ी साज बनने मे कोई रूचि न हो। इसलिए यदि ऐसा व्यक्ति घड़ी साज के व्यवसाय में जाता है तो वह उस व्यक्ति से जिसकी उंगलियां इतनी निपुण नही है परन्तु जिसकी इस व्यवसाय में अधिक रूचि है मात खा जायेगा।

इसलिए इस इकाई के परिप्रेक्ष्य में यह जानना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है कि कोई विशेष गुण या अभिरूचि जन्मजात है या पूर्व प्रभावों के परिणामों स्वरूप हैं। उसकी अपेक्षा यह जानना अधिक उपयुक्त होगा कि व्यक्ति की वर्तमान योग्यता को उसकी आगे की शिक्षा या किसी व्यवसाय या व्यावसायिक क्रिया में भाग लेने की तत्परता के रूप में पहचाना जाय तथा प्रयोग किया जाए अर्थात् व्यक्ति की वर्तमान योग्यताओं के आधार उसके लिए भावी शिक्षा एवं व्यावसायिक चुनाव का अनुमान लगाया जाये।

परन्तु वर्तमान योग्यता तथा अभिरूचि एक ही चीज नहीं है। आपके अन्दर, वर्तमान में विमान उड़ाने की योग्यता नहीं है परन्तु आपने विमान चालक बनने की काफी अभिरूचि है । इसका यह अर्थ है कि यदि आपको उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाय तो आप एक कुशल विमान चालक बन सकते है। अभिरूचि परीक्षण का महत्व इसमें है कि व हमें ऐसे लोगों का पता लगाने

मे सहायक होते हैं जिनमें वर्तमान में किसी कार्य करने की निपुणता नहीं है, परन्तु जिन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण के माध्यम से उस कार्य में वांछित स्तर तक निपुण (कुशल) बनाया जा सकता है।

22.4.2 बुद्धि और अभिरूचि

वह लोग भी जो मानव मस्तिष्क के समग्र रूप से क्रिया करने में विश्वास करते हैं यह मानते है कि किसी व्यक्ति की विभिन्न प्रकार कि क्रियाओं में उपलब्धि का मापन करके उसकी सामान्य बुद्धि के स्तर के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। परन्तु इस प्रकार की सामान्य बुद्धि परीक्षा द्वारा भी उसकी विशिष्ट अभिरूचि का पता लगता है, जब हम ये देखते है कि उसने इस सामान्य बुद्धि परीक्षा में गणित की अवधारणा वाले भाग, भाषा का कुशलता पूर्वक प्रयोग करने वाली क्रियाओं या सम्बन्ध देखने वाली क्रियाओं वाले सभी प्रश्नों का सही-सही उत्तर दिया है।

अभिरूचि को व्यक्ति की मानसिक क्रिया के उस क्षेत्र या पक्ष के रूप में लिया जा सकता है जिसमें उसके असाधारण उपलब्धि तक विकास करने की सम्भावना हो सकती हे। सामान्य बुद्धि परीक्षण के परिणाम ये सम्भावित भविष्यवाणी कर सकते है कि व्यक्ति उन विभिन्न सामान्य परिस्थितियों में कहां तक सफल हो सकता है, जिनमें मानसिक क्रिया की आवश्यकता होती है। अभिरूचि मापन किसी विशिष्ट क्षेत्र में सफल होने की योग्यता की ओर संकेत करते है।

22.4.3 अभिरूचि और रूचि

बहुत से मनौवैज्ञानिक तथा शिक्षक व्यावसायिक रुचियों को अभिरूचियों का प्रदर्शन मानते है। परन्तु यह निम्नलिखित कारणों से इस तथ्य को स्वीकार करने में संकोच होता है।

(अ) नवजवानों की बहुत सी तथाकथित व्यावसायिक रुचियां बदलती रहती है, क्योंकि वे उसकी निहित अभिरूचि की अपेक्षा अन्य कारणों से होती है जैसे किसी मनपसंद अभिनेता या अभिनेत्री को देखकर स्वयं अभिनय क्षेत्र में जाने की रूचि या इसी प्रकार के किसी अन्य कारणों के कारण किसी अन्य व्यवसाय या कार्य मे उनकी रूचि हो सकती है।

(ब) अक्सर नवयुवकों के तथाकथित व्यावसायिक रुचियों उनकी इच्छाओं का प्रदर्शन नहीं करती बल्कि उनके माता-पिता की महत्वाकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती है। माता-पिता जिस क्षेत्र मे अपने जीवन मे असफल रहे, उसमें अपने बालक की सफलता से संतुष्टि प्राप्त करना चाहते या जिस क्षेत्र में वे सफल रहें उसमें बालक को भी लाना चाहते हैं भले ही वह उसकी इच्छा या अभिरूचि के विरूद्ध ही क्यों न हो।

(स) नवयुवक और उनके माता-पिता, अभिरूचि पर ध्यान न देकर किसी व्यवसाय से होने वाले लाभ से अधिक प्रभावित होते है।

इस प्रकार जिस व्यवसाय या कार्यक्षेत्र में अभिरूचि है उसमें रूचि होना स्वाभाविक है, परन्तु रूचि वाले क्षेत्र में व्यक्ति की अभिरूचि भी हो ऐसा सदैव नहीं होता।

(द) अभिरूचि, वर्तमान स्थिति के आधार पर किसी विशेष दिशा में सफल होने की क्षमता की ओर संकेत करती है परन्तु गारंटी नहीं करती कि व्यक्ति भविष्य में उस दिशा में अवश्य भावी सफल होगा ही । इसका कारण यह है कि सफल होने के लिए केवल अभिरूचि एक मात्र कारक नहीं है, अन्य कारक भी उसके लिए जिम्मेदार है।

अभिरूचि की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है -

1. वह. बहुत से अभिरूचियों के कुछ जन्मजात पक्ष होते है परन्तु यही सब कुछ नहीं है, किसी कुशलता को प्राप्त करने से पूर्व अभ्यास एवं रूचि भी बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है।
2. अभिरूचि परीक्षणों का महत्व इसमें है कि वह हमें ऐसे लोगों का पता लगाने में सहायक होते हैं जिनमें वर्तमान में किसी कार्य करने की निपुणता नहीं है परन्तु उपयुक्त प्रशिक्षण के माध्यम से उस कार्य में वांछित स्तर तक निपुण बनाया जा सकता है।
3. बुद्धि परीक्षणों के परिणाम याh सम्भावित भविष्यवाणी कर सकते है कि जिस में मानसिक क्रियाओं की आवश्यकता होती है, व्यक्ति सामान्य परिस्थितियों में उस क्षेत्र में कहां तक सफल हो सकता है । जब कि अभिरूचि माप किसी विशेष क्षेत्र में सफल होने की योग्यता का संकेत करते है । परन्तु बुद्धि परीक्षण की विभिन्न क्रियाओं जैसे गणित सम्बन्धी अवधारणा वाले भाग, भाषा कुशलता वाले भाग, इत्यादि पर उपलब्धि के माध्यम से भी अभिरूचि का पता लगता है
4. अभिरूचि और रूचि में सीधा सम्बन्ध नहीं है क्योंकि -
   (i) नवजवानों की रुचियां बदलती रहती है।
   (ii) रुचियां उनकी नहीं, उनके माता-पिता की महत्वाकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती है।
   (iii) रुचियों अभिरूचि के अपेक्षा व्यवसाय से मिलने वाले लाभ से अधिक प्रभावित हो सकती है।

इसलिए जिस व्यवसाय या कार्य क्षेत्र में अभिरूचि है उसमें रूचि होना स्वाभाविक है परन्तु रूचि वाले क्षेत्र में व्यक्ति की अभिरूचि होना आवश्यक नहीं है।

5. अभिरूचि वर्तमान स्थिति के आधार पर किसी विशेष दिशा में सफल होने का संकेत करती है, परन्तु यह गारंटी नही कर सकती कि व्यक्ति उस दिशा में अवश्यमेव सफल होगा -।

22.5 शिक्षक के लिए आवश्यक संकेत

उपरोक्त बातों पर ध्यान देते हुए शिक्षकों को बालकों को व्यावसायिक चुनाव में सहायता देते समय निम्नलिखित अभिरूचि सम्बन्धी बातों पर ध्यान देना लाभप्रद होगा।

- अभिरूचि में सम्भवत: जन्मजात क्षमता और वातावरण कि परिस्थितियों का प्रभाव दोनों शामिल - हर व्यक्ति में किसी एक प्रकार की क्रिया में उसकी अन्य प्रकार की क्रियाओं की अपेक्षा सबसे अधिक योग्यता होती है । व्यक्ति में कई अभिरूचियाँ हो सकती परन्तु सभी एक समान सशक्त नहीं होती है ।
- किसी क्षेत्र या किसी स्तर का अधिगम व्यक्ति की सीखने की तत्परता पर निर्भर करता है । वह उतना ही सीखेगा जितना उसमें सीखने प्रति तत्परता।
- जो अभिरूचि प्रतिभा के रूप में होती है वह बहुत पहले प्रदर्शित हो सकती है तथा प्रशिक्षण से उसमें शीघ्र ही प्रगति आती है।
- बहुत से विशिष्ट क्रिया क्षेत्र बहुत सी विशेषताओं या गुणों में समान होते हैं। - विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों में से किसी एक में प्रशिक्षण लेते समय कुछ विशेष योग्यता में विकसित होती है, उन्हें भी कभी-कभी अभिरूचि की संज्ञा दे दी जाती ह।

- व्यावसायिक रुचियां, अभिरूचि के अलावा अन्य कारकों से भी प्रभावित हो सकती हैं या उन विस्तृत क्षेत्रों का वर्णन करती है, जिनको बहुत से मार्गों में से एक की ओर मोड़ा जा सकता है जैसे अभिनय में रूचि को (विस्तृत क्षेत्र) को नायक, खलनायक, सहायक भूमिका, हास्य व्यंग के अभिनय की ओर मोड़ा जा सकता है।

स्वमूल्यांकन(Self-evaluation)

1. अभिरुचि की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. रुचि और अभिरुचि किस प्रकार एक दूसरे से संबन्धित है।
3. बुद्धि और अभिरुचि के संबंध को समझाइए।

22.6 अभिरूचि का मापन

अभिरूचि के मापन के लिए मुख्यत: दो प्रकार के परीक्षणों को प्रयोग किया जाता है।

(1) शाब्दिक व अशाब्दिक परीक्षण

(2) निष्पत्ति परीक्षण

22.6.1 शाब्दिक व अशाब्दिक परीक्षण

इस वर्ग के प्रमुख परीक्षणों का वर्णन निम्नवत् है -

(अ) **विभेदीकृत अभिरूचि परीक्षाओं के समूह**

इस प्रकार के परीक्षणों में सबसे प्रसिद्ध **Differential Apptitude Test Battery (DATB**) है । इसमें निम्नलिखित सात परीक्षायें शामिल हैं ।

- शाब्दिक तर्क (Verbal Reasoning)
- अमूर्त तर्क (Abstract Reasoning)
- यांत्रिक तर्क (Mechanical Reasoning)
- सांख्यिक योग्यता (Numerical Ability)
- स्थान सम्बन्ध (Space Relations)
- लिपकीय गति ओर परिशुद्धता (Clerical speed and Accuracy)
- भाषा प्रयोग (Language Usage)
- इसके अतिरिक्त निर्माता बेनेट सीशोर और इस्टमैने (C.K. Bennet, H.G. Seashore A.G. Eastmar) है। यह सभी परिक्षायें एक साथ दी जाती है तथा इन पर प्राप्त उपलब्धियां के प्रोफाइल (Profile) पर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है जिससे यह ज्ञात हो सकें कि बालक में किस प्रकार की अभिरूचि अधिक या कम है । यद्यपि यह परीक्षण समूह विदेशी है। परन्तु अब इसका भारतीय अनुशीलन हिन्दी भाषा में भी उपलब्ध है जिसको मानसायन 8/324 ललिता पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली ने प्रकाशित किया है।

(ब) विशिष्ट अभिरूचि परीक्षा समूह

इसके अन्तर्गत विशिष्ट अभिरूचियों को मापन किया जाता है। इस वर्ग में आने वाले कुछ भारतीय मूल के परीक्षण इस प्रकार है-

(1) केके अग्रवाल को वैज्ञानिक अभिक्षमता परीक्षण माला **(Scientific Aptitude Test Battery by K..Agarwal)**

इसमें 4 उप - परीक्षण है।

– तर्क परीक्षण
– अंक गणन परीक्षण
– विज्ञान सूचना परीक्षण
– विज्ञान शब्दकोश परीक्षण

इसका प्रकाशन नेशनल साइकोलोजिकल कारपोरेशन (**National Psychological Corparation,Agra**) ने किया हैं इसका विकास माध्यमिक स्तर पर विज्ञान में सफलता की भविष्यवाणी करने के लिए किया गया है। माध्यमिक स्तर पर विज्ञान पर आधारित पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(स) यांत्रिक अभियोग्यता परीक्षण माला (Mechanical Aptitude Test Battery)

इसका निर्माण आत्मानंद शर्मा ने किया है तथा प्रकाशन श्रीमती एसकें. शर्मा 24/26 शक्ति नगर, दिल्ली ने किया है। इसमें 5 प्रकार की परीक्षायें हैं।

- स्थान सम्बन्ध परीक्षा **(Space Relation Test)**
- यांत्रिक समयबोध परीक्षा **(Mechanical Comprehension Test)**
- आकृति सम्बन्ध परीक्षा **(Farm Relation Test)**
- यांत्रिक योग्यता परीक्षा **(Mechanical Knowledge Test)**
- यांत्रिक अनुकूलन परीक्षा **(Mechanical Adaptability Test**

शैक्षिक व्यावसायिक निर्देशन में यांत्रिक अभिरूचि अंक मापन के लिए इस बैटरी का निर्माण किया गया है। तकनीकी शिक्षा में प्रवेश के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(द) अध्यापन अभिक्षमता परीक्षण माला (Teaching Aptitude Test Battery)

इसके निर्माता आरपी. सिंह एवं एसएन. शर्मा हे तथा प्रकाशक नेशनल साइकोलॉजिकल कारपोरेशन (National Psychology Corporation) आगरा ।

इसमें 5 उप-परिक्षायें है। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवेश में उपयुक्त प्रशिक्षार्थियों के चुनाव के लिए इसका निर्माण किया गया था । प्राथमिक विद्यालयों के लिए उपयुक्त शिक्षकों के चुनाव में भी यह सहायक हो सकती है।

(य) इंजीनियरिंग अभिरूचि परीक्षण (Engineering Aptitude Test)

इसका निर्माण स्वर्ण प्रताप तथा प्रकाशन नेशनल साइकोलोजिकल कारपोरेशन आगरा ने किया है। इसका प्रयोग कॉलेज के छात्रों' में किया जा सकता है जो इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश पाने इच्छुक हैं। इसमें सात उप परीक्षायें है : जिनमें प्रमुख वर्गीकरण **(Classification)** सामगनुमम **(Analogy)** चित्रगत तर्क **(Pictroidal Reasoning)** स्थान सम्बन्ध (**Space Relations**) इंजीनियरिंग तथा विज्ञान **(Science and Engineering)** आदि है।

(र) विशिष्ट अभिरूचि परीक्षायें (Mechanical Comprehension Test (English)

इसका निर्माण जी.के. वेनेट ने किया। इसका प्रयोग हाई स्कूल के छात्रों पर किया जा सकता है जो औद्योगिक व्यवसाय (Industrial Job) में जाना चाहते है। यह परीक्षा व्यवहारिक परिस्थितियों में भौतिक बलों तथा यांत्रिक तत्त्वों के बीच सम्बन्धें को समझने की योग्यता का

मापन करता है। इस प्रकार की अभिरूचि बहुत से कामों में काम आती है। विशेषकर इंजीनियरिंग तथा ट्रेड स्कूल के पाठ्यक्रमों में।

(ल) महाविद्यालयों छात्रों की वैज्ञानिक अभिरूचि का परीक्षण

(Science Aptitude Test for College Students)

ए.के. पी सिन्हा तथा एन के सिन्हा ने कॉलेज के छात्रों के लिए इसका निर्माण किया तथा इसका प्रकाशन नेशनल साइकोलोजिकल कारपोरेशन आगरा ने किया।

यह परीक्षा कॉलेज स्तर पर छात्रों मे विज्ञान के क्षेत्र में संभावित सफलता का मापन करती है। साथ आयामों में इसका मापन किया जाता है।

(i) प्रयोगात्मक झुकाव (Experimental Bent)

(ii) तर्क करने तथा समस्या हल करने में योग्यता

(iii) (Ability to reason and solve problems))

(iv) तार्किक निष्कर्षो में असंगतता का पता लगाना

(v) (Detection of inconsistencies in logical conclusion)

(vi) सतर्कता एवं व्यापकता (Caution and thoroughness)

(vii)अर्थ-निर्णय की परिशुद्धता (Accuracy of interpretations)

(viii) अवलोकन की परिशुद्धता (Accuracy of observation)

(ix) निष्कर्ष निकालने की योग्यता (Ability to draw conclusion)

(ब) शिक्षण अभिरूचि परीक्षा

इसका निर्माण जय प्रकाश तथा आर. पी. शर्मा ने किया तथा प्रकाशन आगरा साइको सेन्टर नई दिल्ली ने किया। इसका प्रयोग 20 से 30वर्ष के अध्यापकों पर किया जाता है।

(स) स्पोर्टमैन स्प्रिट टेस्ट

इसका निर्माण एल. एन. दुबे ने किया तथा प्रकाशन आगरा साइकोलॉजिकल सेल आगरा ने किया। इसका प्रयोग उच्च माध्यमिक तथा कालेज एवं विश्वविद्यालयों के छात्रों पर उच्च स्तरीय खिलाड़ीपन तथा निम्न स्तरीय खिलाड़ीपन की भावना रखने वालों में विभेदीकरण करने के लिए किया जा सकता है।

(द) रिवाइज्ड मिनसोटा पेपर फार्म बोर्ड टेस्ट

इसके मूल निर्माता आर. लिकर्ट तथा ड्व्ल्यु. एम. क्वाशा है तथा प्रयोग हिन्दी अनुशीलन के निर्माता मानसोयन नई दिल्ली है। इसका प्रयोग 11-17 वर्ष के या 8 से 12 कक्षा के बालकों के लिये किया जा सकता है। यह परीक्षा डिजाइनिंग ड्राफ़्टिंग और यांत्रिक क्षेत्रों में अभिरूचि का मापन करती है।

(श) मेटलेंड ग्रेबस डिजाइन जजमेन्ट टेस्ट

इसके निर्माण मेटलेंड ग्रेवल है तथा प्रकाशन **Psychological Corpn New York** हैं इनका निर्माण कलात्मक संरचना के निर्माण या परिबोध संबंधी अभिरूचि का परीक्षण करने के लिए किया गया है। इसमें कला निम्न आयमों पर परीक्षण किया जाता है-

- सौंदर्यबोधी व्यवस्था एकता (**Asthetic order unity)**
- प्रभाव **(Dominance)**
- विविधता **(Variety)**
- सतता (**Continuity)**

- सममितता (**Symmetry**
- अनुपात (**Properties)** एवं
- स्पंदलय (**Rhythm)**

22.6.2 निष्पत्ति परीक्षायें

(1) इस श्रेणी में प्रमुख परीक्षायें हैं-

(I) मिनसोटा मेकनिकल असेम्बली टेस्ट

स्टेनकिवस्ट ने हाई स्कूल के छात्रों के लिए इसका निर्माण किया। भारत में यह परीक्षण एरोबॉयस पटना के पास उपलब्ध है। यह यांत्रिक अभिरूचि का परीक्षण करती है।

(II) शीशेअर टेस्ट आफ म्यूजिक टैलेण्ट -

यह परीक्षण संगीत के अभिरूचि का मापन करता है। इसमें विभिन्न प्रकार के ध्वनि रिकार्ड है। जिसके माध्यम से यह परीक्षण किया जाता है।

अभिरूचि का मान करने वाली परीक्षाओं का एक वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है -

(i) सामूहिक शाब्दिक एवं अशाब्दिक परीक्षायें -

Differential Aptitude Test Battery

(ii) विशिष्ट अभिरूचि परीक्षा समूह जैसे -

Scientific Aptitude Test Battery

Mechanical Aptitude Test Battery

Engineering Aptitude Test Battery

(iii) विशिष्ट अभिरूचि परीक्षायें जैसे -

Mechanical Comprehension test

Science Aptitude Test for College Students

Teaching Aptitude Test

Sportsman Spirit Test

Revised Minnesota Paper from Board

Maitland Gravis Design Judgment Test इत्यादि

2 निष्पत्ति परीक्षायें (Performance Tests) जैसे -

Minnesota Mechanical Assembly Test

Seashore Test of Musical Talent

22.7 सारांश (Summary)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात यह स्पष्ट है कि व्यक्ति उन्हीं क्षेत्रों में ज्यादा सफल होता है, जिस क्षेत्र में उसकी अभिरूचि 'होती है। किसी व्यक्ति की योग्यता 7 क्षमता का. अधिकतम उपयोग करने के लिए, आवश्यक है कि परीक्षण कर उस व्यक्ति की अभिरूचि का..पता लगाकर तदनुसार उनके लिए कार्य की व्यवस्था की जाए। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक के लिए अभिरूचि का ज्ञान काफी आवश्यक है क्योंकि इसके आधार पर विद्यार्थियों की सहायता कर उन्हें उचित क्षेत्र में जाने के लिए अभिप्रेरित कर सकता है।

स्वमूल्यांकन(Self-Evaluation)

1. अभिरुचि की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. अभिरुचि मापन के परीक्षणों को वर्गीकृत करते हुए विशिष्ट योग्यता मापन के प्रमुख परीक्षणों का वर्णन करो।

22.8 सन्दर्भ (References)

(1) Crow L.D. and Crow A (1948) Education Psychology

(2) Blair G.H. Jones R.S.and Simpson (1962) Educational Psychology Mamillian Co. N York

(3) Bingham Aptitude and Aptitude Testing

(4) Trylar (1957) Techniques of Guidance and Counselling Harper and Brother.

इकाई-23

अभिप्रेरणा : संकल्पना तथा अधिगम पर प्रभाव

MOTIVATION: CONCEPT AND ITS EFFECT ON LEARNING

इकाई की संरचना

23.1.0 उद्देश्य एवं लक्ष्य

23.2.0 विषय प्रवेश

23.3.0 अभिप्रेरणा की परिभाषा

23.4.0 अभिप्रेरणा की विशेषताएं

23.5.0 अभिप्रेरणा. उद्दीपन, प्रोत्साहन. अन्तर्नाद, अभिवृत्ति में अंतर

23.6.0 अभिप्रेरणा के प्रकार

23.7.0 अभिप्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव

23.8.0 सारांश

23.90 संदर्भ

23.1.0 उद्देश्य एवं लक्ष्य

व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित पथ प्रदर्शित तथा रूपांतरित करने में जिन कारकों की मुख्य भूमिका होती है, उनमें अभिप्रेरणा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। व्यवहार में अधिकतम परिवर्तन उस समय होता है जब व्यक्ति या बालक को मानसिक क्रिया सर्वाधिक होती है। सर्वाधिक मानसिक क्रिया के लिए अभिप्रेरणा आवश्यक होती है। इस इकाई में अभिप्रेरणा जो कि अधिगम की क्रिया को गति प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाती है, आदि का वर्णन निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है।

- शिक्षार्थी अभिप्रेरणा का अर्थ समझकर उसे परिभाषित कर सकेंगे।
- शिक्षार्थी अभिप्रेरणा की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- शिक्षार्थी अभिप्रेरणा, उद्दीपन, प्रोत्साहन, अन्तर्नाद, एवं अभिवृत्ति में अंतर कर सकेंगे।
- शिक्षार्थी अभिप्रेरणा के विभिन्न प्रकारों को विश्लेषित कर सकेंगे।
- शिक्षार्थी अभिप्रेरणा के महत्व को समझकर आवश्यकतानुसार अपने विद्यालयों तथा जीवन में उपयोग कर सकेंगे।

23.2.0 विषय प्रवेश

व्यक्ति के जीवन एवं अधिगम में अभिप्रेरणा का महत्व सर्वविदित है, निर्विवाद है। इसके कारण व्यक्ति ऐसे कार्य कर लेता है जिसको करने की उससे कल्पना में भी अपेक्षा नही की जाती है। अभिप्रेरणा से 'पगु गिरि लंघे' की कहावत चरितार्थ हो जाती 'हैं। किसी व्यक्ति के जीवन में सफलता तथा उपलब्धियाँ इस बात पर निर्भर है कि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास एवं श्रम करने के लिए तत्पर है। सफलता एवं उपलब्धियों के द्वारा उसे कितनी एवं किस

स्तर की संतुष्टि प्राप्त करनी हैं अभिप्रेरणा इस सफलता एवं उपलब्धियों तक पहुँचने हेतु एक अनिवार्य एवं शक्तिशाली दिशा निर्देशक है।

अनेक शिक्षक बालकों को सीखने के लिए विभिन्न प्रकार के दबाव डालते हैं, उन्हें विवश करते हैं। इस हेतु क्रूरता को अपनाने से भी नहीं झिझकते हैं। कुछ शिक्षक उन्हें विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देते है। अपना कार्य पूरा कराने हेतु उन्हें प्रशंसा एवं रूचि एवं जिज्ञासा जाग्रत करने का प्रयास करते है 'जिससे उसमें ज्ञान प्राप्त करने एवं अपने चारों और के वातावरण को जानने की तीव्र इच्छा उत्पत्र हो सकें।

आज शिक्षा के माध्यम से बालक के चरित्र निर्माण तथा व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास की आवश्यकता हैं अत: आधुनिक शिक्षा में बालकों को सीखने हेतु विवश करना, क्रूर तरीकों को अपनाना, प्रलोभन देना आदि का कोई स्थान नही है। इस हेतु बालक के द्वारा स्वयं ही इच्छा व्यक्त करना, सक्रियता एवं तत्परता प्रदर्शित करना, दिशा निर्देशन एवं आत्मविश्वास का रास्ता चयन करना उचित है। नवयुवक-नवयुवतियों के द्वारा सीखना एवं ठीक दिशा में विकास तभी श्रेष्ठ होता है, जब वे स्वप्रेरणा से इस हेतु कार्य करते है, अपनी शक्तियों को दिशा देते है, अपनी शक्तियों एवं प्रयासों को अधिकतम सीमा तक ले जाने के लिए तत्पर हो जाते है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति एवं उसके वातावरण में गतिशील सम्बन्ध स्थापित हो जाते है।

अभिप्रेरणा प्राणी के शरीर -यंत्र की चालक शक्ति है। इसके अभाव में वह कार्य नही कर सकता है। बाल, किशोर, युवा वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी को अभिप्रेरणा से अपने व्यवहार में ऐच्छिक दिशा एवं गति प्राप्त होती है। अभिप्रेरणा में सभी आन्तरिक अवस्थाएं आ जाती है। जिनके द्वारा किसी क्रिया का प्रारम्भ होता है तथा उसको बनाएं रखा जाता है। अभिप्रेरणा में प्राणी में क्रिया उत्पत्र करने वाले आन्तरिक एवं बाहय सभी कारक समाहित है परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि के केवल उन कारकों को लिया जाता है जो अन्दर से प्राणी के व्यवहार को नियन्त्रित करते है।

अभिप्रेरणा में यांत्रिक अथवा प्रतवर्त क्रियाएं नही आती है क्योंकि वे शारीरिक ढांचे और बाहय पर्यावरण पर ही निर्भर होती है। इस प्रकार का यांत्रिक व्यवहार बहुत ही अविकसित जीवधारियों में दिखाई पड़ता है। विकसित जीवों में उनकी परिवर्तनशील शारीरिक एवं मानसिक दशाएं उनके व्यवहार को नियंत्रित करती है। भूख के अभाव में विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट के सामने आने पर भी व्यक्ति उनका उपयोग नही करता है। अभिप्रेरणा परिवर्तनशील शारीरिक अवस्था तथा पूर्व अनुभव पर निर्भर करती है। गर्म दूध देखकर उसे पी जाने की प्रेरणा प्राप्त होती है। एक बार गर्म दूध में से जल जाने के पश्चात् छाछ को भी एक साथ पी जाने की प्रेरणा नहीं होती। क्षुधा की स्थिति होने पर शारीरिक एवं मानसिक तनाव बनता है। उसके निवारण होने पर तनाव भी समाप्त हो जाता है। क्षुधा के निवारणार्थ व्यक्ति के प्रयासों की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। विपक्षी पर विजय पाने की तीव्र इच्छा भी, जिसमें व्यक्ति की सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा निहित है, अपने से अधिक शक्तिशाली विपक्षी को परास्त करने में सहायक होती है । कुश्ती एवं मुक्केबाजी तथा अन्य खेलों में इस प्रकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

23.3.0 अभिप्रेरणा की परिभाषा

विशेषज्ञों के अनुसार अभिप्रेरणा का तात्पर्य व्यक्ति को क्रियात्मकता प्रदान करता है। इसे अनुसार अभिप्रेरणा का सम्बन्ध सभी प्रकार के व्यवहारों का स्पष्टीकरण करने से है, चाहे वे सरल अथवा पेचीदे या मिश्रित हों, इच्छित हो अथवा अनिच्छित, नैसर्गिक हो अथवा अर्जित। कुछ

मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा को उस प्रक्रिया के समतुल्य कहते है जो किसी प्रकार के कार्य करने हेतु उद्दीपन प्रदान करती है।

कुछ इस व्यक्ति की वह मनौवैज्ञानिक तथा शारीरिक स्थिति बताते है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य विशेष को प्राप्त करने के लिए कार्य करने हेतु उकसाती है तथा, आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रेरित करती है।

कुछ विद्वानों के लिए अभिप्रेरणा व्यक्ति की वह आन्तरिक स्थित है जो किसी कार्य को करने, उसमें संलग्न करने तथा इस हेतु प्रयासों को अधिक प्रगाढ़ बनाने तथा उचित दिशा ग्रहण करने में सक्रियता देती है। कुछ इसे बाहय लक्ष्य के संदर्भ में भी परिभाषित करते है।

अभिप्रेरणा के आन्तरिक एवं बाहय व्यक्तिनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ पक्ष है। आन्तरिक पक्ष व तनाव है जो व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं इच्छाएं सृजित करता है। जिसका निराकरण ठीक दिशा ने सम्पादित क्रियाओं के द्वारा होता है बाहय पक्ष लक्ष्य है जो वातावरण सम्बंधी है तथा जिसे व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है। दोनो का ही संबंध प्राणी से है। अभिप्रेरणा प्राणी की वह स्थिति है जिसमें वह अभिप्रेरकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अपना व्यवहार सम्पादित करता है। उसका व्यवहार एवं प्रयोजनों आवश्यकताओं द्वारा प्रेरित तथा लक्ष्यों की ओर निर्देशित होता है।

आवश्यकताओं से प्राणी में तनाव होता है। और इस तनाव से मुक्त होने के लिए उसकी क्रियाशीलता का वेग कई गुणा बढ़ जाता है। अभिप्रेरको को व्यक्ति को ऊर्जा प्राप्त होती है, उसका व्यवहार किसी लक्ष्य की ओर दिशा प्राप्त करता है तथा उपयुक्त अनुक्रिया का निर्धारण एवं चयनकर्ता है। जिसे तनाव एवं कुण्ठाओं का निराकरण होता है तथा प्राणी को संतोष प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष के रूप में अभिप्रेरणा में निम्न तीन तत्व समाहित है- -

- ऊर्जा परिवर्तन
- भावात्मक जागृति
- पूर्व अनुमानित एवं प्रतिक्रिया

पूर्व अनुमानित लक्ष्य प्राप्ति हेतु वांछित अनुक्रिया को उत्पन्न करने में प्राणी में ऊर्जा परिवर्तन होता है जिसके कारण वह अपने को तनावों से मुक्त कर लेता है और संतोष प्राप्ति की अवस्था में पहुँच जाता है। यह स्थिति भी संभव है कि अभिप्रेरित होते हुए भी प्राणी अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर पाये या लक्ष्य की प्राप्ति के बाद संतोष की अवस्था में न पहुँच पाये।

अभिप्रेरणा संबंधी कतिपय निम्न परिभाषाओं से भी उपर्युक्त निष्कर्षो की पुष्टि होती है। आइए, कुछ परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

"अभिप्रेरणा व्यक्ति के अन्दर होने वाला शक्ति परिवर्तन है जो भावात्मक जागृति तथा पूर्वानुमानित उद्देश्य आधारित प्रतिक्रियाओं द्वारा व्यक्त होता है । " - **एफ जे. मेकडोनाल्ड'**

'अभिप्रेरणा सीखने वाले में समाहित किया गया ऐसा बाहय तत्व है जो सीखने की प्रक्रिया हो बनाये रखता है । " - **एच. आर. भाटिया**

"शिक्षा में अभिप्रेरणा छात्र में रूचि का उद्दीपन करने की दशा है जहां ऐसी रूचि नही है अथवा छात्र ने अभी तक उसकी अनुभूति नही की है। " -**एम. के. थामसन**

अभिप्रेरणा प्रदान करने वाले तत्व को अभिप्रेरक कहते है। यह अभिप्रेरणा का जनक अथवा उसे जागृत करने वाला है। यह वह शक्ति है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए उकसाती

है, व्यक्ति के व्यवहार को दिशा प्रदान करती है और उनकी गति का संचालन करती है तथा अभिप्रेरक के द्वारा व्यक्ति ने गतिशीलता का संचालन करती है। अभिप्रेरक के द्वारा व्यक्ति में गतिशील चेतना जागृत होती है। उसे कार्य करने हेतु उत्तेजना प्राप्त होती है। अभिप्रेरक का प्रभाव अभिप्रेरणा के रूप में प्रस्तुत होता है। अभिप्रेरणा जागृत करने वाले तत्वों को अभिप्रेरक कहते है। शक्कर या चीनी अभिप्रेरक है, मिठास उसकी अनुभूति है। तथा उसके प्राप्त होने की इच्छा जागृत होना अभिप्रेरणा है। यदि हम अभिप्रेरणा से सम्बन्धित सभी तथ्यों का विश्लेषण करे तो निम्न निष्कर्ष पर पहुंचते है -

- अभिप्रेरणा एक मन: शारीरिक या आन्तरिक प्रक्रिया है।
- अभिप्रेरणा साध्य नही साधना है।
- अभिप्रेरणा अधिगम का आधार नही है, बल्कि यह उसके क्रिया को गति प्रदान करता है।
- अभिप्रेरणा से क्रियाशीलता प्रकट होती है।
- अभिप्रेरणा किसी आवश्यकता से प्रेरित होती है, तथा प्रक्रिया संचालन कर उसे पूर्ण करती है।
- अभिप्रेरणा पर शारीरिक मानसिक, बाहय एवं आन्तरिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।

2.3.4.0 अभिप्रेरणा की विशेषताएं

अभिप्रेरणा उद्देश्य पूर्व होती है। इसके अंतर्गत व्यक्ति का चयनात्मक व्यवहार होता है, तथा उसके चयनात्मक स्वरूप की व्याख्या संभव है। व्यक्ति की सफलता एवं अधिगम हेतु अभिप्रेरणा आवश्यक है परन्तु इस हेतु अभिप्रेरणा को कारक के रूप में स्वीकार नही किया जा सकता।

अभिप्रेरणा के उत्पन्न होने के लिए निम्न में से किसी एक कारक का उपस्थिति होना आवश्यक है।

(अ) पर्यावरणजन्य निर्धारण। तत्व जिन्होंने व्यवहार को उत्पन्न किया है।

(ब) आन्तरिक प्रेरणा, जिसके आधार पर व्यक्ति द्वारा क्रिया सम्पन्न की गई है। अभिप्रेरक, लक्ष्य, वस्तु मूल्य या प्राप्त होने वाली उपलब्धि अथवा परिणाम है, जिसके आकर्षण ने व्यवहार उत्पत्र किया गया है।

व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रेरकों के द्वारा होने वाली अभिव्यक्ति का अनुकूलन होता हैं। प्रेरकों द्वारा द्वारा उन कार्यो की करने में अनुकूलता आती है जो व्यक्ति के सामाजिक मूल्यों एवं संस्कृति के अनुरूप होते है। एक ही प्रेरक द्वारा अनेक रूपों में व्यवहारिक अभिव्यक्ति होती हैं। इस अभिव्यक्ति पर स्थान, समय एवं वातावरण का प्रभाव भी रहता है । मूल प्रकृति संबंधी व्यवहार में यह स्पष्ट दिखाई देता है। विभिन्न अभिप्रेरणाओं की अभिव्यक्ति एक ही जैसे व्यवहार द्वारा भी सम्भव है। साथ एक विशेष प्रकार के या सामान्य व्यवहार द्वारा कई अभिप्रेरको की अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति भी संभव है। एक ही आचरण या व्यवहार द्वारा कई प्रकार के अनुप्रेरक एक ही साथ क्रियाशील रह सकते है।

कभी-कभी अभिप्रेरकों की अभिव्यक्ति प्रच्छन्न रूप में पाई जाती है। व्यक्ति जिन क्रियाओं में अपने को तल्लीन कर लेता है जन क्रियाओं में अन्तर्निहित बुनियादी अभिप्रेरको के बारे में अनुमान संभव है।

23.5.0 उद्दीपन, प्रोत्साहन, अन्तर्नाद एवं अभिवृत्ति में अन्तर

उद्दीपन- अभिप्रेरणा उद्दीपन में भिन्न है क्योंकि वह उद्दीपन से पूर्व ही उपस्थित होती है। यदि आन्तरिक प्रेरणा न हो तो बाहय उद्दीपन तीव्र होने पर भी अनुक्रिया उत्पत्र नहीं कर पाता। मानसिक चिकित्सालयों में अनेक ऐसे रोगी मिलेंगे, जो किसी अभिप्रेरक से अभिप्रेरित नही हो पाते। वे पूर्ण रूप से अभिप्रेरणा रहित बने रहते है।

अन्तर्नाद - वह स्थिति है जिसने शरीर की आवश्यकताओं के कारण मानसिक तनाव के अनुभूति होती है जो प्राणी को उस तनाव से मुक्ति हेतु कार्य करने को प्रेरित करती है। भूख एवं प्यास लगना शारीरिक तनाव की स्थितियां है। इसकी अनुभूति के कारण योजना करने एवं पानी पीने को प्रोत्साहन मिलता है। प्राणी की भूख एवं प्यास की संतुष्टि के साथ ही अन्तर्नाद का कार्य भी समाप्त हो जाता है। अन्तर्नाद सीमित एवं व्यापक भी हो सकते है जिसे दांत में दर्द तथा सम्पूर्ण शरीर में दर्द।

प्रोत्साहन - प्रोत्साहन का अभिप्राय: उन विभिन्न अभिक्रियाओं से है जो शिक्षक द्वारा प्रशंसा एवं पुरस्कार के रूप में अपने छात्रों को प्रदान की जाती है। यह मौखिक भी हो सकता है तथा स्थूल भी । इसके द्वारा शिक्षक छात्रों को अधिक क्रियाशील एवं उनके द्वारा किये जा रहे प्रयासों को उकसाने और बढ़ावा देने के लिए प्रयास करता है। प्रोत्साहन के अन्तर्गत उन वस्तुओं एवं स्थितियों को संलग्न किया जाता है कभी-कभी अभिप्रेरित करने वाले दिशाओं के तुष्टि करती है। ये अन्तर्नाद को उकसाती है जो किसी लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होता है तथा व्यक्ति को उसके और क्रियाशील होने का बाध्य करती है । भविष्य में उसी प्रकार का प्रदर्शन फिर उपलब्धियों के लिए प्रेरित करता है।

अभिवृत्ति - अभिप्रेरणा में अन्तर्निहित अभिप्रेरक एवं अभिव्यक्ति दोनो ही व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करते है परन्तु वे स्वयं में व्यवहार नही है। अभिवृत्ति ने कोई' अन्तर्नाद नही रहता। अभिव्यक्तियां अभिप्रेरको का आधार होती है। अभिप्रेरक अभिवृत्ति की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होता है। अन्तर्नाद की तुष्टि किए जाने पर अभिप्रेरक समाप्त हो जाता है, परन्तु अभिवृत्ति अधिक चिरंजीवी एवं तत्परता की जनक है मां के मातृत्व की अभिवृत्ति है परन्तु बालक के रोने अथवा सुरक्षित होने पर ही वह मातृत्व के अभिवृत्ति का प्रदर्शन करती है।

स्वमूल्यांकन(Self-Evaluation)

1. "अभिप्रेरणा" को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए।
2. अभिप्रेरणा तथा उद्दीपन में अन्तर कीजिए।
3. अभिप्रेरणा के मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

23.6.0 अभिप्रेरणा के प्रकार

अभिप्रेरणों का वर्गीकरण विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से किया है। परन्तु उनके मूल में निहित अभिप्रेरक महत्वपूर्ण रहता है। एस. के. थामसन ने अभिप्रेरणाओं को वर्गों में विभाजित किया है :-

1.प्राकृतिक 2.कृत्रिम

23.6.1 प्राकृतिक अभिप्रेरणा

प्राकृतिक अभिप्रेरणा में शारीरिक आवश्यकता एवं संरचना भूत, प्रवृत्यात्मक, भावात्मक, संवेगात्मक सत्यापित आवश्यकताओं एवं संरकृतिजन्य, शारीरिक, व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं आदत, अभिलाषा, प्रतिष्ठा, एवं आत्म प्रकाशन आदि शामिल हैं। ये शारीरिक आवश्यकताओं जैसे भूख, प्यास, विश्राम, काम. मलमूत्र विसर्जन की इच्छा, तापक्रम आदि से सम्बन्धित होती है। कुछ शारीरिक क्रियाएं ग्रंथियां आदि के कारण भी होती है। जैसे - हृदय का धड़कना, रक्त संचार किया, पाचन क्रिया आदि जो जन्मजात है। इनसे शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तथा यह सभी प्राणियों के साथ जुड़ी है।

प्राणी के शारीरिक संरचना को ध्यान में रखते हुए ऐसे अपने आप को जीवित रखने के लिए शारीरिक आवश्यकताओं के पूर्ति करना आवश्यक है। वह जब अपने अपनी अन्दर किन्हीं आवश्यकताओं अनुभव करता है तो किन्हीं क्रियाओं करने के लिए बाध्य हो जाता है। भूख का अनुभव होने पर भोजन करने को बाध्य हो जाता हैं जीवित रहने हेतु वह श्वसन क्रिया करता है, पानी पीता है, भोजन करता हैं, मलमूत्र विसर्जन करता है, विश्राम करता है तथा काम की इच्छा की पूर्ति करता है। इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के समय मनुष्य क्रिया एक सीमा तक जारी रहती है। प्राकृतिक प्रेरणाओं के वर्ग में कुछ मुख्य प्रेरणाएं निम्नवत है

मूल प्रवृतियों सम्बन्धी प्रेरणाएं :- मूल प्रवृतियों यथा जिज्ञासा, पलायन, युयुत्सा, आत्म गौरव, सामूहिकता, रचयिता निवृत्ति, पैतृकता, क्षुधा, काम, आत्मसमर्पण, सृजनात्मक हास्य आदि प्राणी की जन्मजात विशेषताएं है। ये उसे किसी निश्चित दिशा में कार्य करने को प्रेरित करती है। इन प्रवृत्तियों के कारण से व्यक्ति अथवा प्राणी अपने अन्दर तनाव अनुभव करता है। तथा इनकी संतुष्टि हेतु कार्य करने को प्रवृत्त होता है।

भावनात्मक प्रेरणाएं :- सुख, दुख, आनन्द, कष्ट की अनुभूति प्राणी की प्रकृति है। इस भावात्मक स्थिति में संतुष्टि प्राप्त करने के लिए व कार्य करने की ओर अग्रसर होता है। किन्हीं भावनाओं से ग्रस्त होने पर व मुक्ति हेतु प्रयास करता है और इन्ही प्राप्त करने के लिए वह क्रियाशील होता है।

संवेगात्मक प्रेरणाएं - संवेगों पर आधारित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रेरणा यथा भिन्नता का प्रदर्शन, विरोधियों के प्रति विरोध प्रदर्शन, महत्वपूर्ण व्यक्तियों की कृपा हेतु पात्रता की अभिव्यक्ति, आदि इसी श्रेणी में आती है। संवेग बाहरी वातावरण से प्राप्त चालकों द्वारा उत्पत्र होते है।

सामाजिक प्रेरणाएं :-व्यक्ति द्वारा सामाजिक वातावरण में संवेगों तथा मूल प्रवृत्तियों पर आधारित किए गए विभिन्न कार्य जिनसे उनकी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, इसी श्रेणी में आते है। सामाजिक सम्मान, प्रतिष्ठा, सामाजिक सुरक्षा, आत्मगौरव, सामूहिकता आदि सामाजिक प्रेरणाओं के उदाहरण है। सामाजिक मूल्य परम्पराएं तथा मान्यताएं आदर्श आदि किन्हीं कार्यो के लिए प्रेरणा प्रदान करते है तो किन्हीं कार्यो से दूर रहने की भी प्रेरणा देते हैं। वे शारीरिक प्रेरणा पर भी नियन्त्रक के रूप में कार्य करते हैं।

आदत सम्बन्धी प्रेरणाएं :- चाय, भूख, टीवी. देखना आदि आदत जन्य प्रेरणाएं है जो उदय होते ही व्यक्ति में तनाव पैदा करती हैं और उस तनाव से मुक्ति हेतु कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। आदत के अनुसार व्यवहार कर लेने पर तनाव अपने आप दूर हो जाता है आदतें

शारीरिक एवं सामाजिक आवश्यकता जन्य भी हो सकती है। संवेग तथा मूल प्रवृत्यात्मक भी हो सकती है तथा व्यक्ति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रवेश सम्बन्धी भी हो सकती हैं। आदतें मनुष्य के अनुभवों से संबंधित होती

व्यक्तिगत प्रेरणाएं :- ऐसी प्रेरणाएं जो व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए प्रेरित करती है। व्यक्ति प्रेरणाएं कहलाती है। कक्षा में श्रेष्ठता, धनार्जन, विश्वास पात्रता, प्रतिस्पर्द्धा, आदर्शो के प्रति निष्ठा तथा श्रेष्ठ आचरणों वाले एवं आध्यात्मिक पुरुषों के प्रति आभार प्रदर्शन, जीवन मूल्यों का निर्वाहन आदि सभी व्यक्तिगत प्रेरणाएं है। ये व्यक्ति की स्वयं संतुष्टि के लिए प्रेरणा देते है।

अभिलाषा एवं आकांक्षाएं :- अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु भी मनुष्य को कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। विद्यार्थी में ज्ञानार्जन खिलाडियों मे अपने खेल में श्रेष्ठता व्यापारी में व्यवसाय की प्रतिष्ठा हेतु भी कार्य की प्रेरणा इस अभिप्रेरक से प्राप्त होती है।

क्रीड़ा एवं खेलकूद :- इनसे २२म्बन्धित कार्यो द्वारा आनन्द की प्राप्ति होती है। मनोरंजन एवं शारीरिक स्फूर्ति प्राप्त होती है। अत: इनसे सम्बन्धित कार्यो को करने की प्रेरणा विद्यमान हैं।

निर्देश एवं अनुकरण :- सक्षम व्यक्ति द्वारा निर्देश एवं अपने आराध्य के अनुरूप बनने की इच्छा भी प्रेरणा का कार्य करती है। सही निर्देशन एवं उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत कर अनुकरणशीलता के आधार पर व्यक्ति को प्रेरित किया जा सकता है।

23.6.2 कृत्रिम प्रेरणाएं

ये बाहय अभिप्रेरणाएं जो कार्य -करने के पश्चात् उपलब्धियों तथा प्रभाव से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत कार्य परिणाम को ज्ञान प्राप्त होने वाला संयोग तथा उपलब्ध साधन एवं प्रभाव सम्मिलित है। इनसे सम्बन्धित अभिप्रेरक शरीर तंत्र एवं संरचना से बाहय है। इसका वर्ग के कुछ मुख्य प्रेरक निम्न

दंड एवं पुरस्कार - दंड नकारात्मक प्रेरणा है। इससे अस्वीकार्य कार्यो में सहभागिता से दूर रहने की प्रेरणा मिलती है। पुरस्कार सकारात्मक प्रेरणा है । इसे दिशा निर्देशन मिलता है। कार्यो को तत्परता से समयावधि में पूरा कर उसका प्रतिफल प्राप्त करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

सहयोग :- किसी कार्य का सम्पन्न करने हेतु सहयोग प्राप्त होने पर उस कार्य को करने से प्रेरणा प्राप्त होती है। उपलब्ध सहयोग को प्राप्त कर कार्य को सम्पन्न करने की इच्छा जाग्रत होती है। कार्य करने की सुविधाएं भी प्रेरणा प्रदान करती है।

फल का पूर्व ज्ञान :- कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् प्राप्त उपलब्धि या फल भी प्रेरणा - प्रदान करता है। प्रगति का पूर्व ज्ञान प्रेरणादायक होता है व्यक्ति की अपने कार्य के प्रति एवं उसके सम्पादन में रूचि विकसित हो जाती है।

मानसिकता एवं परिपक्वता :- व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं भावात्मक परिपक्वता भी कार्य के सम्पादन में सहायक है। व्यक्ति की मानसिकता एवं परिपक्वता कार्य में अपेक्षित सफलता हेतु महत्वपूर्ण है।

लक्ष्यों की स्पष्टता एवं आदर्श :- कार्य में अन्तनिर्हित लक्ष्य आदर्शो की स्पष्टता भी कार्य सम्पादन हेतु प्रेरणा का कार्य करती है। यदि लक्ष्य या आदर्श स्पष्ट, आकर्षक, जीवन्त एवं

सुखदायी होगे, तो व्यक्ति को कार्य की और प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्राप्त होगी तथा वह उस कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न कर उन्हें प्राप्त करना चाहेगा।

प्रभाव - प्राणी मनोविज्ञान के आधार पर कार्य के प्रभाव का प्रेरणा के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के जीवन में कार्य के सम्पादन द्वारा आनन्द एवं संतुष्टि की प्राप्ति प्रमुख उद्देश्य है।

व्यक्तिगत कार्य एवं सामूहिक कार्य - प्रारम्भिक स्थिति में कार्य के सम्पादन के द्वारा व्यक्तिगत आधार पर प्राप्त सुख-दुख, लाभ-हानि एवं संतुष्टि अधिक महत्वपूर्ण है। व्यक्तिगत दृष्टि से प्राप्त प्रेरणा को सामाजिक संदर्भ में शनैः शनैः परिवर्तन करना ही उचित है।

सहभागिता के अवसर एवं सुविधाएं :- किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संबंधित कार्यो में सहभागिता के अवसर यथा सुविधाएं भी अभिप्रेरणा का कार्य करती है। किसी प्रतियोगी परीक्षा हेतु सहभागिता के अवसर एवं सुविधाएं सहज ही उपलब्ध होने पर व्यक्ति कार्य करने के लिए तत्पर हो जाता है। विद्यालय में खेल की सुविधा होने पर खिलाड़ी की खेलने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

डॉ. एच. आर. भाटिया द्वारा मनुष्य की आवश्यकताओं को निम्न पांच भागों में विभाजित कर अभिप्रेरणा की व्याख्या की गई है।

(1) शारीरिक आवश्यकताएं :- प्राणी के शरीर-तंत्र की संरचना एवं उसमें संतुलन बनाए रखने संबंधी कुछ आवश्यकताएं है, जो पूर्ति के अभाव में और तीव्र हो जाती है तथा मनुष्य की विभिन्न रुचियों एवं कार्यो को अभिप्रेरित करती है।

(2) सुरक्षा संबंधी आवश्यकताएं :- यह पीडा, कष्ट, अभाव, डर आदि की अनुभूति के जनक है। मनुष्य स्वभाव से इनसे मुक्त रहना चाहता है, तथा सुरक्षा चाहता है। उसकी यह भावना उसे इस हेतु विभिन्न व्यवहार के लिए प्रेरित करती है।

(3) स्नेह संबंधी आवश्यकताएं :- यह प्राणी की जन्मजात एवं स्वाभाविक चाह है कि वह अपने इष्ट मित्रों के मध्य स्वस्थ व सुखदायक संबंधों का निर्वाह करता रहे। बालकों की शारीरिक आवश्यकताएं यथा भोजन-वस्त्र संबंधी आवश्यकताएं परिवार में पूरी होती है। वे असुविधा से मुक्त रहते है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए परिवार के साथ या उसके परिवार के सदस्यों का निरन्तर सहयोग प्राप्त करते रहना चाहते हैं उनका स्नेह पात्र बना रहना चाहते है।

(4) व्यक्तिगत पहचान सम्बंधी आवश्यकताएं :- अपना स्थान एवं पहचान यथा, प्रतिष्ठा, पद एवं महत्व प्राप्त करने की इच्छा भी अभिप्रेरणा का कार्य करती है । पारिवारिक स्तर एवं सामाजिक स्तर पर भी इससे प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। यह पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर भी प्रेरक का काम करती है और प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है।

(5) आत्म यथार्थीकरण तथा स्वचालित क्रियाओं संबंधी आवश्यकताएं - व्यक्ति की अपने बारे में धारणा एवं उसके अनुरूप अपने को सिद्ध करने का प्रयास इन आवश्यकताओं का जनक है। यह उसके सम्पूर्ण वातावरण से समायोजन से सम्बन्धित है। वह अपने को अपनी धारणाओं के अनुरूप सिद्ध करने के लिए प्रयास करता है। यह व्यक्ति की आत्म अभिव्यक्ति एवं आत्म-अनुभूति संबंधी आवश्यकता

वास्तव में आवश्यकता प्राणियों के अन्तर्गत वह मानता है जो किन्हीं उद्दीपनों या उद्देश्यों के संबंध में प्राणियों के क्षेत्र को व्यवस्थित करते हैं एवं उनको प्राप्त करने के लिए क्रियाशीलता की उत्पत्ति करने वाले होते है। आवश्यकता के सम्बन्ध में भाटिया का वर्गीकरण काफी तार्किक है - परन्तु मेसलो के वर्गीकरण दस संदर्भ में देखना काफी उपयोगी है।

मेसलो का वर्गीकरण :-

मेसलो ने अभिप्रेरकों को दो निम्न भागों में बाटा है :-

1. **जन्मजात अभिप्रेरक** - इनके अन्तर्गत भूख, प्यास, सुरक्षा एवं यौन संबंध आदि आ जाते है। ये सभी व्यक्ति के मूल प्रवृत्यात्मक पक्ष से सम्बन्धित है।
2. **अर्जित अभिप्रेरक** - इनके अन्तर्गत वातावरण जन्य अभिप्रेरक होते है जिन्हें पुन: उसने दो भागों में विभाजित किया है।
   (अ) सामाजिक अभिप्रेरक
   (ब) व्यक्तिगत अभिप्रेरक

सामाजिक अभिप्रेरकों में सामाजिकता, युयुत्सा, आत्म स्थापना (स्वीकार्यता) आदि आते है। जबकि व्यक्तिगत अभिप्रेरको के अन्तर्गत व्यक्ति की आदतें, रूचि, अभिवृत्ति तथा अचेतना अभिप्रेरक आते है। मेसलो ने अपने वर्गीकरण के आधार पर निम्न आवश्यकताओं को बनाया है।

- दैहिक आवश्यकताएं (Physiological Needs)
- सुरक्षा आवश्यकताएं (Safety Needs)
- प्रेम तथा सम्बद्धता आवश्यकताएं **(Love and Belonging Needs)**
- सादर आवश्यकताएं **(Esteem Needs)**
- आत्म वास्तवीकरण आवश्यकताएं **(Self-Actualization)**
- जानने और समझाने की इच्छा **(Desire to know and Understand)**

मेसलों ने जो आवश्यकता की तालिका दी है वह श्रेणी युक्त आवश्यकता संस्थान के कुछ संगठित नियमों पर केन्द्रित है । मैसलो ने यह श्रेणी विभाजन आवश्यकताओं कि तुलनात्मक संतुष्टि के आधार पर किया है जिसको चार्ट में निम्न रूप से दर्शाया जा सकता है।

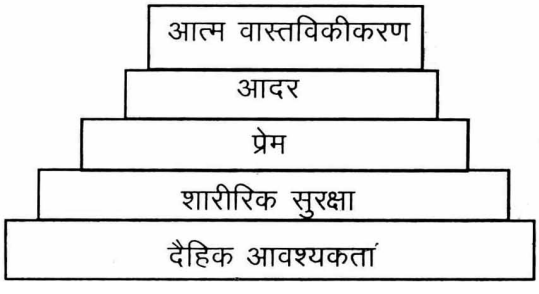

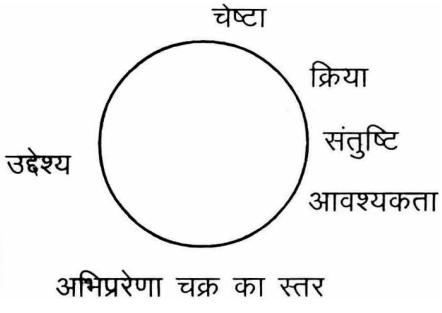

आवश्यकताओं का श्रेणी विभाजन - यदि आवश्यकता को अभिप्रेरणा के संदर्भ में देखे तो आवश्यकता उत्पन्न होने पर प्राणी चेष्टा कर किसी उद्देश्य की ओर क्रिया करता है। उद्देश्य की पूर्ति होने पर उसे संतुष्टि मिलती है । संतुष्टि के पश्चात् फिर आवश्यकता उत्पन्न होती है। और यह चक्र चला करता है, जिसे उक्त चित्र द्वारा भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

23.7.0 अभिप्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव

व्यक्ति के जीवन एवं उसकी शिक्षा में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक अभिप्रेरणा का आधार कोई लक्ष्य होता है। अत: व्यक्ति को लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। अभिप्रेरणा व्यक्ति ज्ञान होना आवश्यक है। अभिप्रेरणा व्यक्ति को कार्य करने को प्रेरित करती

है, कार्य की दिशा निर्धारित करती है। एवं लक्ष्य-प्राप्ति हेतु आवश्यक क्रियाओं को चयन करने एवं उन क्रियाओं को सम्पादित करने हेतु अग्रसर करती है। वह कार्य-सम्पादन में तब प्राप्ति हेतु यह आन्तरिक, शारीरिक तनाव होता है यह तनाव प्रयास करने हेतु व्यक्ति को सचेत करता है तथा व्यक्ति के प्रयास के द्वारा उपलब्धियों से उसे संतुष्टि एवं आनन्द प्राप्त होता है।

अभिप्रेरणा का सम्बन्ध व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति से भी है। शारीरिक रूप से बीमार एवं मानसिक रूप से विकृति वाले व्यक्ति में आन्तरिक एवं बाहय अभिप्रेरणा का. प्रभाव उचित दिशा और दशा में नहीं होता है जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में होता है। निर्धारित लक्ष्य की और कार्य की अभिप्रेरणा देते समय यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यक्ति के कई अन्य तनाव, संवेग एवं पूर्वाग्रह न हो। इसकी उपस्थिति अभिप्रेरक अपना वांछित प्रभाव नही छोड़ पाते है । अभिप्रेरणा हेतु अभिप्रेरक का उपयोग करने से पूर्व लक्ष्य से असंबंधित तनाव, संवेग एवं पूर्वाग्रह का प्रभाव निरस्त करना आवश्यक है।

उपर्युक्त अभिप्रेरको का चयन एवं उनका उपयोग करना कला है। अभिप्रेरणा देने हेतु विचारपूर्ण अभिप्रेरको का चयन या उपयोग करना चाहिए। जिस व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति हेतु अभिप्रेरित किया जाना है, उसकी व्यक्तिगत क्षमताओं और कार्य के लिए उपलब्ध साधन एवं सहयोग का ध्यान रखना चाहिए एवं उसकी व्यक्तिगत क्षमता और कार्य के लिए उपलब्ध साधनों और सहयोग पर भी विचार करना चाहिए। इस तरह दृष्टि से किया गया वास्तविक मूल्यांकन लक्ष्यपरक अभिप्रेरणा के चयन करने में उपयोगी सिद्ध होगा, तथा कार्य संपादन हेतु योग्य अनुक्रिया चुनने में भी सहायक होगा।

व्यक्तिगत विकास एवं उपलब्धियां, सामाजिक विकास एवं उपलब्धियों का आधार पर होते है। व्यक्तिगत उपलब्धियों / लक्ष्यों को सामाजिक उपलब्धियों / लक्ष्यों के संदर्भ में स्पष्ट करने का प्रयास किया जाना चाहिए । व्यक्ति को अपने द्वारा व्यक्तिगत लक्ष्यों हेतु कार्य सम्पादन का विस्तार सामाजिक कार्यो की और उन्मुख किया जाना चाहिए । व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं में सामाजिक महत्वाकांक्षाओं का स्वरूप आए, यह प्रयास आवश्यक है । सामाजिक उपलब्धियों तथा उसके आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा को स्पष्ट करना भी एक सशक्त अभिप्रेरणा सिद्ध हो सकती है ।

अभिप्रेरक के द्वारा व्यक्ति में अपना प्रदर्शन श्रेष्ठ कर दिखाने की इच्छा पैदा करनी चाहिए। लक्ष्य प्राप्ति के कार्य में व सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं समस्त शक्तियों के साथ प्रयास करने की शक्ति का स्पन्दन अनुभव करेंगे। उसे चाहिए इस प्रयास में न्यूनता न आने दे और निरन्तरता बनाये रखें ताकि वह लक्ष्य प्राप्ति तक उसने संलग्न रहे और इधर उधर चलाये मान न हो तथा अपने अवधान में व्यवधान न आने दे।

प्रशंसा, पुरस्कार एवं अभिलाषा अभिप्रेरक है परन्तु उनका ध्यान देने योग्य पक्ष है कि व्यक्ति का

प्रयास कार्य का सम्पादन द्वारा लक्ष्य प्राप्ति ही हो। ऐसा न हो जाये कि लक्ष्य तो ओझल हो जाये, या गौण बन जाए और केवल प्रशंसा पुरस्कार एवं अभिलाषा की प्राप्ति हेतु कार्य का संपादन हो। परीक्षा में श्रेष्ठ अंको को प्राप्त करने की चाह हेतु अभिप्रेरणा महत्वपूर्ण है। परन्तु उनके श्रेष्ठ अंको के आधार पर प्राप्त उपाधियों, उत्तीर्ण होने की श्रेणी एवं प्रमाण पत्र ही कोई लक्ष्य न बन जाए।

दंड, भय एवं भर्त्सना आदि सभी नकारात्मक अभिप्रेरक है। इनके माध्यम से किसी कार्य को न करने की प्रेरणा मिलती है। इसके कार्य करने में व्यक्ति की शक्तियों का समायोजन नही होता । वह संशय: की स्थिति में रहता है तथा दंड, भय भर्त्सना से बचने का ध्यान रखते हुए ही कार्य संपादित करता है। इस प्रकार की नकारात्मक अभिप्रेरणा से व्यक्ति की रचनाधर्मिता भी प्रभावी होती है। लक्ष्य की प्राप्ति में भी व्यवधान बना रहता है। इस प्रकार की प्रेरणा का उपयोग करते समय व्यक्ति को यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि यह सभी उसके हित में ही किया जा रहा है ।

अभिप्रेरणा हेतु यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति के सामने योग्य उदाहरण प्रस्तुत किया जाये । जिस प्रकार के कार्य संपादन की अपेक्षा उससे है, उसे अनुरूप उदाहरणों को अभिप्रेरक के रूप में उपयोग किया जाये। सामाजिक कार्यो रूचि जाग्रत करने हेतु महात्मा गांधी और डॉ अम्बेडकर आदि की जीवनी अभिप्रेरणा प्रदान कर सकती है। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के अनुसार जीवन जीने की प्रेरणा हेतु ऐसे ही व्यक्तियों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाने चाहिए जिन्होंने जीवन पर्यन्त श्रेष्ठ जीवन मूल्यों पर आधारित जिया है।

अभिप्रेरणा का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि अभिप्रेरकों के माध्यम से अभिप्रेरित व्यक्ति की आकांक्षाएं इतनी ऊँची न हो जाये, जिन्हे प्राप्त करना उसकी क्षमताओं की सीमाओं से बाहर हो जाये। ऐसी स्थिति में उसमें निराशा एवं भग्नाशा का जन्म होगा और वह प्रयासों से विमुख हो जायेगा। अभिप्रेरणाओं के प्रभाव से है सक्रियता का भाव नही ला सकेगा। वह हीन भावना से ग्रस्त हो जायेगा और वह हास्योन्मुख बनकर विकास प्रायसोंमुखी हो जायेगा।

कई बार एक अभिप्रेरक ही पर्याप्त शक्तिशाली अभिप्रेरणा प्रदान करने में सक्षम होता है। कई बार एक प्रकार की अभिप्रेरणा प्रदान करने हेतु कई अभिप्रेरकों का उपयोग करना आवश्यक होता है। किन्हीं स्थितियों में एक अभिप्रेरणा कार्य की सम्पन्नता तक पर्याप्त रूप से शक्तिशाली बनी रहती है। किन्हीं स्थितियों में कार्य को संपादन कराने हेतु कही अभिप्रेरकों का थोड़ा रूक कर बीच-बीच में प्रयोग करना आवश्यक होता है। अभिप्रेरणा का लक्ष्य अभिप्रेरित व्यक्ति की क्षमता एवं कार्य सम्पादन हेतु उपलब्ध साधनों का मूल्यांकन करते हुए निश्चय करना चाहिए।

व्यक्ति को निरन्तर प्रयासरत एवं लक्ष्योन्मुख बना रखने हेतु कई बार नई एवं अधिक सशक्त अभिप्रेरणाओं को पूर्ण अभिप्रेरको के स्थान पर प्रयुक्त करना उपयोगी होता है। नये अभिप्रेरकों का उपयोग करने में किसी भी प्रकार को संकोच नही करना चाहिए। अभिप्रेरकों से लक्ष्य महत्वपूर्ण है। सारा प्रयास उसकी प्राप्ति हेतु किया जा रहा है। अभिप्रेरणा द्वारा व्यक्ति की कार्य करने की रूचि के क्षेत्र का विस्तार होना चाहिए। अभिप्रेरणा व्यक्ति की रूचि की अनुकूलता लिए होने पर अधिक प्रभावी हो जाती है ।

अभिप्रेरणा हेतु अनेकानेक अभिप्रेरकों का उपयोग करना चाहिए जिससे उस व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व जिसे अभिप्रेरणा भी जा रही है, सक्रिय होकर कार्य संलग्न हो जाये। परन्तु ऐसी स्थिति में एक ऐसी अभिप्रेरक के चयन को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, जिसे अनेकानेक अभिप्रेरक समाहित हो। ऐसा अभिप्रेरक अन्य अभिप्रेरको का पोषक सिद्ध होगा। साथ ही लक्ष्य की और सीधी अभिप्रेरणा को उन्मुख करने के लिए विभिन्न प्रकार के विधि सम्मत अन्तर्नादों का उपयोग कर स्पष्टता, तीव्रता एवं प्रखरता प्रदान करने का श्रेष्ठतम प्रयास भी किया जाना चाहिए

अभिप्रेरणा प्रदान करने वाले के लिए यह आवश्यक है की वह अपना कार्य उत्साह एवं आत्मविश्वास के साथ सम्पन्न करे। उसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अभिप्रेरक किए जा

रहे व्यक्ति उपर्युक्त वातावरण प्रस्तुत करे। वह लक्ष्य प्राप्त हेतु कार्य में उसकी सहभागिता स्तर को गहन एवं विस्तृत बनाये। वह लक्ष्य प्राप्ति की दृष्टि से उसमें आराध्य के प्रति आराधना का भाव जाग्रत करे। इस भावना के विकास के साथ ही अभिप्रेरणा का प्रभाव कई गुणा जायेगा।

अभिप्रेरणा को संवेगो पर आधारित कर प्रस्तुत कर करना भी उपयोगी रहता है। संवेग के प्रभाव में लक्ष्य प्राप्ति हेतु कार्य क्षमता बढ़ जाती हैं। सामाजिक भावना का न्यायसंगत उपयोग भी इस दिशा में लाभकारी रहता है। व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप अभिप्रेरणाएं अधिक प्रभावी होती है। व्यक्ति की उसे आवश्यकताओं के अनुभूति कराना अथवा अनुभूत आवश्यकताओं के महत्व पर बल देना अभिप्रेरणाएं कार्य अथवा सीखने की प्रगति का ज्ञान भी कार्य की गति अथवा सीखने की प्रक्रिया को तीव्र बनाता है, तथा कार्य करने अथवा सीखने वाले का उत्साहवर्द्धन करता है। जिससे वह अधिक उत्साह एवं क्रियाशीलता का परिचय देता है। इस कारण से नैसर्गिक अन्तर्नाद एवं प्रेरक अधिक प्रभावकारी होते हैं। तथा बाहय अथवा अप्राकृतिक अन्तर्नाद एवं प्रेरक इतने अधिक प्रभावी नहीं होते है।

सीखने के लिए अभिप्रेरणा देने वाले का नकारात्मक एवं हतोत्साहित करने वाली प्रक्रियाओं जैसे चिन्ता, संशय, शर्म, आक्रोश, संदेह, विफलता, भग्नाशा आदि की अभिव्यक्ति उचित नही है। आलोचना को भी संयम भाषा में और प्रसन्न मुद्रा में ही व्यक्त करना चाहिए जिस सामने वाले में हीन भावना का विकास न हो, व लक्ष्योन्मुख होने के स्थान पर लक्ष्यविमुख न हो जाये ।

23.8.0 सारांश

इस इकाई में अध्ययन से स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा एक ऐसी जन्मजात या अर्जित प्रवृत्ति है जो जीवधारियों के व्यवहार को परिष्कृत, नियंत्रित, रूपान्तरित, पथ प्रदर्शित तथा परिचालित करती है। अभिप्रेरणा मुख्यत: दो प्रकार की होती है जन्मजात तथा अर्जित (कृत्रिम)। बडी कक्षाओं के छात्रों के अधिगम को अधिक गतिशील बनाने के लिए कृत्रिम अभिप्रेरणाओं का भी बडी सफलताओं पूर्वक प्रभावी उपयोग किया जा रहा है। विद्यालयों में शिक्षण के समय अभिप्रेरक अति उपयोगी है पर आवश्यकता यह है कि शिक्षक उचित समय पर छात्र की जरूरत के अनुसार उचित अभिप्रेरणा का प्रयोग करे।

स्वमूल्यांकन(Self-Evaluation)

1. अभिप्रेरणा की सीखने में क्या भूमिका है?
2. अभिप्रेरणा का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए?
3. अभिप्रेरणा की प्रक्रिया के अन्तनिर्हित पदों को स्पष्ट कीजिए?
4. अपने शिक्षण काल में आपके द्वारा संपादित किसी एक प्रेरणात्मक कार्य का उल्लेख कीजिए?
5. (अ) कृष्ण ने बिजली के गिटार पर अपने अभ्यास काल एक घंटे से बढ़कर दो घंटा प्रतिदिन कर दिया है।
   (ब) राम ने प्राचीन एवं अवार्चीन ऐतिहासिक प्रवृतियों के मध्य संबंध स्थापित करने में बड़ी तेज़ी से प्रगति की है।
   (स) दिनेश ने श्वास लेने की प्रक्रिया में सदैव रुचि एवं क्षमता का परिचय दिया है।

(द)	दाऊदयाल ने बहुत पहिले ही अज्ञात शब्दों का शब्दकोष से ज्ञान करने के आदत विकसित कर ली थी।

उपर्युक्त में से कौनसा व्यावहारिक उदाहरण अभिप्रेरणा प्रत्यय को श्रेष्ठतम ढंग से अभिव्यक्त करता है? अपने उतर के चयन मे अन्तर्निहित तर्कों 'को उल्लेख कीजिए। अन्य विकल्पों को अस्वीकार करने के संदर्भ में भी तर्क दीजिए।

6. अभिप्रेरणा की तीव्रता को कौन-कौन से तत्व प्रभावित करते है? अपने शिक्षण कार्यों के प्रभावी बनाने के दृष्टि से एक जागरूक शिक्षक को अभिप्रेरकों का चयन किसी प्रकार करना चाहिए?

23.9.0 संदर्भ

1. **Bhatia, Hans Raj** - Educational Psychology A Text Book of educational Psychology, 'Asia Publishing House, Bombay
2. **Charles E,Sjinner** - Educational Psychology'Prectice Hall,Inc,New York
3. **C.N.Cofer & M.H.Appely** - Motivation : theory and Research' Wliely Eastem Limited,Delhi
4. Garden Murphy - "An introduction to Psychology "Oxford & I B H Publishing Co. New Delhi
5. डा० रामनाथ शर्मा. शिक्षा मनोविज्ञान रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ
6. डा० एस. एस. माथुर - 'शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद 'रु पुस्तक मन्दिर, आगरा

इकाई-24

समायोजन

इकाई की संरचना

24.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य
24.2.0 भूमिका
24.3.0 कुसमायोजन के कारक
24.3.1 तनाव
24.3.2 दबाव
24.3.3 दुश्चिन्ता
24.3.4 भग्नाशा
243.5 द्वंद
24.4.0 समायोजन का अर्थ एवं परिभाषा
24.5.0 समायोजन की प्रकृति
24.6.0 समायोजन की प्रक्रिया
24.7.0 समायोजन कैसे हो
24.8.0 समायोजन की प्रतिमान
24.8.1 मनोविश्लेषणात्मक समायोजन प्रतिमान
24.8.2 व्यवहारवादी समायोजन प्रतिमान
24.8.3 मानवतावादी समायोजन प्रतिमान
24.9.0 सुसमायोजित व्यक्ति की विशेषतायें
24.10.0 समायोजन एवं शिक्षक
24.11.0 सारांश
24.12.0 संदर्भ

24.1.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

प्रस्तुत अभ्यास में समायोजन के विभिन्न पक्षों की चर्चा की गयी है। समायोजन से संबंधित विभिन्न संस्थितियो समायोजन हेतु व्यक्ति द्वारा चेतन व अचेतन स्तर पर अपनाई जाने वाली विभिन्न युक्तियों का संक्षिप्त परिचय यहां पर दिया गया है। इस अध्याय के अध्ययन के फलस्वरूप आप इस योग्य होने चाहिये कि-

- समायोजन के अर्थ को समझ सकें।
- समायोजन की प्रकृति से परिचित हो सकें।
- समायोजन की आवश्यकता क्यों होती है, इस पर विचार कर सकें।
- तनाव, दबाव, दुश्चिंता, भग्नाशा व द्वन्द्व आदि को समझ सकें।
- समायोजन की विभिन्न युक्तियां से परिचित हो सकें।

- सुसमायोजित व्यक्ति की विशेषताएं को जान सकें।
- समायोजन में शिक्षक की भूमिका को समझ कर व्यवहारिक जीवन में उसे उतार सकें

24.2.0 भूमिका

मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन अनुभव करता है। कुछ परिवर्तन अत्यन्त धीमी गति से होते हैं जिससे कि बिना अतिरिक्त प्रयास के मनुष्य उसके साथ अनुकूलन कर लेता है। कुछ परिवर्तन इतने आकस्मिक होते हैं कि मनुष्य का सुनियोजित जीवन लड़खड़ा जाता है। इसी लड़खड़ाहट का नाम है जीवन में समायोजन का अभाव। परिवर्तनों की निरन्तरता व आकस्मिकता दोनों समायोजन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं। एक मां अपने बालक को प्रथम बार विद्यालय में भेजने पर उसके समायोजन हेतु चिन्तित रहती है। सेवामुक्त व्यक्ति अपने आगामी जीवन में समायोजन हेतु उपबोधन की आवश्यकता का अनुभव करता है। जीवन के प्रारम्भ से अंत तक मानव समायोजन के प्रयास में लगा रहता है। समायोजन परिवर्तन के साथ अनुकूलन के रूप में हमारे सामने उभर कर आता है। यह स्पष्ट है कि परिवर्तन के प्रति अनुकूलन हमारे जीवन का एक अनवरत क्रम है।

समायोजन व्यक्ति की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं तथा वातावरण की मांग व बाधाओं के मध्य संतुलन है। समायोजन में अन्तर्निहित है- जीवन बनाये रखने के लिए परिवर्तन को सहज रूप में स्वीकार करते रहना समायोजन क्या है इसको समझने के लिए सर्वप्रथम जानना होगा समायोजन की आवश्यकता क्या होती है?

24.3.0 कुसमायोजन के कारक

जीवन में परिवर्तन के कारण मानव पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से मानव की रक्षा करना ही सामान्यत: समायोजना का प्रयोजन है। सर्वप्रथम उन दुष्प्रभावों का स्पष्टतः देखना होगा जिन्हें मनोवैज्ञानिकों ने अधिक परिश्रम से खोज निकाला है तथा जिनके कारण व्यक्ति को समायोजन की आवश्यकता पड़ती है। इन कारणों में प्रमुख हैं तनाव दुश्चिन्ता, भग्नाशा, द्वंद आदि । आइए इन कारणों के संबंध में संक्षिप्त में विचार करें।

24.3.1 तनाव

तनाव की स्थिति में व्यक्ति वातावरण द्वारा उत्पन्न मांग की पूर्ति में स्वयं को असमर्थ समझता है। व्यक्ति के लिए अपनी सीमित क्षमताओं में इन परिस्थितियों पर काबू पाना कठिन हो जाता है। जिससे तनाव उत्पन्न होता है। तनाव के आधार है व्यक्ति द्वारा किसी भी भयपूर्ण स्थिति का सामना करने की अपनी शक्ति का मूल्यांकन। अपनी आवश्यकतानुसार पढ़ सकने की अपनी क्षमता के बोध के आधार पर जो छात्र पहले भी सफल हो चुके हैं वे परीक्षा की पूर्व रात्रि में शान्ति से रहते हैं। किन्तु जो छात्र परीक्षा का सामना करने की अपनी क्षमता का मूल्यांकन नहीं कर सकते तथा इसी कारण पहले भी असफल हो चुके है। वे परीक्षा की पूर्व रात्रि में अत्यन्त तनाव ग्रस्त रहते हैं।

24.3.2 दबाव

जब व्यक्ति एक निश्चित स्तर के अनुसार जीवन जीने के संबंध में सोचता है अथवा जब व्यक्ति को त्वरित गति से होने वाले परिवर्तनों के साथ अनुकूलन करना होता है तब दबाव

उत्पन्न होता है। दबाव आन्तरिक व बाहय दोनों प्रकार के होते हैं। आन्तरिक दबाव का संबंध व्यक्ति की आत्म सम्मान को बनाये रखने की भावना से होता है। जबकि बाहय दबाव प्रतिद्वंद्विता का होता है।

24.3.3 दुश्चिन्ता

यह एक उलझनपूर्ण स्थिति है। दबाव में व्यक्ति उसका कारण जानता है1 किन्तु दुश्चिन्ता में व्यक्ति व्यग्र तो रहता है। किन्तु व्यग्रता का कारण नहीं जानता। मनोविश्लेषणवादियों के आधार के अनुसार व्यक्ति के जीवन मूल्यों से संघर्ष करती हुई इच्छा बलात् चेतन स्तर पर आना चाहती है। दुश्चिन्ता इसी आन्तरिक अचेतन के संघर्ष का लक्षण है। व्यक्ति किसी कार्य को गलत समझते हुए भी घनीभूत भावनाओं के फलस्वरूप वही कार्य करता है तब स्वयं को अत्यन्त थका हुआ व अवसादपूर्ण अनुभव करता है। यह स्थिति ही दुश्चिन्ता है। दुश्चिन्ता दो प्रकार की होती है -

1. **विशेषक दुश्चिन्ता** - व्यक्ति की विशेषताओं में से है जो व्यक्तित्त्व के साथ जुड़ी रहती है। प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति में विशेषत दुश्चिन्ता की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य रहती है।
2. **परिस्थिति की दुश्चिन्ता** - यह दुश्चिन्ता परिस्थितिजन्य होती है। इसमें विभिन्न परिस्थितियों में दुश्चिन्ता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है।

कुछ तनावपूर्ण परिस्थितियां व्यक्ति में अधिक दुश्चिन्ता उत्पन्न करती है। कुछ कम। अधिक अवधि की तथा आकस्मिक घटना व्यक्ति में अधिक मात्रा में स्थिति की दुश्चिन्ता उत्पन्न करती है। तनावपूर्ण घटना की सूचना भिन्न-भिन्न मात्रा में दुश्चिन्ता की मात्रा उत्पन्न करती है।

24.3.4 भग्नाशा

इस स्थिति में व्यक्ति अपने निर्दिष्ट उद्देश्य को त्याग देना अथवा बाधा पाता है। व्यक्ति के सम्मुख उद्देश्य को त्याग देना अथवा बाधाओं को दूर करना, दो ही विकल्प होते हैं।

कौलमेंन व हैमन ने भग्नाशा उत्पन्न होने के लिए जिन कारकों को प्रमुख माना है। उनमें प्रमुख हैं - उद्देश्य प्राप्ति में देर होना, असफलता की संभावना तथा सहायता की भावना आदि।

24.3.5 द्वंद

द्वंद वह स्थिति के जिसमें व्यक्ति दो असंगत मांग, अवसर, उद्देश्य अथवा आवश्यकताओं का सामना एक साथ करता है। द्वंद का पूर्ण हल संभव नहीं है। व्यक्ति को एक को छोड़ना पड़ता है अथवा दोनों को परिशोधित करना पड़ता है अथवा एक पूर्ति में देरी करना अथवा इस तथ्य के साथ समझौता करना पड़ता है कि कोई भी जीवन में पूर्ण संतुष्ट नहीं हो सकता है।

द्वंद की व्याख्या कुर्ट लेविन ने दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ उपगमन तथा परिहार के रूप में की है। जब कोई उद्देश्य आकर्षित करता है तब व्यक्ति उस और प्रवृत्त होना चाहता है। इसी प्रकार जब कोई उद्देश्य विकर्षित करता है। जब व्यक्ति उससे दूर जाना चाहता है अथवा

उसका परिहार करता है। इन दोनों प्रवृत्तियों के विभिन्न संयोजनों की सहायता से तीन मूलभूत प्रकार के द्वंद की व्याख्या की गई है।

प्रथम - उपागमन - उपागमन (Approach Approach) अर्थात् व्यक्ति एक साथ दो उद्देश्यों की ओर आकर्षित होता है तथा उन्हें प्राप्त करना चाहता है।

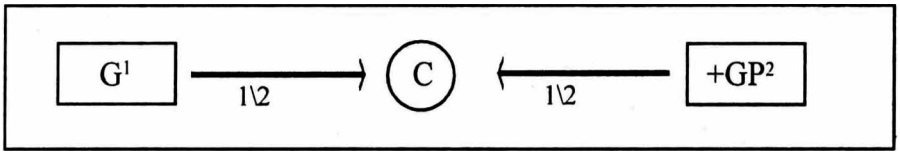

चित्र 1 Approach-Approach Conflict Conditions

दूसरा है -परिहार - परिहार (Avoidance Avoidance -) जब व्यक्ति का सामना दो अवांछनीय परिस्थितियों से होता है। दोनो ही परिस्थितियों से व्यक्ति दूर भागना चाहता है तब पलायन सम्भव नही होने पर विभिन्न तरीकों से परिस्थिति से समझौता करना चाहता है या व्यक्ति प्राय दोनों अवांछनीय परिस्थितियों के मध्य झूलता रहता है।

तृतीय - उपागमन (Approach)व परिहार के(Avoidance) **मध्य द्वंद** - जिसमें व्यक्ति एक ही उद्देश्य के प्रति आकर्षित भी होता है और है इसमें दूर भी भागना चाहता है। इसमें समस्या का हल कठिन होता हैं उद्देश्य की ओर प्रवृत्त होने की इच्छा व उद्देश्य से दूर भागने की इच्छा उद्देश्य के समीप होने पर बढ़ जाती है। और द्वंद गम्भीर हो जाता है।

24.4.0 समायोजना की परिभाषाएं

बोरिंग लैगफैल्ड तथा वेलड के अनुसार "समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन रखना है।"

स्किनर से कहां है "समायोजन..... अधिगम प्रक्रिया है।" गेट्स एवं अन्य के अनुसार "समायोजन एक सतत् प्रक्रिया है। जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व वातावरण के मध्य सामंजस्यपूर्ण संबंध के लिए अपने व्यवहार मे परिवर्तन करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि समायोजन एक अधिगम प्रक्रिया है। "प्रक्रिया के साथ ही समायोजन शब्द स्थित" को भी अभिव्यक्त करता हैं। व्यक्ति तथा वातावरण के मध्य समरसतापूर्ण संबंध ही स्थित के रूप में समायोजन की व्याख्या है। समरसता की मात्रा एक और व्यक्ति में अन्तर्निहित क्षमताओं तथा दूसरी ओर वातावरण की प्रकृति पर निर्भर है। समायोजन प्रक्रिया के अनुसार व्यक्ति आंतरिक आवश्यकताओं तथा वातावरण बाहय मांगो के मध्य संतुलन की स्थिति अनिवार्य है। इस तथ्य की स्वीकृति गेट्स महोदय भी करते है :-

"सार रूप से सुसामंजस्य समायोजन युक्त व्यक्ति वह है जिसके आवश्यकताएं व तृप्तियां सामाजिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संघटित होते है।"

कुछ मनोवैज्ञानिक समायोजन की प्रक्रिया में स्थिति के अतिरिक्त उपलब्धि को भी मत है समायोजन को उपलब्धि मामने पर वातावरण के साथ समायोजन की गुणवत्ता महत्वपूर्ण होती है इसमें व्यक्ति के समायोजन के मापन हेतु चार निर्धारक तत्व माने गये है।

– शारीरिक स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य, कार्य कुशलता तथा सामाजिक स्वीकृति।

समायोजन के अर्थ के अवबोध की प्रक्रिया के अनुसार है निष्कर्ष निकलता है कि समायोजन की अवधारणा अपनी प्रकृति मे बहुरूपी है। अत: समायोजन हेतु कोई भी एक पूर्ण परिभाषा देना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

24.5.0 समायोजन की प्रकृति

शिक्षकों को अपने दायित्व के प्रभावी निर्वाह हेतु समायोजन की प्रकृति का ज्ञान होना अपरिहार्य है। समायोजन की प्रकृति के मुख्य विशेषताएं निम्न है -

1. बालक निष्क्रिय रहने के बजाय सक्रिय रहकर अधिक अच्छी तरह से समायोजन कर सकता है।
2. समायोजन, स्वाभाविक होना चाहिए, बलात् नहीं।
3. समायोजन कोई रहस्यमयी वैज्ञानिक युक्ति नही है, अपितु यह स्वस्थ, पूर्वअधिगम की ही प्रक्रिया है।
4. बालक अपने 'स्व' तथा उपयोगिता की रक्षा के लिए भी प्रयास पूर्वक समायोजित होने के तरीके अपनाता है।
5. जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों के साथ समयानुसार समायोजन करना- सामान्य व्यक्ति का स्वाभाविक गुण है।

24.6.0 समायोजन की प्रक्रिया

दबाव को दूर करने के लिए मांगो के साथ तालमेल बिठाना ही समायोजन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के निम्न सोपान हैं-

- दबाव युक्त परिस्थिति का मूल्यांकन
- समस्या समाधान हेतु निर्णय
- संभावित निर्णयों में उपयुक्त विकल्प की क्रियान्विति
- प्रतिपुष्टि करना
- इन सबके परिणामों का समायोजन हेतु प्रयोग

जब भी दबाव सहनशीलता की एक निश्चित सीमा से बढ़ जाता है तक स्वत: व्यक्ति समस्या के हल की और बढ़ जाता है। दबाव को दूर करने का प्रयास व्यक्ति के स्वयं के संदर्भ, उद्देश्य, क्षमता, सहिष्णुता वातावरणीय सीमाओं तथा सहायता पूर्व में अनुभव की गई मानसिक इच्छाओं, सामाजिक मांगो तथा अपेक्षाओं पर निर्भर करता है।

दबाव का सामना करते समय व्यक्ति के सम्मुख दो समस्याएं आती है। प्रथम समायोजन सम्बन्धी मांग की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा द्वितीय "स्व" की मनौवैज्ञानिक क्षति तथा विघटन से रक्षा करना दबाव का सामना करने की व्यक्ति की क्षमता के अनुसार उसका समायोजी प्रतिमान होता है ये प्रतिमान प्रमुखत: दो प्रकार के होते है।

(क) कार्यअभिमुखी प्रतिमान (Task oriented pattern) इस प्रतिमान में व्यक्ति की दबाव की स्थिति का सामना करने में स्वयं को सक्षम पाता है।

(ख) रक्षा अभिमुखी प्रतिमान (Defense oriented pattern) जब व्यक्ति दबाव का सामना करने में असमर्थ होता है, तो वह इस प्रतिमान को अपनाता **है।**

स्वमूल्यांकन (Self-Evaluation)

1. विशेषक दुश्चिंता से परिस्थिति की दुश्चिंता से किस प्रकार भिन्न है?
2. समायोजन की प्रकृति की विशेषताओं को समझाइए।
3. कुर्ट लेविन के आधार पर द्वंद की परिस्थितियाँ बताइये।
4. समायोजन की प्रक्रिया के सोपानों का वर्णन कीजिये।

समायोजन कैसे हो :-

मनोवैज्ञानिकों ने समायोजन के दो सामान्य प्रकार स्पष्ट किये हैं

(1) प्रत्यक्ष संयोजन (Direct coping) तथा (2) रक्षात्मक संयोजन (Defensive coping)। प्रत्यक्ष संयोजन से तात्पर्य है कि असुविधाजनक अथवा तनाव युक्त परिस्थिति के विकल्प के रूप में व्यवहार करना तथा अपने उद्देश्य एवं क्षमता के मध्य की बाधा को हटाना रक्षात्मक युक्ति युक्त संयोजन से तात्पर्य है कि. व्यक्ति का विभिन्न तरीकों से स्वयं को विश्वास दिलाना कि वस्तुत: वह भयभीत नहीं है, कोई समस्या भी नहीं है अथवा वे जिसे प्राप्त नहीं कर सकता उसकी इच्छा नहीं कर रहा है। रक्षात्मक युक्ति वस्तुत: अचेतन के द्वन्द के हल के रूप में एक प्रकार की आत्मवंचना है अर्थात् व्यक्ति किसी समस्या को चेतन स्तर पर लाकर प्रत्यक्ष रूप से उसका सामना करने में असमर्थ होता है। आइए संक्षेप में प्रत्यक्ष संयोजन तथा रक्षात्मक युक्ति पर विचार करें।

24.7.1 प्रत्यक्ष संयोजन (Direct Coping)

दबाव, निराशा अथवा द्वंद के साथ समायोजन के लिए प्रत्यक्ष संयोजन के लिये तीन प्रमुख विकल्प हैं प्रथम व्यक्ति जिस परिस्थिति में निराशा का अनुभव कर रहा है, उस परिस्थिति को परिवर्तित कर देना। द्वितीय में व्यक्ति को स्वयं को परिवर्तित कर देना तथा तृतीय में परिस्थिति से स्वयं को दूर कर लेना। प्रत्यक्ष संयोजन के तरीके है-

(क) समझौता करना (Compromise)

निराशा अथवा द्वंद के साथ संयोजन के लिए सबसे अधिक प्रचलित तरीका समझौता (Compromise) करना है। जिसमें द्वंद के लिये उत्तरदायी विभिन्न पक्षों अर्थात् व्यक्ति की क्षमता उद्देश्य तथा परिस्थिति में से थोड़ा-थोड़ा त्याग करके एक समझौता करना पड़ता है।

(ख) आक्रामकता (Aggression)

जिन व्यक्तियों को बलात् समझौता करना पड़ता है वे क्रोध का अनुभव करते हैं, क्योंकि मनोवैज्ञानिक यह अनुभव करते हैं कि व्यक्ति जन्मजात आक्रामक प्रवृत्ति का होता है। मनुष्य प्रकृत्या स्वयं की प्रतिरक्षा करना चाहता है, अपनी वस्तु की रक्षा करना चाहता है। तथा अपने शत्रु का विनाश करना चाहता है। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के मार्ग में जो भी बाधा आती हैं उसे अनुमति नहीं देता। अत: ठोकर मार कर, अपशब्द कहकर या कई तरीकों से अपनी निराशा को अभिव्यक्त करता है। आक्रामक व्यवहार की सफलता दो बातों पर निर्भर करती है- प्रथम, उद्देश्य व व्यक्ति के मध्य बाधक कौन है ' द्वितीय, आक्रामकता की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शत्रु शक्ति में व्यक्ति से कम हो।

(ग) निवर्तन (Withdrawal)

बहुत सही परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनके साथ प्रत्यक्ष संयोजन में निवर्तन ही सबसे प्रभावी तरीका होता है। विशेषत: जबकि हमारी दुश्चिन्ता तथा निराशा किसी अत्यन्त दबावपूर्ण घटना से जुड़ी हो। सामान्यत: निवर्तन का संबंध समस्या का सामना करने के निषेध से लगाया जाता है। किन्तु जब व्यक्ति का प्रतिद्वन्दी उसकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है तब स्वयं को परिवर्तित करके या परिस्थिति को परिवर्तित कर किसी एक समझौते पर पहुँचना पड़ता है।

24.7.2 रक्षा युक्ति युक्त (Defense coping)

रक्षा युक्तियों को मानसिक युक्तियाँ भी कहा जा सकता है। दबाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया ही रक्षा की युक्तियाँ हैं। समय-समय पर व्यक्ति जीवन में तनाव, दबाव, द्वन्द्व, भग्नाशा तथा दुश्चिन्ता से घिर जाता है। चेतना स्तर पर वह इन सबसे ऊपर निकलने का पूरा प्रयास करता है किन्तु हमेशा वह इसमें सफल नहीं होता है। तब उसका अचेतन अनेक प्रकार की रक्षा युक्तियाँ विकसित कर अपने विशिष्ट तरीकों से दबाव का सामना करता है। व्यक्ति के "स्व" की रक्षा कर व्यक्ति को सांवेगिक असन्तुलन से बचाता है। इसलिये अचेतन स्तर की इन क्रियाओं को रक्षा युक्तियाँ कहा जाता है। बालक के मानसिक विकास में रक्षा युक्तियों की महत्ती भूमिका है।

रक्षायुक्तियों के प्रकार :

कुछ प्रमुख प्रकार की रक्षा युक्तियों का परिचय यहाँ पर दिया जा रहा है।

प्रतिक्रिया विधान (Reaction formation)

किसी ऐसे व्यवहार के नियमित ताने बाने का दृढ़ बन जाना जो किसी प्रबल अचेतन प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष विरोधी हो। जैसे डर को दबाने या उससे इंकार करने के लिये व्यवहार का आक्रामक बन जाना। समायोजन की यह महत्वपूर्ण रक्षा युक्ति दुखद अनुभव को कम कर व्यक्ति के 'स्व' की रक्षा करती है। अचेतन की अवांछनीय इच्छाओं को दमित कर श्रेष्ठ विचारों को प्रतिक्रिया विधान को अपनाना एक अच्छी रक्षा युक्ति हैं। उदाहरणार्थ यदि घृणा के स्थान पर प्रेम का उदय हो। किन्तु यदि अत्यधिक आक्रामकता अधिक श्रेष्ठ होने की भावना, अत्यधिक आदर्श मूलक अभिवृति, अत्यधिक नैतिकता अथवा अत्यधिक धार्मिकता विकृत विकास हो तो यह मानसिक विघटन तथा मानसिक रूग्णता के लक्षण होते हैं।

प्रक्षेपण (Projection)

व्यक्ति अपनी विशेषताओं, अभिवृत्तियों अस्वीकृत इच्छाओं, कमियों आदि को दूसरे पर आरोपित कर देता है। किसी वस्तुनिष्ठ उद्दीपन को अपनी इच्छाओं, अभिवृत्तियों आदि के अनुसार ही देखना तथा उसकी वैसी ही व्याख्या करना प्रक्षेपण के अन्तर्गत आता है। इस रक्षा युक्ति का आवश्यकता से अधिक प्रयोग व्यक्ति को कुसमायोजित व्यक्ति के रूप में परिवर्तित कर देता है।

दमन (Repression)

इस रक्षा युक्ति में व्यक्ति का अहं (Ego) उसके चेतन मन को अवांछनीय लगने वाले तथा उसके आदर्शो का विरोध करने वाले विचारो व इच्छाओं आदि को अचेतन मन में ढकेल देता है। जहाँ वे क्रियाशील रहते हुए उसके व्यक्तित्व को अस्वीकार ही नहीं करता अपितु उनकी सत्ता से ही इनकार कर उन्हें चेतना स्तर पर नहीं आने देता। दुखद एवं अवांछनीय इच्छाओं और अनुभवों को भूलना अच्छा है। ऐसी स्थिति में दमन की रक्षा युक्ति उपयुक्त है।

स्थिरता (Fixation)

स्थिरता से तात्पर्य है- किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष के प्रति अतिशय लगाव तथा उसे लम्बे समय तक बने रहना। उदाहरणार्थ- एक बालक बाल्यकाल में अच्छी पोशाक के अभाव के फलस्वरूप उसके प्रति विशेष लगाव रखते हुए अच्छी पोशाक के प्रति स्थिरण का विकास कर लेता है अपने वयस्क जीवन में आवश्यकता से अधिक शौक अच्छी पोशाक के लिये पैदा कर लेता है। इस रूप में यह रक्षा युक्ति का प्रयोग दमित इच्छाओं के चेतन स्तर पर आकर व्यक्ति को उपहास पात्र बनाने से उसकी रक्षा करती है।

यथार्थ का अस्वीकार

व्यक्ति यथार्थ स्थिति को स्वीकार नहीं करता है। यथा किसी व्यक्ति का अत्यन्त दुखद घटना को सुनकर अचानक अचेत हो जाना अर्थात् उसका दुखद परिस्थिति का यथार्थता को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। इस रक्षा युक्ति के निम्न प्रकार होते है।

(क) **दिवास्वप्न** - दमित या भग्न अभिलाषाओं की अनुचित संतुष्टि के प्रयास में व्यक्ति जागृत अवस्था में विविध अनियन्त्रित कल्पनाओं अथवा निष्प्रयोजन चिन्तन में ही डुबे रहना दिवास्वप्न है। इस प्रकार व्यक्ति यथार्थ की संघर्षपूर्ण स्थिति से बचा रहता है। ये दो प्रकार के होते हैं - एक तो विजेता के रूप में, दूसरे कष्ट सहने वाले के रूप में। अपनी क्षमता के अनुसार भविष्य के लिये चिन्तनशील दिवास्वप्न व्यक्ति में साहस व आशा का संचार करता है। इसके अतिरिक्त अव्यावहारिक दिवास्वप्न व्यक्ति को निराशा व असफलता की और ले जाते हैं। जिसमें समायोजन के अवसर न्यूनतम होते हैं। व्यक्ति अपने आप में उलझकर, सिमटकर, जीवन की वास्तविकताओं से परे हो जाता है। यह स्थिति व्यक्ति को मनस्ताप तथा तंत्रिका ताप की ओर ले जाती है।

(ख) **प्रतिगमन** - इससे तात्पर्य है आन्तरिक या बाहय संघर्षों से किसी प्रवृत्ति, आवश्यकता या लक्ष्य में बाधा पड़ने के कारण मानसिक शक्ति के स्वाभाविक प्रवाह का उलट जाना। जिससे उसकी अभिव्यक्ति पूर्व के स्तर के व्यवहार के अनुरूप हो जाती है। यथार्थ से पलायन के लिये जब व्यक्ति अपनी आयु के अनुकूल व्यवहार न करके उसके पूर्व की आयु के अनुसार व्यवहार करता है तथा अपनी आयु के अनुसार अपने उत्तरदायित्वों से अपने आपको दूर कर लेता है। यथा जीवन की यथार्थताओं का सामना करने में सक्षम वयस्क व्यक्ति बालकों अथवा किशोरों के समान व्यवहार करने लगे।

(ग) **निषेध प्रवृत्ति -** यह रक्षा युक्ति यथार्थता से पलायन की एक अन्य युक्ति है जिसके अन्तर्गत दूसरे के सुझाव का बिना किसी प्रत्यक्ष अथवा वस्तुनिष्ठ कारण के ही सदैव प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति को रखा जा सकता है। कठोर और अमनोवैज्ञानिक व्यवहार बालक में इस प्रकार की रक्षा युक्ति का विकास करने में सहायक होते हैं।

क्षतिपूर्ति

इसमें व्यक्ति अपनी कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। एक व्यक्ति किसी एक क्षेत्र में असफल रहने का दूसरे क्षेत्र में सफलता के लिए प्रयत्न करता है। यह रक्षायुक्ति व्यक्ति को हीन भावना से होने वाली क्षति से बचाती है। अपनी कमियों को सृजनात्मक कार्यो द्वारा दूर करने की दृष्टि से स्वस्थ रक्षायुक्ति हैं। किन्तु यह रक्षा युक्ति यदि मात्र मानसिक रूप में होती है

तो हानिप्रद है क्योंकि अपनी कमियों को दूर करने के लिए व्यक्ति केवल वैचारिक स्तर पर ही सीमित हो जाता है उसे व्यवहार में परिणित नहीं करता।

उदात्तीकरण (Sublimation)

आदिम प्रवृत्तियों की शक्तियों को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी लक्ष्यों की ओर दिशातरित कर उन्हें परिष्कृत रूप देने की अचेतन प्रक्रिया ही उदातीकरण है। इसमें इच्छायें वांछनीय रास्तों की ओर प्रवृत्त हो जाती. है जिसमें व्यक्ति की विभिन्न ग्रंथियों व निराशाओं का शोधन हो जाता है। व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए यह महत्वपूर्ण रक्षायुक्ति है।

युक्तिकरण (Rationalization)

इस युक्ति में व्यक्ति अपनी असफलताओं व निराशाओं को तार्किक आधार पर अभिव्यक्ति देकर अपने अहं (इगो) की तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा करता है। जीवन में समायोजन व संतुष्ट रहने के लिए यह रक्षायुक्ति उपयोगी है किन्तु इसके अधिकतम उपयोग से व्यक्ति आत्मवंचना का शिकार होता है अर्थात् ढोंगी हो जाता है। उसकी कथनी ओर करनी में अंतर होता है और विश्वसनीय नहीं होता।

तादात्मीकरण (Identification)

इनमें व्यक्ति अपने को किसी अन्य व्यक्ति या समूह से इतना अधिक संबद्ध कर लेता है। कि वह उसके मूल्यों, आदर्शो, मान्यताओं और व्यवहार के तौर तरीकों को अपना ही समझने लगता है। इस प्रकार जो कार्य वह स्वयं नहीं कर पाता उसे उस व्यक्ति विशेष द्वारा पूरा होते देखकर माता के साथ स्वयं को संबंधित कर लेती है। वस्तुतः यह अनुसरण नहीं है। क्योंकि अनुसरण चेतन स्तर पर होता हैं यह जटिल मानसिक की स्वयं की व दूसरों की दृष्टि में अपने आत्म सम्मान की रक्षा करना व आत्म सम्मान को बढ़ाना है। यह तादात्मीकरण व्यक्तियों, विचारों तथा संस्थाओं के साथ हो सकता है।

विस्थापन (Displacement) :

इसमें व्यक्ति किसी अभिप्रेरक के संतुष्ट न होने अथवा किसी प्रयत्न के विफल हो जाने से उत्पन्न आक्रामक तथा शत्रुतापूर्ण भावनाओं को उस दुश्चिन्ताजनक मूल स्थिति या व्यक्ति से हटाकर अनजाने ही उससे एकदम असंबद्ध किसी अन्य व्यक्ति या स्थिति पर केंद्रित कर देता है। उदाहरणार्थ बालक अपने से बड़ी से मार खाकर छोटों को मारता है अथवा खिलौने तोड़ देता है। इससे मानसिक तनाव से मुक्ति थोड़े ही समय के लिए होती है। अतः इस युक्ति का सीमित उपयोग ही उपयुक्त है।

विपर्याय (Conversion) :

इस रक्षायुक्ति का अर्थ है कि दमन की गई मनोग्रंथि की किसी प्रभावक द्वारा अर्थात शारीरिक लक्षणों द्वारा अभिव्यक्ति। शारीरिक लक्षण दमन की गई मनोग्रंथि की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होते हैं जिससे दमित इच्छा की परोक्षतः तृप्ति होती है। इसमें व्यक्ति पक्षाघात, जी घबराना, सिर दर्द, हिस्टीरिया आदि शारीरिक लक्षणों के माध्यम से जीवन की कठोर वास्तविकताओं से स्वयं की रक्षा के प्रयास में मानसिक अस्वस्थता के स्थान पर शारीरिक अस्वस्थता को स्वीकार कर लेता है। जिससे अपने मित्रों व निकटस्थ संबंधियों से सहानुभूति प्राप्त कर अपने आप को सुरक्षित व महत्वपूर्ण समझकर संतुष्ट हो जाता है। विपर्याय का एक सीमा से अधिक उपयोग मानसिक असंतुलन का कारण हो सकता है।

बौद्धिकीकरण (Intellectualization):

इस रक्षायुक्ति में व्यक्ति वैयक्तिक घटना का सामान्यीकरण कर समायोजन करता है। उदाहरणार्थ किसी दुखद घटना घटने पर उसे ईश्वरेच्छा कहकर अपने दु:ख को कम करना चाहता है। किंतु इस युक्ति की अधिकता से आत्मवंचना भी संभव है जो मानसिक अवस्था व कुसमायोजन की द्योतक है। किंतु यदि आत्मवंचना न हो तो यह युक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसी के माध्यम से श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को कर्तव्यबोध कराने का प्रमाण उपलब्ध है ।

स्वमूल्यांकन (Self-Evaluation)

1. प्रत्यक्ष संयोजन तथा रक्षात्मक संयोजन में अंतर बताइए।
2. प्रतिक्रिया विधान से आप क्या समझते हैं?
3. युक्तिकरण विधा को समझाइए।
4. विपर्याय के लक्षणों का वर्णन कीजिए।

24.8.0 समायोजन प्रतिमान (Adjustment Model)

समायोजन हेतु मनौवैज्ञानिक ने अपने-अपने सिद्धांतों के आधार पर समायोजन प्रतिमान प्रस्तुत किए हैं। प्रतिमान वस्तुत: मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगों के आधार पर प्राप्त सिद्धांतों में परस्पर संबंध स्थापित करना है। प्रतिमानों में पूर्णता तथा विस्तार की दृष्टि से भिन्नता हो सकती है। समायोजन की दृष्टि से इस अध्याय में तीन प्रतिमान प्रस्तुत किए जा रहे है। प्रत्येक प्रतिमान का यहाँ वर्णन प्रतिमान के मूलभूत सिद्धांत तथा मनोवैज्ञानिक विचारो 'पर प्रभाव के संदर्भ में किया जा रहा है।

24.8.1 मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान (Psychoanalytic Model)

यह प्रतिमान सिगमंड फ्रायड के कठिन परिश्रम का परिणाम है। यह प्रतिमान अत्यंत जटिल है। किंतु जटिल होने के साथ ही सुव्यवस्थित भी है।

मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान के प्रमुख सिद्धांत : इस प्रतिमान के प्रमुख सिद्धांत निम्न हैं:

(क) इड, अहम (Ego) तथा पराअहम् (Super Ego)

व्यक्तित्व में अंतर्निहित इन तीनों उपविधानो की परस्पर अंतर्क्रिया पर ही व्यक्ति का व्यवहार आधारित होता है।

(ख) दुश्चिंता, रक्षायुक्तियाँ तथा अचेतन :- दुश्चिन्ता मनोविश्लेष्णात्मक प्रतिमान में सबसे महत्वपूर्ण है। फ्रायड के अनुसार तीन प्रकार की दुश्चिन्ता होती है। यथार्थ दुश्चिन्ता स्नायुविक दुश्चिन्ता तथा नैतिक दुश्चिन्ता। दुश्चिन्ता व्यक्तित्व के आंतरिक विघटन के लिए भयावह चेतावनी होती है। प्राय: अहं तर्कसम्मत उपायों की सहायता से दुश्चिन्ता के दूर करने के लिए समायोजन करता है। तर्कसम्मत उपायों के असफल होने पर रक्षा युक्तियों की सहायता से दुश्चिन्ता से समायोजन करता है। दूसरा महत्वपूर्ण तत्व इस प्रतिमान में अचेतन का है। फ्रायड के अनुसार अचेतन की अपेक्षा चेतन, मस्तिष्क का एक छोटा सा भाग है। फ्रायड ने पानी में डूबे हिम खंड से चेतन व अचेतन की तुलना की हैं व्यक्ति अचेतन से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। किंतु फिर भी अचेतन सदैव अभिव्यक्ति के अवसर खोजता रहता है तथा कल्पना एवं स्वयं की सहायता से अभिव्यक्ति देता है।

(ग) मनोयौनात्मक विकास :- फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का विकास विभिन्न चरणों में होता है। प्रत्येक अवस्था यौन आनंद की विशिष्टता लिए हुए होती है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व के विकास की निम्न अवस्थायें होती है।

गुद अवस्था (Anal) मौखिक (Oral) लिंग अवस्था (Phallic) काम प्रसुप्ति काल, जननांगिक (Genital)।

प्रत्येक अवस्था की व्यक्तित्व से एक विशेष मांग होती है। मांग की पूर्ति द्वंद के समाधान के लिए आवश्यक होती है।

(घ) मनोनैदानिक स्थिति के प्रति विचार :- मनोविश्लेषणवादी प्रतिमान के अनुसार व्यक्ति मूल प्रवृत्यात्मक जैविक चालकों, अचेतन इच्छाओं और प्रेरकों से अपने व्यवहार हेतु प्रभावित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में सृजनात्मक केन्द्रीय रागात्मक शक्ति (Libido) भी होती है। इस केन्द्रीय रागात्मक शक्ति का विघटनात्मक पक्ष भी होता है जो मनुष्य का सर्वनाश व मृत्यु की ओर ले जाता है। अहं के आधार पर व्यवहार तर्कसम्मत होता है, जबकि अंतर्मानसिक द्वंद, रक्षायुक्तियां तथा अचेतन व्यक्ति के अतार्किक तथा अपव्यनुकूल (Maladaptive) व्यवहार के प्रेरक होते है। व्यक्ति के व्यवहार का आधार इन सबके अतिरिक्त उसका अधिगम भी होता है। मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान मानव व्यवहार के नकारात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। यह नकारात्मक दृष्टिकोण मानव व्यवहार के तार्किक तथा आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता के महत्व को कम करता है। यद्यपि यह प्रतिमान काफी आलोचना का विषय रहा है किन्तु फिर भी मनुष्य के सामान्य व असामान्य व्यवहार के संबंध में फ्रायड का महत्वपूर्ण योगदान हैं अत: फ्रायड द्वारा प्रस्तुत मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान के विभिन्न संप्रत्यय मानव व्यवहार के संबंध में चिंतन के लिए मूलभूत व महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करते है।

24.8.2 व्यवहारवादी प्रतिमान (Behavioristic Model)

व्यवहारवादियों ने इस प्रतिमान के लिए अधिगम को आधार बनाया हैं व्यवहारवादी प्रतिमान के केंद्र "मानव व्यवहार में अधिगम की भूमिका" है।

व्यवहारवादी प्रतिमान के मूल सिद्धांत:- इस प्रतिमान में अधिगम ही केंद्रीय सिद्धांत है। अधिकांशतः मानव व्यवहार अधिगम के माध्यम से होता है। अत: व्यवहारवादियों ने अधिगम कैसे होता है, इसी को महत्व दिया तथा निम्न तथ्यों को विशेष रूप से ध्यान में रखा:-

- शास्त्रीय तथा क्रियाप्रसूत अनुकूलन में व्यवहार उद्दीपक पर निर्भर करता है।
- शास्त्रीय व क्रियाप्रसूत अनुकूलन में पुनर्बलन प्रधान तत्व है। पुनर्बलन अर्थात उद्दीपन की निरंतर पुनरावृति से नई अनुक्रिया का दृढ़ीकरण होता है।
- सामान्यीकरण व विभेदीकरण के संदर्भ में उद्दीपक की समानता के आधार पर समान उद्दापक से भी समान अनुक्रिया प्राप्त होती है।

व्यवहारवादियों द्वारा प्रस्तुत उक्त प्रतिमान की, प्रतिरूपण व प्राथमिक तथा माध्यमिक चालकों के आधार पर अधिक स्पष्ट व्याख्या की जा सकती है। प्रतिरूपण का अर्थ है, वांछित अनुक्रिया प्रतिमान का अधिगमकर्त्ता द्वारा प्रदर्शन किया जाना शेपिंग (Shaping) की प्रक्रिया के माध्यम से उस अनुक्रिया की उत्पत्ति होती है, जो इस प्रजाति के प्राणी में जैविकता की दृष्टि से नहीं होती, यथा कबूतरों का पिंग पोंग खेलना। इस प्रक्रिया की सहायता से जटिल अधिगम हेतु जटिल अनुक्रिया करवायी जा सकती है।

व्यवहारवादियों के अनुसार मानव के व्यवहार की उत्प्रेरणा हेतु प्रथमत: जैविक चालक कार्य करते हैं। किन्तु इसके साथ ही अनेक प्रकार के अन्य चालक भी मानव को व्यवहार के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। वस्तुत: वे सभी प्रेरक इन प्राथमिक जैविक चालकों का अधिगमित विस्तार है।

मनोनैदानिक विचारो पर प्रभाव:

मनोनैदानिक विचारों पर व्यवहारवाद के प्रतिमान के प्रभाव को यदि देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि व्यवहारवाद द्वारा व्यवहार के अर्जन परिष्करण तथा विभेदीकरण की व्याख्या का प्रयत्न भी किया गया है। यह प्रतिमान विशिष्ट व्यवहार की परिवर्तनशीलता तथा व्यवहार की वस्तुनिष्ठता आदि का सूक्ष्म विश्लेषण करने में भी सक्षम है। किन्तु इसके साथ ही कुछ बिन्दु व्यवहारवादियों के इस प्रतिमान को आलोचना का विषय बनाने में सहायक है यथा-

यह प्रतिमान मानव व्यवहार के जटिल पक्षों को सुलझाने में असफल रहा है। विषयगत अर्थात अधिगमकर्त्ता के अनुभवों संबंधी विश्लेषण जीवन मूल्यों का पक्ष तथा मानव जीवन में इन मूल्यों की अवस्थिति के महत्व तथा व्यवहार के लिए आत्मनिर्देशन संबंधी समस्याओं का भी कोई हल व्यवहारवादियों के इस प्रतिमान द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया।

किन्तु निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि व्यवहारवाद के प्रतिमान में जो कमियां हैं उनके बावजूद भी यह मानव प्रकृति व मानव व्यवहार संबंधी विचारो को काफी सीमा तक प्रभावित करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। मनोनैदानिक विचारो पर भी इनका प्रभाव विशिष्ट रूपेण परिलक्षित होता है।

24.8.3 मानवतावादी प्रतिमान (Humanistic Model) :

इस प्रतिमान को मनोविश्लेषणवादी व व्यवहारवादी प्रतिमान दोनों ने ही प्रभावित किया है। किंतु फिर भी मानवतावादी प्रतिमान दोनों ने ही प्रभावित किये हैं किन्तु फिर भी मानवतावादी प्रतिमान इन दोनों से ही कुछ सीमा तक असहमति भी रखता है। मानवतावादी प्रतिमान व्यक्ति की मूल प्रकृति के "अच्छा होने" में विश्वास रखता हैं मनुष्य में उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से आत्मनिर्देशन की प्राकृतिक क्षमता होती है। इसी तथ्य को इस प्रतिमान में अत्यधिक महत्व दिया गया है।

मानवतावादी प्रतिमान के प्रमुख सिद्धांत:

मनुष्य की अंतर्निहित क्षमताओं में इस प्रतिमान का अखंड विश्वास (क) एकीकरण का कारक (ख). मनुष्य का "स्व" मनोविश्लेषणवादियों के अहं से ही सादृश्यता नहीं रखता है अपितु इस "स्व" के अंतर्गत व्यक्ति की आत्मानुभूति की क्षमता, संसार के साथ व्यक्ति का संबंध, आत्म मूल्यांकन व निरंतर आत्मपूर्णता की प्रवृत्ति भी सम्मिलित की गयी हैं मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों में कार्ल रोजर्स ने "स्व" की अवधारणा को व्यवस्थित रूप से विकसित किया है। सारांश रूप से "स्व" की धारणा निम्न प्रकार है:

(1) मैं और मेरा अपना को केंद्रीभूत करके प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक निजी वैयक्तिक संसार होता है।

(2) "स्व" के अनुरक्षण, वृद्धि तथा पूर्णता के प्रति प्रत्येक व्यक्ति प्रयासरत रहता है।

(3) किसी भी प्रेरक के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया का आधार उसकी "स्वधारणा" तथा संसार के प्रति उसका दृष्टिकोण होता है।

(4) "स्व'' की क्षति की सम्भावना का प्रत्यक्षीकरण ही "स्व" की रक्षायुक्तियों का आधार होता है।

(5) सामान्य की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ स्वयं की पूर्णता तथा स्वास्थ्य की ओर उन्मुख होती है।

(6) सामान्य परिस्थितियों में व्यक्ति तर्कसम्मत व सृजनात्मक व्यवहार ही करता है।

(ख) वैयक्तिक विकास एवं जीवन मूल्य: मानवतावादी प्रतिमान में सार्थक जीवन जीने के लिए तथा व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशन देने के लिए जीवन मूल्यों तथा मूल्यों के विकल्प चयन की प्रक्रिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह विचार व्यक्ति के साथ समाज के लिए भी कार्यान्वित किया जा सकता है।

(ग) मानव सामर्थ्य तथा मानव प्रकृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण : मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि सृजनात्मक, सहाकारितापूर्ण तथा सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर मानव की क्षमतायें सकारात्मक रूप से क्रियाशील होती है, क्योंकि मनुष्य निष्क्रिय स्वचालित प्राणी नहीं है अपितु एक क्रियाशील व्यक्तित्व है। वैयक्तिक रूप से अपने तथा अपने समाज के भाग्य निर्माता के रूप में व्यक्ति को जीवन को आकार प्रदान करने की स्वतंत्रता भी है। वह अपने जीवन की दिशा निर्धारण तथा समाज के प्रति अपने सक्रिय योगदान देने के लिए स्वतंत्र है।

मानवतावादी प्रतिमान का मनोनैदानिक विचारों पर प्रभाव:

मानववतावादी प्रतिमान के अनुसार मनोनिदान वैयक्तिक वृद्धि व विकास में बाधक व अवरोधक होता है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए निम्नलिखित आधार मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं:

- अहं द्वारा रक्षायुक्तियों का अधिकता से प्रयोग।
- दोषपूर्ण अधिगम तथा प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियाँ।
- अत्यंत दबाव व तनाव की स्थितियाँ।

मानवतावादियों के प्रतिमान की आलोचना :

इसकी आलोचना मानवतावाद के सिद्धांतों का बिखराव, सिद्धांतों के प्रतिपादन में वैज्ञानिक नियमबद्धता, परिश्रम व संयम का अभाव तथा मनोविज्ञान से अधिकाधिक अपेक्षाओं के कारण की जाती है।

24.9.0 सुसमायोजि व्यक्तियों की विशेषतायें :

मनोवैज्ञानिक सुसमायोजन के तत्त्वों के संबंध में भिन्न भिन्न मत रखते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक सामाजिक मान्यताओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने की व्यक्ति की क्षमता के आधार पर समायोजन का मूल्यांकन करते हैं। इस धारणा के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति विद्वेषपूर्ण व स्वार्थी इच्छायें रखता है तथा सभी व्यक्ति असम्भव उद्देश्यों व इच्छाओं के स्वप्न देखते हैं, कल्पना करते हैं। किन्तु जो व्यक्ति अपने इन इंद्रिय वेगों को नियंत्रित करना सीख लेते हैं तथा समाज के आदर्शो की सीमा के अंदर ही अपने उद्देश्यों को सीमित कर लेते हैं वही सुसमायोजित माने जाते हैं। अन्य मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि जो व्यक्ति नमनीयता, सृजनात्मकता तथा सहजता के आधार पर जीवन की कठिनाइयों तथा अस्पष्टता का सामना करने की योग्यता रखता है वही सुसमायोजित है। कुछ विचार है कि तनाव की अनुपस्थिति ही

प्रभावशाली समायोजन का प्रतीक है। एक और वर्ग है मनोवैज्ञानिकों का, जिनकी मान्यता है कि सुसमायोजित व्यक्ति परम्परा तथा नवाचार एवं आत्म नियंत्रण तथा स्वैच्छिकता में संतुलन रख सकता हैं सुसमायोजित व स्पष्ट की है। इनका विचार है कि सुसमायोजित व्यक्ति स्वयं को पूर्ण (Self-actualize) बनाने का प्रयास करते हैं अर्थात वे अपने व्यक्तिगत विकास व पूर्णता हेतु जो श्रेष्ठ समझते हैं उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं। दूसरे क्या सोचते हैं उसकी परवाह नहीं करते। हास्य की प्रवृत्ति, सृजनात्मकता, तथा सांस्कृतिक स्वायत्तता आदि।

इन विशिष्टताओं के साथ ही मैसलो का यह विचार है कि ये सुसमायोजित व्यक्ति पूर्ण ही हो यह आवश्यक नहीं है।

24.10.0 समायोजन व शिक्षक

यह पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि समायोजन एक अधिगम प्रक्रिया है। अत: यह भी निश्चित है कि यह अधिगम प्रक्रिया छात्र के व्यक्ति का विकास भी कर सकती है तथा विकास में बाधक भी हो सकती है। अत: योग्य शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह छात्र के व्यक्तित्व का विकास भी कर सकती है तथा विकास में बाधक भी हो सकती है। अत: योग्य शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि वह छात्र के व्यक्तित्व के विकास में सहायक निम्न प्रक्रियाओं से अपने को परिचित रखे -

यथार्थ स्थिति का स्वयं सामना करने के लिए :छात्र अपने संवेगों को समझने तथा अपनी क्षमताओं के मूल्यांकन में प्राय: समर्थ नहीं होते है। अत: यथार्थताओं का सामना करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। विद्यार्थी के समक्ष प्राथमिक उद्देश्य वास्तविकताओं को समझकर उनसे समायोजन करना है और शिक्षक का दायित्व इस वैयक्तिक समायोजन में विद्यार्थी की सहायता करना है कि विद्यार्थी अपनी वैयक्तिक समस्याओं का समाधान यथार्थता के धरातल पर कर सकें।

यथार्थता से पलायन से रक्षा के लिए पलायन की युक्तियों का समझकर शिक्षक उपयुक्त समायोजन के लिए विद्यार्थियों का निर्देशित कर सकता है। यथा पलायनवादी छात्रों में उन छात्रों के संबंध में विचार सर्वप्रथम आवश्यक है जा चुपचाप रहने वाले और एकांकी है। सामान्यत: शिक्षकों का ध्यान कार्य में बाधक बनने वाले विद्यार्थियों की ओर ही जाता है। किन्तु आज आवश्यकता है उन बालकों पर ध्यान देने की जो कभी किसी कार्य में भाग नहीं लेते तथा किसी भी कार्य में बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं। विकमैन द्वारा अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि इस प्रकार के पलायनवादी बालक स्वस्थ वैयक्तिक विकास के अभाव में अधिक ध्यान दिए जाने योग्य है क्योंकि जब बालक कक्षा में पढ़ने के अपने दायित्वों का नहीं वहन करता है तब वह अपने सामाजिक संवेगात्मक समायोजन में भी अभावग्रस्त रहता है। चुप रहने वाले बालक विषय वस्तु के अधिगम तथा अपने व्यक्ति के समायोजन के संबंध में भी कम समझ पाते हैं। अत: शिक्षक का दायित्व है कि ऐसे बालकों को, एकाकीपन के घेरे में से निकाल कर उनके सुसमायोजन में सहायता करें। कुछ युक्तियों जो इस प्रकार के बालकों द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं वे हैं दिवास्वप्न, प्रत्यावर्तन निषेध प्रवृत्ति आदि। निराशा तथा असफलता की स्थिति ही दिवास्वप्न युक्ति से पलायन के लिए बालक को प्रेरित करती है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों की निराशा के कारण जानकर तथा दिवा स्वप्नों की विषय वस्तु के अवबोध के

माध्यम से उनकी रुचियों तथा विद्यार्थी की क्षमता में तालमेल बिठाकर सृजनात्मक कार्यो में लगाना उपयुक्त होगा। प्रत्यावर्तन में बालक अपनी आयु के स्तर के व्यवहार से प्रतिगमन का पूर्व वर्षो के अनुसार व्यवहार करने लगता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक का दायित्व होता है कि वह मूल्यांकन करे कि इस प्रकार के विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत पाठ्यक्रम कितना उपयुक्त है? क्या विद्यार्थी की रूचि व कठिनाई के संबंध के आधार पर पाठ्यक्रम चुनौतीपूर्ण है? क्या शिक्षा विधियां उपयुक्त है? अथवा क्या विद्यालय की गतिविधियों में पर्याप्त विविधता है? आदि मिथ्या समायोजन के प्रतिस्थापन से रक्षा मिथ्या समायोजन प्रतिस्थापन में दो प्रमुख रक्षायुक्तियों "स्व" की रक्षा के लिए प्रयुक्त होती है। (i) क्षतिपूर्ति (Compensation) एवं (ii) उदात्तीकरण (Sublimation) सर्वप्रथम एक प्रश्न विचारणीय है कि क्या शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य के प्रतिस्थापन से उन्नत आवश्यक व अस्थायी मिथ्या समायोजन बालक के स्वस्थ समायोजन तथा विकास में सहायक है?

क्षतिपूर्ति की युक्ति बालक के दुर्व्यवहार से परेशान शिक्षक के लिए सहायक है। शिक्षक थोड़ा सा समय देकर बालक के उक्त व्यवहार में छिपी हुई भग्नाशा (Frustration) को ज्ञात कर सकता है। क्योंकि बालक को स्वयं पता नहीं होता है कि ऐसा व्यवहार किस क्षति की पूर्ति के लिए वह कर रहा है? ऐसी स्थिति में शिक्षक आंतरिक व बाहय रूप में क्षति के लिए कारणों का पता लगाकर बालक के लिए स्वस्थ समायोजन में सहायक हो सकता है।

उदात्तीकरण की रक्षापूर्ति के दुर्व्यवहारिक समायोजन के लिए लाभप्रद मानी गई है। इसको अनजाने में प्रयुक्त आत्मवंचनायुक्त व्यक्ति की अपेक्षा लाभदायक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में शिक्षक द्वारा विकसित किया जाना चाहिए.। जब शिक्षक व विद्यार्थी दोनों पारस्परिक अवबोध के आधार पर प्रतिस्थापन संबंधी युक्तियों द्वारा नये उद्देश्य का एक सीमा तक महत्व समझ जाते हैं तब समायोजन द्वारा व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास होता है।

24.11.0 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि समायोजित व्यक्ति वह है जो नमनीयता, सृजनात्मकता तथा सहजता आदि गुणों के आधार पर जीवन की कठिनाइयों तथा अस्पष्टता का सामना करने की योग्यता रखता है। आज का बालक कल का जिम्मेदार नागरिक होगा। अत: शिक्षक का दायित्व है कि वह ऐसा वातावरण तैयार करे, जिससे बालक में कुसमायोजन की समस्या न उत्पन्न हो।

दिवास्वप्न को युक्ति संगत योजना, प्रत्यावर्तन में व्यक्ति की क्षमताओं के अनुरूप उद्देश्यों का स्ताप, निषेध प्रवृत्ति में दृढ़ रूप से नहीं कहकर दमन युक्ति में वाणी व विचारों पर नियंत्रण कर, तादात्मीकरण में केवल सांवेगिक रूप में जुड़कर स्वयं के विकास के दायित्व में अपनी कमजोरी को दूर करना आदि सकारात्मक युक्ति द्वारा शिक्षक बालक के समायोजन में महत्ती भूमिका निभा सकता है। इनके अलावा छद्यवेशीय समायोजन की युक्तियों वस्तुत: बुद्धिमत्तापूर्ण समायोजन के लिए संकेत है। इनके नकारात्मक व सकारात्मक दोनों पक्ष हैं। शिक्षक की सकारात्मक पक्ष का सकारात्मक ढंग से विद्यार्थियों के स्वस्थ समायोजन के लिए प्रयोग करना आदि।

स्वमूल्यांकन (Self-Evaluation)

1. व्यवहारवादी प्रतिमान के मूल सिद्धान्त को समझाइए।
2. 'मिथ्या समायोजन' बालक पर भविष्य में किस तरह का प्रभाव पड़ता है?
3. अध्यापक यर्थात की स्थिति का स्वयं सामना करने के लिए बालक को किस प्रकार तैयार कर सकता है?
4. समायोजन प्रतिमानों के सिद्धान्त परस्पर किस प्रकार भिन्न है? इन प्रतिमानों में कौन सा समायोजि प्रतिमान आपके विचार से उपयुक्त है और क्यों?
5. यथार्थ का सामना करने से बचने के लिए बालक कौन-कौनसी रक्षा युक्तियों को अपनाता है? आप एक शिक्षक के रूप में इन रक्षा युक्तियों को बालकों के स्वस्थ समायोजन में किस प्रकार प्रयुक्त करेंगे।
6. तनाव के संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिए। तनाव कितने प्रकार का होता है? प्रत्येक की व्याख्या कीजिए और बताइए कि बालक को वह क्या क्षति पहुंचाता है?
7. सुसमायोजित व्यक्तित्व की क्या विशेषतायें हैं? इन विशेषताओं के आधार पर बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए क्या प्रयास किया जा सकता है?

24.12.0 संदर्भ

1. **कार्टराइट एवं कार्टराइट :** (1971) साइकोलोजिकल एडजस्टमेंट बिहेवियर एंड द इनर वर्ल्ड, शिकागो, रेड मैकनेले 1971
2. **काब के. (1951)** प्राब्लम बिहेवियर एंड एडजस्टमेंट इन चिल्ड्रन, डाक्टन मिफिंग कंपनी, बोस्टन
3. **फायड ए. (1937)** द इगो एंड मेकेनिक्स आफ डिफेंस, लंदन होगार्थ प्रेस
4. **कोल मैन जेसी एंड हैमन सी. एल**. (1974) कॉटेम्पारेरी साइकोलोजी एंड इफेक्टिव बिहेवियर, ग्लेब्यू एल. सी. स्काट, फोरेसमैन,
5. **गेट्स एंड अदर्स (1950)** एज्यूकेशनल साइकोलोजी, मैकमिलन के न्यूयार्क
6. **लिडगीन एच. सी. (1954)** मेंटल इन एजूकेशन, हेनरी हाल्स एंड कंपनी, न्यूयार्क
7. **मॉरिस सी. जी. (1973)** साइकोलोजी एन इन्ट्रोडक्श्न, प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड
8. **पाठक पी. डी. (1982)** शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
9. **साइमंड्स पी. एम. (1946)** द डाइनेमिक्स आफ ह्यूमन एडस्टमेंट एप्लेटन सैन्तुरी कंपनी
10. **स्किनर सी. ई. (1984)** एजूकेशन साइकोलोजी प्रेन्टिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
11. **शैफर एल. एफ. (1936)** द साइकोलोजी आफ एडजस्टमेंट, बोस्टन, हापटन मिफिंग कंपनी, बोस्टन

इकाई-25

समाजमिति (SOCIOMETRY)

इकाई की संरचना

25.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 समाजमिति से तात्पर्य
25.3 समाजमिति में वरीयता चुनने के आधार
25.4 सामाजिक संबंधों में सूची और सारणीयन
25.5 सारिणी के परिणामों की व्याख्या
25.6 समूह की संरचना की व्याख्या में प्रयुक्त कुछ शब्द
25.7 सामाजिक संबंधों का चित्रण तथा व्याख्या
25.8 समाजमिति के परिणाम और शिक्षक की भूमिका
25.9 सामाजिक सूचिकायें
25.10 सारांश
25.11 संदर्भ

25.0 उद्देश्य तथा लक्ष्य

समाज तथा विद्यालय मे रहकर बालक एक दूसरे के प्रति अनुक्रियायें करते हैं। इन अनुक्रियाओं से बालकों के आपसी सामाजिक सम्बन्ध विकसित होते हैं। इन आपसी सामाजिक सम्बन्धों को विकसित करने में किस बालक को कितनी सफलता मिली है - इनका मूल्यांकन करने की समाजमिति एक प्रभावशाली विधि है। इस इकाई का गठन समाजमिति के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन करने हेतु निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है -

- छात्र समाजमिति की तकनीक को समझकर, चार्ट के आधार पर बालकों के सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।
- छात्र समूह संरचना के संदर्भ में आने वाले नये शब्दों के अर्थ को जान सकेंगे।
- छात्र सामाजिक सम्बन्ध की व्याख्या में आने वाली कतिपय सीमाओं से परिचित हो सकेंगे।
- छात्र विद्यालयों में समाजमिति तकनीक का उपयोग कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज के सदस्य के रूप में ही कार्योन्मुख रहता है। समाज में रहकर विभिन्न रूपों मे अपने दायित्व का निर्वाह करता है। एक बालक एक ही साथ अपने परिवार का सदस्य, विद्यालय में विद्यार्थी, कक्षा-कक्ष समवयस्क छात्र-समूह का सदस्य, मौहल्ले एवं पास-पड़ोस के साथियों के समूह का सदस्य तथा ग्राम अथवा नगर में ग्रामवासी अथवा नगरवासी है। प्रौढ़ व्यक्ति पति अथवा पत्नी, अभिभावक, कर्मचारी, मित्र, पड़ौसी एवं

संबंधी के विभिन्न रूप में कार्यरत रहता है। समाज में रहकर व्यक्ति, विभिन्न रूप में दायित्व की पालना करता है। तथा अपने दायित्वों के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाएँ एवं व्यवहार करता हैं।

सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति का सम्पर्क एवं सम्बन्ध अन्य प्राणियों से भी निरन्तर होता रहता है। उसके द्वारा विभिन्न प्रकार की अनेकानेक अन्तःक्रियाएँ भी सम्पादित होती है। सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति की सफलता-विफलता, उसके क्रियाकलापों, आचरण तथा व्यवहारजन्य प्रभावों के मापन-मूल्यांकन की भी आवश्यकता होती है। यह मूल्यांकन उसके स्वयं के लिए एवं सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। उसके व्यक्तिगत जीवन एवं उसके जीवन के सामाजिक पक्ष को दिशा-निर्देशन करने की दृष्टि से भी यह मूल्यांकन उपयोगी है। अपने व्यवहार में वांछित परिवहन करके जीवन लक्ष्यों का पुन: निर्धारण करने एवं सामाजिक दायित्वों की पूर्ति हेतु भी यह प्रविधि उपयोगी है।

25.2 समाजमिति से तात्पर्य

किसी व्यक्ति को ठीक प्रकार से समझने के लिए उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं, रुचियों एवं अभिरूचियों, विशेषताओं एवं निष्ठाओं आदि की जानकारी आवश्यक है। साथ ही साथ समूह का ज्ञान, जिसका वह सदस्य हैं तथा समूह-सदस्य के रूप मे उसके क्रियाकलापों तथा संबंधों की जानकारी भी अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। किसी समूह की संरचना एवं परिस्थितियों का मूल्यांकन करने के लिए भी यह जानकारी महत्वपूर्ण है कि उस समूह के सदस्य एक दूसरे के साथ किस प्रकार व्यवहार करते हैं। शिक्षक के लिए अपनी कक्षा के छात्र-समूह के पारस्परिक संबंधों एवं संबद्धताओं का ज्ञान उसकी अपनी कार्यक्षमता का सदुपयोग तथा सफलता के प्रति आश्वस्त रहने के लिए अनिवार्य है।

समाजमिति किसी समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का ही अध्ययन हैं। यह समूह की सामाजिक संरचना से संबंधित है। उसके माध्यम से किसी समूह के प्रत्येक सदस्य के रूप में समूह में व्यक्ति का स्थान, प्रतिष्ठा, धारणा एवं कार्यशैली आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। कक्षा-समूह में किसी छात्र की अपने सहपाठियों में स्थिति तथा छात्रों के पारस्परिक संबंधों एवं प्रतिबद्धता का ज्ञान भी इस विशेष द्वारा प्राप्त होता हैं।

समाजमिति का विकास जैकब मोरेनो (1934) द्वारा समव्यस्कों के समूह में पारस्परिक संबंधों एवं अन्तःक्रियाओं पर शोधकार्य हेतु किया गया। इसमें शिक्षक अथवा अभिभावक की अभिव्यक्ति के स्थान पर सहकार्य करने वालों की अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया है। इस दृष्टि से यह अन्य पर्यवेक्षण पद्धतियों से भिन्न है। इसमें प्रत्येक समवयस्क अपने समूह के अन्य साथियों का पूर्व निश्चित कार्य के संबंध के स्थान का निर्धारण करता है। इसके द्वारा किसी बाहय व्यक्ति के द्वारा स्थान का निर्धारण से किसी समूह पर पड़ने वाले प्रभाव की संभावना समाप्त हो जाती है। बाहरी व्यक्ति का एक समूह के सदस्यों के पूर्ण रूप से परिचित होना भी संभव नहीं है। बाहरी व्यक्ति द्वारा स्थान निर्दिष्ट करने के आधार के संदर्भ में अपने पूर्वाग्रह भी हो सकते है।

एक शिक्षक की अपेक्षा कक्षा के छात्र/छात्राओं को पारस्परिक अन्तःक्रियाएँ करने एवं पहचानने का अधिक अवसर है। वे शिक्षक की अपेक्षा अपने पारस्परिक संबंधों एवं एक दूसरे के

प्रति दृष्टिकोण की अधिक जानकारी रखते है। एक दूसरे के गुण-दोषों, रूचियों एवं अभिवृत्तियों तथा आदतों की भी अधिक जानकारी रखते है। अत: उनकी किसी निश्चित आधार पर एक दूसरे के बारे में अभिव्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है, तथा यह अभिव्यक्ति अधिक तथ्यपरक एवं विश्वसनीय भी होगी।

समाजमिति किसी समूह के सदस्यों की आन्तरिक संबंधों अर्थात उसकी सामाजिक संरचना का अध्ययन है। समूह के साथ-साथ रहते, कार्य करते हुए सदस्यों के मध्य अनेकानेक अन्तःक्रियायें होती है। जिसके कारण समूह के सदस्यों के मध्य एक अनौपचारिक संरचना विकसित होती है। इस संरचना का आधार विभिन्न स्तर की सकारात्मक एवं नकारात्मक अन्त: वैयक्तिक अनुभव होते है। और ये निकटता एवं दूरियाँ समूह की नैतिकता एवं कार्यकुशलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

25.3 समाजमिति में वरीयता चुनने के आधार

समाजमिति में समूह के प्रत्येक सदस्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी विशेष कार्य के सम्पादन के सन्दर्भ में समूह के ही अपने साथियों में से एक या दो का वरीयता क्रम में उल्लेख करें। पूर्व चयनित कार्य-समूह के सदस्यों के द्वारा अपने साथियों के स्थान-निर्दिष्ट हेतु एक आधार होता है। यदि चयनित कार्य के सम्पादन हेतु विभिन्न समूहों के निर्माण की आवश्यकता हो, तो शिक्षक प्रत्येक सदस्य से ऐसे एक या दो साथियों के नाम का उल्लेख करने को कहेगा, जिनके साथ वे काम करना चाहेंगे। इसकी विलोम स्थिति को भी उपयोग किया जा सकता है। तब शिक्षक एक या दो ऐसे सहयोगियों का उल्लेख करने का निर्देश देगा जिनके साथ वे काम करना नहीं चाहेंगे।

उल्लेख किए जाने वाले सहयोगियों की संख्या का निर्धारण निम्न बातों पर निर्भर करता हैं।

(अ) समूह के सदस्यों की निर्णय सम्बन्धी परिपक्वता - सामान्य रूप से छोटी कक्षाओं मे चयनित कार्य के संदर्भ में एक या दो सहयोगियों का ही उल्लेख करने आग्रह करना उचित है। अधिक आयु के बालकों अथवा प्रौढों द्वारा वरीयता में अधिकतम पाँच सहयोगियों का चयन करने के लिए भी आग्रह किया जा सकता है।

(ब) समूह के सदस्यों की संख्या - इस अथवा बारह सदस्यों के समूह में एक ही सदस्य का चयन पर्याप्त है। तीस अथवा चालीस सदस्यों वाले समूह में तीन या चार सदस्यों का वरीयता क्रम में चयन करना भी ठीक रहेगा।

(स) स्थान निर्दिष्टता में अन्तर्निहित उद्देश्य - समाजमिति हेतु स्थान निर्दिष्टता में उद्देश्य भी महत्वपूर्ण है। यदि उद्देश्य सभी सदस्यों के मध्य अन्तःक्रियाओं का मापन है. तो असीमित स्थानों के लिए निर्दिष्ट करने का आग्रह किया जाना चाहिए। इससे किसी सदस्य को अदृश्य रखने की स्थिति नहीं बनेगी। यदि किसी कार्य के सम्पादन हेतु योग्य व्यक्तियों का चयन एवं खेल समूह का निर्माण करना है तो स्थान निर्दिष्ट हेतु संख्या सीमित करना आवश्यक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समाजमिति विधि में समूह रहे सभी सदस्यों को चयन हेतु अभिव्यक्ति के समान अवसर है। चयन हेतु अभिव्यक्ति का आधार एक पूर्व निर्धारित विशेष मापदंड होता है। जो समूह की व्यावहारिक क्रिया से संबंधित होता है। प्रत्येक अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न स्तरों का चयन निश्चित रहता है।

छात्र समूह के पारस्परिक संबंधों एवं अन्तःक्रियाओं से अवगत होने के लिए अपने छात्रों को अभिप्रेरित कर वरीयता चुनने के लिए निम्न प्रयास कर सकता है ।

- साथ-साथ अध्ययन हेतु किन्हीं तीन साथियों का चयन।
- छात्रावास के एक ही कक्ष में साथ-साथ रहने हेतु तीन सहपाठियों का चयन।
- मित्रता हेतु उपयुक्त किन्हीं दो साथियों का चयन।
- साक्षरता प्रसार कार्य हेतु चार साथी जिनके साथ आप संलग्न होना चाहेंगे।
- समूह के रूप में सेवा कार्य सम्पादन हेतु आपकी टीम के अन्य दो साथियों का चयन।

25.4 सामाजिक सम्बन्ध की सूची और सारणीयन

उदाहरण - मित्रता की जानकारी के लिए एक कक्षा के 17 छात्र-छात्राओं से वरीयता क्रम में दो साथियों का चयन करने का आग्रह किया गया। प्राप्त जानकारी को निम्न सूची के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

चयनकर्ता	प्रथम चयन	द्वितीय चयन
अजीत	अर्जुन	लक्ष्मी
बसन्त	कृष्ण	परमेश
द्रोपदी	लक्ष्मी	रजनी
अशोक	सुरेश	कृष्ण
रमेश	अजीत	अभिमन्यु
लक्ष्मी	सुकन्या	दीपा
गीता	रजनी	कृष्ण
सीता	दीपा	सुकन्या
राधा	द्रोपदी	लक्ष्मी
अभिमन्यु	लक्ष्मी	अजीत
सुरेश	गीता	कृष्ण
परमेश	लक्ष्मी	अजीत
अर्जुन	अभिमन्यु	अजीत
दीपा	लक्ष्मी	सुकन्या
कृष्ण	अशोक	गीता

अब चयन संबंधी प्राप्त इस जानकारी को सारणी के रूप में उल्लेख करते हैं। यहां पर प्रत्येक छात्र/छात्रा की चयन की प्रथम वरीयता को 1 तथा द्वितीय वरीयता को 2 से अंकित किया गया है। सारणी के नीचे की ओर प्रत्येक छात्र की प्रथम वरीयता एवं द्वितीय वरीयता का उल्लेख किया गया है जिन्हें चयनित नहीं किया गया है उनके नीचे के स्थान को छोड़ दिया जाता है। पारस्परिक चयन को तारांकित किया गया है।

	अजीत	बसन्त	द्रोपदी	अशोक	रमेश	लक्ष्मी	गीता	सीता	राधा	अभिमन्यु	सुरेश	परमेश	अर्जुन	दीपक	रजनी	सुकन्या	कृष्ण
अजीत						2							1				
बसन्त												2					1
द्रोपदी						1									2		
अशोक											1						2
रमेश	1									2							
लक्ष्मी														2		1	
गीता															1		2
सीता														1		2	
राधा			1			2											
अभिमन्यु	2					1											
सुरेश							1										2
परमेश	2					1											
अर्जुन	2									1							
दीपक						1										2	
रजनी			1				2										
सुकन्या						2		1									
कृष्ण				1			2										
प्रथम चयन	1		2	1		4	1	1		1	1		1	1	1	1	1
द्वितीय चयन	3					3	2			1		1		1	1	2	3
प्रथम चयन अंक	2		4	2		8	2	2		2	2		2	2	2	2	2
द्वितीय चयन अंक	3					3	2			1	1		1	1	1	2	3
योग	5		4	2		11	4	2		3	2	1	2	3	3	4	5

25.5 सारणी के परिणामों की व्याख्या

इस सारणी में चयन वरीयता को अंको में परिवर्तन करने हेतु प्रथम चयन वरीयता को दो अंक एवं द्वितीय चयन वरीयता को एक अंक प्रदान कर प्रत्येक अंकों की गणना की जाती है। उपर्युक्त सारणी के नीचे की ओर क्षैतिज पंक्तियों में यही गणना की गई है।

इसमें सर्वाधिक अंक 11 लक्ष्मी द्वारा प्राप्त किए गए है। अत: वह इस समूह की सर्वाधिक प्रिय सदस्य है। दूसरे स्थान पर अजीत एवं कृष्ण है, जिनमें प्रत्येक ने 5 अंक प्राप्त किए हैं। तृतीय स्थान पर द्रोपदी, गीता एवं सुकन्या हैं। इन तीनों में प्रत्येक ने 4 अंक प्राप्त नहीं किया है। अत: समूह के सदस्यों में यह अस्वीकार्य है।

25.6 समूह की संरचना की व्याख्या में प्रयोग किए जाने वाले कुछ शब्द

सारणी के अध्ययन से समूह की संरचना के संदर्भ में कुछ नए शब्द सामने आए हैं। समाजमितीय अध्ययन के लिए उनका ज्ञान भी आवश्यक है जिससे उनका उपयोग ठीक संदर्भ में ही किया जा सकें।

समव्यस्क समूह (Peer Group) - यह वह समूह है जिसके सभी सदस्य लगभग समान आयु के हैं तथा जिनके बीच नियमित क्रिया-प्रतिक्रिया के अवसर उपलब्ध रहते हैं। इसके सदस्य पास-पड़ौस में, विद्यालय में कक्षा-स्तर एवं खेल के मैदान पर सहज ही उपलब्ध रहते है। इनमें आयु मानसिक विकास, शैक्षणिक स्तर आदि में काफी समानता रहती है।

सर्वप्रिय/अथवा स्टार (Star) - यह समूह के वे सदस्य हैं जो समूह में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। समूह के लगभग सभी सदस्य उसके साथ रहना चाहते हैं और उनसे नेतृत्व प्राप्त करते हैं। उनका चयन समूह के लगभग सभी करते हैं।

अलग-अलग या अलगाव में रहने वाले (Isolated) - समूह के वे सदस्य जो समूह में समायोजित नहीं है। समूह के अन्य सदस्य उनका चयन नहीं करते हैं। अत: वे समूह क्रियाओं में सक्रिय नहीं रहते है।

अस्वीकृत (Rejected) - समूह के वे सदस्य हैं जिनके साथ अन्य सदस्य संवाद स्थापित नहीं. करना चाहते है और दूरी बनाए रखते हैं। समूह कार्यो में सभागिता हेतु उन्हें उपयुक्त नहीं पाया जाता है

हटने या दूर जाने वाले (Cleavages) - समूह के वे सदस्य है जो समूह में रहते हुए भी समूह की मान्यताओं, परम्पराओं एवं आदर्शो से विमुख बने रहते हैं। इनकी मानसिकता पूरी तरह समूह के अनुकूल नहीं होती है।

श्रृंखलाएं (Chains) - समूह के वे सदस्य हैं जो एक क्रमश: एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा एवं इसी प्रकार अन्य से श्रृंखलावत जुड़े रहते हैं। ये पारस्परिक संबंधों में निकटता बनाते हैं एवं एक दूसरे के साथ जुड़कर रेखीय सामाजिक श्रृंखला बनाते हैं। सदस्यों द्वारा निर्मित इस प्रकार के सम्बन्ध श्रेणियां या श्रृंखलाएं कहलाती है।

सामाजिक गुट अथवा मण्डलियां (Cloigues) - समूह के अन्तर्गत ही ऐसे छोटे-छोटे समूह को, जिनके सदस्य किसी निर्धारित आधार पर यथा सिद्धान्त या विचार या कार्य प्रणाली आदि के कारण निकट आ जाते है, वे उपसमूह अथवा गुट का निर्माण करते है।

25.7 सामाजिक सम्बन्धों का चित्रण तथा व्याख्या:-

सामाजिक संबंधों को व्यक्त करने एवं अध्ययन हेतु पिछले पृष्ठ में एक सूची एवं सारणी का उल्लेख किया गया है। इस हेतु सामाजिक संबंध चित्रण का भी प्रयोग किया जा सकता है। हम सामाजिक संबंधों की सूची को सारणी के रूप में परिवर्तन करने का अध्ययन कर चुके हैं। नीचे सामाजिक संबंध सूची को सामाजिक संबंध चित्रण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकन से ही समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों तथा सर्वप्रिय, अलग-अलग, अस्वीकृत समूह से हटकर व्यवहार युक्त, श्रृंखला एवं युक्त आदि का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है।

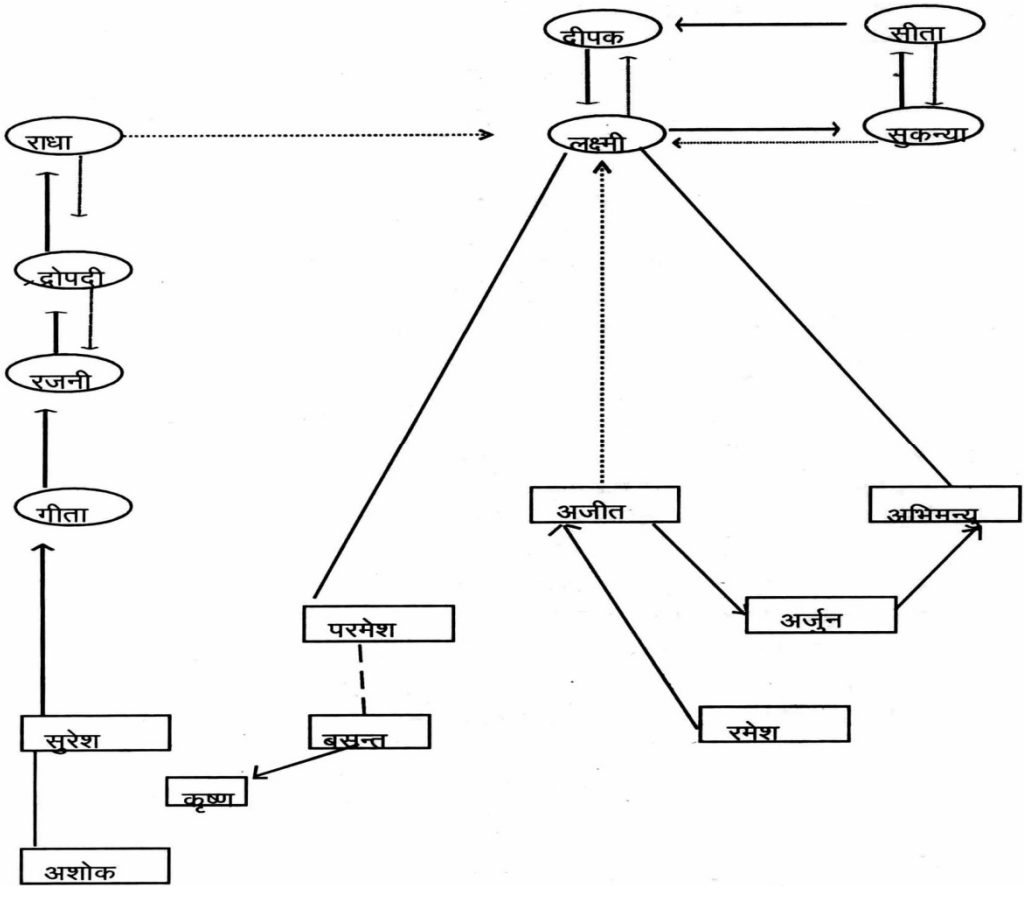

उपर्युक्त चित्र के अध्ययन हेतु निम्न संकेतों को ध्यान में रखें -

लड़का लड़की

प्रथम वरीयता चयन

द्वितीय वरीयता चयन

पारस्परिक प्रथम वरीयता चयन

पारस्परिक द्वितीय वरीयता चयन

उपर्युक्त सामाजिक संबंध चित्रण से स्पष्ट है कि लक्ष्मी इस समूह में सबसे प्रमुख है। उसका चयन समूह के अधिकांश सदस्यों द्वारा किया गया है। यही स्थिति कृष्ण एवं अजीत की है। श्रृंखला के रूप में बसन्त, कृष्ण, अशोक, सुरेश, गीता, रजनी, द्रोपदी, लक्ष्मी द्वारा प्रस्तुत रेखीय संबंध का उदाहरण है। ये सीमान्त पर है तथा वास्तव मे समूह के सदस्य नही है। अलग-अलग के उदाहरणों के रूप में बसन्त, राधा एवं रमेश है इनका अन्य द्वारा चयन नही किया गया है। सामाजिक गुट के रूप में दीपा, सीता, लक्ष्मी एवं सुकन्या है। यह इस समूह में एक उप-समूह है। इसी प्रकार एक दूसरा गुट जिसके अजीत, अभिमन्यु अर्जुन एवं रमेश सदस्य है, समूह के अन्तर्गत ही एक उप-समूह के रूप में है। इस प्रकार के गुट शिक्षक के लिए समस्या हो सकते हैं तथा पूरे समूह के सम्बन्धों के लिए कुप्रभावकारी भी हो सकते है -

सामाजिक संबंध चित्रण से निम्न अन्य तथ्य भी स्पष्ट है -

- छात्र एवं छात्राओं में भी समलिंग के सदस्यों के चयन की प्रवृत्ति व्याप्त है। किसी भी छात्रा के द्वारा छात्रा को प्रथम वरीयता चयन के रूप में चयनित नही किया गया है। जबकि छात्रों तो दो छात्राओं का प्रथम वरीयता देकर चयनित किया है।
- सामाजिक सम्बन्ध चित्रण से यह स्पष्ट हो रहा है कि सम्पूर्ण समूह दो भागों में विभक्त हो गया है। दाई ओर एवं बाई से समूह के बीच लक्ष्मी एक संघटक का कार्य कर रही हैं जो कक्षा समूह के अधिकांश सदस्यों में अत्यधिक लोकप्रिय है। समूह में दूसरा सम्पर्क सूत्र अजीत है जो स्वयं भी लक्ष्मी के बाद सम्पूर्ण समूह में लोकप्रिय है।
- अजीत एवं कृष्ण की लोकप्रियता छात्रों तक ही सीमित है क्योंकि इन्हें किसी भी छात्रा द्वारा चयन वरीयता नही दी गई है। सामाजिक संबंध चित्रण किसी समूह की सामाजिक संरचना को जानने का सबसे अधिक उपयुक्त माध्यम है क्योंकि-
- इससे समूह के सदस्यों के पारस्परिक एवं आन्तरिक सम्बन्धों का पता चलता है तथा प्रत्येक सदस्य की सम्पूर्ण समूह के साथ सम्बन्धों तथा स्थान का भी ज्ञान प्राप्त होता है।
- एक शिक्षक को अपने छात्र समूह के सदस्यों के बारे में, जिनके साथ उसे कार्य करना है, वे सभी तथ्य प्राप्त हो जाते हैं जिसके आधार पर उसे अपने कार्य सम्पादन में सुविधा प्राप्त होती है तथा अपने कार्य को प्रभावी बनाना भी संभव हो जाता है।

25.8 समाजमिति के परिणाम और शिक्षक की भूमिका

शिक्षक से अपेक्षा है कि इस विधि से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उसे यथाशीघ्र कार्य करना प्रारम्भ कर देना चाहिए क्योंकि समूह के सदस्यों पर इसका धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक संबंध चित्रण के अन्य निम्न महत्वपूर्ण उपयोग है -

- इसके माध्यम से समूह में पारस्परिक सम्बन्ध चयन वरीयता, लोकप्रियता, नेतृत्व, अलगाव, अस्वीकृत, गुट संबंधता आदि का ज्ञान प्राप्त होता है।
- समूह संरचना से संबंधित जाति-प्रजाति, राष्ट्रीयता आदि का ज्ञान भी प्राप्त होता है।
- समूह संरचना के संबंध में आयु एवं परिपक्वता का अध्ययन संभव हो जाता है।
- सम्पूर्ण समूह संरचना में विद्यालय के बाह्य समूह जैसे स्काउट्स शैक्षणिक कार्य संबंध समूह आदि के निर्माण में इस विधि का काफी उपयोग हो सकता है।

– किन्हीं अनुभवजन्य प्रभावों का सामाजिक संरचना संबंधी अध्ययन भी अनुभव से पूर्व एवं पश्चात् निर्मित सामाजिक संबंध चित्रण की तुलना द्वारा किया जा सकता है।

सामाजिक संबंध चित्रण के उपयोग संबंधी सीमाएँ :-

सामाजिक संबंध चित्रण के उपयोग की अपनी कतिपय निम्न सीमाएँ है। इनका ध्यान रखकर ही इसका प्रयोग करना अपेक्षित है।

(क) शिक्षक एवं छात्रों के बीच सम्पर्क की वैधता की सीमा ही सामाजिक संबंध चित्रण हेतु प्राप्त आंकडों/सूचनाओं की वैधता निर्धारित करती है। इन आंकडों/सूचनाओं पर आधारित निष्कर्ष उतने ही वैध एवं विश्वसनीय होंगे, जितने वैध एवं विश्वसनीय संबंध शिक्षक एवं छात्रों के मध्य है। क्योंकि इसी आधार पर तो छात्रों से संकलित सूचनाएँ वैध एवं विश्वसनीय होगी।

(ख) समूह की सामाजिक संरचना परिवर्तनशील है। विशेष रूप से नवयुवक/नवयुवतियों में यह संरचना बहुत अधिक परिवर्तनशील है। अत: मात्र एक ही सामाजिक संबंध चित्रण से प्राप्त निष्कर्षो पर निर्भरता बहुत अधिक विश्वसनीय नही है। इस हेतु एक से अधिक विधियों से आँकडे/सूचनायें एकत्रित करना एवं उनसे सामाजिक संबंध चित्रण बनाकर उनका तुलनात्मक अध्ययन कर निष्कर्षो पर पहुँचना उपयुक्त है।

(ग) आंकडे/सूचनाएँ प्राप्त करने की विधि भी समूह के सदस्यों से प्राप्त उत्तरों को प्रभावित करते है, जिसके कारण सही निष्कर्षो पर पहुँचना असंभव हो जाता है। इस प्रकार से प्राप्त आंकडे/सूचनाएँ भ्रमित करते है। उदाहरण के तौर पर सामाजिक संबंध चित्रण से सशक्त, अशक्त या विरोधाभास का पता नही चलता है। यह संभावना तब कई बार हो सकती है, जब वरीयता क्रम में अधिक चयन किए जाने हो, तो हो सकता है कि समूह-सदस्य किसी ऐसे सदस्य का चयन करें जिसके बारे में पूर्व में उनके मन मे कभी कोई विचार ही पैदा नही हुआ है या संभवतः उसके प्रति विपरीत भाव ही रहा हो।

(घ) सामाजिक संबंध चित्रण केवल स्थिति से परिचित कराता है। वह मात्र संबंधों को बतलाता है। वह स्थिति में अन्तर्निहित कारकों के बारे में मूक है। संबंधों में अन्तर्निहित कारणों पर प्रकाश नही डालता है।

सही आंकडों/सूचनाओं के अभाव में सामाजिक संबंध चित्रण से प्राप्त निष्कर्षो के संदर्भ में किए गए उपाय समस्या-समाधान की अपेक्षा समस्या-जनक सिद्ध हो सकते है। यथा यह पता चलने पर कि अमूक छात्र अन्य विद्यार्थियों को स्वीकार्य नही है। अत: वह अलग-अलग रहता है। अध्यापक अपने अधिकार का उपयोग कर यदि कक्षा को उसे स्वीकार करने का निर्देश दे, तो यह आदेश सम्पूर्ण कक्षा को सहज स्वीकार नही होगा। समस्या-समाधान के स्थान पर एक नई तथा अधिक गम्भीर समस्या को पैदा करेगा। अत: यह आवश्यक है कि सामाजिक संबंध चित्रण के निष्कर्षो को आँकडे /सूचनाएँ एकत्र करने वाले अन्य साधनों यथा घटनावृत, साक्षात्कार आदि का भी उपयोग कर पुष्टि की जाये। शिक्षक एवं अभिभावकों के विचार भी जानने का प्रयास किया जाए तभी उन निष्कर्षो से लाभ भी उठाना होगा।

25.9 सामाजिक सूचिकाएँ

समाजमिति में सामाजिक सूचिकाओं/सम्बन्धों की व्याख्या हेतु कुछ सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। संक्षेप में इनका वर्णन निम्नवत् है।

सामाजिक सूचिकाएँ

(अ) आन्तरिक समूह सूचिकाएँ

(1) समूह अन्त: क्रिया सूचिका (Group Interaction Index)

$$Igi = \frac{Ca \times 100}{Ca}$$

यहाँ Ca समूह के अन्दर व्यक्त पसन्द की संख्या

Ca समूह के अन्दर सैद्धान्तिक रूप मे सम्भव पसन्द की संख्या का उपयोग प्रत्येक समूह में प्राप्त होने वाली अन्त: क्रिया के परिणाम की तुलना करने हेतु किया जाता हैं।

(2) सामाजिक चयन-स्तर सूचिका (Social metric 'choice' Status Index)

$$Ig\ St = \frac{Co}{N-1}$$

जहां Ci = किसी एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त पसन्दों की संख्या

N= समूह में चयन करने वालों की संख्या

इसका उपयोग समूह के विभिन्न सदस्यों की चयन वरीयता की तुलना करने हेतु किया जाता है।

(3) समूह विभाजन सूचिका (Group Disintegration Index) -

$$Igdi = \frac{Ra \times 100}{Ra}$$

यहां Ra = समूह के अन्दर की गई अस्वीकृतियों की संख्या

Ra = सैद्धान्तिक रूप से समूह के अन्दर संभव होने वाले चयन की संख्या इसका उपयोग समूह विभाजन का ज्ञान प्राप्त करने हेतु किया जाता है।

(4) समूह में मेल-मिलाप सूचिका (Group Cohesion Index)

$$Igc = \frac{Npm \times 100}{N(N-1)/2}$$

यहाँ Nmp = समूह के अन्दर पारस्परिक चयन करने वाले जोड़ो की संख्या

N = समूह में चयन करने वालों की संख्या

इसका उपयोग समूहों में पारस्परिक मेल-मिलाप की तुलना करने में लिया जाता है।

(5) समूह एकता सूचिका (Group Integration Index) -

$$Ig\ \text{int} = \frac{1 \times 100}{Niso / Na}$$

यहां Niso = समूह से पृथक रहने वालों की संख्या इसका उपयोग समूहों की एकता की तुलना करने मे किया जाता है।

(ब)अन्तर समूह सूचिका

समूह मे मिलाप सूचिका (Inter Group Index) -

$$Ig\ \ co = \frac{c(ca + ci)}{I \times Co}$$

यहाँ Ca =समूह के अन्दर के सदस्यों के लिए दी गई चयन संख्या

Ci = बाह्य समूह से समूह के अन्दर आने वाले चयन संख्या

Co = समूह से बाहर जाने वाली चयन संख्या

0 = बाह्य समूह की आन्तरिक समूह से मिलने वाले चयन संख्या

I = समूह की सदस्य संख्या

25.10 सारांश

बालकों को दी जाने वाली शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि वह. बालक को इस प्रकार शिक्षित करें, जिससे उसे अपने भावी जीवन मे सफलतापूर्वक समायोजन करने में कोई बाधा न आए। विद्यालय समाज को लघु रूप होता है, अत: शिक्षक को इस तथ्य का ज्ञान आवश्यक है कि छात्र आपस में किस प्रकार समायोजित हो रहे है। शिक्षक का यह दायित्व है कि वह अपने बालकों की सामाजिक अनुक्रियाओं का अध्ययन कर उनकी विशेषताओं तथा कमियों को परिलक्षित कर तदनुसार उनके विकास की योजना बनाए ताकि छात्र स्वयं के साथ-साथ समाज के विकास में भी अपना अधिकतम योगदान दे सकें।

स्वमूल्यांकन (Self-Evaluation)

1. समाजमिति से आप क्या समझते है?
2. समाजमिति तकनीक की विशेषताओं और सीमाओं पर प्रकार डालिए।
3. एक शिक्षक समाजमिति के परिणामों से अपने शिक्षण को सुधार सकता है या नहीं अपने के पक्ष मे तर्क दें।
4. समाजमिति तकनीक से प्राप्त परिणाम लम्बे समय तक विश्वसनीय नहीं रहते है। "क्यो?
5. निम्न तालिका का उपयोग करते हुए सामाजिक संबंध चित्रण कीजिए तथा सर्वप्रिय अलग- थलग पड़े छात्रों को ज्ञात कीजिए।

चयनकर्ता	प्रथम चयनित	द्वितीय चयनित
छात्र-छात्रा	छात्र-छात्रा	छात्र-छात्रा
राम	कृष्ण	मीरा
दिनेश	अहिल्या	कृष्ण
श्याम	राम	गोविन्द
कृष्ण	अहिल्या	श्याम
गोविन्द	श्याम	अहिल्या
नरेश	श्याम	रूकमणी
चम्पा	रूकमणी	गोविन्द
मीरा	चम्पा	राम
अहिल्या	मीरा	चम्पा

रूकमणी	अहिल्या	श्याम

2. अपनी कक्षा के छात्र-छात्राओं में से समाजमितीय विधि को अपनाकर निम्न का उल्लेख कीजिए।

(अ) सर्वप्रिय (ब) अस्वीकृत (स) श्रृंखला (द) गुट

25.11 संदर्भ

1. Freemen Frank S. — The Theory & Practice of Psychological Testing, Holt, Reinenehert & Winston, New York.
2. Gerret Henery E. — Testing of Teachers, American Books Company, New York
3. Gilbert Sax. — Principles of Educational Measurements and Evaluation, Words worth Publishing Company, Anc, Bemont, California.
4. Julian C. Stanley &. — Educational & Psychological Measurement and Evaluation Kenneth D. Hopkins Previtice - Hall of India, Delhi. New.
5. Rammers, H.H. Gage, N.L.A Rummel,J.Frances — .A Practical Instruction to Measurement & .Evaluation Harper & Row.
6. Sharma, Atma Nand — Stoichiometry: A handbook for Teachers & Concensellers national Council of Educational Research and Training - New Delhi.
7. Thomas. R. Murray — Judging Student Progress, David Makay Co. New York.
8. Thorndike, R.L. & Hagen Elizabeth& — Measurement and Evaluation in Psychology Education Job welly

& sons

9. Victo H. Noll, Dale P Scanne — Introduction to Educational Measurement Scannel Houghton Mifflin Co. Boston.

10. Wrightstone, J. Wayne — Evaluation in Modern Education, American Justman Joseph and Robbins Book Co., New York.Irving.

11. Parash Nath Rai — Anusandhan Prichaya, Laxminarayan Agarwal, Agra.